चीन-भारती हिन्दी ग्रन्थमाला—१

जनता के तीन सिद्धान्त

डा० सन यात-सेन

अनुवादक

कृष्ण किंकर सिंह



चीन-भारती

(चीन-भारत सांस्कृतिक संघ की भारतीय शाखा)

शांतिनिकेतन, भारतवर्ष

प्राप्ति स्थान

ग्रन्थ-वितान, भागलपुर

(बिहार)

मूल्य अजिल्द ६), सजिल्द ६॥)

प्रथम संस्करण, १९४९

प्रकाशक—कृष्ण किंकर सिंह

मुद्रक—पं० मगनकृष्ण दीक्षित एम० ए०, दीक्षित प्रेस, इलाहाबाद

विषय-सूची



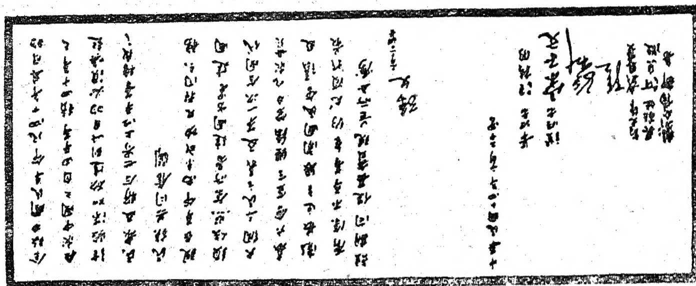
डा० सन यात-सेन

जन्म—१२ नवम्बर, १८६६ ई० मृत्यु—१२ मार्च, १६२५ ई०



डा० सन यात-सेन के उत्तराधिकारी
जेनरलिस्मो चाङ्-काइ-शेक और उनकी धर्मपत्नी

डा० सन यात-सेन का वसीयतनामा



चालीस वर्षों तक मैंने केवल एक लक्ष्य को सामने रखकर जन-क्रान्ति के लिए कार्य किया है। वह लक्ष्य है चीन की समस्त राष्ट्रों के बीच स्वाधीनता और समानता के स्तर पर उन्नति करना। इन चालीस वर्षों में मेरे अनुभवों ने यह धारणा दृढ़ भाव से बद्धमूल कर दी है कि इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए हमें अपनी जनता को पूर्णरूप से जगा देना होगा और हमारे ही समान संघर्ष में लगे हुए संसार के उन लोगों के साथ सहयोग करना होगा जो हमारे साथ समानता का व्यवहार करते हैं।

क्रान्ति का कार्य अभी तक पूरा नहीं हुआ है। अपने सभी साथियों से मेरा अनुरोध है कि वे 'राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की योजना', 'राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की आधारभूत बातें', 'जनता के तीन सिद्धान्त' तथा हमारे दल के प्रथम राष्ट्रीय कॉन्वेन्शन का 'घोषणा-पत्र' के सिद्धान्तों का अनुसरण करें और आग्रहपूर्वक उन्हें कार्यान्वित करने का प्रयत्न करें। सबसे बड़ी बात यह है कि हमारी राष्ट्रीय कॉन्वेन्शन बुलाने तथा असम सन्धियों को रद्द करने के लिए की गई हाल की घोषणाएँ यथासम्भव अविलम्ब पालित होनी चाहिए। मेरा हार्दिक अनुरोध है कि आप लोग मेरी दी हुई यह जिम्मेवारी स्वीकार करें।

(हस्ताक्षर)

फरवरी २०, १९२५ ई० को लिखा गया। सुन् वन

मार्च ११, सन् १९२५ ई०

प्राक्कथन

भारतवर्ष के चीन-भारती (चीन-भारती सांस्कृतिक संघ की भारतीय शाखा) ने फिलहाल 'चीन-भारती ग्रन्थमाला' नाम से हिन्दी और अंगरेजी में दो ग्रन्थ-मालाएँ निकालने का निश्चय किया है। बाद में भारत की दूसरी भाषाओं में भी प्रकाशन की व्यवस्था की जायगी। इसके लिए गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर के 'टॉक्स इन चाइना' को अंगरेजी ग्रन्थमाला में और डा० सन यात-सेन की पुस्तक 'सान् मिन् चु-इ' यानी 'जनता के तीन सिद्धान्त' को हिन्दी में निकालने का निश्चय किया गया है। 'सान् मिन् चु-इ' का अनुवाद चीन सरकार के राष्ट्रीय प्राच्य महाविद्यालय के भूतपूर्व हिन्दी अध्यापक श्री कृष्णकिंकर सिंह जी ने किया है जो इन दिनों विश्वभारती चीन-भवन में हिंदी के अध्यापक हैं और चीन-भारती संघ के आजीवन सदस्य हैं।

भारत के लोग 'सान् मिन् चु-इ' के नाम से काफी परिचित हैं, पर शायद वे इसके विषय से उतने परिचित नहीं हैं। 'सन् मिन् चु-इ' केवल चीन के राष्ट्रीय दल क्वोमिन्ताङ् के क्रान्तिकारी आन्दोलन के लिए राजनीतिक दर्शन और सिद्धान्त ही नहीं रहा है बल्कि वह सम्पूर्ण चीनी राष्ट्र की मुक्ति और उद्धार का पवित्र ग्रन्थ भी है। इस ग्रन्थ के रचयिता चीनी प्रजातन्त्र के प्रतिष्ठाता डा० सन यात-सेन हैं। उनका सिद्धान्त, विशेषकर परम्परागत चीनी दर्शन और संस्कृति पर आधारित है, फिर भी उन्होंने उसमें पश्चिमी विज्ञान, दर्शन और सभ्यता की अच्छी-अच्छी बातों को लिया है। इसका उद्देश्य केवल चीन की स्वतन्त्रता ही प्राप्त करना नहीं है बल्कि संसार में शान्ति स्थापित करना और सम्पूर्ण संसार का संघटन कायम करना भी है। इस एक पुस्तक से ही हम चीन के राष्ट्रीय क्रान्तिकारी आन्दोलन और आधुनिक चीन की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक अवस्था के साथ-साथ उस बड़े देश की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति की आत्मा और उसके भविष्य की आशा-आकांक्षा को भी जान सकते हैं। मेरा नम्र निवेदन है कि भारतीय मित्र जिस प्रकार गीता, महात्मा गांधी के 'हिंद स्वराज' और 'आत्म-कथा' और गुरुदेव की 'गीताञ्जलि' पढ़ते हैं उसी प्रकार उन्हें यह पुस्तक पढ़नी चाहिए। खासकर इसीलिए हमने श्री कृष्णकिंकर सिंह जी के 'सान् मिन् चु-इ' के हिन्दी अनुवाद को चीन-भारती संघ के 'चीन-भारती हिन्दी ग्रन्थमाला' में प्रथम स्थान देने का निश्चय किया है।

श्री कृष्णकिंकर सिंह जी ने पहले 'सान् मिन् चु-इ' के अंगरेजी अनुवाद को पढ़ा और फिर चीनी भाषा में मूल पुस्तक को भी। जब ये विश्व-भारती चीन भवन में चीनी भाषा के रिसर्च स्कॉलर थे तभी इन्होंने इस पुस्तक का अध्ययन प्रारम्भ किया था और जब ये हिन्दी के अध्यापक होकर चीन गए तो वहाँ भी इन्होंने इसका अध्ययन जारी रखा। इन्होंने इस पुस्तक का अनुवाद केवल इसका अच्छी तरह अध्ययन कर ही नहीं किया है बल्कि चीन के प्राचीन और आधुनिक इतिहास, संस्कृति और सभ्यता को सावधानी पूर्वक मनन के बाद किया है। इसलिए इनका अनुवाद बहुत ही विश्वसनीय है और मैं आशा करता हूँ कि जो भी इसे पढ़ेंगे इसकी प्रशंसा करेंगे। इन्होंने अब चीन के सबसे प्रधान नेता जेनरलिस्मो च्याङ् काइ-शेक की प्रसिद्ध चीनी पुस्तक 'चीन का भाग्य' के अनुवाद में हाथ लगाया है और वह पुस्तक भी इसी ग्रन्थमाला में प्रकाशित होगी। मैं इनके इस प्रशंसनीय कार्य की सराहना करता हूँ और इनकी सफलता की मंगल-कामना करता हूँ।

तान युन-शान 譚雲山

चीन-भारती संघ के अधिष्ठाता
और
विश्व भारती चीन भवन के अध्यक्ष

चीन-भवन,
शान्ति निकेतन
७-१२-१९४६

अनुवादक का वक्तव्य

विश्व-भारती चीन-भवन में चीनी भाषा का अध्ययन करते समय मेरे हृदय में चीन की आधुनिक पुस्तकों को हिंदी पाठकों के सामने उपस्थित करने का विचार उठा। इसी उद्देश्य से मैंने चीनी प्रजातंत्र के प्रतिष्ठाता डा० सन यात-सेन की पुस्तक 'सान् मिन् चु-इ' (सान = तीन; मिन् = जनता; चु-इ = सिद्धान्त—जनता के तीन सिद्धान्त) का अध्ययन प्रारम्भ किया। इस अध्ययन में प्रो० तान युन-शान ने बड़ी सहायता की और उन्होंने इस पुस्तक को हिन्दी में अनुवाद करने को प्रोत्साहित किया। सन् १६४४ ई० में जब मैं चीन सरकार के कुमिङ् स्थित राष्ट्रीय प्राच्य महाविद्यालय में हिंदी पढ़ाने को नियुक्त हुआ तो महाविद्यालय के अध्यक्ष प्रो० वाङ्_वन् श्वान् ने भी 'सान् मिन् चु-इ' के हिंदी अनुवाद के लिए अनुरोध किया। यह प्रो० तान युन-शान और प्रो० वाङ्_वन् श्वान् के ही प्रोत्साहन का फल है कि इस मोटी पुस्तक का अनुवाद कर सका हूँ। इसके लिए मैं दोनों का कृतज्ञ हूँ।

किसी देश के साथ सम्पर्क स्थापित करने के लिए उस देश के भूत-काल की बातों के साथ-साथ आधुनिक काल की बातें जानना भी आवश्यक है। चीन हमारा सबसे बड़ा पड़ोसी राष्ट्र है इसलिए उसके साथ सम्पर्क स्थापित करने के लिए हमें वहाँ की आधुनिक बातें जाननी ही चाहिए। आधुनिक चीन जो कुछ भी है वह डा० सन यात-सेन और उनका पदानुसरण करने वाले जेनरलिस्मो च्याङ्_काइ-शेक का निर्माण किया हुआ है। इस-लिए डा० सन यात-सेन के सिद्धान्तों से परिचित होना बहुत ही आवश्यक है। 'सान् मिन् चु-इ', डा० सन यात-सेन के सिद्धान्तों का सबसे बड़ा और श्रेष्ठ संग्रह है। चीनी जनता की आशा-आकांक्षा, गुण-दोष, उन्नति-अवनति आदि का इसमें प्रत्यक्ष चित्रण है। चीन सरकार का पूरा ढांचा इन्हीं सिद्धान्तों पर आधारित है और वहाँ के क्वोमिन् ताङ्_(राष्ट्रीय दल) के ये सैद्धान्तिक आधार हैं। चीन में 'सान् मिन् चु-इ' का क्या स्थान है यह इसी से जाना जा सकता है कि चीनी विधान में वहाँ के प्रजासत्तात्मक राज का नाम ही 'सान् मिन् चु-इ प्रजासत्तात्मक राज' रखा गया है। इसलिए चीन के साथ दिलचस्पी रखने वाले लोगों के लिए 'सान् मिन् चु-इ' का ज्ञान आवश्यक है।

यह हिंदी अनुवाद मूल चीनी पुस्तक और उसके अंगरेजी अनुवाद के सहारे किया गया है। मैंने अनुवाद को मूल के निकट रखने का प्रयत्न किया है। इनवर्टेड कौमा के अंदर चीनी मुहावरों और कहावतों का ठेठ अनुवाद रखा है। मैंने अनुवाद में लंबे-लंबे फ़ुटनोट जोड़ दिए हैं ताकि चीनी साहित्य और इतिहास से अपरिचित व्यक्ति को भी कहीं समझने में कठिनाई न पड़े। चीनी शब्द नागरी अक्षरों में लिखे गए हैं और ऐसा करने में इस बात की कोशिश रखी गई है कि वे मूल ध्वनि के निकट रहें। बहुत जगहों पर जानबूझ कर चीनी वाक्य-विन्यास की तरह ही अनुवाद किया गया है।

पुस्तक छपने के पहले हिंदी-भवन, शांतिनिकेतन के मेरे बंधुवर पं० रामपूजन तिवारी एम० ए० ने गत गर्मी के दिनों में लगातार तीन महीनों तक मेरे साथ बैठकर अनुवाद को मिलाने, संशोधन और परिवर्धन करने में अथक परिश्रम किया है। श्रद्धेय पंडित हजारीप्रसाद द्विवेदी जी से भी मैंने बहुत सहायता ली है, खासकर पारिभाषिक शब्दों के चयन में तो उन्होंने बड़ी ही मदद की है। फ़ुटनोट तैयार करने में चीन-भवन के भूतपूर्व चीनी प्रोफ़ेसर श्री वु थ्याव् लिङ् (भारतीय नाम श्री दिवाकर उपाध्याय) और उनकी पत्नी ने काफ़ी हाथ बटाया है। इतना होने पर भी अगर इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर डा० माताप्रसाद गुप्त और हिंदी-भवन, शांति निकेतन के मेरे मित्र श्री रामसिंह तोमर जी ने इसके छपवाने की व्यवस्था न कर दी होती तो पुस्तक का इतनी जल्दी निकालना सम्भव ही नहीं हो सकता। कमल कुलश्रेष्ठ ने पुस्तक जल्द छपे इसके लिए बड़ी दौड़-धूप की है और सारी पुस्तक का प्रूफ़ ध्यानपूर्वक देखा है। दीक्षित प्रेस के मैनेजर श्री मगनकृष्ण दीक्षित ने नए टाइप में जल्द से जल्द पुस्तक छाप देने में बहुत परिश्रम किया है। इन मित्रों और शुभचिंतकों के प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

चीन-भवन,
शांति-निकेतन
७०-१२०-४६

कृष्ण किंकर सिंह

लेखक का वक्तव्य

'राष्ट्रीय पुनर्निर्माण योजना' नामक मेरी पुस्तक की तीन जिल्दें—मनोवैज्ञानिक पुनर्निर्माण, भौतिक पुनर्निर्माण, सामाजिक पुनर्निर्माण—जब प्रकाशित हो गईं तब मैंने 'राज के पुनर्निर्माण' नामक पुस्तक के लिखने में हाथ लगाया ताकि यह ग्रन्थमाला पूरी हो जाय। यह पुस्तक 'राष्ट्रीय पुनर्निर्माण योजना' की तीन जिल्दों से भी बड़ी थी और इसके राष्ट्रीयता का सिद्धान्त, प्रजातन्त्र का सिद्धान्त, जीवका-सिद्धान्त, पंच शक्ति विधान, स्थानीय सरकार, केन्द्रीय सरकार, वैदेशिक नीति और राष्ट्रीय सुरक्षा कुल आठ भाग थे। 'राष्ट्रीयता का सिद्धान्त' नामक पहला भाग छपने को प्रेस में चला भी गया था, प्रजातन्त्र का सिद्धान्त और जीवका का सिद्धान्त नामक दो भाग लगभग पूरे हो गए थे और शेष भागों की भी रूप-रेखा एकदम ठीक कर ली गई थी। मैं ऐसे अवकाश के समय की प्रतीक्षा में या जिसमें बिना विशेष अनुसन्धान के मैं लिखना शुरू कर देता। ठीक जबकि मैं पुस्तक समाप्त करने और प्रकाशित करने की बात सोच रहा था उसी समय श्री छन् छ्युङ्-मिङ् ने १६ जून, १६२२ ई० को विद्रोह कर दिया जिसकी संभावना भी नहीं थी और क्वान्-यिन्-षन् पर गोलाबारी करने लगा। वर्षों के मानसिक परिश्रम और सैकड़ों विदेशी पुस्तकों के अध्ययन से तैयार किए हुए मेरे नोट और पांडुलिपि अग्नि में स्वाहा हो गई। यह हानि मेरे लिए बड़ी पीड़ादायक थी।

अब इस समय क्वोमिन् ताङ् का पुनःसंगठन किया जा रहा है और हमारे साथी जनता के दिमाग में सारी बातें बैठा देने को कटिबद्ध हैं। प्रचार के लिए उन्हें सान् मिन् चु-इ (जनता के तीन सिद्धान्त) की पूर्ण सचाई और पञ्च शक्ति विधान की प्रधान बातें जानने की अत्यन्त ही आवश्यकता हो गई है। इसलिए मैं एक सप्ताह में एक व्याख्यान देता रहा हूँ। श्री ह्वाङ् छाङ्-कु मेरे व्याख्यानों की रिपोर्ट लिखते और श्री चाउ लु उन्हें संशोधित करते रहे हैं। 'राष्ट्रीयता के सिद्धान्त' की व्याख्यानमाला अभी समाप्त हुई है और यह एक जिल्द में हमारे साथियों के भेंट-स्वरूप प्रकशित की जा रही है। इन व्याख्यानों को सावधानी-पूर्वक तैयार करने के लिए मेरे पास न तो काफी समय था और न आवश्यक पुस्तकें ही थीं। मैं बोलने के समय मंच पर चला जाता था और बिना तैयारी के बोलता जाता था। इस

प्रकार वास्तव में मैं ऐसी बहुत सी बातों को छोड़ गया हूँ जो मेरी पांडुलिपि में थीं। पुस्तक छपने के पहले यद्यपि मैं आवश्यक चीज़ें जोड़ रहा हूँ और संशोधन भी कर रहा हूँ तथापि मैं अनुभव करता हूँ कि स्पष्ट रूप से विषय प्रतिपादन करने, सिलसिलेवार रूप से व्याख्या करने और तथ्यों के अनुमोदन करने की दिशा में ये व्याख्यान पहले तैयार की हुई सामग्री तुलना में कुछ भी नहीं हैं। मैं आशा करता हूँ कि हमारे साथी इस पुस्तक को आधार या प्रेरक शक्ति मानकर प्रचार-कार्य के लिए इसका विस्तार और इसमें संशोधन करेंगे, छूटी हुई बातों को जोड़ देंगे, इसके वर्गीकरण में सुधार करेंगे और इसे सब तरह से त्रुटिहीन बनाएँगे। तब इससे हमारी जनता को और हमारे राज को जो लाभ होगा वह सचमुच में अपरिमेय होगा।

केण्टन

मार्च १०, १९२४ ई०

सुन् यत्-सेन्

राष्ट्रीयता का सिद्धान्त

व्याख्यान—१

सज्जनो,

आज मैं आप लोगों के सामने सान् मिन् सिद्धान्त (जनता के तीन सिद्धान्त) पर बोलने खड़ा हुआ हूँ। आप पूछेंगे, वे सान् मिन् सिद्धान्त हैं क्या ? सीधे-सादे शब्दों में ये हमारे राष्ट्र की मुक्ति के सिद्धान्त हैं। पर सिद्धान्त है क्या ? यह एक धारणा, एक विश्वास और एक शक्ति है। मनुष्य जब किसी समस्या की गहराई में पैठता है तो पहले एक धारणा का उदय होता है। धारणा ज्यों-ज्यों स्पष्ट होती जाती है, विश्वास की जागृति होती है और विश्वास से ही शक्ति पैदा होती है। अतएव, सिद्धान्त किसी धारणा के साथ प्रारम्भ होना चाहिए और धारणा से विश्वास की जागृति और विश्वास से शक्ति की पैदाइश होनी चाहिए; तभी सिद्धान्त पूर्ण रूप से दृढ़ हो सकता है। क्यों हम कहते हैं कि सान् मिन् सिद्धान्त से हमारे राष्ट्र का उद्धार होगा ? क्योंकि ये चीन को अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में, शासन-व्यवस्था में और आर्थिक जीवन में अन्य राष्ट्रों की बराबरी में ऊँचा उठायेंगे जिससे वह (चीन) संसार में स्थायी रूप से बना रह सके। सान् मिन् सिद्धान्त हमारे राष्ट्र की मुक्ति का सिद्धान्त है। आपसे मैं पूछता हूँ—क्या आज चीन को मुक्ति की जरूरत नहीं है ? अगर है, तो आप लोग सान् मिन् सिद्धान्त में विश्वास करें। हम लोगों का विश्वास एक ऐसी जबरदस्त शक्ति पैदा करेगा, जो चीन को निश्चय बचायेगी।

आज मैं राष्ट्रीयता के सिद्धान्त की व्याख्या प्रारम्भ करूँगा। हाल में ही जब क्वोमिन् ताङ् (चीनी राष्ट्रीय महासभा) का पुनः सङ्गठन किया गया तो राष्ट्र की मुक्ति के कार्य-क्रम में प्रचार कार्य पर अधिक जोर दिया गया। जनता के बीच विस्तृत प्रचार-कार्य के लिये सबसे पहले सिद्धान्त को स्पष्ट करने की जरूरत होती है। गत दस वर्षों या उससे भी अधिक दिनों से बुद्धिजीवी लोग 'जनता के तीन सिद्धान्त' के बारे में सुनने के आदी हो गये हैं। परन्तु बहुतों ने अभी तक भी साफ-साफ उन्हें नहीं समझा है। इसलिए आप लोगों के सामने पहिले मैं ब्योरेवार ढङ्ग से राष्ट्रीयता के सिद्धान्त की ही व्याख्या करूँगा।

राष्ट्रीयता का सिद्धान्त क्या है ? चीन के सामाजिक जीवन और रीति-रिवाज के पिछले इतिहास पर गौर करने के बाद संक्षेप में मैं कहूँगा कि राष्ट्रीयता का सिद्धान्त 'स्टेट के सिद्धान्त'-सा है। चीन के लोगों ने सदा से अपने परिवार और कुल के प्रति अत्यधिक भक्ति दिखलाई है जिसके फल-स्वरूप परिवारवाद और कुलवाद तो चीन में है, पर वास्तविक राष्ट्रीयता नहीं है। विदेशी लोग कहा करते हैं कि चीन के लोग 'बिखरे बालू की परत' के समान हैं। ऐसा क्यों ? केवल इसलिए कि हम लोगों ने परिवार और कुल के प्रति वफ़ादारी तो दिखलाई, पर राष्ट्र के प्रति नहीं। इस कारण राष्ट्रीयता रही ही नहीं। चीन में परिवार और कुल जबरदस्त संगठित करने वाली शक्ति के रूप में हैं और बार-बार यहाँ वालों ने अपने कुल की रक्षा करने में अपना तथा अपने परिवारवालों का बलिदान किया है। उदाहरण के लिए क्वाङ्-तुङ् (चीन का एक दक्षिणी प्रान्त, समुद्र के किनारे) के दो कुलों के बीच के कलह को लीजिए। दो कुलों में से कोई भी झुकने को तैयार नहीं है चाहे इसके लिए कितनी भी सम्पत्ति और जीवन की आहुति क्यों न देनी पड़े। यह सब इसलिए है कि लोगों के हृदय में कुल की भावना इतनी बद्धमूल हो गई है कि ये लोग अपने कुल वालों के लिए सब कुछ बलिदान करने को तैयार रहते हैं; परन्तु राष्ट्र के लिए बलिदान करने की श्रेष्ठ भावना संकुचित दायरे—कुल—तक ही सीमित रह गयी है। वह राष्ट्र तक नहीं पहुँच पायी है।

मेरा कथन कि जातीयता (Nationality) का सिद्धान्त राज के सिद्धान्त-सा है, केवल चीन पर ही लागू होता है—पश्चिमी देशों पर नहीं। विदेशी लोग राष्ट्र (Nation) और स्टेट में अन्तर मानते हैं। चीनी शब्द 'मिन्छु' का पर्यायवाची अंगरेजी शब्द 'नेशन' है। और नेशन शब्द के दो अर्थ हैं—नस्ल (Race) और राज (State)। यद्यपि इस शब्द के दो अर्थ हैं और वे काफी स्पष्ट हैं, इसलिये इनके समझने में गलती नहीं करनी चाहिए। बहुत-से चीनी शब्दों के दो अर्थ होते हैं। उदाहरण के लिये से हुइ (सोसाइटी-समाज) शब्द को लीजिये। यह शब्द आदमी के समूह और एक संगठित संस्था दोनों का द्योतक है। यद्यपि राष्ट्र (Nation) और राज में बहुत ही निकट का सम्बन्ध है—यहाँ तक कि दोनों में अन्तर करना जरूरी नहीं मालूम होता; फिर भी इन दोनों के बीच स्पष्ट भेद है। इसलिये हम लोगों को दोनों के भेद को सावधानीपूर्वक समझ लेना चाहिये। लेकिन जब मैं कहता हूँ कि राष्ट्र और राज एक-से हैं, तो यह केवल चीन पर

ही क्यों लागू होता है ? इसका कारण यह है कि छिन्[1] और हान्[2] राजकुलों के समय से ही चीन का विकास एक राज के रूप में एक ही जाति से होता आया है जबकि विदेशों में एक जाति से कई स्टेट बने हैं और एक राज में कई जातियों का समावेश हुआ है। उदाहरण के लिये इंगलैण्ड को लीजिये। वहाँवाले श्वेत जाति के हैं जिसमें भूरे, काले तथा अन्य जातियों का समावेश होकर ब्रिटिश साम्राज्य बना है। इसलिये यह कहना कि नस्ल (race) या राष्ट्र (Nation) ही राज है, इङ्गलैण्ड के लिये लागू नहीं होता। फिर, हाङ्काङ् की, जो ब्रिटिश अधिकृत प्रान्त है, जनसंख्या में कई हजार चीनी लोग हैं। इसलिये अगर हम लोग ऐसा कहें कि हाङ्काङ् का ब्रिटिश राज ब्रिटिश राष्ट्र (Nation) है, तो हम लोग गलती करेंगे; अथवा भारत को देखिये जो इन दिनों ब्रिटिश अधिकृत देश है। इस ब्रिटिश राज में पैंतीस करोड़ भारतवासी हैं। अगर हम लोग कहें कि भारत के ब्रिटिश राज का मतलब ब्रिटिश राष्ट्र (Nation) है तो, हम लोग गलत रास्ते पर होंगे। हम सभी जानते हैं कि इंगलैण्ड के मूल निवासी (Stock) एंग्लो-सेक्सन जाति के थे। पर यह जाति केवल इंगलैण्ड तक ही सीमित नहीं है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में भी इस जाति के बहुत-से लोग हैं। इसलिये दूसरे देशों के लिये यह कहना ठीक नहीं है कि नस्ल (race) और राज अभिन्न हैं। इन दोनों के बीच स्पष्ट अन्तर है।

इन दोनों का अन्तर हम लोग कैसे साफ-साफ जान सकते हैं ? जानने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि उन शक्तियों का अध्ययन किया जाय जिनसे ये दोनों बनते हैं। सीधे शब्दों में कहें तो नस्ल (race) या जातीयता (Nationality) का विकास प्राकृतिक ढंग से हुआ है जब कि राज का विकास शस्त्र-शक्ति के बल से। चीन के राजनीतिक इतिहास से ही एक उदाहरण लिया जाय। चीन के लोग कहते हैं कि वाङ्-ताव् ने—राजधर्म या सुनीति का रास्ता—प्रकृति का अनुसरण किया। दूसरे शब्दों में प्राकृतिक शक्ति ही राज-धर्म थी। राज-धर्म द्वारा गठित समूह (group) ही जाति (race) है—जातीयता (Nationality) है। शस्त्र-शक्ति का ही नाम 'पा-ताव्'—ताकत की राह—है। ताकत की राह द्वारा गठित समुदाय (group) ही स्टेट है। उदाहरण देखिये—हाङ्काङ् इसलिये नहीं बना कि वहाँ के हजारों निवासी अँगरेजों को ऐसा करने देना चाहते थे,

---

१. २४६ २०७ ई० पू०

२. ई० पू० २०६-सन् २१६ ई० तक

बल्कि हाङ्काङ तो ब्रिटिश लोगों ने तलवार के जोर से ले लिया। चूँकि चीन इंगलैण्ड से युद्ध में हार गया इसलिये हाङ्काङ् प्रदेश और वहाँ के निवासियों को उसे इंगलैण्ड के अधीन कर देना पड़ा और इस प्रकार कालान्तर में आधुनिक हाङ्काङ् बना। ब्रिटिश भारत के विकास की भी यही कहानी है। ग्रेट ब्रिटेन द्वारा अधिकृत प्रदेश सारे संसार में फैले हुए हैं। अंगरेजी कहावत है—'ब्रिटिश साम्राज्य में सूर्य कभी अस्त नहीं होता।' दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह है कि पृथ्वी के घूमते रहने पर सूर्य की रोशनी जिस किसी भू-भाग पर भी पड़ती है, वहाँ कोई न कोई ब्रिटिश अधिकृत देश जरूर है। अगर हम पूर्वी गोलार्द्ध के रहनेवाले सूर्य के साथ यात्रा करें तो हम देखेंगे कि सूर्य सबसे पहले न्यूजीलैण्ड, आस्ट्रेलिया, हाङ्काङ् और सिंगापुर पर अपनी रोशनी फैलता है और जैसे ही वह पश्चिम की ओर बढ़ता है, उसकी रोशनी लंका और भारतवर्ष पर पड़ती है; उसके भी पश्चिम अदन और माल्टा पर और भी उसके पश्चिम खास इंगलैण्ड पर ही। फिर पश्चिमी गोलार्द्ध में घूमता हुआ सूर्य अपना प्रकाश कनाडा पर फैलाता है और पुनः हाङ्-काङ् तथा सिंगापुर में आकर अपना चक्कर पूरा कर लेता है। इसलिये चौबीस घण्टे में जहाँ कहीं भी सूर्य की रोशनी पड़ती है, वहाँ कोई न कोई ब्रिटिश अधिकृत प्रदेश है ही। ग्रेट ब्रिटेन को यह विशाल भू-भाग तलवार के जोर से ही हाथ लगा है। प्राचीन काल से ही किसी का स्टेट का निर्माण बिना हथियार के नहीं हुआ है। पर जाति (race) या जातीयता (Nationality) का विकास एक बिलकुल ही दूसरी चीज है। यह सम्पूर्णतः प्राकृतिक गति से विकसित होती है। शस्त्र-शक्ति के सहारे एकदम नहीं। हाङ् काङ् में बसनेवाले हजारों चीनी प्राकृतिक रूप से एक जाति-सूत्र में संगठित हैं। किसी भी शक्ति द्वारा इंगलैण्ड इसे नहीं बदल सकता है। इसलिये ही हम कहते हैं कि प्राकृतिक शक्तियों द्वारा जो समुदाय संगठित और विकसित होता है, वही जाति है। शस्त्र-शक्तियों के जोर पर जो समुदाय संगठित और विकसित किया जाता है, वह स्टेट है। यही जाति या जातीयता और स्टेट में अन्तर है।

फिर, जातियों की उत्पत्ति के बारे में देखिये। प्रारम्भ में मनुष्य पशु का ही वर्ग था। लेकिन वह पशु-पक्षियों से कितना आगे बढ़ गया है। वह 'सम्पूर्ण सृष्टि की आत्मा' है। मनुष्य मात्र प्रथम पाँच प्रमुख जातियों में विभक्त है—श्वेत, काली, लाल, पीली और भूरी।

इसमें फिर कई उपजातियाँ हैं। जैसे एशियाई जातियों में मंगोल[3], मलय, जापानी, मांचू[4] और चीनी। साधारणतः इन जातियों का विकास प्राकृतिक शक्तियों द्वारा हुआ है। परन्तु जब हम उनका विश्लेषण करने की कोशिश करते हैं तब हम पाते हैं कि वे अत्यन्त ही जटिल हैं। जाति-निर्माण में सबसे बड़ी शक्ति एक रक्त का होना है। चीन के लोग पीली जाति के हैं क्योंकि उनका विकास पीली जाति के रक्त से हुआ है। पूर्वजों का रक्त वंश-परम्परा से सम्पूर्ण जाति के लोगों में वर्त्तमान रहता है जिससे रक्त की रिश्तेदारी एक जबरदस्त शक्ति हो जाती है।

दूसरी बड़ी शक्ति जीविका है। जीविका उपार्जन से साधन में भिन्नता होने पर जातियों के विकास में भी भिन्नता आ जाती है। मंगोलिया के रहनेवालों का डेरा पानी और घास के पास होता था। ये लोग खानाबदोश हालत में रहते थे और घूमते हुए पानी और घास देखकर डेरा डाल देते थे।

---

३. यह मंगोलिया के मैदान में रहनेवाली एक खानाबदोश जाति थी। १३ वीं शती के प्रारम्भ में इस जाति में चंगेज खाँ नामक एक जेनरल हुआ जिसने चीन पर चढ़ाई की और मध्य-एशिया तथा पूर्वी-एशिया को भी जो अपने दखल में लाया। यद्यपि चंगेज खाँ ने सन् १२१० ई० में चीन पर चढ़ाई की, पर संपूर्ण चीन इस जाति के कब्जे में सन् १२७९ ई० में आया जब कि सुङ् राजवंश के अन्तिम सम्राट् ने परिवार सहित मंगोल द्वारा गिरफ्तार होने से बचने के लिये समुद्र में कूदकर आत्महत्या कर ली। असल में सन् १२७९ ई० में मंगोल का पूर्ण राज चीन पर माना जाता है। यों तो उत्तरी चीन इस जाति के अधिकार में पहले आ चुका था और चंगेज खाँ के वंशज (चंगेज खाँ के बाद चौथी पीढ़ी में) कुब्लइ खाँ अपनी राजधानी काराकोरम (Karakorum मंगोलिया में) से उठाकर पेकिङ् सन् १२६३ ई० में ही ले आया था। इस जाति का राज्य चीन में युआन् राजवंश के नाम से प्रचलित है। युआन् राजवंश का काल सन् १२०६ (चंगेज खाँ के उदय काल से)—१३६७ ई० तक माना जाता है।

४. मांचू जाति वर्तमान काल के मंचूरिया के किरिन् प्रान्त में रहती थी। यहाँ किरिन् प्रान्त में सुन्गारी नदी के किनारे सन् १६१८ ई० में नुरहाचु (जो थाईचु भी कहलाता है, ने मांचू जाति का संगठन कर राज्य कायम किया। इसका लड़का हुआङ् ताइची (जो थाइ चुङ् भी कहलाता है) सन् १६२५ ई० गद्दी पर पैठा और मुकदन में (यह मंचूरिया के वर्तमान लिआवूनिङ् प्रान्त में है)

इस एक समान खानाबदोश अभ्यास के कारण ही एक जाति विकसित हो गयी जिससे अचानक 'मंगोल शक्ति' का प्रादुर्भाव हुआ। अपनी चरम उन्नति के दिनों में यूआन्[५] (मंगोल) राजवंश की सेना ने पश्चिम एशिया, अरब और यूरोप के भाग को जीत लिया और पूर्व में चीन को संगठित किया तथा जापान को भी प्रायः अपने अधीन कर लिया। इस प्रकार यूरोप तथा एशिया को एक छत्र-छाया में लाया। दूसरी जातियों की उत्पत्ति के दिनों से इसकी तुलना कीजिये। हान् और थाङ्[६] राजवंशों के अत्यधिक सैन्य शक्तिकाल में भी चीनी लोग अपने राज्य की सीमा पश्चिम की ओर कास्पियन समुद्र तक ही पहुँचा पाये थे। रोम साम्राज्य की भी पूर्वी सीमा अपनी सैन्य शक्ति के चरम उत्कर्ष युग में भी काले समुद्र से आगे नहीं फैल सकी। इसके पहले किसी भी देश की सैन्य शक्ति ने यूरोप और एशिया इन दो महादेशों पर अधिकार नहीं किया था, जैसा कि यूआन् राजवंश की मंगोल सेना ने अपने उत्कर्ष काल में किया। मंगोल जाति की इस महान् शक्ति का

राजधानी कायम की और चीन के मिङ् राजकुल का लिआव् तुङ् प्रान्त को दखल कर लिया। यह लिआव् तुङ् प्रान्त चीनी महान् दीवार के उस पार लिआव् नदी (वर्तमान निङ् प्रान्त में) तक था और मिङ् राजकुल के अधिकार में था। मांचू लोग महान् दीवार पार कर खास चीन में भी प्रवेश करना चाहते थे। पर दीवार के पास की मिङ् सेना ने प्रवेश नहीं करने दिया। सन् १६४३ ई० में सम्राट् हुआङ् ताइची मर गया। उस समय उसका लड़का ११ वर्ष का था इसलिये रिजेन्ट राज करने लगा। सन् १६४४ ई० में लिछुआङ् ने पेकिङ् दखल कर चीन के मिङ् राजवंश को समाप्त किया और स्वयं चीन का सम्राट् बना। मिङ् राजवंश के जेनरल वुसान् कइने लि छुआङ् को हटाने के लिये मांचू सम्राट् की मदद माँगी। इस प्रकार मांचू फौज ने चीन में प्रवेश किया और लिछुआङ् को भगाकर अपने बालक सम्राट् को पेकिङ् की राजगद्दी पर बैठा चीन का सम्राट् घोषित किया। उत्तरी चीन पर मांचू लोगों का पूर्ण अधिकार बिना विरोध हो गया। पर दक्षिणी चीन पर अधिकार करने में बड़े भारी विरोध का सामना करना पड़ा और सम्पूर्ण चीन मांचू लोगों के हाथ में सन् १६८२ ई० में आया। इस जाति ने अपने राजवंश का नाम छिङ् (पवित्र) रखा। छिङ् राजवंश सन् १६४४ ई० से १९११ ई० तक रहा।

५. सन् १२७७—१३६७ ई०। देखिये इसी अध्याय का नोट नं० ३

६. चीन का राजवंश सन् ६१८—९०६ ई०।

कारण उनका खानाबदोश जीवन और कोसों बिना दूरी की परवाह किये प्रतिदिन निरन्तर चलने का अभ्यास था।

जाति-निर्माण का तीसरा बड़ा कारण भाषा है। अगर विदेशी जातियाँ हमारी भाषा सीखें, तो वे लोग हम लोगों में बड़ी आसानी से घुल-मिल जायेंगी और कालान्तर में हमारी जाति में एकदम से खप जायेंगी। इसके विपरीत अगर हम लोग दूसरे देशों की भाषाएँ सीखें, तो विदेशियों द्वारा आसानी से हम लोग ही मिला लिये जायेंगे।

चौथी शक्ति धर्म है। वे सभी आदमी जो एक देवता या एक पूर्वज की पूजा करते हैं, एक जाति के रूप में संगठित होने लगते हैं। जातियों के विकास में धर्म एक बड़ा शक्तिशाली कारण है। अरब और जुडिया को देखिये। यद्यपि इनके राज बहुत पहले ही समाप्त हो गये तथापि अरब और यहूदी जातियाँ अब तक जीवित हैं। इनके राज के नष्ट हो जाने पर भी इन जातियों के जिन्दा रहने का कारण इनका धर्म है। हम सभी जानते हैं कि इन दिनों यहूदी लोग बड़ी-बड़ी संख्या में सभी देशों में बसे हुए हैं। कुछ बड़े-बड़े विद्वान् जैसे मार्क्स और अइन्सटीन यहूदी हैं। इंगलैण्ड, अमेरिका और दूसरे देशों में आर्थिक कारबार अधिकांशतः यहूदी लोगों द्वारा नियंत्रित होते हैं। यहूदी लोग यद्यपि संसार भर में बिखरे हुए हैं, फिर भी वर्तमान समय तक अपनी नस्ल को जिन्दा बनाये रखने में समर्थ हो सके हैं; इसका कारण यह है कि उनकी प्रकृति-प्रदत्त तीक्ष्ण बुद्धि में धार्मिक विश्वास भी जुड़ गया है। अरब-निवासियों के जिन्दा रहने का कारण भी इस्लाम धर्म ही है। दूसरा उदाहरण बौद्ध धर्म[7] में गहरी आस्था रखनेवाले भारतवासियों का है। यद्यपि इनका देश ग्रेट ब्रिटेन के अधिकार में चला गया है, परन्तु इनकी भारतीय जाति कभी नष्ट नहीं हो सकती है।

पाँचवीं शक्ति आचार-विचार और आदत है। अगर आदमियों के बीच एक ही प्रकार के आचार-विचार और आदत प्रचलित हैं, तो कालान्तर में वे लोग एक में सम्बद्ध होकर एक जाति के रूप में हो जायेंगे। इसलिये जब कभी हम लोग दो विभिन्न जन-समुदायों या वंशों को मिलकर समान वर्ग के रूप में बनते हुए पाते हैं, तो इस प्रकार के विकास के मूल में ये

७. यह बात गलत है कि भारतीय बौद्ध धर्म में गहरी आस्था रखते हैं। जान पड़ता है, डा० सन् यात् सेन् को किसी ने यह गलत बताया—अनु०

पाँच शक्तियाँ होती हैं—रक्त की रिश्तेदारी, समान भाषा, समान जीविका, समान धर्म और समान आचार-विचार। ये कारण सैन्य शक्ति की उपज नहीं हैं; बल्कि प्राकृतिक विकास के फल हैं। इन पाँच शक्तियों और सैन्य शक्तियों की तुलना से हम लोग नस्ल या जातीयता और राज के अन्तर को पहचान सकते हैं।

प्राचीन और वर्तमान जातियों के जिन्दा रहने के सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए अगर हम लोग चीन का उद्धार करना चाहते हैं और चीनी नस्ल को बनाये रखना चाहते हैं, तो हमें राष्ट्रवाद को निश्चय ही प्रोत्साहन देना पड़ेगा। चीन की मुक्ति के लिये इस सिद्धान्त को मार्ग-दर्शक मानने के पहले हमें इसे अच्छी तरह और साफ-साफ समझ लेना चाहिए। सम्पूर्ण चीनी जाति में चालीस करोड़ लोग हैं। इस नस्ल में मिली हुई अन्य नस्लें हैं जिनमें कई लाख मंगोल, दस लाख के लगभग मांचू, कई लाख तिब्बती और दस लाख से अधिक मुसलमान तुर्क हैं। इन विदेशी सभी नस्लों की सम्मिलित जनसंख्या एक करोड़ से अधिक नहीं है। इस प्रकार चीनी लोगों की जनसंख्या का सबसे बड़ा हिस्सा हान् या चीनी नस्ल का है, जिसमें रक्त, भाषा और आचार-विचार एक हैं। यह एक नस्ल की एक जाति है।

हमारे राष्ट्र का संसार में क्या स्थान है? दूसरे राष्ट्रों की तुलना में हम लोगों की जनसंख्या सबसे बड़ी है और चार हजार वर्षों से धारावाहिक रूप में चली आनेवाली प्राचीन संस्कृति है। हम लोगों को यूरोप और अमेरिका के राष्ट्रों के साथ-साथ आगे बढ़ना चाहिए था। लेकिन चीनी जनता केवल परिवार और कुल के समुदाय तक ही सीमित रही। उसमें राष्ट्रीय भावना नहीं है। जिसके फलस्वरूप चालीस करोड़ जनसंख्या के रहते हुए भी हम लोग सचमुच बिखरे बालू की परत के समान हैं। हमारा राष्ट्र संसार में सबसे गरीब और कमजोर है। अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में हमारा स्थान सबसे नीचा है। अन्य लोग काटने वाली छूरी और परसी जाने वाली थाली के समान हैं, जबकि हम लोग मछली और मांस के समान भोज्य हैं। हम लोगों की स्थिति बड़ी ही नाजुक हो गयी है। अगर हमने तत्परता के साथ राष्ट्रवाद की भावना को प्रोत्साहन नहीं दिया और चालीस करोड़ जनता को मजबूत राष्ट्र के रूप में संगठित नहीं किया, तो हमारा अन्त भयंकर होगा, सारा देश नष्ट हो जायगा, सारी जाति बरबाद हो जायगी। इस खतरे से बचने के लिए हमको राष्ट्रवाद स्वीकार करना ही पड़ेगा। और देश को बचाने के लिए राष्ट्रीय

भावनाओं को जगाना पड़ेगा। अगर हमको यह काम करना है तो सबसे जरूरी यह है, कि पहले जान लें कि हमारे राष्ट्र को कहाँ से खतरा है। और इस खतरे को स्पष्ट करने के लिए सबसे अच्छा उपाय यह है कि हम चीनी जनता की तुलना संसार के अन्य बड़े शक्तिशाली राष्ट्रों की जनता से करें। यूरोपीय युद्ध (सन् १९१४—१९१८ ई०) के पहले सात या आठ तथाकथित महान् शक्तिशाली राष्ट्र थे। सबसे बड़ा ग्रेट ब्रिटेन, सबसे मजबूत जर्मनी, आस्ट्रिया और रूस, सबसे धनी संयुक्तराष्ट्र अमेरिका और सबसे छोटे जापान और इटली थे। यूरोपीय युद्ध के बाद तीन राष्ट्रों का पतन हो गया और पहले दर्जे के शक्तिशाली राष्ट्रों में ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्तराष्ट्र अमेरिका, फ्रांस, जापान और इटली बच रहे। ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, रूस और संयुक्तराष्ट्र अमेरिका में से हर राज का विकास एक नस्ल से हुआ है। ग्रेट ब्रिटेन का विकास जिस मूल नस्ल से हुआ, वह एंग्लो-सेक्सन थी और उनका प्रारम्भिक राज इंगलैण्ड और वेल्स तक ही सीमित था। इनकी जनसंख्या ३ करोड़ ८० लाख है और ये ही विशुद्ध ऐंग्लो-सेक्सन हैं। यह जाति संसार में सबसे अधिक शक्तिशाली हो गयी है और इसने जिस राज का निर्माण किया है, वह सबसे मजबूत है। एक सौ वर्ष पहले यहाँ की जनसंख्या केवल १ करोड़ २० लाख थी; पर इस समय वह बढ़कर ३ करोड़ ८० लाख हो गयी है। अर्थात् एक शती में इस जाति की जन-वृद्धि का अनुपात तीन सौ फी सदी रहा है।

हम लोगों के पूरब भी एक द्वीपवाला राज है। जो पूर्व का ग्रेट ब्रिटेन कहा जा सकता है। इस द्वीप-समूह का नाम जापान है। जापान राज का भी विकास यामातो (महाशान्ति) नामक एक नस्ल से हुआ है। जापानी साम्राज्य के प्रारम्भ युग से आज तक यह राज किसी विदेशी शक्ति के अधीन नहीं हुआ। युआन् राजवंश के मंगोल भी अपनी चरम विजय के दिनों में जापान तक नहीं पहुँच सके। कोरिया और फारमूसा द्वीप को छोड़कर जापान की वर्तमान जनसंख्या पाँच करोड़ साठ लाख है। एक सौ वर्ष पहले वहाँ की जनसंख्या का पता लगाना कठिन है; लेकिन आजकल की जन-वृद्धि के अनुपात से अगर अनुमान लगायें तो जापान की जनसंख्या भी एक शती में तीन सौ फी सदी के हिसाब से बढ़ी है। इस प्रकार एक सौ वर्ष पहले वहाँ की जनसंगया २ करोड़ के करीब होगी। यामातो जाति की प्रतिभा में ह्रास के कुछ भी चिह्न दृष्टिगोचर नहीं हुए हैं। उन्नतिशील यूरोपीय सभ्यता का पल्ला पकड़ और पश्चिमी संस्कृति की जलवायु का सेवन करते

हुए इस जाति के लोगों ने अपने राज की उन्नति के लिये विज्ञान के नूतन तरीकों से काम लिया है और आधी शती के अन्दर ही ये लोग आधुनिकता के रंग में इतना रँग गये हैं कि जापान पूर्व का सबसे शक्तिशाली राष्ट्र है और यूरोप तथा अमेरिका के राष्ट्रों के समकक्ष है। यूरोप और अमेरिका के लोग जापान को नीची निगाह से देखने का साहस नहीं करते हैं। हमारे देश की जनसंख्या जापान से कहीं अधिक है; पर हम लोग तिरस्कृत होते हैं, तुच्छ समझे जाते हैं। क्यों? इसलिये कि एक के पास राष्ट्रवाद की भावना है और दूसरे के पास नहीं। आधुनिक ढाँचे में ढलने के पहले जापान एक बहुत ही निर्बल राष्ट्र था। चीन के सिच्वान प्रान्त से कम रकबा और जन-संख्या वाले राष्ट्र जापान को भी पश्चिमी प्रभुत्व का शिकार होना पड़ा था। लेकिन जापानियों ने अपनी राष्ट्रीय भावनाओं के कारण, जिनसे वीरत्व का आविर्भाव होता है, पचास वर्षों से भी कम समय में निर्बल जापान को एक शक्तिशाली राज के रूप में बदल दिया। अगर हम चीन को शक्तिशाली बनाना चाहते हैं तो जापान एक अपूर्व आदर्श है।

अब यूरोपीय और एशियाई लोगों की तुलना कीजिए। पहले श्वेतांग लोगों ने यह समझकर कि उन लोगों के पास ही बुद्धि और योग्यता है, सभी चीजों पर एकाधिकार कर लिया। चूँकि हम एशियाई लोग पश्चिम की अच्छी बात और मजबूत राज बनाने की गूढ़ बातों को जल्द नहीं सीख सके, इसलिये पस्त हिम्मत हो गये। यह केवल चीन पर ही नहीं, बल्कि समस्त एशिया के लोगों पर लागू है। जो कुछ हो, हाल के वर्षों में अकस्मात् ही नया जापान प्रथम दर्जे का राष्ट्र बन ऊपर उठ आया है। जापान की सफलता ने एशिया के दूसरे राष्ट्रों में असीम आशाओं का संचार कर दिया है। आज एशिया के लोग जानते हैं कि एक दिन जापानी राज आज के अन्नाम और बर्मा के समान निर्बल था। पर आज बर्मा और अन्नाम जापान के पसँगे में भी नहीं आ सकते। जापान ने यूरोपीय राष्ट्रों से शिक्षा ग्रहण की और जब से वह आधुनिकता के रंग में रँगा है, यूरोपीय राष्ट्रों के समकक्ष होने में लगा है। यूरोपीय युद्ध के बाद वार्साइ के शान्ति-सम्मेलन में जापान संसार के पाँच महान् शक्तिशाली राष्ट्रों में से एक होकर सम्मिलित हुआ। एशिया के मामलों में वह सबसे प्रधान वक्ता बना रहा और दूसरे एशियाई राष्ट्र उसे अगुआ मानते हुए केवल उसके प्रस्ताव को सुनते रहे। इससे हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि जो काम श्वेतांग लोग कर सकते हैं, जापान भी प्रत्यक्ष रूप से उसे कर सकता है। जातियों के रंग में अन्तर

हो सकता है, पर वह बुद्धि और योग्यता में अन्तर नहीं ला सकता। चूँकि एशिया महादेश में जापान शक्तिशाली राष्ट्र है, इसलिये श्वेतांग जातियाँ आज जापानी या एशिया की किसी जाति को उपेक्षा की दृष्टि से देखने का साहस नहीं कर सकती हैं। इस प्रकार जापान की उन्नति से यामातो जाति की ही इज्जत नहीं बढ़ी है, बल्कि उससे एशिया की सभी जातियों का स्थान ऊँचा हो गया है। एक समय था, जब हम सोचते थे कि जो काम यूरोपीय लोग कर सकते हैं, हम नहीं कर सकते। लेकिन अब हम देखते हैं कि जापान ने यूरोप से शिक्षा ग्रहण की, और इसलिये अगर हम जापान का अनुसरण करें तो हम जापान की-सी ही शिक्षा ग्रहण कर लेंगे।

यूरोपीय युद्ध के समय रूस में एक क्रान्ति हो जाने के फलस्वरूप वहाँ से प्राचीन राजसत्ता उठ गयी। अब रूस एक नया ही राज—समाजवादी राज—हो गया है जो प्राचीन राज से सर्वथा भिन्न है। रूस के लोग स्लाव नस्ल के हैं। एक शती पहले वहाँ की जनसंख्या ४ करोड़ थी। परन्तु अब सोलह करोड़ है। यानी जनवृद्धि का अनुपात ४०० फी सदी रहा है। रूसी राष्ट्र की शक्ति भी चौगुनी हो गयी है और गत एक सौ वर्षों से रूस संसार का एक बड़ा ही शक्तिशाली राष्ट्र हो रहा है। उसके आतंक से केवल एशियाई राष्ट्र जापान और चीन ही नहीं डरते थे, बल्कि यूरोपीय राष्ट्र इंगलैण्ड और जर्मनी तक भी। अपने साम्राज्यवादी काल में रूस की नीति आक्रमक रही थी और वह बराबर अपनी सीमा विस्तार में लगा हुआ था, जिसके फलस्वरूप आज उसके अधीन आधा यूरोप और आधा एशिया है। वह दोनों महादेशों में पैर फैलाये हुए है। रूस और जापान-युद्ध के समय संसार के लोग डरते थे कि रूस कहीं चीन के भू-भाग पर चढ़ाई न कर दे। यह डर इसलिये और भी भयंकर था कि लोग समझते थे कि चीन पर रूस की चढ़ाई उसके संसार-विजय का कहीं श्रीगणेश न हो। एक समय था जब कि रूसी लोगों की इच्छा संसार-विजय करने की थी और दूसरे राष्ट्र उसको रोकने का मनसूबा सोच रहे थे। इंगलैण्ड और जापान के बीच हुई सन्धि रूस की नीति के प्रतिरोधस्वरूप थी। रूस और जापान की लड़ाई के फलस्वरूप जब जापान ने रूसियों को कोरिया और दक्षिणी मंचूरिया से निकाल बाहर किया और रूस के संसार-विजय के स्वप्न को भङ्गकर पूर्वी एशिया की एकता को अक्षुण्ण बनाये रखा, तो इस घटना से अन्तर्राष्ट्रीय जीवन में अत्यन्त गम्भीर परिवर्तन हुआ। और जब यूरोपीय युद्ध के बाद रूस ने अपनी साम्राज्यवादी नीति बदल कर अपने पुराने साम्राज्यवादी राज के

स्थान पर नवीन समाजवादी राज की स्थापना की, तो उस समय उससे (रूस का जापान से हार जाने के बाद हुए परिवर्तन से) भी बढ़ कर दूसरा महान् परिवर्तन हुआ। क्रान्ति को हुए अभी छः वर्ष ही गुजरे हैं; पर इसी अरसे में रूस ने अपना आन्तरिक संगठन कर लिया है और अपनी पुरानी आक्रमक नीति के स्थान पर शान्ति की नई नीति अपना ली है। इस नई नीति में संसार की शान्ति भङ्ग करने की बातों को तो एकदम स्थान नहीं ही है, बल्कि इसका उद्देश्य तो शक्तिशाली को दबाना और कमजोरों की सहायता करना है। रूस की यह नीति न्याय की प्रचारक है। लेकिन रूस की तरफ से संसार के लोगों में एक नया डर समा गया है, जो पहले के डर (रूस द्वारा संसार-विजय किये जाने का डर) से भी अधिक तीव्र है। इसका कारण यह है कि रूस की नई नीति केवल रूस के ही साम्राज्यवादी प्रणाली को नष्ट नहीं करना चाहती, बल्कि संसार से ही इस प्रणाली का मूलोच्छेद करना चाहती है। साथ ही साथ यह संसार से पूँजीवादी प्रथा को भी मिटा देना चाहती है। क्योंकि हर देश में यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से शक्ति उस देश की सरकार के हाथों में रहती है लेकिन वास्तविक नियंत्रण पूँजीपतियों के हाथों में होता है। रूस की यह नई नीति इस नियंत्रण को मिटा देना चाहती है। इसलिये संसार के पूँजीपति लोग आतंकित है। इस कारण से संसार के मामलों में एक अत्यन्त गम्भीर परिवर्तन हो गया है जिससे संसार की सभी भविष्यकालीन धाराएँ प्रभावित होंगी।

यूरोप के इतिहास में अन्तर्राष्ट्रीय लड़ाई का होना मामूली घटना हो गयी है। सबसे हाल की लड़ाई—यूरोपीय युद्ध (प्रथम)—केन्द्रीय राष्ट्रों जिनमें जर्मनी, आस्ट्रिया, टर्की और बलगेरिया थे और मित्र राष्ट्रों जिनमें इंगलैण्ड, फ्रांस, रूस, जापान, इटली और संयुक्तराष्ट्र अमेरिका थे, के बीच हुई थी।[८] चार वर्षों की घनघोर लड़ाई से थककर अन्त में दोनों दल युद्ध से

---

८. चीनी भाषा में लड़ाई (१९१४—१९१८) के बाद भी जर्मनी आस्ट्रिया, टर्की और बलगेरिया के सम्मिलित दल के लिए मित्र राष्ट्र या मित्र शक्ति और इंगलैंड, फ्रांस, अमेरिका, रूस, जापान आदि के लिये केन्द्रीय शक्ति या केन्द्रीय राष्ट्र व्यवहार होता था। पर इस हिन्दी अनुवाद में जहाँ चीनी भाषा में केन्द्रीय राष्ट्र था, वहाँ मित्र राष्ट्र रखा गया और जहाँ मित्र राष्ट्र था, वहाँ केन्द्रीय राष्ट्र रखा गया है; क्योंकि भारत में जर्मनी, आस्ट्रिया आदि के लिये केन्द्रीय राष्ट्र और इंगलैण्ड, फ्रांस आदि के लिये मित्र राष्ट्र शब्द व्यवहार होते थे।

विरत हुए। संसार के कुछ भविष्य वक्ता कहते हैं कि इस प्रकार की दूसरी अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध-अग्नि को भड़काने के लिये अब कभी भी यथेष्ट चिनगारी नहीं होगी। लेकिन भविष्य में अन्तर्जातीय युद्ध का होना निश्चित है। वह लड़ाई श्वेतांग और पीतांग जातियों के बीच होगी। जैसा कि मैं इतिहासिक गति-विधियों का अध्ययन करता हूँ और भविष्य की प्रवृत्तियों का अनुभव करता हूँ मुझे विश्वास होता जाता है कि भविष्य में बहुत-से अन्तर्राष्ट्रीय झगड़े होंगे। पर ये झगड़े दो भिन्न जातियों में न होंगे, बल्कि प्रत्येक जाति के अन्दर ही। श्वेतांग और पीतांग प्रत्येक के अन्दर वर्ग युद्ध होगा और वह युद्ध होगा शोषितों का शोषकों के विरुद्ध, न्याय का ताकत के विरुद्ध। रूसी क्रान्त के बाद से स्लाव जाति का यह सन्देश रहा है कि मानवता के लिये वह शक्तिशालियों का दमन करेगा और निर्बलों को प्रोत्साहन देगा, अमीरों को दबायेगा और गरीबों की सहायता करेगा, न्याय को ऊँचा उठायेगा और असमानता को उठा फेंकेगा। इन भावनाओं का यूरोप में जैसे-जैसे प्रचार होता जा रहा है, निर्बलों और निम्नश्रेणी की जनता का ध्यान इनकी ओर उतना ही अधिक आकृष्ट होता जाता है—खासकर टर्कीवाले तो बहुत ही आकृष्ट हुए हैं। यूरोपीय युद्ध के पहले टर्की अत्यन्त ही गरीब और निर्बल राष्ट्र था और ऐसा जान पड़ता था कि वह अपनी उन्नति करने में भी असमर्थ है। यूरोप के रहनेवाले टर्की को 'पूर्व का बीमार आदमी' कहते थे और उनका यह भी कथन था कि टर्की को नष्ट ही हो जाना चाहिए। जर्मनी की तरफ होने के कारण जब वह यूरोपीय युद्ध में हार गया, तो दूसरे राष्ट्र उसका अंग-विच्छेद करना चाहने लगे थे, और इस प्रकार उसका अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया था। उसी समय इस असमता के विरुद्ध रूस ने हस्तक्षेप किया। उसने टर्की की सहायता की, जिससे टर्की ने अपने देश से यूनानियों को मार भगाया और अपने ऊपर लादी गयी असम सन्धियों में भी सुधार कराया। इस समय यद्यपि टर्की प्रथम दर्जे की शक्तिशाली राष्ट्रों में नहीं है; लेकिन यूरोप के दूसरे या तीसरे दर्जे की शक्ति में उसकी गिनती होने लगी है। इसका श्रेय रूस को ही है। इस प्रकार विचार करने पर यह ज्ञात होता है कि भविष्य में सताये हुए और शोषित राष्ट्रों या राजों के बीच शोषक शक्तियों का विरोध करने के लिये आपस में संगठित होने की प्रवृत्ति निश्चित रूप से होगी।

उस समय कौन-सा राष्ट्र सताया जा रहा था? यूरोपीय युद्ध के समय जब इंगलैण्ड और फ्रांस जर्मनी के साम्राज्यवाद को नष्ट करना चाहते थे तो उस

समय रूस ने उसकी तरफ मिलकर अपने अपार धन-जन का बलिदान किया था। परन्तु युद्ध के मध्यकाल में ही उसने अपनी सेनाओं को हटा लिया और क्रान्ति की घोषणा की। क्यों? चूँकि रूस की जनता इतनी बुरी तरह से सताई गयी थी कि उसे 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली नीति के बदले समाजवादी नीति की स्थापना करने के लिये क्रान्ति करनी पड़ी। यूरोपीय राष्ट्रों ने रूस की इस नीति का विरोध किया और यहाँ तक कि सम्मिलित सेनाएँ भी रूस से लड़ने के लिये भेजी गयीं। भाग्यवश रूस अपनी प्राचीन जातिगत भावनाओं के कारण इन शक्तिओं के विरुद्ध डट सका। आज इन राष्ट्रों में दम नहीं है कि रूस के साथ सेना लेकर भिड़ सकें। इसलिये वे अक्रियात्मक रूप से उसका विरोध करते हैं; अर्थात् उसकी सरकार को नहीं मानते (इंगलैंण्ड ने सोवियत् सरकार को मान लिया है)। यूरोपीय राष्ट्रों का रूस की नई नीति के विरोध करने का क्या कारण है? चूँकि वे आक्रमक नीति तथा अन्यायपूर्ण तरीकों से ताकत व्यवहार करने के हिमायती हैं और रूस न्याय के लिये लड़ता है और 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली नीति के के मूल पर ही आघात करता है।

इसलिये यह आश्चर्य की बात नहीं है कि यूरोपीय शक्तियाँ उस नीति को उखाड़ फेंकना चाहती हैं जो उनकी नीति से सर्वथा प्रतिकूल है। क्रान्ति के पहले रूस एक बड़ा प्रतिक्रियागामी राज था और न्याय के स्थान पर ताकत का ही हिमायती था। चूँकि अब वह ताकत वाली नीति का विरोधी है इसलिए सभी अन्य राष्ट्र उससे लोहा लेने की तैयारी कर रहे हैं। इसलिए मैं कहता हूँ कि भविष्य की लड़ाई न्याय और ताकत के बीच होगी। आज जर्मनी यूरोप का सताया हुआ राष्ट्र है। एशिया के छोटे और निर्बल राष्ट्र (जापान छोड़ कर) बुरी तरह सताए जा रहे हैं और उन्हें सभी प्रकार की पीड़ाओं का सामना करना पड़ रहा है। शोषित राष्ट्रों की आपस में एक दूसरे के प्रति सहानुभूति हो जाना स्वाभाविक है। और इस प्रकार वे राष्ट्र किसी न किसी दिन सङ्गठित होकर शोषक राष्ट्रों से जीवन-मरण की लड़ाई में जरूर जूझेंगे। संसार भर में वे श्वेतांग और पीतांग लोग जो न्याय के हिमायती हैं निश्चय ही उन श्वेतांग और पीतांग लोगों के विरुद्ध सङ्गठित होंगे जो ताकत के पुजारी हैं। ऐसी परिस्थिति में जिसकी ओर समय अभी से इशारा कर रहा है, दूसरा संसार व्यापी युद्ध नहीं रोका जा सकता है।

एक सौ वर्ष पहिले जर्मनी की आबादी दो करोड़ चालीस लाख थी। यद्यपि यूरोपीय युद्ध के कारण उसकी जनसंख्या में कमी हो गई है फिर भी

आज वहाँ की आबादी छः करोड़ है। इस प्रकार एक शती के अन्दर वहाँ की जन-वृद्धि का अनुपात २५२ फी सदी रहा है। जर्मन लोग ट्यूटेनिक नस्ल के हैं जिनका घनिष्ट सम्बन्ध अंगरेजों के साथ है। ये बड़े बुद्धिमान हैं और उनका राज शक्तिशाली रहा है। यूरोपीय युद्ध में हार खाने के बाद स्वाभाविक रूप से ये ताकत की अपेक्षा न्याय के हिमायती हैं।

एक सौ वर्ष पहिले संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की जनसंख्या नब्बे लाख से अधिक नहीं थी। लेकिन आज उसकी जनसंख्या दश करोड़ से भी अधिक है। एक शताब्दी के अन्दर उसकी जन वृद्धि का अनुपात बड़ा ही ऊँचा—एक हजार फी सदी—रहा है। इसका कारण केवल वहाँ की जनन-शक्ति में बढ़ती होना ही नहीं है बल्कि अधिकांशतः यूरोप से आकर बस जाने वाले लोग है। अपनी मातृभूमि में अपर्याप्त जमीन, घनी आबादी और जीविका उपार्जन की कठिनाई के कारण यूरोप के हर देश के लोग जीवन-निर्वाह के साधन ढूँढ़ने के लिए अमेरिका गये और वहाँ ही बस गए। जिसके फलस्वरूप संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की जनसंख्या में बड़ी तेजी से वृद्धि हुई है। दूसरे देशों की जनसंख्या जहाँ स्वाभाविक रूप से जनन-शक्ति में वृद्धि होने के कारण बढ़ी है, वहाँ संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की जनसंख्या वृद्धि का कारण बहुत देशों के लोगों का वहाँ जाकर एक में घुल-मिल जाना है। अमरीकी नस्ल अन्य दूसरी नस्लों की अपेक्षा कहीं अधिक विसदृश्य (Heterogeneous) है। क्योंकि सभी देशों के लोग वहाँ पहुँच कर एक में घुल-मिल जाते हैं। इस प्रकार जो नस्ल बनी वह अपनी मूल नस्लों—अंग्रेजी, फ्रांसीसी, जर्मन, इटालियन और दूसरी दक्षिणी यूरोपीय नस्लों—से भिन्न रही है। यह एक नई नस्ल है जिसे अमरीकी नस्ल के नाम से पुकारना ही अधिक उपयुक्त होगा। इस प्रकार की नस्ल को लेकर आज संयुक्तराष्ट्र अमेरिका संसार में एक स्वतंत्र राज हो गया है।

फ्रांस के लोग लेटिन नस्ल के हैं। लेटिन नस्ल के लोग यूरोप के बहुत से देशों—स्पेन, पुर्तगाल, इटली—में फैले हुए हैं और इन देशों से ही बहुत से लोग जाकर अमेरिका महादेश के मेक्सिको, पेरू, चीली, कोलम्बिया, ब्राजील, अर्जेनटाइन और मध्य अमेरिका के छोटे-छोटे प्रजातंत्र राजों में बसे हुए हैं। लेटिन नस्ल की आबादी की अधिकता के कारण दक्षिणी अमेरिका लेटिन अमेरिका कहलाता है। फ्रांस की जनवृद्धि का

अनुपात बड़ा ही धीमा रहा है। एक सौ वर्ष पहले यहाँ की आबादी तीन करोड़ थी और आज तीन करोड़ नब्बे लाख है। अर्थात् एक सदी में पच्चीस फी सदी के अनुपात से ही वृद्धि हुई है।

गत शताब्दी में संसार में हुई जनवृद्धि के अनुपात की तुलना कीजिये:—संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में १००० फी सदी, इंगलैण्ड में ३०० फी सदी, जापान में ३०० फी सदी, रूस में ४०० फी सदी, जर्मनी में २५० फी सदी और फ्रांस में २५ फी सदी। इस वृद्धि का कारण विज्ञान की उन्नति, औषधि में प्रगति और प्रतिवर्ष स्वास्थ्य सम्बन्धी बातों में होने वाले सुधार हैं। इन सब कारणों से मृत्यु-संख्या घट गई है और प्रजनन-शक्ति में वृद्धि हुई है। दूसरे देशों की तीव्र जनवृद्धि का चीन के लिए क्या महत्व है? जब मैं उन देशों में हुई वृद्धि की तुलना चीन में हुई वृद्धि के साथ करता हूँ तो मैं काँप उठता हूँ। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका को देखिये। एक सौ वर्ष पहिले जिसकी आबादी केवल नब्बे लाख थी आज उसकी आबादी दस करोड़ से भी अधिक है और इसी अनुपात से अगर जनसंख्या बढ़ती गई तो और एक शताब्दी के अन्त तक वह एक अरब तक पहुँच जायेगी। हम चीनी लोग अक्सर अपनी बड़ी आबादी के बारे में लम्बी बातें किया करते हैं कि हमारी जनसंख्या दूसरों द्वारा नहीं मिटाई जा सकती है। जब यूआन् वंश के मंगोलों ने चीन में प्रवेश किया था तो वे चीनी नस्ल को नष्ट करने में केवल असफल ही नहीं हुए बल्कि वे ही चीनियों द्वारा आत्मसात कर लिये गये। मांचू नस्ल के लोगों ने चीन पर अपना अधिकार जमाया था और दो सौ साठ वर्षों से भी अधिक समय तक यहाँ पर शासन किया था। वे लोग भी चीनी नस्ल को नहीं समाप्त कर सके बल्कि उसी में घुल-मिल कर स्वयं पूर्ण रूप से चीनी हो गये। आज मांचू नस्ल के बहुत से लोग चीनी उपाधिधारी हैं। इसलिये इतिहास के बहुत से विद्यार्थी कहते हैं कि अगर जापान या कोई श्वेतांग नस्ल चीन को अपने अधिकार में कर ले तो चीन उन सबों को भी अपने में घुला-मिला सकता है; इसलिये चिन्ता की कोई बात नहीं है। लेकिन वे लोग जरा भी नहीं सोचते कि अगली शताब्दी में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की आबादी एक अरब हो जायेगी यानी हमारी आबादी से ढाई गुणा अधिक। माँचू लोगों का चीन को अपने अधीन नहीं रख सकने का कारण यह था कि उनकी आबादी दस लाख से कुछ ही अधिक थी। चीन की आबादी की तुलना में उनकी जनसंख्या इतनी नगण्य थी कि वे स्वाभाविक रूप से चीनी नस्ल में खप गये। लेकिन अमेरिका अगर एक सौ वर्षों के बाद चीन को अपने अधीन करना चाहे तो दस अमरीकी के अनुपात

में चार ही चीनी लोग होंगे और इस प्रकार चीनी अमेरिका वालों द्वारा आत्मसात कर लिये जाएँगे।

सज्जनो, क्या आप जानते हैं कि चीन में मर्दुम-शुमारी कब हुई थी जिसके अनुसार यहाँ की आबादी चालीस करोड़ है? यह गणना मांचू राज-वंश के छियेन् लुङ् सम्राट् (सन् १७३४-१७६५ ई०) के समय में हुई थी। सम्राट् छियेन लुङ् (सन् १७३४-१७६५ ई०) के बाद चीन में मर्दुम-शुमारी हुई ही नहीं है। इन लगभग दो सौ वर्षों के बीच हमारी जनसंख्या ज्यों की त्यों—यानी चालीस करोड़ बनी हुई है। एक सौ वर्ष पहिले भी चालीस करोड़ ही थी इसलिये आज से एक सौ वर्ष बाद भी यह चालीस करोड़ ही रहेगी।

फ्रांस अपनी बहुत कम आबादी के कारण अधिक बच्चा पैदा करनेवालों को इनाम देता है। एक आदमी जिसे तीन बच्चे हैं इनाम के हकदार होता है। जिसे चार या पाँच बच्चे हैं उसे विशेष इनाम मिलता है और जिसे जोड़ा बच्चा पैदा होता है उसे अतिरिक्त इनाम मिलता है। तीस वर्ष के युवक और बीस वर्ष की युवती अगर अविवाहिता हैं तो उन्हें जुर्माना होता है। इस प्रकार फ्रांस अपनी प्रजनन-शक्ति की वृद्धि कराने की दिशा में प्रोत्साहन दे रहा है। दरअसल फ्रांस की आबादी घट नहीं रही है केवल वृद्धि का अनुपात दूसरे देशों के मुक़ाबिले नहीं हैं। फ्रांस भी मुख्यतया कृषि-प्रधान देश है। वह राज तथा वहाँ की जनता उन्नतिशील है। वहाँ के नागरिक सुख-शान्ति के साथ रहते और प्रतिदिन के भोग-विलास के आनन्द को उठाते हैं। एक सौ वर्ष पहले मालथस (Malthus) नामक अँगरेज विद्वान संसार की बहुत अधिक बढ़ती हुई आबादी को देखकर और उसकी आवश्यकता-पूर्ति के सीमित प्राकृतिक साधनों का अन्दाजा कर घबड़ा उठा। उसने आबादी घटाने की सिफ़ारिश की। उसका यह मत था कि जनसंख्या ज्यामिति के अनुपात से और भोजन अंकगणित के अनुपात से बढ़ता है।[८क] मालथस का सिद्धान्त फ्रांस के लोगों के दिमाग में बैठ गया और उनके विलासी जीवन के अनुकूल भी पड़ा। वे इस बात के हिमायती हो गए कि युवकों को पारिवारिक झंझट में नहीं पड़ना चाहिये और युवतियों को मातृत्व का बोझ नहीं उठाना चाहिए। जन-वृद्धि कम करने के लिये उन लोगों ने प्राकृतिक और अप्राकृतिक दोनों

८क. "Population increases in a geometrical, food in an Arithmetical ratio."

उपायों का अवलम्बन किया। एक शताब्दी पहले फ्रांस की आबादी यूरोप के किसी भी राष्ट्र से बढ़कर थी। लेकिन वहाँ मालथस के सिद्धान्त के प्रचार तथा उसके स्वागत होने के कारण वहाँ की जनता अपनी नस्ल को स्वयं नष्ट करने लगी। इसी कारण से आज फ्रांस की अत्यधिक आबादी कम है। यह सब मालथस के विषाक्त सिद्धान्त मानने का फल है। चीन के आधुनिक युवक माल्थस के सिद्धान्त से आकृष्ट होकर और फ्रांस के दुःख से अनभिज्ञ होने के कारण चीन की आबादी घटाने की वकालत करते हैं। हमारी नई नीति आबादी वृद्धि पर जोर देती है और नस्ल को बनाये रखना चाहती है ताकि चीनी जनता फ्रांसीसी तथा संसार की अन्य नस्लों के साथ-साथ अपना अस्तित्व कायम रख सके।

आज चीन की वास्तविक आबादी कितनी है? यद्यपि हमारी आबादी-वृद्धि का अनुपात इंगलैण्ड या जापान के मुकाबिले नहीं है परन्तु छियेन लुङ् के समय हुई मर्दुमशुमारी के अनुपात से इस समय चीन की जनसंख्या पचास करोड़ होनी चाहिये। पर नहीं, अमेरिका के एक भूतपूर्व मंत्री रॉकहिल[१] का, जिन्होंने सम्पूर्ण चीन की छानबीन की थी, मत है कि चीन की आबादी अधिक से अधिक तीस करोड़ है। अगर छियेन लुङ् के राजत्व काल में हमारी आबादी चालीस करोड़ थी तो अमरीकी मंत्री के अनुमान के अनुसार हमारी एक चौथाई आबादी नष्ट हो गई है। फिर भी, हम मान लें कि इस समय हमारी आबादी चालीस करोड़ है तो उपर्युक्त आधार पर एक शताब्दी बाद भी हमारी आबादी चालीस करोड़ ही रहेगी।

इस समय जापान की आबादी छः करोड़ है। आज से एक सौ वर्ष बाद उसकी आबादी चौबीस करोड़ हो जायगी। चूँकि उसे अपनी आबादी के भरण-पोषण में कठिनाई पड़ रही है इसलिये संसार के सामने जापान की यह शिकायत है कि उसके द्वीपसमूह आदमियों से खचाखच भरे हुए हैं अतः उसे दूसरे देशों में अवश्य फैलना पड़ेगा। जापान ने पूर्व दिशा में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की ओर नजर दौड़ाई पर कालीफोर्निया का दरवाजा अपने लिये बन्द पाया। वह दक्षिण में अस्ट्रेलिया की ओर बढ़ा और वहाँ अंगरेजों को कहते हुये पाया कि 'अस्ट्रेलिया श्वेतांगों के लिये है दूसरी नस्लों के लिये

१. डबल्यु० डबल्यु० रॉकहिल, "चीनी जनसंख्या की खोज" प्रकाशित वाशिंगटन १९०४

W. W. Rockhill, Inquiry into the Population of China (Washington, 1904)

नहीं।' इस प्रकार हर देश का फाटक बन्द पाकर जापान ने संसार के सामने यह स्पष्ट कर दिया कि दक्षिणी मंचूरिया और कोरिया में प्रवेश कर और उन्हें आबाद करने के अलावा उसके पास कोई दूसरा चारा नहीं है। दूसरे राष्ट्रों ने जापान के मतलब को समझ लिया है। और उसकी मांगों पर स्वीकृति की मोहर लगा दी है। चीनी भू-भाग में जापानियों का प्रवेश इनके ऊपर। (दूसरे राष्ट्रों के ऊपर) किसी प्रकार का असर नहीं लाएगा।

आनेवाली शताब्दी के अन्दर संसार की आबादी कई गुनी अधिक बढ़ जाएगी युद्ध में हुई क्षति-पूर्ति के लिये जर्मनी और फ्रांस अवश्य ही जन वृद्धि को प्रोत्साहन देंगे और इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनकी आबादी दुगुनी या तिगुनी हो जायेगी। लेकिन जब हम पृथ्वी की कुल सतह और उस पर रहने वाले मनुष्यों के बीच तुलना करते हैं तो पता लगता है कि संसार कभी से ही बेहद आबादी के भार से कराह रहा है। कितनों ने कहा है कि हाल की यूरोपीय लड़ाई 'सूर्य के नीचे जगह' पाने के लिये लड़ी गई थी। बहुत से यूरोपीय राष्ट्रों के बहुत भू-भाग शीत कटिबन्ध के पास हैं। इसलिये उष्ण कटिबन्ध और समशीतोष्ण कटिबन्ध में जगह प्राप्त करना भी इस लड़ाई का एक कारण था। सचमुच में झगड़ा अधिक सूर्य की रोशनी पाने का ही था। चीन की जलवायु समशीतोष्ण है और यहाँ सब देशों से बढ़कर प्राकृतिक पदार्थ भरे पड़े हैं। दूसरे राष्ट्र चीन को सीधी तरह वर्त्तमान समय में क्यों नहीं हड़प सकते हैं इसका सीधा कारण यह है कि देशों की जनसंख्या अभी तक चीन से बहुत कम है। इसलिये आने वाले एक सौ वर्षों के अन्दर अगर उन देशों की आबादी बढ़ती रही और चीन की नहीं तो बहुसंख्यक वाले अल्पसंख्यक को अपने अधीन कर लेंगे और चीन निश्चय ही हड़प लिया जायेगा। तब चीन केवल अपनी मालकियत (Sovereignty) ही नहीं खो बैठेगा बल्कि वह मिट जायेगा। चीनी जनता दूसरों द्वारा अपने में मिला ली जाएगी और चीनी नस्ल लुप्त हो जाएगी। मंगोल और मांचू विजेताओं ने कम संख्या से बड़ी संख्या वालों को जीतना और गुलाम बनाना चाहा था। अगर वर्त्तमान काल के शक्तिशाली राष्ट्रों ने किसी दिन चीन पर विजय प्राप्त की तो यह बहुसंख्यक की अल्पसंख्यक पर विजय होगी। इस प्रकार की घटना घटने के समय तक परिस्थिति ऐसी हो जाएगी कि विजेताओं को हमारी कुछ भी ज़रूरत नहीं पड़ेगी और तब हम गुलाम बनने के योग्य भी रहेंगी।

जनवरी २७ सन् १९२४ ई०

दूसरा व्याख्यान

प्राचीन काल से ही आबादी की बढ़ती-घटती का राष्ट्रों के उत्थान-पतन में प्रमुख स्थान रहा है। यही प्राकृतिक नियम (Law of natural selection) है। चूँकि मनुष्य इस प्राकृतिक नियम की शक्ति के सामने ठहरने में असमर्थ हुआ है इसलिए बहुत से प्राचीन और विख्यात राष्ट्र बिना अपना कुछ चिह्न छोड़े नष्ट हो गए हैं। हमारा चीनी राष्ट्र बहुत प्राचीन है। इसके पास चार हजार वर्षों का प्रामाणिक इतिहास है। इसलिए कम से पाँच या छः हजार वर्षों से तो इसका अस्तित्व जरूर ही है। यद्यपि इस लम्बे काल में हमारे ऊपर प्राकृतिक शक्तियों का गहरा प्रभाव पड़ा है तथापि प्रकृति ने इस नस्ल को कायम ही नहीं रखा है बल्कि इसे फूलने-फलने में भी सहायता की है। हम चालीस करोड़ की संख्या में हो गए हैं और अभी तक हमारा राष्ट्र संसार का सबसे बड़ा और सबसे अधिक जनसंख्या वाला है। हमें दूसरों की अपेक्षा प्रकृति का अधिक आशीर्वाद मिला है। जिसके कारण हम देखते हैं कि चार हजार वर्षों के अनुभवों, मानवीय हलचलों और अनगिनत परिवर्तनों के बीच से गुजरती हुई हमारी सभ्यता आगे ही बढ़ रही है और हमारा राष्ट्र नष्ट होने से बचा हुआ है। संसार के रङ्गमञ्च पर युगों से एक पीढ़ी के बाद दूसरी पीढ़ी आती रही है पर हम अभी भी संसार में सबसे अधिक सुसंस्कृत हैं। इसलिए आशावादियों के एक विशेष वर्ग ने यह देख कर कि चीनी राष्ट्र ने भूतकाल में अनगिनत आपदाओं के होते हुए भी अपना अस्तित्व बनाये रखा है, यह धारणा बना ली है कि चाहे जो कुछ हो भविष्य में हमारा राष्ट्र नष्ट नहीं हो सकता है। इस प्रकार की बातें करना और आशा रखना मेरी समझ से गलत है। अगर केवल प्राकृतिक नियमों की ही बात रहे तो हमारा राष्ट्र भविष्य में भी जिन्दा रह सकता है लेकिन इस पृथ्वी पर विकास केवल प्राकृतिक शक्तियों पर ही निर्भर नहीं करता है। यह प्राकृतिक और मानवीय दोनों शक्तियों पर निर्भर करता है। मानवीय शक्तियाँ प्राकृतिक शक्तियों का स्थान ग्रहण कर सकती हैं और 'आदमी स्वर्ग पर भी विजय' प्राप्त कर सकता है। इन मनुष्य-निर्मित शक्तियों में सबसे प्रबल राजनीतिक और आर्थिक शक्तियाँ हैं। राष्ट्र के उत्थान-पतन पर इन शक्तियों का प्राकृतिक शक्तियों से अधिक प्रभाव पड़ता है। आधुनिक संसार

की हलचलों के बीच पड़ा हुआ हमारा राष्ट्र इन दो शक्तियों का केवल दबाव ही अनुभव नहीं कर रहा है बल्कि इन शक्तियों से पैदा होने वाली बुराइयों के पङ्क में भी डूबा हुआ है।

इन कई हज़ार वर्षों के बीच चीन राजनीतिक शक्ति द्वारा केवल दो बार पूर्ण रूप से पराधीन बनाया गया है, एक बार मङ्गोल राजवंश और एक बार मांचू राजवंश द्वारा। लेकिन दोनों बार ही हमारे देश को छोटी जनसंख्या वाली नस्ल की गुलामी स्वीकार करनी पड़ी थी और इन दोनों को हमने पूर्ण रूप से अपने में घुला-मिला लिया। इसलिए यद्यपि राजनीतिक रूप से चीन दो बार पराधीन हुआ है लेकिन इससे चीनी नस्ल में कोई गहरा धक्का नहीं लगा। लेकिन आज इन महान् शक्तिशाली राष्ट्रों को लेकर जो परिस्थितियाँ पैदा हुई हैं वे हमारे द्वारा जानी हुई भूतकाल की परिस्थितियों से बहुत भिन्न हैं। अपने पिछले व्याख्यान में मैंने गत शताब्दी के बीच इन शक्तिशाली राष्ट्रों में होने वाली जनसंख्या-वृद्धि के अनुपात की तुलना की थी—इंगलैण्ड और रूस की वृद्धि ३०० से ४०० फी सदी तक, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की वृद्धि १००० फी सदी तक। गत सौ वर्षों के बीच अपनी जनसंख्या वृद्धि की गणना करने से पता लगता है कि चाहे जितनी भी प्रकृति प्रदत्त सुविधायें हमें प्राप्त हों, आनेवाली शताब्दी में हमारी जाति को दूसरी जाति के साथ आगे बढ़ने में कठिनाई पड़ेगी। उदाहरण के लिए देखिए—संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की जनसंख्या एक शताब्दी पहले ६० लाख से अधिक नहीं थी लेकिन आज दश करोड़ से भी अधिक है और आनेवाली शताब्दी में एक अरब से भी अधिक बढ़ जायगी। इंगलैण्ड, जर्मनी, रूस और जापान की जनसंख्या भी कई गुनी अधिक बढ़ जायगी। वृद्धि के इस अनुपात से अगली शताब्दी में हमारी नस्ल अल्पसंख्यक हो जायगी और दूसरी नस्लें बहुसंख्यक। तब राजनीतिक और आर्थिक दबाव के बिना भी केवल प्राकृतिक विकास के दौरान में चीनी नस्ल के मिल जाने की सम्भावना उपस्थित हो जायगी। इस बात के उल्लेख करने की कोई ज़रूरत नहीं कि अब से आने वाले सौ वर्षों के अन्दर हम केवल प्राकृतिक नियमों के ही नहीं बल्कि राजनीतिक प्रभुत्व और आर्थिक नियंत्रण के भी शिकार होंगे जिनका प्रभाव प्राकृतिक नियम की अपेक्षा कहीं अधिक गहरा और भयंकर होता है।

यद्यपि प्राकृतिक शक्तियाँ धीरे-धीरे अपना प्रभाव डालती हैं तथापि वे बड़ी-बड़ी नस्लों को समाप्त कर सकती हैं। एक सौ वर्ष पहिले के उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका की लाल नस्ल का उदाहरण अभी भी आँखों के सामने है।

दो या तीन सौ वर्ष पहिले अमेरिका महादेश पूर्णरूप से लाल नस्ल के आदि-निवासियों से भरा था। वे हर जगह बड़ी-बड़ी संख्या में फैले हुए थे। लेकिन श्वेतांग लोगों के वहाँ पहुँचने के बाद वे धीरे-धीरे लुप्त होने लगे और आज तो वे एकदम से लुप्त हो गए हैं। इससे पता चलता है कि किस प्रकार प्राकृतिक शक्तियाँ बड़ी नस्ल को मिटा देती हैं।

लेकिन राजनीतिक और आर्थिक शक्तियाँ प्राकृतिक शक्तियों से भी अधिक तेजी से काम करती हैं और अधिक आसानी से बड़ी जाति का मूलोच्छेद कर सकती हैं। अगर चीन पर केवल प्राकृतिक नियम का ही दबाव पड़ता रहे तो वह एक शताब्दी तक अपना अस्तित्व कायम रख सकता है, लेकिन अगर वह राजनीतिक और आर्थिक शक्तियों के बीच पड़े तो मुश्किल से और दस वर्ष ठहर सकेगा। इसलिए अगली दशाब्दी चीन का संकट काल है। अगर इस काल के बीच हम चीन पर लादे गए आर्थिक और राजनीतिक जुये को उठा फेंकने के लिए कुछ कर सकें तो हमारे राष्ट्र को दूसरे राष्ट्रों के साथ जिंदा रहने का अवसर मिल सकता है; अन्यथा शक्तिशाली राष्ट्रों द्वारा हम लोगों का विनाश निश्चित है। और अगर इन शक्तियों से हमारी नस्ल पूर्णरूप से नष्ट नहीं हो सकी तो प्राकृतिक शक्तियाँ भी तो काम कर ही रही हैं जो हमें नष्ट कर देंगी। इस समय से ही चीनी जनता अपने ऊपर एक साथ प्राकृतिक, राजनीतिक और आर्थिक शक्तियों का दबाव अनुभव करेंगी। इसलिए आप देखते हैं कि हमारी जाति से लिए कैसा नाजुक अवसर उपस्थित हुआ है!

चीन एक शताब्दी से पश्चिमी देशों के राजनीतिक प्रभुत्व के नीचे है। इसके पहले जब मांचू लोगों का हमारे ऊपर पूर्ण आधिपत्य था, उस समय भी हमारा देश बड़ा ही शक्तिशाली था। इंगलैण्ड उस समय भारत पर अपना अधिकार जमा रहा था और इस डर से कि कहीं चीन भारत में बखेड़ा नहीं उत्पन्न कर दे वह चीन पर चढ़ाई करने का साहस न कर सका। लेकिन गत शताब्दी में चीन अपना बहुत सा भू-भाग खो बैठा है। आधुनिक इतिहास से प्रारम्भ करें तो हमने वइहाइवइ,[1] पोर्ट अर्थर,[2] डाइरन,[3]

१. षानतुङ् प्रान्त का एक बन्दरगाह जिसे अंगरेजों ने जुलाई १. सन् १८९८ में पट्टे पर २५ वर्ष के लिए लिखा लिया था और पट्टा पूरा होने पर लौटा दिया।

२. और ३. मंचूरिया के ल्यावनिङ् प्रान्त के बन्दरगाह जिन्हें रूस ने २५ वर्ष के पट्टे पर चीन से २७ मार्च, सन् १८९८ में लिखा लिया था।

छिङताव्[४] क्वोलुन,[५] और क्वाङ्चौ-वान्[६] खो दिए हैं। यूरोपीय युद्ध के बाद महान् शक्तियों ने चीन में दखल किये हुए जगहों में कुछ लौटा देने का विचार किया और छिङताव् तथा कुछ ही दिन पहले वइहाइवइ चीन को लौटा दिए हैं। लेकिन ये तो बहुत छोटी-छोटी जगह हैं। शक्तिशाली राष्ट्रों का चीन के प्रति पहले यह रुख था :—

'चीन कभी भी सचेत न होगा और अपना शासन स्वयं नहीं कर सकेगा। इसलिए वे समुद्री तट के प्रसिद्ध जगहों जैसे डाइरन, वइहाइवइ, क्वोलुन आदि पर अधिकार कर उन्हें चीन को छिन्न-भिन्न करने के अड्डे बनाएँगे। लेकिन जब चीन में क्रान्ति हो गई तब शक्तिशाली राष्ट्रों को चेत हुआ कि चीन में अभी भी जीवन बाकी है और तब उन्होंने (पर बहुत हाल में) चीन को छिन्न-भिन्न करने की नीति त्याग दी। जबकि शक्तिशाली राष्ट्रों की गृध्र दृष्टि चीन पर लगी हुई थी कुछ क्रान्ति विरोधी लोग कहते थे कि क्रान्ति से देश छिन्न-भिन्न हो जायगा। लेकिन नतीजा ठीक विपरीत हुआ। क्रान्ति ने चीन के प्रति विदेशियों की चालों को विफल कर दिया। कुछ और पहले के इतिहास को देखें तो हमने कोरिया,[७] ताइवान्[८] (फारमूसा) पेसकाडोर[९] और उन सब स्थानों को खो दिया है जिन्हें चीन को चीन-जापान

---

४. षानतुङ् प्रान्त का एक बन्दरगाह जिसे जर्मनी ने चीन से १४ नवम्बर सन् १८९७ ई० में छीन लिया था।

५. काङ्तुङ् प्रान्त में, जिसे अँगरेजों ने जून ९, सन् १८९८ में ९९ वर्ष के लिए पट्टे पर लिखा लिया है।

६. केन्टन की खाड़ी काङ्तुङ् प्रान्त में, जिसे फ्रांस वालों ने २२ अप्रैल सन् १८९८ में चीन से छीन लिया और ९९ वर्ष के लिए पट्टे पर लिखा लिखा। अब फ्रांस ने इसे चीन को लौटा दिया।

७, ८ और ९. कोरिया को दखल करने के लिए जापान ने चीन के साथ अगस्त १, १८९४ ई० युद्ध की घोषणा की। चीन हार गया और शिमोनोसेकी में (Shimonoseki जापान में) अप्रैल १७, सन् १८९५ ई० में दोनों के बीच सन्धि हुई। इस सन्धि के अनुसार कोरिया चीन से लेकर स्वतंत्र करार दिया गया पर असल में वह जापान के अधिकार में चला गया। ताइवान् जिसका नाम फारमूसा पड़ा और पेसकाडोर द्वीपसमूह (यह द्वीपसमूह फ़ारमूसा के पश्चिम फारमूसा डमरूमध्य में है) तथा ल्याव्तुङ् प्रायद्वीप जापान के अधिकार में दिये गए। पर सन्धि के बाद रूस, फ्रांस और जर्मनी ने जापान

युद्ध के फलस्वरूप जापान के सुपुर्द कर देना देना पड़ा है। चीन-जापान युद्ध के बाद ही तो शक्तिशाली राष्ट्रों के बीच चीन को छिन्न-भिन्न करने की बातचीत चली थी।

उसके पहले की शताब्दी में देखें तो हमने बर्मा[१०] और अन्नाम[११] खो दिए हैं। जिस समय अन्नाम चीन के हाथ से जा रहा था उसने बहुत ही हल्के स्वर से इसका विरोध किया था। चेन्-नान्-क्वान्[१२] (दक्षिणी सीमा) की लड़ाई में चीन सचमुच में विजयी हुआ था। लेकिन बाद में फ्रांस से इतना भयभीत हुआ कि उसे सन्धि करनी पड़ी और बाध्य होकर अन्नाम फ्रांस के सपुर्द कर देना पड़ा। सन्धि के कुछ ही दिन पहले चीनी सेना ने दक्षिणी सीमा पर ल्याङ्-शान्[१३] की लड़ाई में (सन् १८८५ ई०) जबरदस्त विजय प्राप्त की थी और फ्रांस की कुल सेना को एकदम तहस-नहस कर दिया था। इसके बाद जब चीन ने सन्धि का प्रस्ताव किया तो फ्रांसीसी चकित रह गए और उनमें से कुछ ने कहा—'यह समझना कठिन है कि तुम चीनी लोग क्या करोगे? साधारणतया प्रथा तो यह है कि विजेता विजय की डींग हाँकता है और विजित राष्ट्र से उसका भू-भाग और युद्ध का हर्जाना माँगता है। लेकिन विजयी होकर भी तुमने ही अपना भू-भाग दिया, तुम ही सुलह के लिये गिड़गिड़ाये, तुमने अन्नाम फ्रांस के सुपुर्द किया और सभी तरह के कठिन शर्तों को भी स्वीकार किया। यह सचमुच में अपूर्व दृष्टान्त है कि विजेता विजित से सुलह के लिये प्रार्थना करे।' विजेता राष्ट्र द्वारा इस ऐतिहासिक परम्परा को तोड़ने का एकमात्र कारण मांचू सरकार की निपट मूर्खता थी। अन्नाम और बर्मा दोनों ही पहले चीन के अन्तर्गत थे। जैसे अन्नाम फ्रांस के सपुर्द

पर दबाव डाला कि वह ल्याव्तुङ् प्रायद्वीप चीन को लौटा दे और जापान ने लौटा दिया।

१०. जुलाई २४, सन् १८८६ ई० से हुई सन्धि के अनुसार बर्मा चीन ने ब्रिटेन के संरक्षण में दिया।

११. सन् १८८४ ई० में फ्रांस और चीन के बीच अन्नाम के लिए युद्ध प्रारम्भ हुआ। जून ६, सन् १८८५ ई० थिएन् चिन् में फ्रांस और चीन के बीच हुई सन्धि के अनुसार अन्नाम फ्रांस के संरक्षण में चीन ने दिया।

१२. यह स्थान चीन के क्वाङ्सी प्रान्त में है। यहाँ सन् १८८५ ई० अन्नाम के लिए चीन और फ्रांस के बीच लड़ाई हुई थी।

१३. यह स्थान भी क्वाङ्सी प्रान्त में है।

किया गया, इंगलेण्ड ने बर्मा दखल कर लिया और उस समय चीन ने विरोध करने का भी साहस नहीं किया। चीन के भू-भाग खोने के इतिहास में बर्मा और अन्नाम जाने के पहले आमुर[१४] और उसुरी[१५] (Ussuri) नदी के काँठों को चीन खो बैठा था और इससे भी पहले इली [१६] (Ili), खोकन्द[१७] (Khokand) और आमुर (Amur) नदियों के उत्तर के भागों को, जो हाल के सदूर पूर्वी प्रजातंत्र के राज्य हैं। इन सबों को चीन ने हाथ जोड़ कर बिना ची-चुपड़ किये विदेशियों के सपुर्द कर दिया। इनके अलावा वे छोटे-छोटे देश भी चीन के हाथ से चले गये हैं जो एक समय चीन के करद राज्य थे जैसे लूचू द्वीपसमूह,[१८] श्याम, बोर्नियो, सुलु द्वीप पुंज, जावा, लंका नेपाल, भूटान आदि।

अपनी शक्ति के चरम उत्कर्ष काल में चीनी साम्राज्य की सीमा बहुत विस्तृत थी। उत्तर में वह आमुर नदी के उत्तर तक, दक्षिण में हिमालय के भी दक्षिण तक, पूर्व की ओर चीन समुद्र तक और पश्चिम ओर थुङ्-लिङ् (पामीर) तक फैली हुई थी। प्रजातंत्र के प्रथम वर्ष तक नेपाल सच्वान् (चीन का एक पश्चिमी प्रान्त) तक कर पहुँचा जाता था लेकिन उसके बाद तिब्बत होकर आवागमन की दुर्गमता के कारण उसने कर भेजना बन्द कर दिया। जब चीन सबसे अधिक शक्तिशाली था उस समय उसके राजनीतिक प्रभुत्व से चारों ओर के लोग भय खाते थे तथा चीन के दक्षिण और पश्चिम के सभी राष्ट्र उसके पास खिराज भेजने में अपनी इज्जत समझते थे। उस समय तक एशिया का कोई भी राष्ट्र जो साम्राज्यवादी कहा जा सकता था तो वह चीन था। निर्बल और छोटे छोटे राष्ट्र चीन तथा चीन के राजनीतिक प्रभुत्व से डरते रहते थे और आज तक भी वे सशंकित रहते हैं। जब हमने

---

१४. यह मंचूरिया के हइलुङ्क्याङ् प्रान्त के ठीक उत्तरी सीमा पर बहती है।

१५. यह मंचूरिया के किरिन् प्रान्त पूर्वी सीमा पर बहती।

१६. यह सिन् क्याङ् प्रान्त में है। रूस ने इसे ले लिया था। पर सेण्ट पिटर्सबर्ग में रूस और चीन के बीच फ़रवरी २४, सन् १८८१ में जो सन्धि हुई उसके अनुसार रूस ने चीन को यह लौटा दिया।

१७. यह मध्य-एशिया में है।

१८. यह चीनी उपनिवेश था जिसे जापान ने मार्च सन् १८७९ ई० में अपने राज्य में मिला लिया।

हाल ही में (सन् १९२४ ई०) केण्टन (क्वाङतुङ् प्रान्त की राजधानी) में कोमिन्ताङ् का अधिवेशन किया था तो मंगोलिया ने भी कुछ प्रतिनिधि यह देखने के लिये भेजे थे कि दक्षिणी सरकार[19] दूसरे देशों के प्रति क्या अब भी साम्राज्यवादी परम्परा रखती है। जब उन्होंने देखा कि अधिवेशन ने जो राजनीतिक सिद्धान्त अपनाया है वह साम्राज्यवादी नहीं है बल्कि छोटे-छोटे निर्बल राष्ट्रों का पोषक है तो उन्होंने इसे दिल से स्वीकार किया और प्रस्ताव किया कि महान् पूर्वी-राज बनाने के लिये सभी संगठित हो जायँ। केवल मंगोलिया ही ने नहीं बल्कि पूर्व की सभी छोटी-छोटी जातियों ने हमारी नीति की प्रशंसा की। अब यूरोपीय राष्ट्र चीन को साम्राज्यवादी और आर्थिक शक्तियों से कुचल रहे हैं जिसके फलस्वरूप चीन का राज्य धीरे धीरे बहुत कम हो गया है, यहाँ तक कि अठारह प्रान्तों (खास चीन में अठारह प्रान्त हैं) में से भी बहुत सी जगहें उसे दे देनी पड़ी हैं।

चीनी क्रान्ति के बाद शक्तिशाली राष्ट्रों ने इस बात को अच्छी तरह समझ लिया कि राजनीतिक शक्ति से चीन को छिन्न-भिन्न करना महादुष्कर कार्य है। चीन ज़रूर एक न एक दिन यूरोपीय राष्ट्रों के राजनीतिक नियंत्रण के विरुद्ध भी विद्रोह करेगा। क्योंकि उसने सीख लिया था कि मांचू नियंत्रण के विरुद्ध कैसे विद्रोह किया जाता है। इससे उन्हें एक दिन कठिन परिस्थिति का सामना करना पड़ेगा—यह सोच कर वे अब चीन के विरुद्ध अपनी राजनीतिक चालों को कम कर रहे हैं। और उसके बदले हमें नीचा रखने के लिये अधिक दबाव डाल रहे हैं। वे सोचते हैं कि चीन के बँटवारे के लिये राजनीतिक चालों को छोड़ देने से महान् शक्तियों के बीच आपस में झगड़े न होंगे। लेकिन यद्यपि चीन में झगड़े का कारण मिट गया पर यूरोप में यह होना निश्चित है। बालकन प्रायद्वीप के प्रश्न को लेकर ही यूरोपीय महायुद्ध प्रारम्भ हुआ था और यद्यपि सभी शक्तिशाली राष्ट्रों को

---

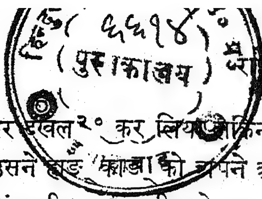
१९. सन् १९१२ ई० में जब नान्किङ् में प्रजातंत्र की स्थापना हुई थी तो नान्किङ ही राजधानी मानी गई थी। पर थोड़े दिनों के बाद ही प्रजातंत्र का शासन सूत्र प्रतिक्रियागामी युद्ध अधिनायकों के हाथों में चला गया और वे लोग पुनः राजधानी को नान्किङ् से उठा कर पेकिङ् ले गये और देश का शासन मनमाना करने लगे। इस हालत को देखकर डा० सन् यात् सेन बड़े दुःखी हुए और उन्होंने देश का उद्धार करने के लिये केण्टन में सन् १९२१ ई० में राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की। यही सरकार दक्षिणी सरकार कहलाती थी क्योंकि केण्टन चीन के दक्षिण में है।

काफी क्षति उठानी पड़ी तथा जर्मनी और अस्ट्रिया के समान राज उलट दिये गए तथापि साम्राज्यवादी नीति में कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ है। इंगलैण्ड, इटली और फ्रांस अभी भी साम्राज्यवादी रास्ते पर ही चल रहे हैं और संयुक्तराष्ट्र अमेरिका ने "मुनरो सिद्धान्त" को फेंक कर उपर्युक्त राष्ट्रों के साथ ही कदम मिलाना प्रारम्भ किया है। और यद्यपि युद्ध के अनुभव के बाद वे थोड़े समय के लिये अपनी साम्राज्यवादी नीति यूरोप में छोड़ दें फिर भी कोई आदमी, जिसने हाल में विभिन्न राष्ट्रों के बीस या उससे भी अधिक गनबोटों द्वारा किये गये नौसेना प्रदर्शन को केण्टन में देखा होगा, कह सकता है कि चीन के प्रति उनका हृदय परिवर्तन नहीं हुआ है। वे अपने आर्थिक उद्देश्यों को पूरा करने के लिये अभी तक साम्राज्यवादी नीति का ही अनुकरण कर रहे हैं और आर्थिक दबाव तो साम्राज्यवादी या राजनीतिक दबाव से कहीं अधिक भयंकर होता है। राजनीतिक दबाव तो स्पष्ट देखने में आता है। जब बीस या उनसे कुछ अधिक विदेशी गनबोटों का यहां (केण्टन) प्रदर्शन हुआ तो केण्टन की नता में तुरत ही एक सनसनी फैल गई और सब लोग क्रोध से जल उठे। सचमुच में उस समय सारा राष्ट्र ही क्रोध से भर गया था। सर्वसाधारण राजनीतिक दबाव से सहज ही उत्तेजित हो जाते हैं परन्तु आर्थिक दबाव मुश्किल से अनुभव कर पाते हैं। चीन शक्तिशाली राष्ट्रों के आर्थिक नियंत्रण के नीचे कई दशाब्दियाँ बिता चुका है। लेकिन इससे कभी किसी ने उत्तेजना का अनुभव नहीं किया है।

इसका फल यह हुआ है कि चीन शक्तिशाली राष्ट्रों का उपनिवेश होता जा रहा है। हमारे देश के लोग अभी भी सोचते हैं और यह कह कर संतोष कर लेते हैं कि चीन अर्द्ध उपनिवेश ही है। लेकिन आज सचमुच में हम बड़ी शक्तियों के आर्थिक नियंत्रण के नीचे इतने अधिक कुचले जा रहे हैं जितना कि पूर्ण रूप से एक उपनिवेश होने की अवस्था में भी नहीं कुचले जाते। उदाहरण के लिये देखिए :—अन्नाम और कोरिया क्रमशः फ्रांस और जापान के संरक्षण में हैं और वहाँ के लोग इन राष्ट्रों के गुलाम हैं। हम लोग वाङ्-क्वो नु (बिना देश का गुलाम) कह कर कोरिया और अन्नाम के लोगों की हंसी उड़ाते हैं। लेकिन उनकी अवस्था को देखिये तो हमें पता लगेगा कि हमारी हालत उनसे कहीं अधिक गिरी हुई है। चीन किसका अर्द्ध-उपनिवेश है? चीन उन सभी राष्ट्रों का उपनिवेश है जिन्हों चीन के साथ सन्धियाँ की हैं और सन्धि करने वाले राष्ट्र ही हमारे मालिक हैं। चीन किसी खास राष्ट्र का नहीं बल्कि सभी राष्ट्रों का उपनिवेश है और हम एक-राष्ट्र के नहीं बल्कि

सभी राष्ट्रों के गुलाम हैं। कौन सा अच्छा होगा—एक राष्ट्र का गुलाम होना या सभी राष्ट्रों का? अगर हम किसी खास राष्ट्र के गुलाम होते तो चीन पर यदि किसी प्रकार की प्राकृतिक विपत्ति जैसे बाढ़ या अनावृष्टि आदि होती तो हमारे मालिक राष्ट्र कर्त्तव्यवश हमारी सहायता के लिये फण्ड खोलते और लोगों के बीच फण्ड बांटते और प्रजागण भी अपने मालिक की इस प्रकार की सहायता की अपेक्षा रखते। कुछ वर्ष पहले जब उत्तरी चीन प्राकृतिक आपत्तियों का शिकार हुआ था तो विदेशी राष्ट्रों ने इस बात को जरा भी महसूस नहीं किया कि सहायता भेजना उनका भी कर्त्तव्य है और केवल वे विदेशी लोग ही पीड़ितों की सहायता के लिये फण्ड इकट्ठा कर रहे थे जो उस समय चीन में थे। इससे ज्ञात होता है कि हम अन्नाम और कोरिया के समान भी नहीं है और एक राष्ट्र के अधीन होना कई राष्ट्रों के अधीन होने की अपेक्षा कहीं अच्छा और लाभदायक है। इसलिये "अर्द्ध उपनिवेश" शब्द चीन के ऊपर ठीक नहीं लागू होता है। मैं सोचता हूँ कि हमारे नाम के लिये 'हाइपो उपनिवेश' उपयुक्त शब्द है। यह 'हाइपो' उपसर्ग रसायन शास्त्र से लिया गया है जैसे "हाइपो फोस-फाइट" शब्द में। एक रसायन फॉसफोरस कम्पाउण्ड नाम का है जिसमें फासफोरिक कम्पाउण्ड रहता है लेकिन वह शुद्ध फासफोरिक कम्पाउण्ड से निम्न श्रेणी का होता है। इससे भी निम्न कोटि का कम्पाउण्ड हाइपो फॉसफोरस कहाता है। हम पहले चीन को अर्द्ध उपनिवेश समझा करते थे और वही सबसे बड़ी लज्जा की बात थी। वह अफसोस यह है कि हमने कभी इसका अनुभव ही नहीं किया कि हमारी वास्तविक स्थिति अन्नाम और कोरिया से भी गुजरी है। हमारा देश अर्द्ध-उपनिवेश भी नहीं है बल्कि "हाइपो उपनिवेश" है।

क्वाङ तुङ में चुङ्गी (Customs surplus) के मामले को लेकर शक्तियों से झगड़ा बना रहता है। न्यायतः चुंगी की आय पर हमारा अधिकार है। इसलिए झगड़ा ही क्यों हो? परन्तु झगड़ा इसलिए है कि दूसरे देशों ने चीन की चुङ्गी पर अधिकार जमा रखा है। उस समय जब हम चुङ्गी के बारे में कुछ नहीं जानते थे, केवल अपने बन्दरगाह को बन्द रखते थे और अपनी आय में सीमित रहते थे। फिर इंगलैण्ड का चीन में पदार्पण हुआ और उसने व्यापार करने के लिए यहाँ प्रवेश करना चाहा। चीन ने अपना दरवाजा बन्द कर उसकी मांग को ठुकरा दिया। साम्राज्यवादी और आर्थिक शक्तियों को मिलाकर इंगलैण्ड ने चीन पर धावा किया और सब बन्धनों को तोड़ यहाँ घुस आया। उसी समय अंगरेजी फ़ौज ने केण्टन



पर दखल[२०] कर लिया लेकिन उसे असुरक्षित जान वह वहाँ से हट गयी और उसने हाङ् काङ् को अपने अधिकार[२१] में कर लिया। उसने हरजाने की भी मांग की। चूंकि चीन के पास उस समय काफ़ी नकद रुपये नहीं थे इसलिए उसने अपनी सामुद्रिक चुङ्गी (Maritime customs) ज़मानत के रूप में इंगलैण्ड को दी और उसे चुङ्गी वसूल करने की भी इजाजत दे दी। मांचू सरकार ने अनुमान किया था कि हरजाने की पूरी रकम शोध होने में बहुत दिन लगेंगे लेकिन अंगरेजों ने चुङ्गी पर नियंत्रण प्राप्त कर कुछ ही वर्षों में हरजाने की रकम पूरी कर मांचू सरकार को आश्चर्य चकित कर दिया। तब मांचू सरकार को अनुभव हुआ कि उनके कर्मचारी कितने गये गुजरे हैं। चुङ्गी वसूल करने में पहले सबसे बड़ी कमी यह थी कि वसूल करने वाले ही उसे खा जाते थे। इसलिए जब सम्पूर्ण देश की सामुद्रिक चुङ्गी अंगरेजों के अधिकार में चली गई तो चुङ्गी वसूल करने के कमिश्नर अंगरेज ही नियुक्त किये जाने लगे। बाद में दूसरे जिन-जिन राष्ट्रों का चीन के साथ व्यापारिक सम्बन्ध हुआ वे चुङ्गी के नियंत्रण को लेकर इंगलैण्ड से झगड़ने लगे। तब इंगलैण्ड ने व्यापार के अनुपात से दूसरे राष्ट्रों को भी चुङ्गी में हिस्सा देकर समझौता किया। जिसके फलस्वरूप देश की सम्पूर्ण सामुद्रिक चुङ्गी विदेशियों के हाथों में चली गई। विदेशी शक्तियों के साथ जब कभी चीन नई सन्धि करता है उसे कुछ न कुछ अपना खोना ही पड़ता है और सन्धि से दिए गए अधिकार बराबर एकतरफा होते हैं—विदेशी राष्ट्र ही चुङ्गी का महसूल निर्धारित करते हैं और चीन स्वतंत्रतापूर्वक उसमें कुछ भी हेर-फेर नहीं कर सकता है। चीन न तो चुङ्गी का महसूल ही तय कर सकता है और न चुङ्गी वसूल ही कर सकता है। चुङ्गी को लेकर झगड़ा होने के ये ही कारण हैं।

---

२० और २१. ब्रिटेन वाले चीन के साथ अफ़ीम का व्यापार करना चाहते थे। चीन सरकार इस व्यापार पर नियंत्रण रखना चाहती थी। इसको लेकर दोनों के बीच लड़ाई हुई जो अफ़ीम युद्ध (१८४०-४२) कहलाता है। इसमें चीन हार गया। जुलाई १८४२ में च्याङ् नान् में सन्धि हुई। जो नान्किङ् सन्धि कहलाती है। यह चीन के ऊपर विदेशियों द्वारा लादी गई प्रथम असम सन्धि थी। इसके अनुसार पाँच बन्दरगाह जिसमें केण्टन भी एक था विदेशी व्यापार के लिए खोल दिए गए और हाङ्काङ् अंगरेजों को मिला।

दूसरे देशवाले कैसे विदेशी आर्थिक दबाव का सामना करते हैं और बाहरी आर्थिक शक्तियों के आक्रमण (Invasion of economic forces) को किस प्रकार रोकते हैं ? साधारणतः यह कार्य आयात पर कर लगा कर होता है जो उन देशों के भीतर आर्थिक विकास को संरक्षण देता है। जिस प्रकार बन्दरगाह के प्रवेश द्वार पर विदेशी आक्रमण से बचने के लिए किला बनाया जाता है इसी प्रकार आयात पर लगाया हुआ कर विदेशी माल के विरुद्ध अपने राष्ट्र की आय को बचाता है और देशी उद्योग धन्धों को विकसित होने का अवसर देता है। उदाहरण के लिए देखिए—अमरीकी लाल आदि निवासियों के नष्ट हो जाने पर संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने यूरोपीय देशों से व्यापार करना प्रारम्भ किया। उस समय तक संयुक्तराष्ट्र अमेरिका कृषि-प्रधान देश था जब कि यूरोप के सभी देश उद्योग प्रधान हो चुके थे। चूँकि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में कृषि-प्रधान देश से उद्योग प्रधान राष्ट्रों को फायदा है इसलिए संयुक्तराष्ट्र अमेरिका ने अपने देशी उद्योग-धन्धों और व्यापार की रक्षा के लिए संरक्षणात्मक आयात-कर (Protective tariff) लगाया। संरक्षणात्मक आयात कर का मतलब यह है कि आयात पर भारी कर लगा दिया जाता है; जैसे अगर किसी बाहरी माल का मूल्य सौ डालर है तो चुङ्गी महकमा उस पर अस्सी या सौ डालर कर लगाएगा। विभिन्न राष्ट्रों में औसतन आयात-कर (Tariff) का दर माल के मूल्य का पचास या साठ फी सदी है। भारी कर विदेशी माल को महंगा कर देता है जिससे उसकी बिक्री कम होती है, जबकि देशी माल पर किसी प्रकार का कर नहीं लगने से वह उचित मूल्य में मिलता है और इसलिए उसकी खपत बढ़ जाती है।

आज चीन की क्या परिस्थिति है। विदेशी व्यापार के पहले चीनी लोग हाथ की बनी देशी चीज़ों का ही व्यवहार करते थे। प्राचीन कहावत—'पुरुष खेत जोतता है और स्त्री कपड़ा बुनती है' से ज्ञात होता है कि कृषि और कपड़ा बुनने के उद्योग-धन्धे बहुत पुराने हैं। फिर देश में विदेशी माल आने लगे। कम आयात कर के कारण विदेशी कपड़ा देशी कपड़े से सस्ता पड़ता है। साथ ही साथ चूँकि कुछ खास वर्ग के लोग देशी कपड़ों की अपेक्षा विदेशी कपड़े पसन्द करते हैं इसलिए देशी उद्योग-धन्धे नष्ट हो गए। इन देशी उद्योग-धन्धों के नष्ट हो जाने से बहुत लोग बेकार होकर आलसी बन गए। यह विदेशी आर्थिक दबाव का फल है। अब भी यद्यपि चीन में कर्घे चलते हैं परन्तु उनमें व्यवहार होने वाला कच्चा माल—रूई—विदेश से आता है। हाल के कुछ ही वर्षों से देशी रूई विदेशी मशीन-कर्घे में व्यवहार

होने लगी है। शंघाइ में बहुत-सी बड़ी-बड़ी रुई और कपड़े की मिलें हैं जिनके द्वारा हम धीरे-धीरे विदेशी माल से प्रतियोगिता कर सकते हैं लेकिन अड़चन यह है कि अभी तक चुङ्गी विदेशी लोगों के ही हाथों में है। देशी कपड़ों पर उनके द्वारा केवल भारी निर्यात-कर (Export duty) ही नहीं बैठाया जाता है बल्कि देश के भीतर भी जब माल एक जगह से दूसरी जगह जाता है तो उस पर भारी लिकिन कर (Likin charges) भी बैठाया जाता है। इस प्रकार चीन के पास संरक्षणात्मक आयात-कर बैठाने का अधिकार तो नहीं ही है उल्टे वह विदेशी माल की रक्षा के लिए देशी माल पर भी कर बढ़ा देता है। यूरोपीय युद्ध के समय जब विदेशी राष्ट्र चीन में भेजने के लिए माल नहीं पैदा कर सके तो शंघाइ[२२] की रुई और कपड़े की मिलों को थोड़े अरसे के लिए वरदान-सा मिल गया। उन्होंने बेशुमार नफ़ा कमाया। एक हिस्से पर सौ फी सदी नफ़ा हुआ और पूँजीपतियों की बन आई। लेकिन लड़ाई के बाद विदेशी माल से चीन का बाजार पट गया और शंघाइ की मिलें, जिन्होंने बेशुमार पैसे पैदा किये थे, कर्जदार हो गईं। विदेशी माल की प्रतियोगिता में जब कि देशी माल की हालत खराब हो रही थी तो चीन की चुङ्गी ने सहायता तो नहीं ही पहुँचाई उल्टे विदेशी सौदागरों की रक्षा की। यह तो उसी तरह की हालत है कि कोई शत्रुओं से लड़ने के लिए खाई खोदे पर अपने तो उसका व्यवहार नहीं कर सके उल्टे शत्रुओं को अपने से लड़ने के लिए व्यवहार करते हुए देखे। इसलिए मैं कहता हूँ कि राजनीतिक दबाव तो मूर्खों से भी आसानीपूर्वक अनुभव किया जा सकता है लेकिन आर्थिक दबाव तो अस्पष्ट होता है जिसे हममें से कोई भी आसानी से नहीं अनुभव कर सकता। अतएव कोई भी अपने ऊपर भारी बोझ लाद सकता है।

जब से चीन ने विदेशों से व्यापार करना प्रारम्भ किया है तब से व्यापार सन्तुलन (Balance of Trade) नदी के प्रवाह के समान बढ़ता गया है। दस वर्ष पूर्व के आंकड़ों से पता चलता है कि सन्तुलन (balance) २०,००,००,००० डालर था। हाल की चुङ्गी रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि सन् १९२१ ई० में निर्यात से आयात का मूल्य ५०,००,००,००० डालर अधिक

---

२२. यह क्याङ्सु (च्याङ्सु) प्रान्त में एक बन्दरगाह तथा चीन का सबसे बड़ा शहर है। यह अन्तरराष्ट्रीय नगर कहा जाता है। यह १७ नवम्बर, १८४३ से विदेशियों के व्यापार के लिए खोल दिया गया है।

था अर्थात् एक दशाब्दी में २५० फी सदी की वृद्धि हुई। इस हिसाब से दूसरी दशाब्दी बीतते-बीतते व्यापार सन्तुलन १,२५,००,००,००० डालर हो जाएगा। दूसरे शब्दों में कहें तो दश वर्षों में चीन विदेशी राष्ट्रों को केवल व्यापार के क्षेत्र में १,२५,००,००,००० डालर देगा। क्या यह आपके देश की सम्पत्ति के नाश का भयंकर चित्र (रास्ता—Leakage) नहीं है?

फिर चीन पर विदेशी बैंकों का भी प्रभुत्व है। चीनी लोगों की प्रवृत्ति हो गई है कि वे देशी बैंकों पर अविश्वास करते हैं और विदेशी बैंकों पर अटूट विश्वास रखते हैं। उदाहरण के लिए देखिए—क्वाङ् तुङ् में विदेशी बैंकों पर लोग पूरी तरह से भरोसा रखते हैं जब कि देशी बैंक लोगों में किसी प्रकार का विश्वास पैदा नहीं कर सकते हैं। पहले क्वाङ् तुङ् प्रान्तीय बैंक द्वारा प्रचारित नोट बराबर व्यवहार में आता था। पर अब उसका कुछ भी मूल्य नहीं है और अब हम चांदी के सिक्के व्यवहार करते हैं। देशी बैंक नोट की कीमत विदेशी बैंक नोट की कीमत के मुकाबले बराबर गिर रही है। अब तो चाँदी का देशी सिक्का भी विदेशी बैंक नोट से कम मूल्य का समझा जाता है। आज क्वाङ् तुङ् प्रान्त में प्रचलित विदेशी बैंक नोट की संख्या करीब-करीब करोड़ के होगी। कुछ लोग तो चीन के चाँदी के सिक्के की अपेक्षा विदेशी काग़ज़ी नोट जमा कर रखना पसन्द करते हैं। शंघाइ, थिएन चिन्,[२३] नान्को[२४] और दूसरे व्यापारी बन्दरगाहों में भी ऐसी ही दशा है। जब हम इसके कारण का अध्ययन करते हैं तो पता चलता है कि विदेशी आर्थिक उलझन में फँसकर लोगों का दिमाग विषाक्त हो गया है। हम यह सोचने के आदी हो गये हैं कि विदेशी लोग अमीर हैं और इस बात का जरा भी खयाल नहीं करते कि वे हमारी चीज़ों के बदले में कागज दे रहे हैं। प्रारम्भ में विदेशियों के पास बहुत अधिक पैसे नहीं थे। उनके पास जो सम्पत्ति है, सच पूछा जाय तो बहुत हमारे द्वारा ही दी गई है। उन्हें तो केवल कई लाख बैंक नोट छापने पड़े जिन्हें हम लेते हैं। विदेशी बैंकों द्वारा प्रचारित नोटों की छपाई में कुछ ही नकद लगते हैं पर उस कागज के टुकड़े पर एक, दस या सौ डालर मूल्य की मुहर डाली जाती है। इस प्रकार विदेशी लोग बहुत कम खर्चे में लाखों लाख कागजी डालर छाप सकते हैं और उन कागजी डालरों को हमारे लाखों लाख डालरों के मूल्य की चीज़ों के साथ विनिमय कर सकते हैं।

---

२३. यह हो पाइ प्रान्त का एक प्रसिद्ध बन्दरगाह है। यह भी विदेशियों के व्यापार के लिये खोल दिया गया है।

२४. यह होनान् प्रान्त का एक प्रसिद्ध नगर है।

सज्जनो, क्या यह अपरिमित हानि नहीं है ? क्यों वे इस प्रकार से कागजी नोट चला सकते हैं और हम नहीं चला सकते ? इसका कारण यह है कि विदेशी आर्थिक प्रभुत्व के कारण साधारण जनता का दिमाग विषाक्त हो गया है। वे विदेशियों पर विश्वास करते है और अपने आप पर अविश्वास। इसका नतीजा यह हुआ है कि हमारा कागजी नोट प्रचलन में नहीं आता है।

विदेशी बैंक के अलावा बैंक-विनिमय भी है। बन्दरगाहों में हम चीनी अपनी मुद्रा के विनिमय में भी विदेशी बैंकों पर ही विश्वास करते हैं। चीनी लोगों से विनिमय के लिए वे विदेशी बैंक आधी फी सदी प्रचलित बैंक-रेट कमीशन ही नहीं लेते बल्कि दूसरी तरीके से भी फायदा उठाते हैं। एक बैंक की हुण्डी टेल से डालर में भुनाने के लिए वे (बैंक) बट्टा लेते हैं। हुण्डी बनाने और भुनाने के स्थानों पर इस बट्टे से भुनाने वालों को कम से कम दो या तीन फी सदी की हानि उठानी पड़ती है। उदाहरण के लिए देखिये:—अगर कोई क्वाङ्‌ तुङ्‌ का विदेशी बैंक शंघाइ के बैंक के नाम से १०,००० डालर की हुण्डी बनाता है तो वह हुण्डी बनाने का चार्ज ५०० डालर लेता है। इसके अलावा क्वाङ्‌ तुङ्‌ के छोटे-छोटे चाँदी के सिक्कों को शंघाइ के टेल में भुनाने के समय वे (बैंक) बराबर क्वाङ्‌ तुङ्‌ के छोटे चाँदी के सिक्कों का मूल्य कम और शंघाइ टेल का मूल्य अधिक रखकर नफा मारते हैं। यह नफा उन्हीं के आंकने अनुसार कम से कम एक या दो सौ डालर होता है। शंघाइ में हुण्डी भुनाने के समय वे (बैंक) टेल नहीं देते बल्कि डालर देते हैं। फिर शंघाइ टेल को डालर में भुनाने के समय टेल के मूल्य को कम कर देते हैं और डालर के मूल्य को अधिक बढ़ा देते हैं। इसी प्रकार पुनः दूसरी बार कम से कम एक या दो सौ डालर का नफा मारते हैं। इसलिए १०,००० डालर केण्टन से शंघाइ और शंघाइ से केण्टन भेजने में हर बार कम से कम दो या तीन सौ डालर की हानि होती है। इस प्रकार तो दस हजार डालर की तीस बार हुण्डी बनवाने में पूरी रकम हड़प हो जाएगी। फिर भी क्यों लोग इस हानि को उठाते हैं ? इसका कारण यह है कि विदेशी आर्थिक प्रभुत्व के विष से उनका दिमाग भर गया है।

चीन में 'विदेशी बैंकों' की शक्ति उनके पास जमा की जाने वाली रकम से भी देखी जाती है। अगर किसी चीनी के पास पैसे हों और वह उन्हें बैंक में जमा करना चाहता हो तो वह इस बात को देखने की चेष्टा नहीं करता कि चीनी बैंकों के पास बड़ी पूँजी है या छोटी अथवा वे अधिक सूद देते हैं या कम। जैसे ही उसे ज्ञात होता है कि अमुक बैंक का संचालन

चीनी लोगों द्वारा होता है तो वह तुरत सोचता है कि वहां रुपये जमा करना सुरक्षित नहीं है और वह अपने धन को वहां जमा करने का खतरा नहीं उठाता है। अगर उसे ज्ञात होता है कि अमुक बैंक विदेशियों द्वारा संचालित होता है और उस पर विदेशी साइन बोर्ड लगा है तो वह यह भी नहीं पूछता कि यह विदेशी बैंक विश्वसनीय है या नहीं। अथवा कम या अधिक सूद देता है। वह शांति देनी वाली औषधि के समान सभी बातों को निगल जाता है और बहुत सुरक्षित अनुभव करता है तथा अपना धन उसमें जमा कर देता है। सूद कम होने पर भी वह पूर्ण सन्तोष का अनुभव करता है।

सन् १९११ ई० में एक उल्लेखनीय घटना हुई। बुछाङ्[२५] में जब क्रान्तिकारी आन्दोलन प्रारम्भ हुआ तो मांचू राजघराने के सब लोगों ने और मांचू सरकार के कर्मचारियों ने इस डर से कि क्रान्ति का अर्थ होगा उनकी सम्पत्ति का जब्त होना, अपनी सोने, चाँदी और अन्य बहुमूल्य चीज़ों को विभिन्न विदेशी बैंकों में जमा कर दिया। वे कुछ भी सूद नहीं लेने को राजी थे केवल यही चाहते थे कि विदेशी बैंक उनकी चीज़ें जमा कर लें। उन दिनों जब कि बुहान्[२६] में क्रान्तिकारी सेनाएँ मांचू सरकार की फ़ौज को हरा रही थीं तो उधर पेकिङ्[२७] के विदेशी दूतावास क्षेत्र में जो विदेशी बैंक थे, वे सब अनगिनत सोना, चाँदी की और बहुमूल्य चीज़ें मांचू लोगों से जमा करने के लिए तब तक लेते गये जब तक कि पूर्णरूप से भर नहीं गये वे और उनके पास उन चीज़ों को रखने के लिए जगह नहीं रही। विदेशी बैंकों ने उन्हें सूद तो नहीं ही दिया उल्टे अपने पास जमा रखने का चार्ज भी लिया। सभी जमा करने वाले यह चाहते थे कि विदेशी बैंक किसी भी तरह से उनका धन जमा कर लें। इसलिए विदेशी बैंकों ने उनसे जो माँगा उन्होंने दिया। उस समय विदेशी बैंकों में चीनी लोगों ने बारह अरब डालर जमा की। यद्यपि इस रकम में से कुछ निकाली गई है फिर भी गत दस-बारह वर्षों से सैनिकवादियों और राजकर्मचारियों का एक

---

२५. यह होनान् प्रान्त की राजधानी है। यहाँ १० अक्टूबर सन् १९११ ई० में मांचू सम्राट् के विरुद्ध क्रान्तिकारियों ने क्रान्ति प्रारम्भ की थी।

२६. बुछाङ् और हान्क्वो इन दोनों का सम्मिलित नाम बुहान् है। ये दोनों नगर एकदम पास पास एक नदी के आर पार में बसे हैं।

२७. हो-पइ प्रान्त की राजधानी। यह बहुत प्राचीन नगर है तथा राजनीतिक और सांस्कृतिक केन्द्र रहा है।

दल जिसमें फङ्ग क्वो-चाङ्ग, वाङ्ग चान्-युआन्, लि-शुन् और छाव् कुन[२८] हैं, देश को दुहता रहा है और इस दल के हर एक ने करोड़ों की सम्पत्ति बेइमानी से कमा ली है। चूँकि ये लोग बेइमानी से कमाये हुए अपने धन को सुरक्षित रूप से स्थिर रखना चाहते हैं इसलिए इन्होंने उसे विदेशी बैंकों में जमा कर दिया है। इस प्रकार सन् १६११ ई० से विदेशी बैंकों में चीन की जमा की हुई रकम में कोई उल्लेखनीय घटती-बढ़ती नहीं हुई है। विदेशी बैंक इन बारह अरब डालर का बहुत कम सूद देते हैं। यह सूद चार या पाँच फी सदी से अधिक नहीं होता है जब कि वे ही बैंक चीन के छोटे-छोटे उद्योग-धन्धों के लिए बहुत अधिक सालाना सूद पर कर्जा देते हैं। यह सूद सात या आठ फी सदी से भी अधिक होता है। इस प्रकार विदेशी बैंक बिना किसी प्रकार का दुःख-तकलीफ उठाये सिवा इसके कि उन्हें एक के हाथ से रुपया लेकर दूसरे के हाथ में देना पड़ता है, चीनी पूँजी लेकर उसी से सूद उपार्जन करते हैं।

इस प्रकार चीनी लोगों द्वारा जमा की गई रकम से हर वर्ष विदेशी बैंकों को जो लाभ होता है, वह चीन के लिए एक ऐसी हानि है जो देखने में नहीं आती है। चीनी लोगों द्वारा विदेशी बैंकों में धन जमा करने का एकमात्र मनोवैज्ञानिक कारण लोगों का यह विश्वास है कि चीनी बैंक में जमा करना सुरक्षित नहीं है और विदेशी बैंकों में जमा करना सुरक्षित है। वे यह सोच ही नहीं सकते कि विदेशी बैंक भी दिवालिया हो सकता है। लेकिन आप लोग बताने की कृपा कीजिए कि "बैंक्वे इनडसट्रियले द चीन", (Banque Industrielle de Chine) जो चीनी लोगों द्वारा जमा की गई रकम का भुगतान किये बिना ही बन्द हो गया है, विदेशी बैंक है या नहीं? क्या विदेशी बैंक पूर्णरूपेण सुरक्षित हैं? अगर नहीं तो फिर क्यों हम चीनी लोग अभी तक इच्छापूर्वक और उत्सुकता के साथ उन्हें प्रोत्साहन दिये हुए हैं? इस प्रकार विदेशियों के हाथों में सूद से होने वाला सारा मुनाफा जो चला जाता है उसका भी कारण विदेशी आर्थिक नियंत्रण का दूषित प्रभाव है। केवल विदेशी बैंकों का ही सालाना कुल नफा कागजी नोट चालू करने से, विनिमय से और रुपया जमा लेने से, लगभग १०,००,००,००० डालर के हो जाता है।

विदेशी बैंकों के अलावा बाहर से माल ले आने और चीन से बाहर

---

२८. ये सभी युद्ध अधिनायक थे और अपनी सेना के बल से प्रजा को सताते और भारी भारी कर वसूल करते थे। उत्तरी सरकार इन लोगों के ही प्रभाव में थी।

माल ले जाने के महसूल से होने वाली आय भी है। चीन को अपना माल बाहर भेजने के लिये विदेशी जहाज पर निर्भर रहना पड़ता है। यहाँ तक कि देश के भीतरी भाग हान्-क्वो, छाङ्-शा,[२९] और केण्टन आदि में भी विदेशी जहाजों द्वारा ही माल पहुँचाए जाते हैं। जापान का जहाजी व्यापार (Shipping business) भी हाल के वर्षों में बढ़ा है। शुरू-शुरू में जापान में केवल नियन युसेन काइसा (जापान मेल जहाज कम्पनी) नामक एक ही कम्पनी थी। बाद में टोकियो किसन काइसा, ओसाका शोसन काइसा, और निसशिन किसेन काइसा (चीन-जापान जहाज कम्पनी) नामक कम्पनियाँ कायम हुईं जिनसे चीन के भीतरी भागों तथा संसार के हर कोने में यातायात होने लगा। जापान के व्यापारिक जहाज की इस बढ़ती का कारण वहाँ की सरकार द्वारा दी गई सहायता और संरक्षण है। चीनी दृष्टिकोण से सरकार को व्यावसायिक जहाज कम्पनी की सहायता करने में कोई फायदा नहीं है। लेकिन जापान तो दूसरे राष्ट्रों की आर्थिक शक्ति के साथ होड़ लेना चाहता था। इसलिए जहाज से माल ढोने की बात में भी उसने दूसरे देशों से सन्धि की। उनके साथ यह भी तय कर लिया कि जहाज से माल ढोने के लिए प्रतिटन वह कितना भाड़ा दिया करेगा। यूरोप से एशिया आने वाला माल पहले शंघाइ में आता है और तब नागासाकी और याकोहामा जाता है? क्योंकि जापानी बन्दरगाहों की अपेक्षा शंघाइ यूरोप से ज्यादा नजदीक है। यूरोप से नागासाकी और याकोहामा के लिए प्रति टन जो भाड़ा लिया जाता है वह एकदम उचित है। लेकिन चूँकि चीन के पास एक भी व्यावसायिक जहाज विदेशी जहाजों से प्रतियोगिता करने के लिए नहीं है इसलिए यूरोप से शंघाइ तक का भाड़ा बहुत अधिक है। जिससे यूरोप से शंघाइ की अपेक्षा जापान में माल भेजना अधिक सस्ता है। जिसके फलस्वरूप विदेशी माल शंघाइ की अपेक्षा जापान में अधिक उचित मूल्य पर बिकता है। इसी प्रकार अगर चीनी माल शंघाइ से यूरोप भेजा जाता है तो जहाज भाड़ा नागासाकी और याकोहामा से भेजने की अपेक्षा कहीं अधिक देना पड़ता है। अगर चीन दस करोड़ डालर के मूल्य का माल यूरोप भेजता है तो उसे एक करोड़ डालर केवल जहाज भाड़ा देना पड़ता है। इस हिसाब से, चूँकि अब चीन का सालाना निर्यात और आयात एक अरब डालर के मूल्य से भी अधिक का होता है, उसे दश करोड़ की हानि उठानी पड़ती है। क्योंकि जहाज-भाड़ा विदेशी जहाज-कम्पनी को दिया जाता है।

---

२९. हुनान् प्रान्त की राजधानी

फिर और तीन प्रकार के टैक्स हैं—भूमि लगान और विदेशी आबादी तथा विदेशियों को सौंप दिये गये भू-भाग की जमीन की कीमत । इन टैक्सों की रकम कम नहीं है । उदाहरण के लिए देखिए :—हाङ्काङ्, फारमूसा, शंघाइ, थियेन्किन्, डाइरन, हान्-क्वो, और दूसरी जगहों की विदेशी आबादी (Foreign settlement) और सुपुर्द किये गये क्षेत्र में बसने वाली चीनी जनता को बीस करोड़ डालर से भी अधिक सालाना कर विदेशियों को देना पड़ता है । पहले फ़ारमूसा जापान को दो करोड़ डालर सालाना कर देता था पर अब वह बढ़ कर दस करोड़ डालर सालाना हो गया है । हाङ्काङ् वाले पहिले ब्रिटेन को कुछ डालर सालाना कर देते थे पर अब तीन करोड़ डालर देते हैं और अनुपाततः वह हर वर्ष बढ़ता ही जाता है ।

भूमि लगान चीनी सरकार और विदेशी दोनों ही लेते हैं और चूँकि इस सम्बन्ध में अच्छी तरह से आंकड़ा नहीं लिया गया है इसलिए कौन कितना पाता है, यह ठीक नहीं कहा जा सकता लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं कि विदेशी लोग अधिक पाते हैं और भूमि लगान की रकम और दूसरे करों से दस गुना अधिक है । जब से विदेशी हाथों में आर्थिक नियंत्रण है जमीन की कीमत हर वर्ष बढ़ती जाती है क्योंकि कहावत भी तो है कि 'धन चालाक व्यापारी बनाता है ।' विदेशी आबादी क्षेत्र में जमीन कम दर में खरीदी जाती है और अधिक दर पर बेची जाती है । इन तीन तरीकों से रियासती क्षेत्र में बसने वाली चीनी जनता सालाना चालीस या पचास करोड़ से कम का घाटा नहीं उठाती है ।

इतना ही नहीं, चीन में अनगिनत विदेशी कम्पनियाँ और विदेशी नागरिक व्यक्तिगत रूप से व्यापार कर रहे हैं, जिन्हें समझौते से प्राप्त खास रियायतें हैं और ये लोग हमारे अधिकार को दिन-दहाड़े लूटते हैं । इस तरीके से जो हानी होती है उसका अन्दाजा लगाना तो और कठिन है । लेकिन अकेले दक्षिणी मंचूरिया रेलवे कम्पनी के हिसाब को देखें तो पता चलता है कि उसे पाँच करोड़ से भी अधिक की आमदनी होती है । विभिन्न प्रकार के विदेशी व्यवसायों की सम्मिलित आमदनी तो सैकड़ों करोड़ होगी ।

लेकिन अभी एक प्रकार की हानि पर विचार करना बाकी ही है और वह है सट्टेबाजी के व्यासाय की । रियायती क्षेत्र में रहने वाले विदेशी चीनी जनता की कमजोर प्रवृत्ति-लोभ-से फायदा उठाते हैं और हर रोज सट्टेबाजी के छोटे-छोटे अवसर उपस्थित करते हैं । हर कई साल के बाद यहाँ खेलने का एक बड़ा अवसर प्रदान करते हैं जिससे चीनी जनता के जुआ खेलने की प्रवृत्ति को और प्रोत्साहन मिलता है । हर सट्टेबाजी के अवसर पर रबर

के बाजार आदि में चीनी लोगों ने लाखों की हानि उठाई है। साधारण सट्टेबाजी में नाश होने वाली रकम अन्त में बहुत अधिक हो जाती है।

विभिन्न युद्ध के हरजाने (२५ करोड़ टेल जापान को सन् १८९४ ई० का और ९० करोड़ टेल विदेशी शक्तियों को सन् १९०० ई० का) जो हमें देने पड़ते हैं वे तो राजनीतिक और सैनिक दबाव के अंग हैं और वे आर्थिक नियंत्रण की गिनती में नहीं रखे जा सकते आर्थिक नियंत्रण के सामने हरजाना तो क्षणिक और एकदम नगण्य है। केवल चीन में ही नहीं बल्कि पहले के हमारे अधिकृत क्षेत्रों (जो अब विदेशियों के पास हैं) और प्रवासी चीनियों की हानि को देखे तो फिर उसकी गिनती और असम्भव हो जाती है। यह आर्थिक परतंत्रता कितनी भयानक है !

सांराश यह है कि हमसे छीन कर लिये गये अधिकार और रियायतों का मूल्य अगर रुपये में आंका जाय तो वह यों होगा :—(१) ५० करोड़ डालर का विदेशी माल, (२) १० करोड़ डालर की आय हमारे मुद्रा बाजार में विदेशी कागजी नोटों की चलन, विदेशी बैंकों द्वारा हुण्डी 'भजाने का बट्टा' और हमारी जमा की हुई रकमों के सूद से, (३) १० करोड़ से अधिक डालर जहाज द्वारा माल ढोने का किराया, (४) ४० या ५० करोड़ डालर विदेशी आबादी और उन्हें सुपुर्द किये क्षेत्रों से होने वाले टैक्स, भूमि लगान, और भूमि-बिक्री से, (५) १० करोड़ डालर खास रियायत और व्यापार से, (६) करोड़ों डालर सट्टेबाजी तथा अन्य तरह के जुएबाजी द्वारा। इन छः प्रकार के आर्थिक नियंत्रण से हमें एक अरब बीस करोड़ डालर सालाना से कम की हानि नहीं उठानी पड़ती है। अगर इसे रोकने का हमने प्रबन्ध नहीं किया तो यह हानि सालों साल बढ़ती ही जाएगी। स्वतः इनमें कमी नहीं होगी। चीन दिवालियेपन की हालत में पहुँच चुका है और अगर हमने इसे नहीं बचाया तो आर्थिक नियंत्रण क्रमशः हमारे राष्ट्र को समाप्त कर देगा और हमारी नस्ल को भी बरबाद कर देगा।

चीन के चरम उत्कर्ष काल में उसके अड़ोस-पड़ोस के राष्ट्र उसे सालाना खिराज भेजते थे और सालाना राजकीय दरबार में आकर हाजिरी बजाते थे। यद्यपि इस सालाना खिराज की आप दस लाख डालर से कुछ ही अधिक होती थी लेकिन उसे हम अपने देश के लिए बड़ी इज्जत की बात समझते थे। जब चीन के सुङ् राजवंश[३०] का पतन हो गया और चीन को कीन् तातार लोगों के यहाँ खिराज देना पड़ा तो यद्यपि खिराज की रकम दस लाख डालर

---

३०. सन् ९६०-१२७६ ई० ।

ही थी पर हम उसे अपने देश की बेइज्जती समझते थे। लेकिन अब हम सालाना एक अरब बीस करोड़ की रकम विदेशियों को खिराज में देते हैं यानी दस वर्षों में बारह अरब। इस तरह की आर्थिक दासता, इतनी बड़ी खिराज हम स्वप्न में भी नहीं सोचते थे और अभी भी उसे स्पष्ट रूप से नहीं देख पाते हैं। इसीलिए हम इस भयंकर लज्जा का अनुभव नहीं करते हैं। अगर एक अरब बीस करोड़ रकम की यह खिराज हमारी राष्ट्रीय आय होती तो कौन सा काम हम इससे नहीं कर सकते ? हमारा समाज कितनी प्रगति कर जाता ? लेकिन इस आर्थिक प्रभुत्व और प्रतिवर्ष होनेवाली हानियों के कारण हमारा समाज प्रगति नहीं कर रहा है और साधारण जनता की जान के लाले पड़ रहे हैं। लाखों सैनिक अगर हमें मारने को तैयार हों तो वह अच्छा है परन्तु अकेला आर्थिक नियंत्रण उससे कहीं गया-गुजरा है। एक तरफ विदेशी साम्राज्यवाद इस आर्थिक दासता का पृष्ठपोषण करता है और दूसरी तरफ हर रोज चीनी जनता के जीने की समस्या विकट होती जा रही है। बेकारी दिनों दिन बढ़ रही है और जिसके फलस्वरूप देश की शक्ति धीरे-धीरे कमजोर पड़ती जाती है।

गत सौ वर्षों से चीन जनसंख्या की समस्या से पीड़ित है। चीन की जनसंख्या नहीं बढ़ रही है जबकि दूसरे देशों की आबादी तेजी से बढ़ती जाती है। अब हम राजनीतिक और आर्थिक प्रभुत्व से भी पीड़ित हैं। अगर इन तीनों नियंत्रणों से बचने का अभी भी हम कोई उपाय न कर सके तो अगली शताब्दी में हमारा देश समाप्त हो जाएगा, हमारी जाति नष्ट हो जाएगी चाहे देश का क्षेत्रफल कितना ही बड़ा और इसकी आबादी कितनी भी अधिक क्यों न हो। हमारी चालीस करोड़ की जनसंख्या अमर नहीं है। जरा लाल नस्ल के आदिनिवासियों की ओर ध्यान दीजिए। पहले ये सम्पूर्ण अमेरिका में छाए हुए थे पर आज लुप्त हो गए। अब जब हम राजनीतिक प्रभुत्व की भयंकरता और उससे भी खतरनाक आर्थिक नियंत्रण को समझते हैं तो हम डींग नहीं हाँक सकते कि हमारी चालीस करोड़ की आबादी आसानी से नहीं मिटाई जा सकती है। चीन ने अपने कई हज़ार वर्षों के इतिहास में एक साथ और एक ही समय कभी भी इस प्रकार की तीन शक्तियों का बोझ नहीं उठाया है। चीन जाति के भविष्य के लिए हम इस बोझ को उतारने का ज़रूर कोई रास्ता निकालें।

फरवरी ३, १९२४

तीसरा व्याख्यान

राष्ट्रीयता वह अमूल्य सम्पत्ति है जो किसी राज को विकासोन्मुख करती है और किसी भी राष्ट्र को अपना अस्तित्व बनाये रखने में समर्थ बनाती है। आज चीन ने इस अमूल्य सम्पत्ति को खो दिया है। क्यों? इस प्रश्न का उत्तर देना और इस बात की छानबीन करना ही आज का मेरा विषय है कि क्या वास्तव में हमने राष्ट्रीय भावना खो दी है?

मुझे तो ज्ञात होता है कि हमने राष्ट्रीय भावना आज नहीं बल्कि शताब्दियों से खो दी है। जरा उन क्रान्ति विरोधी निबन्धों की ओर ध्यान दीजिये जो क्रान्ति के पहले प्रकाशित हुए थे। सब में राष्ट्रीयता का विरोध किया गया था। सैकड़ों वर्षों से चीन से राष्ट्रीय भावना मर चुकी है। इस काल के साहित्य में मुश्किल से कहीं एक आध शब्द राष्ट्रीयता के सम्बन्ध में मिलेगा। वह केवल मांचू सरकार की प्रशंसा से भरा पड़ा है। जैसे 'धर्म परायण मांचू', 'दया के अवतार और गुणशील', हम आपकी उपज खाते हैं और आपकी जमीन पर रहते हैं आदि। किसी ने भी मांचुओं के विरुद्ध कुछ कहने का साहस नहीं किया। यहाँ तक कि हाल के वर्षों में जबसे क्रान्तिकारी भावनाओं का उदय हुआ है अपने मुँह मियां मिट्ठू बनने वाले पंडित और विद्वान् प्रतिदिन मांचू सरकार के पक्ष में बोला करते हैं। हम जबकि टोकियो से 'मिन् पाव्' (दैनिक जनता) का प्रकाशन कर राष्ट्रीय भावना का प्रचार करते थे तो उनका जो इस सिद्धान्त पर हमसे वाद-विवाद किया करते थे, कहना था कि मांचुओं के चीन पर अधिकार करने पर भी हमारी जाति गुलाम नहीं हुई; क्योंकि चूंकि मिङ् वंश (सन् १३६८-१६४४ ई०) के सम्राट् ने मांचुओं को लुङ् हु (जेनरल) की उपाधि देकर चीन पर राज्य करने का अधिकार प्रदान किया था। अतएव यह कहना ठीक नहीं है कि उन्होंने मिङ् वंश के तख्ते को उलट दिया बल्कि उन्होंने तो वंशक्रमागत राज्य पर ही अधिकार किया; यद्यपि यह सच है कि वे एक नये वंश के थे पर वंश-परिवर्तन से राष्ट्र गुलाम तो नहीं हुआ! हाँ; चुंगी का भूतपूर्व इन्सपेक्टर जेनरल मिस्टर हार्ट[1] भी तो आर्थिक बोर्ड का मंत्री था। अगर वह चीन को

---

[1]. रॉबर्ट हार्ट सन् १८६३ ई० में चुंगी का इन्सपेक्टर-जेनरल नियुक्त किया गया था।

दखल करने के लिए आता और सम्राट् बन बैठता तो क्या हम कहते कि चीन गुलाम राष्ट्र नहीं है ? इन आलोचकों ने मांचू सरकार को बनाये रखने के लिए केवल आकर्षित शब्दों का ही जाल नहीं फैलाया बल्कि मांचू सम्राट् की रक्षा के लिये और चीनी जनता की राष्ट्रीय भावना को कुचलने के लिए 'पाव्-हुङ्-ताङ्' नामक एक राजपक्षपाती संस्था का संगठन किया। इस बात को ध्यान में रखिये कि राजपक्षपाती लोग मांचू जाति के नहीं थे बल्कि सबके सब चीनी ही थे और उनके विचारों का सबसे अधिक स्वागत विदेश में रहने वाले चीनियों में हुआ। बाद में जब क्रान्तिकारी भावनायें अधिक फैलने लगीं तो इन बाहर बसे हुये चीनियों ने भी धीरे-धीरे क्रान्ति के समर्थन के पक्ष में अपना रुख परिवर्तन किया और प्रवासी चीनियों में क्रान्तिकारी संस्थायें संगठित हुईं।

'हुङ्-मन् सान्-हो हुइ' नामक संस्था (जो चउङ्-ताङ् भी कहलाती थी) उन संस्थाओं में से एक थी जिसका उद्देश्य मांचू सरकार का विरोध करना और मिङ् राजकुल की पुनः स्थापना करना था। इसकी राष्ट्रीय भावना अत्यन्त ही उग्र थी। लेकिन जब राजपक्षपाती भावनाओं का प्रवासी चीनियों में प्रचार हुआ तो ये संस्थायें भी राजपक्षपाती हो गईं और उनका उद्देश्य केवल 'महान् पवित्र' (मांचू राजवंश ने यह उपाधि ली थी) सम्राट् को ही चीन की गद्दी पर बनाये रखना हो गया। राष्ट्रीय संस्थाओं का राजपक्षपाती संस्थाओं के रूप में बदल जाना ही इस बात का द्योतक है कि चीन ने पूर्णतः राष्ट्रीय भावना खो दी थी।

जब हम इन गुप्त क्रान्तिकारी समितियों के संबंध में चर्चा कर रहे हैं तो पहले इनकी उत्पत्ति के बारे में भी कुछ जरूर जान लेना चाहिये। ये समितियाँ मांचू सम्राट् खाङ्-शी[२] (१६६१-१७२२ ई०) के समय बड़ी शक्ति

---

२. सम्राट् का असली नाम षेङ् चु था। खाङ् शी उनके राजत्वकाल की उपाधि है। चीन में प्रथा यह थी कि जो सम्राट गद्दी पर बैठते थे वे अपने राजत्वकाल के समय को बतलाने के लिए एक नाम रख लेते थे। जैसे सम्राट षङ् चु ने सन् १६६१-१७२२ ई० तक राज्य किया और उन्होंने अपने इस काल के लिए खङ्-शी नाम रखा। बाद में लोग सम्राट् का नाम भी न लेकर राजत्वकाल का नाम करते थे।

शाली थीं। जब षुन्-च[3] ने मिङ् राजकुल को खतम कर अपने को चीन का सम्राट् घोषित किया तो मिङ् राजकुल के समय के राजभक्त मंत्री और विद्वान लोग हर जगह उसके विरोध में उठ खड़े हुए। यहाँ तक कि खाङ्-शी के राजत्वकाल के प्रारम्भिक वर्षों में विरोध जारी था और मांचुओं द्वारा पूर्णरूप से चीन अधिकृत नहीं किया गया था। खाङ्-शी के राजत्वकाल के अन्तिम वर्षों में जब कि मिङ् राजकुल के वृद्ध अनुभवी लोग धीरे-धीरे समाप्त हो गये तो उग्र राष्ट्रवादियों के एक दल ने यह अनुभव कर कि उनके दिन लद चुके हैं और उनके पास इतनी शक्ति नहीं बची है कि मांचू सरकार से लोहा ले सकें, गुप्त क्रान्तिकारी समितियाँ संगठित करने की एक योजना बनाई। ये दूरदर्शी तथा दृढ़ निश्चय वाले थे और उनके पास समाज को देखने की पैनी निगाह थी। ठीक उसी समय जब कि वे विभिन्न समितियों का संगठन कर रहे थे सम्राट् खाङ्-शी ने पो शुए हुङ् चु[4] परीक्षा का प्रवर्त्तन किया, जिससे मिङ् राजकुल के समय के सभी प्राचीन विद्वान मांचू सरकार की नौकरी के जाल में फँस गए। उनमें से बुद्धिमानों के एक दल ने देखा कि राष्ट्रीय भावना को जगाए रखने के लिए विद्वत् समाज पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। इसलिए वे समाज के निम्न स्तर के उन बेघर बार वालों की ओर झुके जो नदियों और झीलों के ऊपर रहते थे। उन्होंने इन आदमियों को इकट्ठा किया, दलों में संगठित किया और राष्ट्रीय भावनाओं की शिक्षा दी ताकि भावना सुरक्षित और स्थायी रह सके। चूँकि ये समाज के निम्न स्तर से आए हुए में से थे, और अपने गँवारू व्यवहार के कारण तिरस्कृत थे तथा अपने सिद्धान्त के प्रचार करने के लिए विद्वानों द्वारा बोली जाने वाली भाषा नहीं व्यवहार करते थे इसलिए इनके कामों (राजकुल विरोधी आन्दोलन) की ओर लोगों का बहुत कम ध्यान गया। उन मिङ् राजकुलपक्षी विद्वानों ने राष्ट्रीय आदर्श को सुरक्षित रखने की योजना में अपने सच्चे ज्ञान और दूर दृष्टि का परिचय दिया। जिस प्रकार धनी पुरुषों की सम्पत्ति शांति के समय कीमती

---

३. **असली नाम श-चु। उन्होंने अपने राजत्वकाल के लिए षुन् च उपाधि रखी थी। ये चीन में मांचू राजवंश के प्रथम सम्राट थे। इनका राजत्व काल सन् १६४४-१६६१ ई० तक था।**

४. **यह एक राजकीय परीक्षा थी जिसमें बड़े-बड़े विद्वान् सम्मिलित होते थे। बिना इस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए कोई किसी प्रकार की राजकीय नौकरी नहीं पा सकता था।**

लोहे के सन्दूकों में रखी रहती है और जब वे देखते हैं कि लुटेरों ने घर पर धावा किया है तो इस बात से डर कर कि सबसे पहिले तो कीमती सन्दूक ही तोड़े जायेंगे अपने खजाने को ऐसी जगह गाड़ देते हैं जहाँ किसी को सन्देह भी नहीं हो सकता है कि खजाना गड़ा है। भयानक विपत्ति के समय तो वे अपनी सम्पत्ति को गंदी से गंदी जगह डाल देते हैं। ठीक इसी प्रकार मिङ् राजकुलपक्षी विद्वानों ने चीन की सम्पत्ति को सुरक्षित रखने के लिए समाज के सबसे गँवारू और निम्न स्तर को चुना। इस प्रकार, मांचू राजवंश गत दो शताब्दियों में कितना भी स्वेच्छाचारी क्यों न रहा पर राष्ट्रीय भावना इन गुप्त समितियों द्वारा जबानी तौर पर एक से दूसरों के पास फैलती रही और मरने नहीं पाई। जब कि 'हुङ्-मन्' संस्था मांचू राज्य को उलट कर मिङ् राजा की पुनः स्थापना करना चाहती थी तो उसने बुद्धिजीवियों के बीच राष्ट्रीय भावना क्यों न फैलाई और साहित्य निर्माण कर उस भावना को आने वाली सन्तान के लिए क्यों न छोड़ दिया जैसा कि प्रसिद्ध इतिहासज्ञ ष मा छिएन्[५] ने कहा है कि 'उन्हें प्रसिद्ध पहाड़ों में जमा कर दो और योग्य आदमियों के नाम वसीयत कर दो ?' चूँकि मिङ् राजकुल-पक्षी विद्वानों ने देखा कि मांचू सम्राट् परीक्षा प्रणाली का प्रवर्तन कर रहे हैं और बुद्धिमान तथा पढ़े-लिखे सब लोग इस प्रणाली के जाल में फंस रहे हैं तो उन्होंने समझ लिया कि बुद्धिजीवी वर्ग पर भरोसा नहीं किया जा सकता है और 'खजाना प्रसिद्ध पहाड़ों में जमाकर योग्य आदमियों के नाम उसकी वसीयत नहीं की जा सकती है।' इसलिए समाज के निम्न स्तर में ही छिपाना चाहिये। अतः उन्होंने गुप्त समितियों का निर्माण किया जिनका संगठन और दीक्षा बहुत सादी और ग्रहण करने योग्य थी। और उनके ऊपर ही राष्ट्रीय भावना को सुरक्षित रखने का भार दिया—लिखित साहित्य द्वारा नहीं बल्कि मौखिक भाषा द्वारा। इसलिए अब हमारे लिए उन संस्थाओं की उत्पत्ति के

---

५. ये हान् राजवंशी के समय के इतिहासकार थे। इनका समय ई० पू० १४५-८६ तक माना जाता है। इन्होंने प्राचीन काल से अपने समय तक का सम्पूर्ण इतिहास लिखा जो एक सौ तीस जिल्दों में है और तीन हजार वर्षों के बीच हुए सभी प्रसिद्ध आदमियों की जीवनी भी इस इतिहास में दी। इनकी खोज और राय इतनी ठोस और लिखने की शैली इतनी अच्छी है इनकी गिनती संसार के आदर्श इतिहासकारों में होती है। इन्होंने अपनी प्रसिद्ध किताब ९७ ई० पू० समाप्त की थी।

इतिहास की छानबीन करना कठिन हो गया है क्योंकि उन संस्थाओं के संबंध में हमें केवल छोटी-छोटी कहानियाँ मौखिक परम्परा से मिली हैं। अगर संस्थाओं के पास लिखित साहित्य भी रहता तो भी छियेन्-लुङ् (सन् १७३४ १७६५ ई०) के राजत्व काल में वह समाप्त कर दिया गया होता।

खाङ्-शी और युङ् चेङ्[६] के राजत्व काल में भी राजकुल विरोधी आन्दोलन बहुत जोरों का था और सरकार ने इसके विरुद्ध बड़ी-बड़ी पुस्तकों का प्रकाशन कराया था जैसे ताइ-इ-चिओ-मि-लु। इन पुस्तकों में मांचू सरकार का विरोध नहीं करने की सिफारिश इस आधार पर की गई थी कि षुन[७] पूर्वी बर्बर थे तथा वन्-वाङ्[८] पश्चिमी बर्बर, इसलिए यद्यपि मांचू भी बर्बर हैं तो भी चीन के सम्राट् हो सकते हैं। इससे कम से कम खाङ्-शी और युङ् चेङ् की ईमानदारी का पता तो चलता है कि वे लोग अपने को मांचू नस्ल का स्वीकार करते थे। लेकिन छियेन्-लुङ् के राजत्व काल में मान् और हान् (माँचू और चीनी) शब्दों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया, इतिहास में संशोधन किया गया, सुङ् और मंगोल या मिङ् और मांचू से सम्बन्ध रखनें वाली बातें निकाल दी गईं और मांचू, टुन और तातार से संबंधित सभी इतिहास बुरे बनाये गये, नष्ट कर दिये गये और उनका रखना या पढ़ना रोक दिया गया। गैरकानूनी किताबें लिखने या पढ़ने के कारण कितनों को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा और इस प्रकार साहित्य में राष्ट्रीय भावना जो

---

६. इनका असली नाम श चुङ् था। ये चीन में मांचू राजवंश के तीसरे सम्राट (सन् १७२३—१७३५ ई०) थे। इन्होंने अपने राजत्व काल के लिए युङ्चेङ् नाम रखा था।

७. पुरा नाम यू षुन था। ये चीन के प्रागऐतिहासिक काल के सम्राट थे और इनका समय ई० पू० २२५५—२२०६ माना जाता है। इन्होंने धर्मपूर्वक राज्य कर स्वेच्छा से योग्य आदमी के लिए राजगद्दी छोड़ दी थी। इसलिए इनका राजत्वकाल स्वेच्छा से राजगद्दी छोड़ने का काल कहा जाता है। ये चीनी इतिहास में आदर्श सम्राट माने जाते हैं।

८. वन् वाङ् षाङ् राजवंश (१७६६-११२२ ई० पू०. के अन्तिम सम्राट् के राज्य में एक ड्यूक थे। अन्तिम सम्राट् चउ शिन् (११५४-११२२ ई० पू०) ने इन्हें इसी अपराध में जेल में बंद कर दिया था। अपने सात वर्षों के कारावास जीवन में इन्होंने इ चिङ् (परिवर्तन के कानून) नामक पुस्तक की व्याख्या की। ये बड़े विद्वान और आदर्श ड्यूक थे।

जीवित थी वह भी नष्ट कर दी गई। मांचू राजत्वकाल के मध्यभाग में 'हुङ्‌ मन्' गुप्त समिति ही एक ऐसी संस्था बच रही थी जो राष्ट्रीय भावना को जीवित रखे हुये थी।

जब हुङ्‌ शिउ-छुआन्[१] (थाई चिङ्‌ विद्रोह का नेता) ने विद्रोह का झंडा खड़ा किया तो हुङ्‌ मन् समिति के सदस्यों ने उनका साथ दिया और पुनः एक बार राष्ट्रीयता की लहर फैल गई। इस बात को ध्यान में रखना चाहिये कि हुङ्-मन् नाम हुङ्‌ शिव-छुआन् के नाम पर नहीं है बल्कि सम्भवतः या तो चु हुङ्‌ वु या चु हुङ्‌ चु (जिनके नायकत्व में खाङ्-शी के राजत्व-काल में विद्रोह हुआ था) के नाम पर से पड़ा है। हुङ्‌ शिउ-छुआन् के पतन के बाद राष्ट्रीयता की धारा फौजों और स्वेच्छाचारी घुमक्कड़ों के बीच से बहती रही। उस समय की फौज शिआङ्‌ (हुनान् प्रान्त की नदी) और हुआइ नदी (अङ्हवइ प्रान्त की नदी) टुकड़ी (डिमिजन)—समितियों के अधीन थी और आज की चङ्-पाङ्‌ तथा टुङ्-पाङ्‌ समितियाँ उसी काल की सैनिक समितियों से निकली हैं। मिङ्राजपक्षी विद्वानों ने राष्ट्रीयता की भावना निम्न वर्ग के लोगों द्वारा फैलाई लेकिन निम्न वर्ग के लोग नासमझ थे और नहीं जानते थे कि इस भावना से कैसे लाभ उठाया

---

१. ये क्वाङ्‌तुङ् प्रान्त के हुआ जिले के रहने वाले थे। इनके नायकत्व में ईसाई धर्म के झंडे के नीचे थाइ पिङ् विद्रोह मांचू सम्राट् के विरुद्ध प्रारम्भ हुआ। यह विद्रोह सन् १८२४ ई० में प्रारम्भ हुआ। कुछ ही वर्षों में पंद्रह प्रान्तों ने इनका आधिपत्य स्वीकार कर लिया। इन्होंने १८५३ ई० में नान्किङ् दखल कर उसे अपनी राजधानी बनाई और थाई पिङ् थिएन्को (महान् शांति का स्वर्गीय राज्य) नामक राजकुल की स्थापना की और स्वयं थिएन वाङ् (स्वर्गीय राजा) की उपाधि ली। इन्होंने लगभग नौ वर्षों तक आधे चीन पर शासन किया। इस काल में मांचू सम्राट की हालत दिन प्रति दिन खराब होती जाती थी और जगह-जगह विद्रोह हो रहे थे। पहिले मांचू सम्राट थाई पिङ्‌ विद्रोह दबाने में एकदम असमर्थ रहे। पर अन्त में एक अंगरेज जेनरल गोरडोन (Gordon) और चङ्‌ को-फान् नामक सेनापतियों के अधीन चीनी सेना मांचू सम्राट् की ओर से भेजी गई और विद्रोह शांत हुआ। इस सेना ने १८६४ ई० में नान्किङ्‌ पुनः दखल किया और उसी समय हुङ्‌ शिउ छुआन् ने आत्महत्या कर ली। सन् १८६६ ई० तक यह विद्रोह एकदम समाप्त हो गया।

जा सकता है। बल्कि इसके विपरीत वे दूसरों के हाथों के खिलौने हो गये। हुङ् शिउ-छुआन् के समय मिङ् राज्य को पुनः स्थापित करने की भावना का जब सेना में प्रचार हो रहा था तो हुङ्-मन् समिति इस स्थिति से फ़ायदा नहीं उठा सकी और वे वह (सेना) माँचू सरकार की नौकरी ही बजाती रही। निम्न घटना से मेरा कथन सिद्ध हो जाएगा।

इसी काल में जब चो चुङ्-थाङ् सिन्क्याङ् में विद्रोह दबाने के लिए फौज़ों का संचालन कर रहे थे तो ये हान्-क्वो से शिआङ् (हुनान् प्रान्त की नदी) और हुआइ (अङ्हवइ प्रान्त की नदी) तराइयों की बहुत बड़ी सेना के साथ याङ्त्जि नदी को पार कर सिआन् (षन् सी प्रान्त की राजधानी) की ओर चले। उस समय पर्ल नदी[10] की तराई की गुप्त समितियाँ सान्-हो-हुई (त्रिक संघ) और याङ्त्जि नदी की तराई की समितियाँ को-लाव्-हुइ (भातृ-गुरुजन-संघ) कहलाती थीं। को-लाव्-हुइ के नायक की उपाधि 'महान् अजगर सरदार' थी। कोई एक महान् अजगर सरदार याङ्त्जि की निचली तराई में गैरकानूनी काम कर बैठा और हान्क्वो (हु-पइ प्रान्त का एक नगर) भाग गया। माँचू संदेशवाहक इस समाचार को लेकर बहुत तेजी से चला लेकिन को-लाव्-हुइ समिति के घुड़सवार उससे भी अधिक तेजी से जा रहे थे। जब जेनरल चो चुङ्-थाङ् रास्ते में ही थे तो उन्होंने एकदिन देखा कि उनकी सेना अपनी इच्छा से कई मीलों की एक लम्बी कतार बना रही है; वे बहुत घबड़ा गये। थोड़े ही दिन पहले उन्हें क्याङ्सु और क्याङ्-सी प्रान्तों के वाइसरायों से यह खबर मिली थी कि कोई प्रसिद्ध लुटेरा हान्क्वो से सिआन् की ओर भाग रहा है और उन्हें इस भगोड़े को गिरफ़्तार करने की आज्ञा मिली थी। पर जेनरल चो के पास इस आज्ञा को तत्काल पालन करने का कोई रास्ता नहीं था इसलिए उन्होंने आज्ञा को सरकारी कागज मात्र समझ कर टाल दिया। तब उन्होंने फौज की लम्बी कतार में भयानक हलचल देखी और सभी सैनिकों को कहते सुना कि वे 'महान् अजगर सरदार' का स्वागत करने जा रहे हैं। इससे जेनरल चो और हैरान हो गये। जब उनको पता लगा कि 'महान् अजगर सरदार' और कोई नहीं बल्कि वही लुटेरा सरदार है जिसकी गिरफ़्तारी की आज्ञा वाइसरायों की ओर से उन्हें मिली है तो वे और भी उद्विग्न हो उठे और अपने सिक्रेटरी से पूछा—'यह को-लाव्-हुइ क्या है जिसके बारे में सुन रहा

---

१०. यह नदी क्वाङ्तुङ् प्रान्त में है। यह चीन की तीन बड़ी नदियों में से एक है। चीनी में इसका नाम चु क्याङ् है।

हूँ और 'महान् अजगर सरदार' और लुटेरे सरदार के बीच क्या सम्ब है ?' सिक्रेटरी ने उत्तर दिया—'हमारी सेना में साधारण सैनिक से लेकर ब अफ़सर तक हर आदमी को-लाव्-हुइ का सदस्य है और यह महान् अज सरदार जिसकी गिरफ़्तारी का हुक्म है उसी को-लाव्-हुइ का नायक है।' जेनरल चो ने पूछा—'तब कैसे हम अपनी सेना को संगठित रख सकते है ?' मंत्री ने कहा, 'सेना को अखण्ड रखने के लिए एक ही उपाय है कि आप स्वयं महान् अजगर बन जाइये। अगर आप नामंजूर करते हैं तो हमारे सिन्क्याङ् जाने की कोई आशा नहीं है।' जेनरल चो भी इससे अच्छा उपाय नहीं सोच सके और इसलिए उन्होंने एक खुला दरबार किया और 'महान् अजगर सरदार' बनकर सभी गुप्त समितियों को अपने अधीन कर लिया। इससे यह स्पष्ट पता लगता है कि जेनरल चो ने दुर्द्धर्ष मांचू शक्ति के बल से सिन्क्याङ् को नहीं शान्त किया बल्कि मिङ् राजपक्षपाती विद्वानों द्वारा प्रचारित भावनाओं के द्वारा। राष्ट्रीयता की भावना मांचू राजकुल के स्थापना-काल से ही सुरक्षित थी लेकिन जब चो चुङ्-थाङ् महान् अजगर सरदार बन कर क्रान्तिकारी समितियों की सभी आन्तरिक बातों को जान गया तो उसके फौजी नायकत्व को तहस-नहस कर दिया और संगठन को मिटा दिया। जिसके फलस्वरूप हाल की क्रान्ति के समय आन्दोलन चलाने के लिए कोई संगठित संस्था हमारे पास नहीं थी। हुङ्मन् संस्था मांचू द्वारा अपने स्वार्थ-साधन का जरिया बना ली गई थी और इस प्रकार बहुत अरसे से चीन की राष्ट्रीय भावना भी नष्ट हो गई।

आज मैं आप लोगों से हमारी राष्ट्रीय भावना नष्ट हो जाने के कुछ कारण बताना चाहता हूँ। कारण तो बहुत हैं पर सबसे बड़ा कारण हमारा विदेशी जातियों का गुलाम हो जाना है। जब एक जाति दूसरी पर विजय प्राप्त करती है तो स्वभावतः ही वह गुलाम आदमियों के बीच स्वतंत्र विचार पनपने नहीं देती। उदाहरण के लिए जापान को देखिए जिसके अधीन कोरिया है। वह कोरिया निवासियों का मन बदलने के प्रयत्न में है। कोरिया की पाठशाला की पाठ्य-पुस्तकों से सब प्रकार की राष्ट्रीय भावनायें एकदम से निकाल दी गई हैं। इसलिए अब से तीस वर्षों के अन्दर कोरिया के बच्चे यह भी नहीं जान पएँगे कि कोरिया नाम का देश है और वे कोरिया-निवासी हैं। किसी समय मंचूरिया का भी हमारे प्रति ऐसा ही मनसूबा था। विजेता विजित की इस अमूल्य सम्पत्ति को नष्ट करने की कोशिश करते हैं। इसी खयाल से मांचुओं ने बड़ा ही धूर्ततापूर्ण तरीका अख्तियार किया था।

खाङ्-शी ने कुछ किताबों पर प्रतिबन्ध लगा दिया लेकिन राष्ट्रीय भावना को कुचलने में छियेन्-लुङ् और भी अधिक धूर्त्त निकला। खाङ्-शी ने कहा कि उसका जन्म चीन का सम्राट् होने के लिए ही स्वर्ग से हुआ है। इसलिए लोगों को स्वर्ग का विरोध नहीं करना चाहिये। लेकिन छियेन-लुङ ने मांचू और चीनी जाति के बीच के सभी भेदों को मिटा दिया। जिसके फलस्वरूप उसके बाद अधिकांश बुद्धिजीवीवर्ग के अन्दर राष्ट्रीय जागरुकता रही ही नहीं। वह तो निम्न स्तर के लोगों को ही वसीयत में मिली थी। लेकिन यद्यपि वे जानते थे कि उन्हें तातार लोगों को मारना चाहिये पर क्यों, यह वे नहीं जानते थे। इस प्रकार मांचू लोगों की धूर्त्तबाजी के कारण सैकड़ों वर्षों से चीन की राष्ट्रीय भावना लुप्त हो गई है।

प्रथम तो चीन की राष्ट्रीयता विदेशी शासन द्वारा कुचल दी गई; लेकिन चीन के अलावे और भी तो गुलाम देश हैं। यहूदियों ने अपना देश खो दिया है। ईसा मसीह के जन्म के पहिले ही वे गुलाम हो चुके थे। जब ईसा मसीह अपना मत प्रचार कर रहे थे तो उनके अनुयायियों ने उन्हें क्रान्तिकारी के रूप में देखा और चाहा कि वे क्रान्तिकारी नेता बनें। वे 'यहूदियों के राजा' कहलाये। एक बार दो अनुयायियों के मां-बाप ने ईसामसीह से विनती की—'प्रभो! अगर आपकी इच्छापूर्ण हो तो हमारे बड़े बेटे को आप अपनी बाँई और और दूसरे बेटे को दाहिनी ओर जगह दीजियेगा।' यह चीन सम्राट के बाँयें ओर दाहिने बैठने वाले प्रधान मंत्रियों जैसा है। उपर्युक्त कथन से यह पता चलता है कि अनुयायियों ने ईसा मसीह को क्रान्तिकारी समझा था। यह सम्भव है कि ईसामसीह के धर्म में कुछ राजनीतिक क्रान्ति की भावनायें हों पर उनके शिष्यों में से एक ने यह सोच कर कि राजनीतिक क्रान्ति का काम असफल हो गया गुरू से विश्वासघात किया। वह यह नहीं समझ सका कि अपने देश को स्वर्गीय राज्य कहनेवाले ईसा मसीह धार्मिक क्रान्तिकारी थे। इसलिए यद्यपि उनका (यहूदियों का) राज नष्ट हो गया है परन्तु ईसा मसीह के समय से ही यहूदी जाति अब तक बनी ही हुई है। या भारतवर्ष को ही देखिये। यह भी तो एक गुलाम देश है परन्तु उसकी राष्ट्रीय भावना विदेशी शासकों द्वारा चीन के समान जल्दी से नहीं समाप्त की जा सकी है। या पोलेण्ड को—जो एक सौ वर्षों तक गुलाम था पर उसकी राष्ट्रीय जागृति अमिट है। इसलिए यूरोपीय युद्ध के बाद पोल लोगों ने अपने राज की पुनः स्थापना की और इस समय वह यूरोप के दूसरे या तीसरे दर्जे की शक्तियों के अन्दर गिना जाता है।

इस प्रकार तुलना करने पर चीन जुडिया, हिन्दुस्तान और पोलैण्ड की तरह ही पराधीन दिखाई पड़ता है। पर इन राष्ट्रों ने अपनी राष्ट्रीयता क्यों नहीं खोई है जब कि चीन का राष्ट्रीय अभिमान दो युगों की पराधीनता में ही समाप्त हो गया है ? यह बहुत विचित्र बात है और इसके कारणों का अध्ययन बड़ा ही मनोरंजक है। पराधीन होने के पहले चीन की जनता बड़ी सुसंस्कृत थी और चीन एक शक्तिशाली राज था। हम अपने देश को 'भव्य राष्ट्र', 'पाण्डित्य और उच्च विचारों का स्थान' के नाम से पुकारते थे और दूसरे देशों को असभ्य समझते थे। हमारी धारणा थी कि हमारा राष्ट्र संसार के मध्य में स्थित है और इसलिए हमने इसका नाम 'मध्य देश' रखा था। पराधीन होने से पहिले निम्न कथन चीन के लिए प्रसिद्ध थे :—'महान संयोजक', 'आकाश में एक ही सूर्य है और पृथ्वी पर एक ही सम्राट् हैं', 'सभी राष्ट्र के भद्र पुरुष रत्न जड़ित राजमुकुट के सामने सिर झुकाते हैं।' उस समय चीन की राष्ट्रीयता धीरे-धीरे विश्व-नागरिकता के रूप में परिणत हो रही थी और आने वाली पीढ़ी दूसरी जाति को दबाने के लिए साम्राज्यवाद का तरीका अख्तियार कर रही थी। हान् राजकुल के चाङ्-पो-वाङ्[११] और पान् तिङ् युआन्[१२] ने तीस राज उसी तरह से नष्ट कर दिए थे जिस प्रकार ईस्ट इंडिया कम्पनी के मैनेजर क्लाइव ने कोठियों भारतीय राजों को अपने अधिकार में कर लिया था। हजारों वर्षों तक चीन विश्व-विजयी बनने की चेष्टा में था और एशिया के सभी छोटे-छोटे राजों को अपने अधीन कर लिया था। लेकिन यूरोपीय लोगों की तरह चीन की विजय-प्रणाली उतनी निर्दय नहीं थी। चीन ने दूसरों को प्रभावित करने के लिए शान्ति का रास्ता अपनाया था जो 'राज धर्म' कहाता था, जिसमें अपने शासन के अन्दर कमजोर और छोटे राजों को लाना था। अगर हम इस दृष्टि से विचार करें तो हम देखेंगे कि चीन ने अपनी राष्ट्रीय भावना क्यों खो दी और क्यों तीन सौ वर्षों की गुलामी में ही उसका राष्ट्रीय अभिमान लुप्त हो गया जब कि दूसरी जातियाँ जैसे यहूदी दो हज़ार वर्षों से अपनी राष्ट्रीय भावना बनाए हुए है।

---

११. इनका असली नाम चाङ् छिएन् था। ये हान् राजवंश के जेनरल थे। इन्होंने ही तुर्किस्तान को दखल किया था। चीन वालों को भारत के संबंध में बतलाने वाले ये सर्व प्रथम व्यक्ति थे।

१२. इनका असली नाम पान् चाव् था। ये हान् राजवंश के जेनरल थे। तुर्किस्तान दखल करने में इनका भी बहुत बड़ा हाथ था। ये चाङ् छिएन् से लगभग २०० वर्ष बाद हुए थे।

कारण का अध्ययन करना बीमार आदमी की जाँच करने के समान है। आदमी को कोई भी बीमारी क्यों न हुई हो उसका अस्वस्थ शारीरिक संगठन या बीमार होने के पहले के किसी प्रकार की कमजोरी या खराबी में रहता है। सार्वभौमिकता (Sovereignty) खोने के पहिले ही चीन के शरीर में रोग के कीटाणु मौजूद थे इसलिए जैसे ही दूसरों का उस पर अधिकार हुआ उसका राष्ट्रीय साहस नष्ट हो गया। अस्पष्ट कारण तो यह है कि चीन ग्रेट ब्रिटेन और क्रान्ति के पहिले के रूस जैसे संसार के शक्तिशाली राजों के समान ही हज़ारों वर्षों तक साम्राज्यवादी राष्ट्र रहा है। चीन का प्राचीन साम्राज्यवाद सम्भवतः ग्रेट ब्रिटेन के उन्नतिशील आधुनिक साम्राज्यवाद से भी बढ़ चढ़ कर था।

इंगलैण्ड और रूस में बुद्धिजीवियों द्वारा एक नये सिद्धान्त 'विश्व बन्धुत्व' का प्रचार हो रहा है जो राष्ट्रीयता का विरोध इसलिए करता है कि यह सिद्धान्त संकीर्ण और अनुदार है। इन दिनों इंगलैण्ड और पहले से रूस तथा जर्मनी एवं हमारे यहाँ के नव संस्कृति के प्रचारक आधुनिक युवक इस नये सिद्धान्त का प्रचार करते हैं और राष्ट्रीयता की निंदा करते हैं। मैंने नवयुवकों को बार-बार कहते सुना है कि सान् मिन् (जनता के तीन सिद्धान्त) सिद्धान्त आधुनिक समय में लागू नहीं होता है। सब से आधुनिक और अच्छा 'विश्वबन्धुत्व' का सिद्धान्त है। क्या सचमुच में बात ऐसी ही है? तब ज्यों ही चीन पराधीन हुआ क्यों उसने अपनी सारी राष्ट्रीय भावनायें खो दीं? विश्व बन्धुत्व वैसा ही है जैसा कि दो हज़ार वर्ष पहिले चीन के विश्व साम्राज्यवाद का सिद्धान्त था। जब हम इस सिद्धान्त की छानबीन करते हैं तो हम उसे अच्छा पाते हैं या नहीं? सिद्धान्त की दृष्टि इसे हम एक अच्छा सिद्धान्त कह सकते हैं। चीन के बुद्धिजीवी वर्ग इस पर विश्वास भी करते थे फिर भी मांचू चीन की सीमा पार कर गये और सारा राष्ट्र गुलाम हो गया। खाङ्-शी विश्व बन्धुत्व की बात करता था और कहता था कि षुन पूर्वी बर्बर थे और वन् वाङ् पश्चिमी बर्बर और जब पूर्वी तथा पच्छिमी बर्बर चीन के सम्राट् हो सकते हैं तब बर्बर और हुआ शिया (चीन का प्राचीन नाम) में कोई अन्तर नहीं है। किसी सिद्धान्त को बिना व्यवहार में लाए उसकी अच्छाई बुराई का पता नहीं चल सकता। कोई सिद्धान्त अगर हमारे लिए और संसार के लिए व्यावहारिक है तो अच्छा है; अगर अव्यावहारिक है तो अच्छा नहीं है।

वे राष्ट्र जो दूसरों पर विजय पाने के लिए साम्राज्यवादी रास्ता अपनाए हुए हैं और जो समस्त संसार के ऊपर अपना एकाधिपत्य बनाए रखना

चाहते हैं वे ही विश्वबन्धुत्व का प्रचार करते हैं और चाहते हैं कि संसार उनका साथ दे। चीन भी किसी समय संसार पर एकाधिपत्य जमाना चाहता था और सब राष्ट्रों से ऊपर रहने की इच्छा रखता था; इसलिए उसने भी विश्व बन्धुत्व स्वीकार किया था। चूँकि साधारण जनता इस विचार से प्रभावित हो गई थी इसलिए बिना विरोध के मांचू लोग महान् दीवार को पार कर आए और चीन का पतन हो गया। मांचू लोग बहुत थोड़ी संख्या—एक लाख से अधिक नहीं—में आए थे। ये थोड़े से लोग कैसे करोड़ों आदमियों को जीत सके? क्योंकि उस समय की अधिकांश चीनी जनता राष्ट्रीयता की अपेक्षा विश्व बन्धुत्व में विश्वास करती थी और किसी को भी चीन का सम्राट् बनाने में हर्ज नहीं समझती थी। इसलिए यद्यपि श खो-फ़ा[१३] ने मांचुओं का विरोध भी किया परन्तु सफलता पूर्वक विरोध करने के लिए उसके अनुयायियों की संख्या बहुत कम थी जब कि अधिकांश चीनी लोगों ने मांचुओं का स्वागत किया और सुरक्षित रूप से उन्हें गद्दी पर बैठने का अवसर दिया। इतना ही नहीं कि उन्होंने मांचुओं का स्वागत किया बल्कि बहुत से मांचू होकर मांचू सेना के तथाकथित चीनी विभाग में उनके झंडे के नीचे आ गए।

आज संसार में सबसे शक्तिशाली राष्ट्र ग्रेट ब्रिटेन और संयुक्तराष्ट्र अमेरिका हैं। और भी कितने बड़े-बड़े राष्ट्र हैं जो 'महान् शक्तिशाली' कहाते हैं और जिनकी नीति और स्वभाव में कोई उल्लेखनीय परिवर्त्तन नहीं हुआ है। लेकिन भविष्य में इंगलैण्ड और संयुक्तराष्ट्र अमेरिका इन शक्तिशाली राष्ट्रों के समूह को छिन्न-भिन्न कर सकते हैं और केवल अपने में ही महान् शक्तिशाली राष्ट्र होकर रह सकते हैं। मान लीजिए कि यही हो जाय और तब अगर इंगलैण्ड चीन को अधीन कर ले और हम अँगरेज हो जाँय तो क्या यह हमारे लिये अच्छा होगा? अगर चीनी जनता स्वाभाविक तौर से अँगरेज या अमरीकी हो जाती है और इंगलैण्ड या अमेरिका को चीन को ध्वंस करने में यह कहकर मदद देती है कि हम विश्व बन्धुत्व का अनुसरण कर रहे हैं तो मैं आप सबों से पूछता हूँ कि क्या उस समय आप सबों का अन्तःकरण शांति का अनुभव करेगा? अगर हमारे हृदय को चोट पहुँचती है तो इसका कारण यह है कि हममें कुछ राष्ट्रीय भावनायें वर्त्तमान हैं। इसलिये मैं कहता हूँ कि राष्ट्रीयता वह अमूल्य सम्पत्ति है जिसके द्वारा

---

१३ मिङ् राजकुल के अन्तिम सम्राट् का प्रधान मंत्री

मनुष्यता अपना अस्तित्व कायम रखती है। जिस प्रकार विद्वान् लोग कलम को अपनी जीविका के साधन के रूप में व्यवहार करते हैं उसी प्रकार मानव-परिवार अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिये राष्ट्रीयता का व्यवहार करता है। अगर राष्ट्रीयता का पतन होता है और विश्व बन्धुत्व की प्रगति होती है तो हम अपना अस्तित्व बनाये रखने में असमर्थ हो जाएँगे और दूसरी जातियों द्वारा प्राकृतिक नियमानुसार नष्ट कर दिये जाएँगे। प्राचीन चीनी कहावत है 'तीन मिश्रान् कबीलों (चीन के आदिनिवासी) को तीन वइ[१४] में निर्वासित कर दो और उन्हें यून्नान्[१५] और क्वइचउ[१६] की सीमा के पार भगा दो'; इसलिये उन्हें (मिश्राव् कबीलों को) अब अपना अस्तित्व कायम बनाये रखने की कोई आशा नहीं है। ये तीन मिश्राव् ही चीन के आदिनिवासी थे। किसी दिन हम चीनियों की भी यही दशा हो सकती है।

चीनी नस्ल की उत्पत्ति के बारे में कुछ लोग कहते हैं कि हमारे 'सौ परिवार' पश्चिम से छुङ्-लिङ् (पामीर) पारकर थियेन्-पान् (यह पहाड़ है जो मिन्क्याङ् प्रान्त में है) तक और फिर सिन्क्याङ को पारकर पीली नदी की तराई में पहुँचे। जहाँ तक चीनी संस्कृति के उत्पत्ति-स्थान का संबंध है, यह कथन युक्तिसंगत जान पड़ता है। क्योंकि अगर चीनी संस्कृति बाहर से न आकर इसी देश में विकसित हुई होती तो सभी प्राकृतिक सिद्धान्तों के अनुसार पर्ल नदी की तराई ही चीनी संस्कृति का जन्म-स्थान होती; पीली नदी की तराई नहीं। पर्ल नदी की तराई[१७] की जलवायु समशीतोष्ण है, उपज काफी होती है और बसने-रहने के सभी सुगम साधन मौजूद हैं। इसलिये इसी जगह से सभ्यता का विकास हो सकता था। लेकिन अगर हम इतिहास का अध्ययन करें तो पता चलता है कि भाव्[१८],

---

१४. ये तीन पहाड़ है। पर अभी निश्चय नहीं हो सका है कि कौन कौन पहाड़ वइ हैं।

१५ और १६. चीन में दो दक्षिणी प्रान्त

१७. देखिये इसी अध्याय का नोट नं० १०

१८. थाङ् भाव् इनका पूरा नाम है। ये चीन के प्राग्ऐतिहासिक सम्राट थे और इनका समय ई० पू० २३५७—२२५५ माना जाता है। इन्होंने धर्म-पूर्वक राजकर स्वेच्छा से राजगद्दी योग्य आदमी के लिये छोड़ दी। इनके बाद लोगों ने यू सुन् को सम्राट बनाया। ये आदर्श राजा माने जाते हैं और इनका राजत्वकाल स्वेच्छा से राजगद्दी छोड़ने का काल कहा जाता है।

षुन्[१९], यू[२०], थाङ्[२१], वन्[२२] और वु[२३] पर्ल नदी की तराई में नहीं बल्कि उत्तरी पश्चिमी चीन में पैदा हुए थे। हान् राजकुल (ई० पू० २०६—सन् २२१ ई०) के समय तक पर्ल नदी की तराई एक असभ्य प्रान्त थी इसलिये चीनी सभ्यता जरूर ही उत्तर-पश्चिम चीन में विकसित हुई होगी या बाहर से आई होगी। चीनी लोग अपने 'सौ कुल नामों' के संबंध में बोला करते हैं। विदेशी पंडित कहा करते हैं कि प्राचीन काल में 'सौ कुल नाम धारी' जाति सुदूर पश्चिम में रहती थी जो बाद में चीन चली गई और जिन्होंने या तोत्रिाव् नस्ल को खतम कर दिया या उसी में घुल मिल गई और उसी से वर्त्तमान चीनी जाति बनी।

---

१९ देखिए इसी अध्याय का नोट नं० ७। थाङ् याङ् और यू षुन् का राजत्वकाल (ई० पू० २३५७—२२०६) तक स्वेच्छा से राज्य त्यागने का दो युग कहा जाता है।

२०. यू महान् कहे जाते हैं। यू षुन् ने जब स्वेच्छा से गद्दी त्याग दी तो लोगों ने इन्हें ही सम्राट चुना। ये थाङ् याङ् और यू षुन् के समय प्रधान मंत्री थे इन्होंने चीन को बाढ़ से बचाने के लिये नौ बड़ी २ नदियों का मुँह कटवा कर और पाट चौड़ा तथा गहरा करवा कर धारा के बहाव को समुद्र तक निकाल दिया ताकि सब पानी समुद्र में चला जाय। यू का यह काम संसार के इंजिनियरिंग कार्य का अद्भुत नमूना है। इन्होंने आठ वर्ष राज्य किया (ई० पू० २२०५—२१९७)। थाङ् याङ् और यू षुन् की तरह ये भी स्वेच्छा से गद्दी त्याग करना चाहते थे और अपने मंत्री को सम्राट बनाना चाहते थे। पर लोगों ने इनके लड़के छी को सम्राट चुना। चीन में इसी समय से गद्दी पर पैत्रिक अधिकार की परिपाटी चली। यू का राजवंश इतिहास में श्या राजवंश कहलाया और इस प्रकार यू श्या वंश का प्रथम सम्राट हुआ।

२१. षाङ् राजवंश जिसे यिन राजवंश भी कहते हैं (ई० पू० १७६६— ११२२) का प्रथम सम्राट। इनका समय ई० पू० १७६६—१७५३ तक है। यह चीन का ऐतिहासिक राजवंश है।

२२. देखिए इसी अध्याय का नोट नं० ८

२३. इनका पूरा नाम कुवाङ् था। ये चउ राजवंश के प्रतिष्ठाता हैं। इनका राजत्वकाल ई० पू० ११२२—१११५ है। चऊ राजवंश का समय ई० पू० ११२२—२५८ है।

विकासवाद के प्राकृतिक नियमानुसार सामर्थ्यवान बना रहता है और कमजोर समाप्त हो जाता है; बली विजयी होता है और निर्बल हारता है। हमारी जाति बली है या निर्बल, बलवान है या कमजोर? हममें से कोई अपनी नस्ल का समाप्त हो जाना या पतन हो जाना नहीं देखना चाहता है। हममें से हर आदमी चाहता है कि हमारी नस्ल बची रहे और विजयी बने। ये सब प्राकृतिक और स्वभाव प्रेरित प्रवृत्तियाँ हैं। लेकिन हमारा देश आज बहुत भयंकर स्थिति में है। ऐसा जान पड़ता है कि हमारी नस्ल इन तीन ध्वंसात्मक-शक्तियों के कारण निश्चय ही समाप्त हो जाएगी—दूसरी नस्लों की जनसंख्या वृद्धि, विदेशियों का राजनैतिक प्रभुत्व और आर्थिक नियंत्रण। राजनीतिक और आर्थिक नियंत्रण तो अभी ही हमें ठेल कर कोने में पहुँचा रहा है। लेकिन चूँकि हमारी जनसंख्या बहुत बड़ी है इसलिये संसार में बढ़ती हुई जनसंख्या का दबाव हम अभी नहीं महसूस कर रहे हैं। लेकिन एक सौ वर्षों के बाद हमको इसका भी अनुभव होगा। चूँकि हमने अपनी राष्ट्रीय भावनायें खो दी हैं इसलिये हमने राजनीतिक और आर्थिक शक्तियों को अपने देश में घुसने देने के लिये अपना दरवाजा खोल दिया है। यह काम हम कभी नहीं करते अगर हमारे पास राष्ट्रीय भावनायें बची रहतीं।

इस समय यह बताना कठिन है कि हमने अपनी राष्ट्रीयता कैसे खो दी। उदाहरण के लिये मैं एक कहानी कहूँगा जो विषयान्तर और हमारे सिद्धान्त से कोई सम्बन्ध नहीं रखती हुई जान पड़ेगी लेकिन जिस कारण को हम जानना चाहते हैं वह शायद इससे स्पष्ट हो जाएगा। यह वह घटना है जिसे मैंने स्वयं हाङ्काङ् में देखी है। एक कुली था जो स्टीमर जेटी पर प्रतिदिन यात्रियों के असबाब को अपनी बहंगी पर ढोकर मजदूरी कमाता था। हर दिन की कमाई ही उसकी जीविका का साधन थी। लेकिन अन्त में वह किसी तरह दस डालर बचा सका। लुजोन (सींगापुर का चीनी नाम) लाटरी का उस समय बोलबाला था और इस कुली ने भी इस लाटरी के एक टिकट को अपने संचय किये हुये पैसे से खरीद लिया। उसे न तो अपना घर था न कोई ऐसी जगह जहाँ वह अपना सामान या खरीदी हुई लाटरी-टिकट रखता। उसके काम-धन्धे का तो औजार वही बहंगी थी जिसे वह अपने साथ ही जहाँ जाता लिये रहता था। इसलिये उसने लाटरी टिकट को बहंगी के भीतर छिपा दिया दिया और चूँकि वह बराबर बहंगी से टिकट निकाल कर नहीं देख सकता था सो उसने लाटरी के नंबर को अच्छी तरह याद कर लिया। वह बराबर उसी के सम्बन्ध में सोचा करता था। जब कि लाटरी खुलने का दिन आया तो

वह लाटरी दुकान पर अपना नम्बर मिलाने गया। जैसे ही उसने नम्बर की सूची देखी तो उसे मालूम हुआ कि उसीने एक लाख डालर का प्रथम इनाम पाया है। वह तो खुशी के मारे एकदम पागल हो गया। यह सोचकर कि अब वह सदा के लिये अमीर हो जाएगा और उसे बहंगी नहीं ढोनी पड़ेगी उसने आनन्दपूर्वक अपनी बहंगी को समुद्र में फेंक दिया।

कुली की बहंगी राष्ट्रीयता—जीने का साधन—का द्योतक है; प्रथम इनाम का मिलना उस समय का द्योतक है जब कि चीन का फूलता-फलता साम्राज्यवाद विश्व-बन्धुत्व की ओर विकसित हो रहा था और जब कि हमारे पूर्वज इस बात में विश्वास करते थे कि चीन संसार का सबसे बड़ा राज है तथा 'आकाश में एक ही सूर्य हैं और पृथ्वी पर एक ही सम्राट हैं' और 'सभी राष्ट्रों के भद्र पुरुष रत्न-जड़ित राज के सामने सिर झुकाते हैं' तथा अब से विश्व-शान्ति कायम होगी और एक ही आवश्यक चीज़ जो बाकी है वह संसार की शांति है जिसमें सारी दुनिया चीन को कर देगी—ऐसा सोचते हुए उन्होंने राष्ट्रीयता को उसी प्रकार फेंक दिया था जिस प्रकार कुली ने अपनी बहंगी समुद्र में फेंक दी। जब चीन मांचू लोगों के अधिकार में चला गया तब उसका संसार का मालिक होना तो दूर रहा वह अपनी पारिवारिक सम्पत्ति की अखण्डता भी नहीं बचा सका। जिस प्रकार बहंगी समुद्र में फेंक दी गई उसी प्रकार जनता की राष्ट्रीय भावना भी मिटा दी गई।

जब मांचू सैनिकों ने महान् दीवार के भीतर प्रवेश किया तो वु सान्-क्वइ[२४] ही उनका पथ-प्रदर्शक था और जब श खो-फा[२५]ने मिङ् राज्य

---

२४. यह मिङ् राजवंश के अन्तिम सम्राट का एक योग्य सेनापति था। यह एक सेना लेकर षान् हाइ कान् (यहाँ चीन की महान् दीवार समुद्र से मिलती है) में रहता था ताकि मांचू दीवार पार कर दक्षिण नहीं आ सके। यह मांचुओं को दीवार पार होने से बराबर रोके रहा। जब लि छुआङ (लि चु छङ्) नामक एक व्यक्ति ने राजधानी पेकिङ् पर दखल कर लिया और मिङ् राजवंश के अन्तिम सम्राट ने आत्महत्या कर ली तब लि छुआङ् सम्राट बन बैठा पर वु सान् कइ ने उसे सम्राट नहीं माना। इसका एक व्यक्तिगत कारण है। सम्राट बन लि छुआङ् ने सुन्दरी गायिका को अपने हरम में ले लिया। यह गायिका वु सान् कइ की रखेली थी! इसके मांगने पर लि छुआङ् ने गायिका को लौटा कर देने से इंकार किया। इस पार वु सान् कइ ने उसे सम्राट मानने से इंकार किया और अपने को मिङ् राजवंश समाप्त करने वाले से बदला लेने वाला घोषित किया। इसने लि छुआङ् को गद्दी से हटाने

को पुनः जानकिङ् में स्थापित करने के राष्ट्रीय काम के लिए चीनी राजकुमार

के लिए मांचू सेना को निमंत्रित किया और षान् हाइ कान् का दरवाजा खोल उन्हें चीन में प्रवेश करने दिया। मांचू और वुसान् क्‍इ की सम्मलित सेना ने लि छुआङ् को हरा कर उसे पेकिङ् छोड़ने को वाध्य कर दिया। लि छुआङ् पश्चिमी प्रदेशों में भाग गया और वु सान् कइ ने तब तक उसका तथा उसके दल का पीछा किया जब तक उन सबों को एकदम समाप्त नहीं कर दिया। इधर जब वु सान् कइ लि छुआङ् को नाश करने में लगा था, उधर मांचू सेना ने पेकिङ् में अपने सम्राट को चीन की गद्दी पर बैठा सम्राट घोषित कर दिया। वु सान् कइ तथा अन्य जनरलों ने जो मांचू से मिल गये थे याङ् टिज नदी के दक्षिण के उन सबों को परास्त किया जो मिङ् राज को पुनः स्थापित करना चाहते थे। यह दक्षिण प्रान्त तीन भागों में बांटे गए। दक्षिण पश्चिमी भाग पर वु सान् कइ नाममात्र का मांचू सम्राट के आधीन होकर शासन करने लगा। चीन के प्रथम मांचू सम्राट के मरने पर उसका लड़का गद्दी पर बैठा। पर वह छोटा था इसलिए रिजेन्ट शासन करते थे। उस समय भी वु सान् क्वइ दक्षिण पश्चिमी भाग पर कुमिङ् को अपनी राजधानी बना शासन कर रहा था। अब वह मांचू राज्य को उखाड़ फेंकना चाहता था। इसलिए उसने दक्षिण के आगे समुद्र के किनारे के राजाओं के साथ मिलकर यह काम करना चाहा और मंगोल कबीलों को भी पश्चिम उत्तर से चढ़ाई करने को उभाड़ा पर इन सब कामों में देरी हो गई और तब तक बालक सम्राट कुछ होशियार हो गया और उसने रिजेन्ट को हटाकर स्वयं शासन प्रारम्भ किया था। यह था सम्राट खाङ् शी। सन् १६७३ में दक्षिण में विद्रोह हुआ पर समुद्र किनारे के राजागण सम्राट खाङ् शी से मिल गए। फिर भी वु सान क्वइ लड़ता रहा और सफलतापूर्वक मांचुओं का मुकाबला करता रहा। पर वह बूढ़ा हो गया था तथा काफी थक भी गया था। इसलिए पाँच वर्ष मुकाबला करने के बाद वह मर गया। उसने कभी मांचू लोगो के हाथ शिकस्त नहीं खाई और मरने के काल तक भी दक्षिणी पश्चिमी भाग पर उसका पूरा अधिकार था। इसके मरने के बाद खाङ् शी ने दक्षिण पर भी अधिकार जमाया और कुमिङ् लेकर (सन् १६८२ में) वहाँ स्थित वुसान क्वइ के परिवार को भी समाप्त कर दिया। इस प्रकार चीन में प्रवेश करने के ४० वर्ष के बाद पूरा दक्षिण और इस प्रकार सम्पूर्ण चीन मांचू सम्राट के अधिकार में गया।

२४. देखिये इसी अध्याय का नोट नं० १३

फु-वाङ् की गद्दी पर बैठाने का प्रस्ताव किया तो मांचू अर-खुन्[२६] ने उससे कहा—'हमने अपनी इन नदियों और पर्वतों को महान् मिङ् राजकुल से नहीं बल्कि विद्रोही लि छुआङ्[२७] से लिया है।' इसका यह अर्थ है कि मिङ् सम्राटों ने अपनी नदियों और पर्वतों को स्वयं छोड़ दिया था जिस प्रकार कि उस कुली ने अपनी बहंगी स्वयं फेंक दी थी। उन युवक विद्यार्थियों के, जो नई संस्कृति के बारे में बड़बड़ाते हैं और यह कह कर कि राष्ट्रीयता समयानुकूल नहीं है विश्वबन्धुत्ववाद को स्वीकार करते हैं, कहने में कुछ तथ्य हो सकता है अगर वे लोग इंगलैण्ड और अमेरिका या अपने पूर्वजों के संबन्ध में कहें। लेकिन अगर वे आज के चीन के बारे में भी उपरोक्त बात ही कहें तो हमारे बीच उनका कोई स्थान नहीं है। जर्मनी भी अपनी हार के पहिले राष्ट्रीयता के संबन्ध में नहीं बल्कि विश्वराज—विश्वबन्धुत्ववाद—के

---

२६. जिस समय मांचू सेना ने चीन को दखल किया उस समय मांचू सम्राट श चु बालक था। अर खुन् सम्राट का रिजेन्ट था और वही शासन करता था। मांचू भाषा में इसका नाम दुरगान था।

२७. मिङ् राजवंश के अन्तिम दिनों में देश की हालत बड़ी बिगड़ गई। सम्राटगण कमजोर थे और इससे फायदा उठाकर प्रान्तों के शासक मनमानी करते प्रजा को लूटते थे। देश पर मांचुओं का भी हमला होता था। इस प्रकार देश में दुर्भिक्ष फैल गया था। इसी समय लि छुआङ् (लि चु छेङ) नामक एक लुटेरे जेनरल ने, जो षन् सी प्रान्त का रहने वाला था, पश्चिमी प्रान्तों से विद्रोह का झंडा उठाया। यह यद्यपि साक्षर नहीं था पर योग्य जेनरल था। प्रजा असंतुष्ट भी है इसलिए सबों ने लि छुआङ् का साथ दिया। इसने सन् १६४० ई० में होनान् ले लिया और षन् सी तथा षान् सी को दखल करता हुआ उत्तर-पश्चिम से मिङ् राजवंश की राजधानी पइ-चिङ् (पेकिङ्) पर टूट पड़ा। सन् १६४४ ई० में यह राजधानी की दीवार तक पहुँच गया। नगर रक्षा का भार नपुंसक लोगों पर था जिन्होंने धोखा दे दिया। मिङ् राजवंश के अन्तिम सम्राट छुङ् चेङ् ने अपने राजमहल में ही आत्म-हत्या कर ली और गद्दी पर लि छुआङ् का अधिकार हो गया। इसने अपने को नये राजवंश—षुन—का सम्राट घोषित किया। पर मिङ् राजवंश के एक जेनरल वु सान कइ (देखिए नोट नं० २५ इसी अध्याय का) ने मांचू लोगों की मदद से इसे पेकिङ् से हटाया और तब पश्चिम की ओर खदेड़ कर ले गया। वु सान कइ ने लि छुआङ् तथा उसके दल का पूर्णरूप से नाश कर दिया।

बारे में ही बोलता था। मुझे तो लगता है कि आज जर्मनी ने विश्वबन्धुत्व-वाद का प्रचार बन्द कर दिया है और थोड़ी-थोड़ी राष्ट्रीयता की बातें करने लगा है। अगर हमारे पूर्वजों ने बहंगी न फेंकी होती तो वह पुरस्कार-विजेता होते। लेकिन हमने बहुत पहिले ही बहंगी फेंक दी और इस बात को भूल गये कि टिकट उसी के अन्दर छिपाया हुआ था। जैसे ही हमको विदेशी आर्थिक और राजनीतिक नियंत्रण का भार मालूम हुआ और प्राकृतिक नियमों की शक्तियों से संघर्ष करना पड़ा वैसे ही हमारे सामने पतनोन्मुख राष्ट्र और विलुप्त होती हुई जाति का चित्र स्पष्ट हो गया।

अगर हम चीन के आदमी भविष्य में अपनी राष्ट्रीयता को जागृत करने का कोई उपाय निकाल सकें, कोई दूसरी बहंगी खोज सकें तब तो कोई परवाह नहीं, चाहे जितनी भी विदेशी राजनीतिक और आर्थिक शक्तियाँ दबायें हम युगों तक अपना अस्तित्व बनाये रह सकेंगे। हम प्राकृतिक शक्तियों के ऊपर विजय प्राप्त कर सकते हैं। अब तक हम चलीस करोड़ चीनो लोगों की रक्षा दैव की कृपा से ही हुई और यह इस बात का द्योतक है कि दैव की इच्छा नहीं है कि हम नष्ट हों। अगर चीन बरबाद होता है तो कसूर हमारे सिर पड़ेगा और हम संसार के बड़े पापियों से होंगे। दैव ने हम चीनियों के ऊपर बड़ी जिम्मेवारी रख दी है। अगर हम अपने आपको प्यार नहीं करते हैं तो दैव के विद्रोही होते हैं। आज चीन में वह समय आ उपस्थित हुआ है जबकि हममें से हर के कंधे पर बड़ी जिम्मेवारी है। अगर दैव हमको नहीं नष्ट करना चाहता है तो वह निश्चय ही संसार की प्रगति को आगे बढ़ाना चाहता है। अगर चीन समाप्त होता है तो वह महान् शक्तिशाली राष्ट्रों द्वारा ही समाप्त किया जाएगा और इस प्रकार वे शक्तिशाली राष्ट्र संसार की प्रगति के मार्ग में रोड़े होंगे। कल एक रूसी ने मुझसे कहा—'क्यों सभी शक्तिशाली राष्ट्रों ने लेनिन पर आक्रमण किया था? क्योंकि उसने साहस के साथ कहा था कि संसार के लोग दो वर्गोंमें विभक्त हैं। एक वर्ग की जनसंख्या एक अरब पचीस करोड़ है और दूसरे वर्ग की केवल पचीस करोड़। यह एक अरब पचीस करोड़ वाला वर्ग केवल पचीस करोड़ वाले वर्ग द्वारा कुचला जा रहा है और कुचलने वाले प्रकृति के साथ एक होकर नहीं बल्कि उसके प्रतिकूल चल रहे हैं। जब हम इस शक्ति का विरोध करते हैं तभी हम प्रकृति के अनुकूल चल रहे हैं।' इसलिए अगर हम इस शक्ति का विरोध करना चाहते हैं तो हमें अपने चालीस करोड़ आदमियों को संगठित कर संसार के एक अरब पचीस करोड़ वाले वर्ग के साथ ज़रूर मिलना होगा। हम

राष्ट्रीयता को ज़रूर प्रोत्साहन दें तथा सबसे पहले अपनी एकता कायम करें तभी हम इसकी बात सोच सकते हैं और निर्बल तथा छोटे-छोटे राष्ट्रों को पचीस करोड़ वाले वर्ग के विरुद्ध की सम्मिलित लड़ाई में संगठित होने में मदद दे सकते हैं। साथ ही हम शक्ति के विरुद्ध की लड़ाई में न्याय का व्यवहार करेंगे और जब शक्ति का खातमा हो जाएगा और स्वार्थपूर्ण भावनायें लुप्त हो जाएँगी तब हम विश्वबन्धुत्ववाद के बारे में बात कर सकेंगे।

फरवरी १०, १९२४

चौथा व्याख्यान

इन दिनों संसार की जन-संख्या लगभग डेढ़ अरब है। इस संख्या का एक चौथाई चीन में रहता है जिसका अर्थ यह है कि संसार के हर चार मनुष्यों में एक चीनी है। यूरोप की श्वेतांग जातियों की कुल जन-संख्या चालीस करोड़ है। इन श्वेतांग लोगों में, जो आजकल सबसे उन्नतिशील हैं, चार जातियाँ हैं। मध्य और उत्तरी यूरोप में ट्युटेनिक जाति ने बहुत राजों की स्थापना की है जिनमें सबसे बड़ा जर्मनी है। और दूसरे राज हैं अस्ट्रिया, स्वेडन, नार्वे, हॉलेण्ड और डेनमार्क। पूर्वी यूरोप में स्लाव जाति ने भी कई राजों को कायम किया है जिनमें सबसे बड़ा रूस है और यूरोपीय महायुद्ध (सन् १९१४-१९१८ ई०) के बाद बने नये देश जेकोस्लोवाकिया और युगोस्लाविया हैं। पश्चिमी यूरोप में सेक्सनों या एंग्लो-सेक्सनों ने दो बड़े राज कायम किए हैं—इंगलैण्ड और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका। दक्षिणी यूरोप में लेटिन जाति ने कई राजों का निर्माण किया है जिनमें सबसे बड़े फ्रांस, इटली, स्पेन और पुर्तगाल हैं। यह जाति दक्षिण अमेरिका में भी जाकर बस गई है और इसने वहाँ भी कई राज कायम किए हैं जिस प्रकार एंग्लो-सेक्सन ने उत्तरी अमेरिका में कनेडा और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का निर्माण किया है। यूरोप के श्वेतांग लोग, जो केवल चालीस करोड़ हैं, चार बड़ी जातियों में विभक्त हैं तथा उन्होंने कई राज कायम किए हैं। चूँकि श्वेतांग लोगों में राष्ट्रीय भावना काफी विकसित थी इसलिए जब वे यूरोप महादेश में पूरा-पूरा भर गए तो पश्चिमी गोलार्द्ध के दक्षिणी और उत्तरी अमेरिका में तथा पूर्वी गोलार्द्ध के दक्षिणी और पूर्वी हिस्सों के अफ्रिका और अस्ट्रेलिया तक फैल गए।

वर्त्तमान समय में एंग्लो-सेक्सन जाति ने और दूसरों जातियों की अपेक्षा संसार का अधिक भू-भाग अपने अधिकार में किया है। यद्यपि यह जाति यूरोप में पैदा हुई लेकिन यूरोप महादेश में इसके कब्जे में केवल ब्रिटिश द्वीपपुंज—इंगलैण्ड, स्कॉटलैंड और आयरलैंड—ही है। इस द्वीपपुंज का अटलांटिक महासागर में वही स्थान है जो प्रशान्त महासागर में जापान का। एंग्लो-सेक्सन जाति ने अपनी सीमा पश्चिम की ओर उत्तरी अमेरिका तक, पूर्व की ओर अस्ट्रेलिया और न्युजीलैंड तक और दक्षिण की ओर अफ्रीका तक

बढ़ाई है। यहाँ तक कि उसके अधिकार में सबसे अधिक भू-भाग हैं और वह अन्य दूसरी जातियों की अपेक्षा अधिक धनी और शक्तिशाली है। यूरोपीय युद्ध के पहले ट्यु टेनिक और स्लाव जातियाँ सबसे अधिक शक्तिशाली थीं। इतना ही नहीं, ट्यु टेनिक जाति की चतुराई और योग्यता के कारण जर्मनी ने बीस से भी अधिक छोटे-छोटे राजों को मिलाकर 'महान् जर्मन संघटन' (Confederation) की स्थापना की थी। प्रारम्भ में यह खेती-बारी करने वाली जाति थी उसके बाद औद्योगिक जाति हो गई और औद्योगिक उन्नति के जरिए इसकी फ़ौज और नौसेना अत्यन्त ही शक्तिशाली हो गई।

यूरोपीय युद्ध के पहले सभी यूरोपीय जातियों का वातावरण साम्राज्यवादी भावना से विषाक्त हो गया था। अच्छा, तो यह साम्राज्यवाद क्या है? यह दूसरे देशों पर राजनीतिक शक्ति द्वारा आक्रमण करने की भीति है या चीनी कहावत में कहें तो व्यापक आक्रमण (Long-range aggression) है! चूँकि यूरोप की सब जातियाँ इस नीति से प्रभावित थीं इसलिए बार-बार युद्ध होता रहता था। हर दशाब्दी में एक न एक छोटी लड़ाई ज़रूर होती थी और एक शताब्दी के अन्दर एक महायुद्ध। सबसे बड़ा हाल का यूरोपीय युद्ध (सन् १६१४-१८) था जो विश्व-युद्ध भी कहा जा सकता है। क्योंकि अन्त में सम्पूर्ण संसार की हर जाति और राष्ट्र इसके भँवर में पड़ गया। यूरोपीय युद्ध के कारणों में सबसे पहला कारण सेक्सन और ट्यु टेनिक जातियों के बीच सामुद्रिक आधिपत्य की प्रतियोगिता थी। जर्मनी ने उच्च बनने की दौरान में अपने जहाजी बेड़ों को इतना बढ़ाया कि संसार में उसकी सामुद्रिक शक्ति दूसरे नंबर की हो गई। ग्रेट ब्रिटेन चाहता था कि समुद्र पर उसके ही जहाजी बेड़ों का आधिपत्य रहे। इसलिए उसने जर्मनी को नष्ट करने की कोशिश की जिसकी सामुद्रिक शक्ति उसके (ग्रेट ब्रिटेन) बाद ही थी। समुद्र में प्रथम स्थान पाने के इस झगड़े से ही महायुद्ध शुरू हुआ।

दूसरा कारण अधिक भू-भाग पर कब्जा करने के लिए हर देश का आपस में झगड़ा करना था। पूर्वी यूरोप में टर्की नामक एक निर्बल राष्ट्र है। गत सौ वर्षों से संसार के लोग उसे 'यूरोप का बीमार आदमी' कहते आए हैं। क्योंकि वहाँ की सरकार मूर्ख थी और सुलतान स्वेच्छाचारी था। उसकी हालत एकदम डाँवाडोल हो गई और यूरोपीय राष्ट्रों ने उसे आपस में बाँट लेना चाहा। चूँकि टर्की की समस्या एक शताब्दी तक नहीं सुलझी और यूरोप का हर देश उसे सुलझाना चाहता था इसलिए युद्ध प्रारम्भ हो गया।

इस प्रकार यूरोपीय युद्ध का पहला कारण श्वेतांग जातियों में आधिपत्य (Supremacy) के लिए झगड़ा करना था और दूसरा कारण संसार की नाज़ुक (Critical) समस्याओं के हल करने की चेष्टा था। अगर जर्मनी विजयी होता तो युद्ध के बाद समुद्र में उसकी ही शक्ति सर्वश्रेष्ठ रहती और ग्रेट ब्रिटेन अपना सब अधिकृत भू-भाग खो बैठता तथा रोम साम्राज्य की नाईं टुकड़े-टुकड़े हो जाता। लेकिन युद्ध का नतीजा यह हुआ कि जर्मनी हार गया और उसकी साम्राज्यवादी योजना भी समाप्त हो गई।

संसार के इतिहास में हाल का यूरोपीय युद्ध सबसे भयानक हुआ है। चार वर्षों तक चार से पाँच करोड़ तक आदमी हथियारबन्द थे और युद्ध समाप्ति के समय तक भी यह नहीं कहा जा सकता था कि कौन विजय प्राप्त करेगा और कौन पराजित होगा। एक तरफ़ वाले 'मित्र राष्ट्र'[1] कहलाते थे और दूसरी तरफ़ वाले 'केन्द्रीय राष्ट्र'।[2] पहले पहल केन्द्रीय राष्ट्रों में जर्मनी और अस्ट्रिया थे फिर बाद में टर्की और बलगेरिया भी मिल गए। मित्र राष्ट्रों में पहले सर्विया, फ्रांस, रूस, इंगलैण्ड और जापान थे बाद में इटली और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका भी सम्मलित हो गए। संयुक्तराष्ट्र अमेरिका का युद्ध में सम्मिलित होना केवल नस्लगत संबंध के कारण हुआ। युद्ध के प्रथम दो वर्षों में जर्मनी और अस्ट्रिया प्रबल रहे। पेरिस और इंगलिश चैनल जर्मनी और अस्ट्रिया की सेना द्वारा लगभग दखल हो चुका था। ट्यूटन लोगों ने सोचा कि ग्रेट ब्रिटेन निश्चय ही खतम हो गया और अंगरेज़ भी एकदम भयभीत हो गए थे। यह समझ कर कि अमेरिकावासी भी हमारी ही नस्ल के हैं अंगरेज़ों ने संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की जनता को अपनी ओर मिलाने के लिए नस्लगत संबंध का हवाला देकर उन्हें उभाड़ना शुरू किया। जब अमेरिका ने अनुभव किया कि इंगलैण्ड जहाँ के निवासी हमारी नस्ल के हैं, जर्मन द्वारा जो दूसरी नस्ल के हैं, नष्ट कर दिये जाने के खतरे में हैं तो यह ज़रूरी है कि 'जाति वाले जाति वाले का पक्ष लेते हैं,' इसलिए अमेरिका एंग्लो-सेक्सन जाति की अस्तित्व रक्षा के लिए युद्ध में इंगलैण्ड के साथ हो गया। साथ ही साथ इस बात से डर कर कि केवल उसकी अकेली शक्ति काफ़ी नहीं होगी अमेरिका ने जर्मनी को हटाने के लिए और भी तटस्थ राष्ट्रों को युद्ध में सम्मिलित होने के लिए प्रोत्साहित किया।

---

१ और २. देखिए प्रथम व्याख्यान का नोट नं ८

युद्ध के समय प्रेसिडेण्ट विलसन द्वारा प्रतिपादित जातियों के आत्म-निर्णय के सिद्धान्त का चारों ओर बड़ा ही स्वागत हुआ। चूँकि जर्मनी सैनिक शक्ति द्वारा मित्र राष्ट्रों को कुचलना चाहता था इसलिए विलसन ने जर्मनी की शक्ति को नष्ट करने और उसके बाद हर कमजोर और छोटी जाति को स्वतंत्रता देने की बात का एलान किया। विलसन के एलान का संसार में हर जगह स्वागत हुआ। यद्यपि इस पर भी (यानी इस एलान के सुनने पर भी) भारत की आम जनता ने अपने संहारक ग्रेटब्रिटेन का विरोध किया परन्तु बहुत से छोटे राष्ट्रों ने जब विलसन के एलान को सुना कि यह युद्ध निर्बल और छोटी जातियों को स्वतंत्रता देने के लिए है तो उन्होंने सहर्ष ग्रेटब्रिटेन की सहायता की। यद्यपि अन्नाम फ्रांस की दासता में था और आम जनता फ्रांसीसियों के अत्याचार को घृणा की दृष्टि से देखती थी फिर भी उसने लड़ाई में फ्रांस की मदद की क्योंकि उसने भी विलसन के न्यायपूर्ण एलान को सुना था। यूरोप के छोटे-छोटे राष्ट्रों का जैसे पोलैण्ड, जेकोस्लोवाकिया और रोमानिया आदि का मित्रराष्ट्रों की ओर से युद्ध में सम्मिलित होने का कारण यह था कि प्रेसिडेण्ट विलसन के आत्मनिर्णय के सिद्धान्त ने उनके दिल में भी घर कर लिया था। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की प्रेरणा से चीन भी युद्ध में सम्मिलित हो गया था। यद्यपि चीन ने कोई सेना नहीं भेजी थी परन्तु उसने खाई खोदने और युद्ध मोर्चे के पीछे काम करने के लिए लाखों मजदूरों को भेजा था। मित्रराष्ट्रों द्वारा पवित्र सिद्धान्त के प्रतिपादन के फलस्वरूप अन्त में यूरोप और एशिया के सभी पीड़ित राष्ट्र एक साथ मिलकर केन्द्रीय राष्ट्रों के विरुद्ध उनकी (मित्रराष्ट्रों की) मदद करने लगे। भविष्य में संसार की शांति बनाए रखने के लिए उसी समय विलसन ने चौदह शर्तों का भी एलान किया। जिनमें सबसे प्रधान यह थी कि हर जाति को आत्मनिर्णय करने का अधिकार होना चाहिए। जबकि हार-जीत अभी भी पलड़े में झूल रही थी तो इंगलैण्ड और फ्रांस ने इन शर्तों को सहर्ष स्वीकार किया। लेकिन जब इन लोगों की विजय हुई और शांति सम्मेलन[३] बैठा तो इंगलैण्ड, फ्रांस और इटली ने इस बात का अनुभव किया कि राष्ट्रों के आत्मनिर्णय वाला विलसन का सिद्धान्त साम्राज्यवादी स्वार्थ से एकदम मेल नहीं खाता है। इसलिए सम्मेलन में उन्होंने विलसन के सिद्धान्तों की अपनी मनोनुकूल व्याख्या करने के अनेकों उपाय किए। जिसका नतीजा यह हुआ कि सन्धि

३. वार्सलीज सम्मेलन सन् १९१९ ई० का

बहुत ही अन्यायपूर्ण शर्तों पर हुई और निर्बल तथा छोटे-छोटे राष्ट्रों को आत्मनिर्णय का अधिकार और स्वतंत्रता मिलती तो दूर रही बल्कि उन्होंने (निर्बल राष्ट्रों ने) पहिले से भी अधिक खराब हालत में अपने को पाया। यह इस बात का द्योतक है कि मजबूत राजों और शक्तिशाली जातियों ने पहले से ही संसार पर बलपूर्वक अधिकार जमा लिया है और दूसरे राजों और जातियों के अधिकार तथा सुविधाओं पर उनका एकाधिपत्य है। अपनी-अपनी स्थिति को सदा के लिए सुरक्षित रखने की आशा से और छोटी तथा निर्बल जातियों के पुनरुत्थान को रोकने के लिए उन्होंने विश्वबन्धुत्व का सुरीला राग अलापना शुरू किया है और वे यह कहते फिरते हैं कि राष्ट्रीयता की भावना बहुत संकीर्ण है। सच तो यह है कि उनके अन्तरराष्ट्रीयवाद के चोगे के अन्दर साम्राज्यवाद और आक्रमणवाद की छूरी छिपी हुई है। लेकिन विलसन के एलान से जो असर हुआ वह तो मिटाया नहीं जा सकता था। हर निर्बल और छोटे राष्ट्र को, जिसने केन्द्रीय राष्ट्रों को हटाने में मित्रराष्ट्रों की सहायता की थी और विजय के फलस्वरूप अपनी स्वतंत्रता पाने की आशा की थी, शांति सम्मेलन के फल से घोर निराशा हुई। नजीजा यह हुआ कि अन्नाम, जावा, भारतवर्ष, मलाया प्रायद्वीप, टर्की, फ़ारस, अफ़गानिस्तान, मिश्र और यूरोप के बीसों निर्बल राष्ट्रों में एक नई लहर फैल गई। उन्होंने देखा कि शक्तिशाली राष्ट्रों के आत्मनिर्णय की वकालत से किस प्रकार वे ठगे गए हैं और तब वे स्वतंत्र रूप से अलग-अलग 'जातियों के आत्मनिर्णय के सिद्धान्त' को कार्यान्वित करने में लग गए।

बहुत वर्षों की भयंकर लड़ाई भी साम्राज्यवाद को नाश करने में असमर्थ हुई। क्योंकि वह विभिन्न राजों के बीच होनेवाली साम्राज्यवादी लड़ाई थी। वह लड़ाई सभ्यता और बर्बरता के बीच तथा न्याय और शक्ति के बीच की नहीं थी। इसलिए लड़ाई का फल भी एक साम्राज्यवाद द्वारा दूसरे साम्राज्यवाद का नाश हुआ। इसलिए जो विजयी हुआ वह भी साम्राज्यवादी ही था। लेकिन युद्ध के फलस्वरूप समस्त मानव-समाज के अन्दर अज्ञात रूप से, जो एक आशा का उदय हुआ वह थी रूसी क्रान्ति[४]। रूस की क्रान्ति बहुत पहिले सन् १९०५ में ही शुरू हुई थी लेकिन उस समय उसे सफलता नहीं मिली। लेकिन इस यूरोपीय युद्ध के समय क्रान्तिकारियों को अपने प्रयत्नों में सफलता मिली। उस अवसर (यूरोपीय महायुद्ध के) पर क्रान्ति प्रारम्भ

---

४. सन् १९१७ ई० में

होने का कारण युद्ध के अनुभव से जनता में पैदा हुई महान् जागृति थी। रूस भी पहिले मित्रराष्ट्रों में से एक था। जबकि मित्रराष्ट्र वाले जर्मनी से लड़ रहे थे तो रूस ने लड़ाई में एक करोड़ से अधिक की सेना भेजी थी। यह कोई छोटी सेना नहीं थी। अगर रूस युद्ध में शामिल नहीं हुआ होता तो मित्रराष्ट्रों के पश्चिमी मोर्चे को बहुत पहिले ही जर्मनी छिन्न-भिन्न कर दिए हुए होता। चूंकि रूस पूर्वी मोर्चे पर जर्मनी को दबा रहा था इसलिए मित्र-राष्ट्र जर्मनी से दो या तीन वर्षों तक लोहा ले सके और अन्त में विजित से विजेता हो गए। युद्ध के मध्यकाल में रूस ने सोचा और अनुभव किया कि मित्र राष्ट्र वालों की जर्मनी के विरुद्ध लड़ने में मदद देने का अर्थ कई पाशविक शक्तियों को एक पाशविक शक्ति के विरुद्ध मदद देना है और इससे अन्त में कोई अच्छा फल नहीं निकल सकेगा। जनता और फौज के एक दल ने मित्रराष्ट्रों से अपना संबंध तोड़ लिया और जर्मनी के साथ अलग से सन्धि कर ली।

जहाँ तक इन दोनों के न्यायपूर्ण राष्ट्रीय स्वार्थ का संबंध था, जर्मनी और रूस की जनता को आपस में युद्ध करने का कोई भी कारण नहीं था। लेकिन जब साम्राज्यवादी उद्देश्य की प्रबलता हुई तो आपस में स्पर्धा शुरू हो गई और संघर्ष अनिवार्य हो गया। साथ-साथ जर्मनी अपनी सीमा से इतना आगे बढ़ गया कि रूस को आत्मरक्षा के लिए इंगलैण्ड, फ्रांस और दूसरे देशों के साथ चलना पड़ा। लेकिन जब रूसी जनता में जागृति हुई और उन्होंने देखा कि साम्राज्यवाद बड़ा ही खतरनाक है तो उन्होंने अपने देश में ही क्रान्ति का सूत्रपात किया। पहिले उन्होंने अपने देश के ही साम्राज्यवाद को मिटा दिया और साथ ही साथ विदेशी खतरे से बचने के लिए उन्होंने जर्मनी के साथ सन्धि कर ली। थोड़े दिनों के बाद ही, मित्रराष्ट्र वालों ने भी जर्मनी के साथ सन्धि की और तब सबों ने मिलकर रूस से लड़ने को अपनी-अपनी फौजें भेजीं। इसका क्या कारण था? चूँकि रूसी जनता इस बात का अच्छी तरह अनुभव कर चुकी थी कि उनके दुःख-दैन्य का कारण साम्राज्यवाद ही है और इस दुःख-दैन्य से छुटकारा पाने के लिए साम्राज्यवाद को मिटाना और आत्मनिर्णय के सिद्धान्त को अपनाना एकदम जरूरी है। दूसरे सभी राष्ट्रों ने रूस की इस नीति का विरोध किया और रूस के विरुद्ध लड़ने के लिए संगठित हुए। रूस की नीति और विलसन के एलान का उद्देश्य एक ही था—दोनों ने एलान किया कि निर्बल और छोटे राष्ट्रों को आत्मनिर्णय और स्वतंत्रता का अधिकार है। जब रूस ने अपनी नीति का

एलान किया तो निर्बल और छोटी जातियों ने सहर्ष इसका अनुमोदन किया और सब के सब 'आत्मनिर्णय का अधिकार' चाहने लगे। यूरोप में यह जो दुर्द्धर्ष संग्राम (सन् १६१४-१६१८ तक का) हुआ, इससे वास्तव में कोई बड़ा साम्राज्यवादी फायदा नहीं हुआ। लेकिन रूसी क्रान्ति से मनुष्य जाति के दिल में एक महान् आशा का उदय हुआ।

संसार के एक अरब पचास करोड़ आदमियों में यूरोप और अमेरिका के चालीस करोड़ सबसे अधिक शक्तिशाली हैं और वहीं से श्वेतांग जातियाँ दूसरी जातियों को हड़पने में लगी है। अमेरिका के लाल आदिनिवासी नष्ट हो गए, अफ्रीका की काली जाति जल्द ही समाप्त हो जाने को है। भारत की भूरी जाति नष्ट होने की राह पर है और एशिया की पीली जाति श्वेतांग जातियों के पीड़न के चंगुल में है और थोड़े ही समय में नष्ट कर दी जा सकती है।

लेकिन पन्द्रह करोड़ रूसियों ने, जिनकी क्रान्ति सफल हो गई है, श्वेतांग जातियों से अलग होकर उनके साम्राज्यवादी कारनामों की निन्दा की है। अब वे (रूसी) एशिया की निर्बल और कमजोर जातियों के साथ अत्याचारी जातियों के विरुद्ध सहयोग करना चाह रहे हैं। इस प्रकार अत्याचारी जातियों की जनसंख्या अब पचीस करोड़ ही है। लेकिन अब तक भी वे अमानुषिक तरीकों और सैनिक शक्तियों से बकिये एक अरब २५ करोड़ जनता को गुलाम बनाए रखना चाहते हैं। सो अब से मनुष्य जाति दो दलों में विभक्त हो जाएगी—एक तरफ एक अरब पचीस करोड़ रहेंगे और दूसरी तरफ केवल पचीस करोड़। यद्यपि दूसरा दल अल्प संख्या में है परन्तु उनकी शक्ति संसार में सबसे अधिक बढ़ी-चढ़ी है और उनकी राजनीतिक तथा आर्थिक ताकत अपार है। इन दो ताकतों के जरिए ही वे निर्बल और छोटी जातियों का शोषण करना चाहते हैं। अगर उनकी फौज और नौसेना रूपी राजनीतिक बाँह काफी मजबूत नहीं होती है तो वे आर्थिक बोझ का दबाव देते हैं। अगर उनकी आर्थिक बाँह कभी कमजोर पड़ जाती है तो नौसेना और फौज की राजनीतिक ताकत से हस्तक्षेप करते हैं। उनकी राजनीतिक शक्ति का आर्थिक शक्ति के साथ सहयोग करने का तरीका उसी प्रकार है जिस प्रकार बायाँ हाथ दाहिने हाथ की मदद करता है। अपने इन दोनों हाथों से उन्होंने एक अरब पचीस करोड़ को बुरी तरह दबा रखा है। लेकिन 'दैव की इच्छा आदमी की इच्छा का अनुसरण नहीं करती है।' पन्द्रह करोड़ जन संख्यावाली स्लाव जाति अचानक उठ खड़ी हुई और मनुष्य जाति की

असमता के विरुद्ध लड़ने के लिए उसने साम्राज्यवाद और पूँजीवाद पर बड़े जोर का आघात किया। अपने गत व्याख्यान में मैंने एक रूसी की चर्चा की थी जिसने मुझे बताया था कि 'लेनिन को शक्तिशाली राष्ट्रों ने इसलिए इतना बदनाम किया है कि उसने साहस के साथ यह कहा कि संसार के एक अरब पचास करोड़ वाले बहुसंख्यक लोग पचीस करोड़ अल्पसंख्यक द्वारा शोषित हो रहे हैं।' लेनिन ने इतना ही नहीं कहा बल्कि उन्होंने शोषित जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार के पक्ष में आवाज़ बुलन्द की और उनके प्रति होने वाले अन्याय के विरुद्ध आन्दोलन मचाया। शक्तिशाली राष्ट्रों ने लेनिन पर इसलिए आक्रमण किया कि वे मनुष्य जाति के उद्धार-कर्त्ता और देवता को समाप्त कर देना चाहते थे ताकि उनकी स्थिति सुरक्षित रहे। लेकिन अब संसार की जनता की आँखें खुल गई हैं और वे जानते हैं कि इन शक्तिशाली राष्ट्रों द्वारा फैलाई गई बातें झूठी हैं। संसार के लोगों में अब इस हद तक राजनीतिक चेतना आ गई है कि वे अब अपने को ठगने नहीं देंगे।

अब हम चीन की खोई हुई राष्ट्रीयता को पुनः जीवित करना चाहते हैं और मानव जाति के होने वाले अन्याय के विरुद्ध लड़ने के लिए अपने चलीस करोड़ की शक्ति लगाना चाहते हैं। यही हमारा पुनीत उद्देश्य है। शक्तिशाली लोग डरते हैं कि हमारे अन्दर ऐसा विचार आ गया है और हम ऐसे सिद्धान्त की स्थापना कर रहे हैं जो आपाततः न्यायसंगत है। हमें गुम-राह करने के लिए वे (शक्तिशाली राष्ट्र) विश्वबन्धुत्व की वकालत करते हैं। वे कहते हैं कि चूँकि संसार की सभ्यता आगे बढ़ रही है और मनुष्य जाति की दृष्टि भी वितृस्त होती जाती है ऐसी हालत में राष्ट्रीयता की भावना बहुत संकीर्ण है और वर्त्तमान समय के लिए अनुपयुक्त है। इसलिए हमें विश्वबन्धुत्व को प्रोत्साहन देना चाहिए। हाल के वर्षों में इस सिद्धान्त के मारे बहक कर चीन के कुछ युवक जो नई संस्कृति के भक्त हैं राष्ट्रीयता का विरोध करते रहे हैं। लेकिन विश्वबन्धुत्व का सिद्धान्त बदनसीब जातियों के लिए नहीं है। विश्वबन्धुत्व की बातें करने योग्य होने के पहले हम बदनसीब जातियों को अपने राष्ट्र की स्वतंत्रता और समानता के अधिकार को प्राप्त करना चाहिए। मेरे गत व्याख्यान की लाटरी में प्रथम इनाम जीतने वाले कुली का उदाहरण मेरे कथन को स्पष्ट कर देता है। लाटरी का टिकट विश्वबन्धुत्व का द्योतक है और बहंगी राष्ट्रीयता की। जिस प्रकार प्रथम इनाम जीतने के साथ ही कुली ने अपनी बहंगी फेंक दी उसी प्रकार हमने विश्वबन्धुत्व की आशा से ठगे

जाकर, अपनी राष्ट्रीयता खो दी है। हमको अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि विश्वबन्धुत्व का जन्म राष्ट्रीयता से होता है। अगर हम विश्वबन्धुत्व को फैलाना चाहते हैं तो सबसे पहले अपनी राष्ट्रीयता को मजबूती के साथ कायम करना ज़रूरी है। अगर राष्ट्रीयता की भावना काफ़ी दृढ़ नहीं होती है तो विश्व-बन्धुत्व कभी प्रगति नहीं कर सकता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि राष्ट्रीयता के अन्दर ही विश्वबन्धुत्व छिपा है जिस प्रकार बहंगी के भीतर टिकट छिपा हुआ था। अगर हम राष्ट्रीयता को छोड़कर विश्वबन्धुत्व के विषय में बात करने चलें तो हम उसी कुल की तरह हैं जिसने अपनी बहंगी समुद्र में फेंक दी। हमारा ऐसा करना घोड़े के आगे गाड़ी रखने जैसा होगा। मैं पहिले कह चुका हूँ कि हमारा स्थान कोरिया और अन्नाम के लोगों के ऐसा भी नहीं है। वे पराधीन और गुलाम हैं जबकि हम गुलाम भी नहीं कहे जा सकते। इस पर भी हम विश्वबन्धुत्व की बातें किया करते हैं और कहते हैं कि हमें राष्ट्रीयता की ज़रूरत नहीं है। सज्जनो ! क्या यह युक्तिसंगत है ?

हमारा इतिहास बताता है कि हम चालीस करोड़ लोग भी साम्राज्यवादी रास्ते को अपनाए हुए थे। हमारे पूर्वजों ने भी निर्बल और छोटे-छोटे राष्ट्रों को अपने अधीन करने के लिए बराबर राजनीतिक शक्ति का प्रयोग किया था। लेकिन उन दिनों आर्थिक शक्ति इतनी भयानक नहीं थी। इसलिए दूसरी जाति का आर्थिक शोषण करने के हम दोषी नहीं हुए। जरा चीन की संस्कृति की तुलना यूरोप की प्राचीन संस्कृति से कीजिए। यूनान और रोम के उत्कर्ष का काल यूरोप का स्वर्ण-युग था लेकिन अपनी शक्ति के चरम उत्कर्ष कालका रोम बहुत बाद के हमारे हान् राजकुल[१] के चीन का सम-कालीन था। उस समय चीन की राजनीतिक विचारधारा बड़ी गंभीर थी और बहुत से वक्ता सचाई के साथ साम्राज्यवाद का विरोध कर रहे थे तथा साम्राज्य विरोधी बहुत साहित्य भी लिखे गए थे; जिनमें सबसे प्रधान था—'मोती के पहाड़ को त्यागने का तर्क-वितर्क'। इस प्रकार की पुस्तकों में चीन की सीमा बढ़ाने की चेष्टाओं का और भूमि के लिए दक्षिणी असभ्य लोगों के साथ होने वाले युद्ध का विरोध किया गया था। इससे ज्ञात होता है कि हान् राजकुल के समय में ही चीन ने बाहर वालों के साथ युद्ध करने का विरोध किया था और विस्तृत पैमाने पर शान्ति की नीति का विकास किया था।

---

१. ई० पू० २०६—सन् २११ ई० तक

सुङ् राजकुल के समय दूसरे लोगों की भूमि पर कब्जा करने में चीन असमर्थ तो हो ही चुका था साथ-साथ उसके ऊपर विदेशियों का आक्रमण भी हुआ। मंगोल लोगों ने सुङ् राजवंश को खतम कर दिया और देश मिङ् राजकुल की स्थापना होने तक फिर से नहीं उठ सका। इस पुनरुत्थान के बाद चीन की नीति और कम आक्रमक हो गई। जो कुछ हो, उस समय दक्षिण चीन समुद्र के बहुत से छोटे-छोटे राज चीन को कर देना और और चीनी सभ्यता को अपनाना चाहते थे। स्वेच्छा-पूर्वक उनका इस प्रकार से चीन के साथ आकर मिलना चीन की सैनिक शक्ति के डर से नहीं था, बल्कि उनके दिल में हमारी संस्कृति के लिए उच्च भावना का होना था। मलाया प्रायद्वीप और दक्षिणी समुद्र के छोटे-छोटे देश अपने लिए यह इज्जत की बात समझते थे कि चीन उन्हें अपने में मिला ले और उनकी भेंट (खिराज) स्वीकार करे। चीन का नहीं करना उनके लिए बेइज्जती की बात होती।

आज के शक्तिशाली राष्ट्रों में से किसी को भी इस प्रकार की इज्जत नहीं हासिल हुई। अमेरिका वालों का फ़िलीपाइन वालों के साथ होने वाले व्यवहार को लीजिए। अमेरिका ने फिलीपाइन वालों को अपनी एसेम्बली संगठित करने की और सरकारी कामों में भाग लेने की इजाजत दे दी है; उन्हें वाशिंगटन कांग्रेस में अपना प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया है; उन से रुपया लेना तो दूर रहा उल्टे अपने रुपये से उनकी मदद करते हैं, उन्हें सड़कें बनवा देते हैं और उनकी शिक्षा का प्रबन्ध करते हैं। इस प्रकार की दयालुता और दानशीलता तो उदारता की सीमा पार कर जाती है। लेकिन फिर भी फिलीपाइन के लोग अमेरिकी हो जाना इज्जत की बात नहीं समझते और हर साल अपनी स्वतंत्रता की माँग करते हैं। या भारतवर्ष में नेपाल को लीजिए। नेपाल के लोग गुरखा कहलाते हैं। यह जाति बड़ी बहादुर और लड़ाकू है। यद्यपि इंगलैण्ड ने भारत पर अधिकार कर लिया है पर वह गुरखों से अभी भी डरता है। वह उनसे बड़ी उदारता से पेश आता है, हर वर्ष रुपये भेजता है, जैसे कि चीन का सुङ् राजवंश किन ततार[६] से डर

---

६. यह एक खानाबदोश जाति थी जो वर्तमान काल के मंचुरिया के किरिन् प्रान्त में बहने वाली सुनगारी नदी की तराई में घूमती फिरती थी। यह जाति बारहवीं शती के प्रथम चरण में बलवती हो उठी और सन् ११२६ ई० में चीन के सुङ् वंश के सम्राट् को हराकर गिरफ़्तार कर लिया, राजधानी

कर उसे रुपया भेजते थे। लेकिन अन्तर इतना ही है कि सुङ् सम्राट् तातार को जो देते थे वह खिराज कहलाता था जबकि इंगलैण्ड का गुरखों को देना सम्भवतः भेंट कहलाता है। लेकिन चीनी प्रजातंत्र स्थापना के प्रथम वर्ष तक गुरखे चीन को खिराज भेजते थे। जिससे यह सिद्ध होता है कि चीन के चारों ओर के छोटे-छोटे राष्ट्रों ने चीन के प्रति अपना विश्वास और अपनी आशा नहीं छोड़ी है।

दस वर्ष पहिले श्याम देश के वैदेशिक विभाग के दफ़्तर में मैं गया था। वहाँ मेरी वैदेशिक विभाग के उप-सचिव (असिस्टेण्ट सिक्रेटरी) से बातें हुई थीं। हम एशिया की विभिन्न समस्याओं पर बातें कर रहे थे जबकि सचिव ने कहा—'अगर चीन में क्रान्ति हो जाय और वह (चीन) तथा वहाँ की जाति मजबूत हो जाए तो हम श्याम के लोग सहर्ष चीन के प्रति अपनी भक्ति पुनः प्रदर्शित करेंगे और श्याम चीन का एक प्रान्त हो जाएगा।' यह बातचीत श्याम सरकार के आम दफ़्तर में हुई थी और वक्ता वैदेशिक विभाग के उप-सचिव थे। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने अपना निजी मत प्रकट किया था। वे अपनी सम्पूर्ण जाति की भावनाओं को व्यक्त कर रहे थे। यह इस बात का द्योतक है कि अभी तक भी श्याम वालों के दिल में चीन के प्रति उच्च भावना है। लेकिन इन गत दश वर्षों में श्याम एशिया का स्वतंत्र राष्ट्र हो गया है और दूसरे राष्ट्रों ने इसके साथ जो अन्यायपूर्ण सन्धियाँ की थीं उनमें इसने पुनः संशोधन कराया है और अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली है। अब वह शायद ही चीन के साथ मिलने को तैयार हो।

आप सबों को मैं अत्यन्त ही मनोरंजक एक दूसरी घटना बताता हूँ। जबकि यूरोपीय युद्ध बड़ी तेजी के साथ चल रहा था उस समय मैं केण्टन (क्वाङतुङ् प्रान्त की राजधानी) में वैधानिक सरकार की स्थापना में लगा हुआ था। एक दिन ब्रिटिश काउन्सल प्रधान सेनापति के दफ़्तर में मुझसे मिलने और दक्षिणी सरकार का मित्रराष्ट्रों के पक्ष में होकर यूरोप में

खाइ फ़ङ् पर कब्जा किया और उत्तरी चीन पर राज्य करने लगी। सुङ् वंश दक्षिणी चीन में जाकर हाङ् चउ को राजधानी बनाकर राज करने लगा। सुङ् राजवंश के सम्राट् किन् सम्राट् को खिराज देते थे। इस प्रकार उत्तर चीन में किन् और दक्षिण में सुङ् राजवंश तब तक राज करते रहे जब तक कि मंगोल जाति ने दोनों को हरा कर चीन पर कब्जा नहीं कर लिया।

में सेना भेजने की सम्भावना के संबंध में बातचीत करने आए। मैंने ब्रिटिश काउन्सल से पूछा—'हम क्यों फौज भेजें ?' उन्होंने जवाब दिया, 'जर्मनी से लड़ने के लिए। चूँकि जर्मनी ने चीन पर हमला कर छिङ्ताव्[७] पर कब्जा कर लिया है इसलिए आपको उससे लड़ कर अपना भू-भाग लौटा लेना चाहिए।' मैंने कहा—'छिङ्ताङ् तो केण्टन से काफी दूर है। लेकिन उन स्थानों के बारे में क्या होगा जो हमारे (केण्टन से) बहुत करीब है जैसे हाङ्काङ् या और कुछ दूरी पर बर्मा, भूटान, नेपाल और उसी तरह की दूसरी जगहें जो पहिले चीन के अधिकार में थीं ? और अब तो आप (अंगरेज) हमसे तिब्बत भी ले लेना चाहते हैं। चीन के पास अभी काफी शक्ति नहीं है कि वह अपने खोए हुए भू-भागों को लौटा सके और अगर उसने लौटाया भी तो सबसे पहिले ब्रिटेन द्वारा हड़पे हूए भू-भागों को लौटाएगा। छिङ्ताव्, जिसे जर्मनी ने ले लिया है, अपेक्षाकृत छोटा है, बर्मा उससे बड़ा है और तिब्बत तो और भी अधिक बड़ा है अगर हम खोए हुए भू-भागों को लौटाने चलेंगे तो सबसे पहले-बड़े-बड़े स्थानों से ही प्रारम्भ करेंगे।' जब उन्होंने मेरी बातें सुनीं तो अपने क्रोध को नहीं रोक सके और बोले—'मैं आपके साथ सार्वजनिक मामलों पर बातचीत करने आया हूँ।' मैंने तुरत ही उत्तर दिया—'मैं तो सार्वजनिक मामलों पर ही बातचीत कर रहा हूँ।' बहुत समय तक हम एक दूसरे से इस प्रश्न पर वाद-विवाद करते रहे और दोनों में से कोई भी झुकने को तैयार नहीं था।

अन्त में मैंने उनसे कहा—'आपकी सभ्यता से हमारी सभ्यता दो हजार वर्षों से भी अधिक प्राचीन है। हम इस बात की प्रतीक्षा करने को तैयार हैं कि आप भी प्रगति कर हमारे मुकाबिले में आ जाइए। लेकिन हम पीछे नहीं हट सकते हैं और न आपको यह अवसर देना चाहते हैं कि खींचकर आप हमें पीछा कर दें। दो हज़ार वर्ष पहिले ही हमने साम्राज्यवाद को त्याग दिया है और तबसे शांति की वकालत की है और आज चीन की जनता ने इस आदर्श को अच्छी तरह अनुभव कर लिया है। इस वर्त्तमान लड़ाई (सन् १९१४ का युद्ध) में आप भी शांति-स्थापन ही अपना उद्देश्य बनाइए। शुरू-शुरू में हमने आपका सहर्ष अनुमोदन किया लेकिन वास्तव में आप अभी भी लड़ ही रहे हैं, शांति की बात नहीं कर रहे हैं। आप शक्ति की बातें कर रहे हैं न्याय की नहीं। मैं समझता हूँ कि बल-प्रयोग के लिए आपकी अपील

७. देखिए राष्ट्रीयता के सिद्धान्त के दूसरे व्याख्यान का नोट नं० ४

अत्यन्त ही बर्बरतापूर्ण है। आगे बढ़िए और लड़िए, निश्चय ही हम आपका साथ नहीं देंगे। जब आप लड़ते-लड़ते थक जाइएगा और किसी दिन वास्तविक शांति की बात करने को तैयार हूजिएगा तो आपके साथ मिलकर संसार की शांति का रास्ता खोजने के लिए हम आपके दल में ज़रूर शामिल होंगे। चीन के युद्ध में सम्मलित नहीं होने और सेना भेजने के विरोध करने का दूसरा प्रबल कारण यह है कि हम यह नहीं चाहते कि चीन आपके समान ही अन्यायी राष्ट्र (Unjust power) बने। अगर हम आपकी सलाह मानकर मित्रराष्ट्रों के दल में मिलते तो आप चीनी सैनिकों को शिक्षित करने के लिये अपने अफ़सर ज़रूर चीन में भेजते। इसमें कोई शक नहीं कि अनुभवी नायकों और आश्चर्यजनक सैनिक साधनों से आप छः महीने के अन्दर तीन से पांच लाख तक सैनिकों को शिक्षित कर जर्मनी को हराने के लिए यूरोपीय युद्ध मोर्चे पर भेज सकते थे। पर यह तो आप और भी बुरा करते !'

'बुरा क्यों' ? ब्रिटिश काउंसल ने पूछा। मैंने उत्तर दिया—'कई करोड़ सैनिक लेकर वर्षों लड़ने पर भी आप जर्मनी को नहीं हरा सकते लेकिन फिर भी आप सोचते हैं कि कई लाख चीनी सैनिकों के जाने से उसकी हार हो जाएगी। वास्तविक फल यह होगा कि चीन में सैनिक जागृति फैल जाएगी। इन कई लाख चीनी सिपाहियों के बीज (Nucleus) से चीनी फौज करोड़ों की हो जाएगी और यह आपके लिए बड़ा अहितकर होगा। जापान अभी आपकी तरफ है और वह अभी ही संसार का एक शक्तिशाली राष्ट्र हो गया है। अपने सैनिक पराक्रम से वह एशिया पर क्रूरता के साथ शासन करता है। उसकी साम्राज्यवादी नीति अन्य शक्तिशाली राष्ट्रों की नीति के ही समान है और आप उससे बुरी तरह डरे हुए हैं। फिर चीन की जन-संख्या और साधन जापान से कहीं अधिक हैं। अगर हम आप द्वारा बनाई राह पर चलें और चीन आपके दल की तरफ से युद्ध में शामिल हो तो दस वर्ष बीतने के पहिले ही चीन दूसरा जापान हो जाएगा। अगर आप चीन के भू-भाग और जन-संख्या की ओर देखें तो आपको पता चलेगा कि हम दस जापान के बराबर हो सकते हैं। तब आपके सम्पूर्ण संसार की शक्ति चीन के साथ एक बार भी लड़ने के लिए काफी नहीं होगी। चूँकि हम आपसे सभ्यता में दो हज़ार वर्ष आगे बढ़ चुके हैं और बर्बर तथा कलह-प्रिय भावनाओं से पीछा छुड़ाकर अन्त में शांति के आदर्श को प्राप्त कर चुके हैं और चूंकि हम आशा करते हैं कि चीन हमेशा अपने शांति के आदर्श पर दृढ़ रहेगा

इसलिए हम इस बड़े युद्ध में शामिल होने को तैयार नहीं हैं।' मेरी बातों को सुनने के बाद ब्रिटिश काउंसल, जो आधा घंटा पहिले मुझसे झगड़ने को तैयार था, बड़ा ही प्रभावित हुआ और बोला—'अगर हम भी चीनी होते तो निश्चय ही आपकी तरह सोचते।'

सज्जनो! आप जानते हैं कि क्रान्ति स्वभावतः ही रक्त चाहती है। इसलिए थाङ्[८] और वु[९] की क्रान्ति में हर आदमी का कहना था कि 'विद्रोही लोग दैव के आज्ञाकारी थे और लोगों के प्रिय थे।' लेकिन युद्ध के बारे में यह कहा जाता था कि उन्होंने अनुभव किया कि 'लड़ाई के झंडे के डंडे रक्त की नदी में उपलाते हैं' (battle staves floating on rivers of blood)। सन् १९११ ई० की क्रान्ति में जब हमने माँचू राज्य को उलट दिया तो कितना रक्तपात हुआ? कम रक्तपात होने का कारण यह था कि चीनी जनता शांतिप्रिय है और यह चीनी स्वभाव का एक विशिष्ट गुण है। असल में चीनी लोग संसार में सबसे अधिक शांतिप्रिय हैं। मैंने बराबर संसार के लोगों को चीन का उदाहरण अनुकरण करने की सलाह दी है। अब रूस के स्लाव लोग हमारे साथ कदम रख रहे हैं और हमारी जैसी शांति की नीति को अपना रहे हैं तथा वहाँ की दस करोड़ जनता हमारे साथ सहयोग करने को तैयार है।

हमारे चालीस करोड़ लोग सबसे अधिक शांतिप्रिय ही नहीं बल्कि सबसे अधिक सुसंस्कृत हैं। नई सभ्यता जो बाद को यूरोप में फैली है और जो अराजकतावाद और समाजवाद के नाम से प्रसिद्ध है—चीन के लिए पुरानी

---

८. श्या (शिआ) राजवंश (ई० पू० २२०५-१७६६) का अन्तिम सम्राट चिए (ई० पू० १८१८—१७६६) बड़ा अत्याचारी था जिससे उसकी प्रजा तथा कुलीन वर्ग बहुत ही असंतुष्ट हो गया। इसी कुलीन वर्ग के थाङ नामक एक व्यक्ति ने चिए के विरुद्ध विद्रोह किया और चिए को हराकर उसे गद्दी से उतार कर स्वयं सम्राट् बना। थाङ् का राजवंश चीनी इतिहास में षाङ् राजवंश (ई० पू० १७६६-११२२) कहलाता है। थाङ् का पूरा नाम षाङ् थाङ् था। इसने जब विद्रोह किया था। तो इसका नारा था—'चूँकि शिआ सम्राट गण पापी हैं और स्वर्ग से मुझे इन्हें रोकने की आज्ञा मिली है ... चूँकि शिआ सम्राट गण पापी हैं और मुझे ईश्वर का डर है इसलिये शिआ लोगों को बिना दंड दिये नहीं रह सकता।'

९. षाङ् राजकुल का अन्तिम सम्राट् चउ शिन् (ई० पू० ११५४—

चीजें हैं। उदाहरण के लिए देखिए—हवाङ्[10] और लाव्[11] का राजनीतिक दर्शन वास्तव में अराजकतावाद है। और लिए-च्[12] का हवा-शु[13] जनता का बिना शासक और कानून के प्राकृतिक दशा में रहने का स्वप्न अराजकतावाद का दूसरा उदाहरण नहीं है तो क्या है? चीन के आधुनिक युवक, जिन्होंने चीन के इन प्राचीन सिद्धान्तों का मनन नहीं किया है, सोचते हैं कि उनके विचार एकदम नये हैं। वे इस बात को नहीं जानते कि यद्यपि ये यूरोप के लिए नये हो सकते हैं पर चीन के लिए हजारों वर्ष के पुराने हैं। रूस जिस सिद्धान्त का प्रयोग कर रहा है वह वास्तविक समाजवाद नहीं है बल्कि मार्क्सवाद है और मार्क्सवाद वास्तविक समाजवाद नहीं है। प्राँधों[14] (Proudhon) और बाकुनिन[15] (Bakunin) ने जिस चीज़ की वकालत की है वही वास्तव में

११२२) बड़ा अत्याचारी और पापी निकला। इसने पश्चिमी चीनी के वन् नामक मुखिया को गिरफ्तार कर लिया था। पर वन् की प्रजा ने सम्राट चउ शिन् के पास एक सुन्दरी स्त्री, एक घोड़ा और चार रथ भेजकर अपने मुखिया को छुड़ाया। वन् छूटकर सम्राट चउ शिन् से लड़ने की तैयारी करने लगा और षाङ् सम्राट की प्रजा तथा कुलीन वर्ग को अपनी ओर मिलाने लगा। पर वन् के उत्तराधिकारी वु ने इस कार्य को अपने हाथ में लिया और षाङ् सम्राट चउ शिन् के विरुद्ध विद्रोह किया और सम्राट को हराया। सम्राट चउ शिन् ने आग में कूद कर आत्म-हत्या कर ली। वु राजगद्दी पर बैठा और उसका वंश चीनी इतिहास में चउ राजवंश (ई० पू० ११२२—२४७ई०) के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

१०. ह्वाङ् ति—पीला सम्राट्—प्रागैतिहासिक काल का। इनका समय ई० पू० २६९७—२५९७ माना जाता है।

११. लाव् च—चीन का एक दार्शनिक जो सम्राट् और शासन को बुराइयों की जड़ मानता था। इनका समय ई० पू० की छठवीं शदी है।

१२. लिए च् एक पुस्तक का नाम है और इसके लेखक का नाम भी लिए च् (लिए यू खउ) था। ये एक दार्शनिक थे। कहा जाता है कि ये चउ राजवंश (ई०पू०११२२—२४७) के समय में हुए थे पर यह अभी तक निश्चय नहीं हुआ है। इनकी किताब मनोराज्य (Utopia) है।

१३ लिए च् ने कल्पना की कि हवा शु (कल्पित जाति) जनता बिना शासक के प्राकृतिक अवस्था में रहती थी।

१४ और १५. ये दोनों फ्रांस के दार्शनिक थे।

१५. देखिए 'राष्ट्रीयता का सिद्धान्त' के तीसरे व्याख्यान का नोट नं० ६

विश्वबन्धुत्व जिसके बारे में यूरोप के लोग इन दिनों चर्चा कर रहे हैं, वास्तव में शक्ति द्वारा अनुमोदित बिना न्याय का सिद्धान्त है। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली कहावत का मतलब यह है कि अपने स्वार्थ के लिए लड़ना ही न्याय है। लेकिन चीनी मस्तिष्क ने युद्ध के द्वारा स्वार्थ-साधन को न्यायपूर्ण नहीं माना है। वह आक्रमक लड़ाई को बर्बरता समझता है। नैतिकता ही विश्वबन्धुत्व का असली तथ्य है। किस आधार पर इसकी हम रक्षा कर सकते हैं और इस तथ्य का निर्माण कर सकते हैं ? राष्ट्रीयता के ऊपर। रूस के पन्द्रह करोड़ आदमी ही यूरोप के विश्वबन्धुत्व के आधार हैं, और चीन के चालीस करोड़ लोग एशिया के विश्वबन्धुत्व के। जैसे कि विस्तार के लिए एक आधार का होना ज़रूरी है उसी तरह विश्व-बन्धुत्व की बात करने के पहिले हमें राष्ट्रीयता की बात करना आवश्यक है। 'जो संसार को शांत रखना चाहता है वह पहले अपने राज में शांति स्थापित करे।' पहले हम अपनी खोई हुई राष्ट्रीयता को पुनर्जीवित करें और उसे अधिक भव्यता के साथ चमकने दें तभी हम अन्तर्राष्ट्रीयता की चर्चा करने के योग्य साबित होंगे।

पाँचवाँ व्याख्यान

आज मेरे व्याख्यान का विषय यह है कि हम राष्ट्रीयता को पुनर्जीवित करने के लिए कौन सा रास्ता अपनावें ? मेरे पहले के व्याख्यानों से आप सबों को ज्ञात हो गया होगा कि चीन के वर्त्तमान पतन का कारण राष्ट्रीयता का नष्ट हो जाना है। दो सौ वर्षों से भी अधिक हुए जबकि दूसरी जातियों ने हमें गुलाम बनाया और हम तब से विदेशियों द्वारा शासित होते रहे हैं। पहिले हम मांचू जाति के ही गुलाम थे लेकिन अब सभी राष्ट्रों के गुलाम हैं और पहिले से कहीं अधिक जिल्लत उठा रहे हैं। अगर हम इसी तरह से चलते रहे और खोई हुई राष्ट्रीयता को पाने के लिए कोई उपाय नहीं निकाल सके तो चीनी राष्ट्र तो समाप्त हो ही जाएगा, सम्भवतः चीनी जाति भी लुप्त हो जाएगी। इसलिये अगर हम चीन को बचाना चाहते हैं तो सबसे पहले हमको अपनी राष्ट्रीयता को पुनर्जीवित करने का कुछ उपाय ज़रूर करना होगा।

आज मैं आपको दो रास्ते बताऊँगा जिनसे हमारी खोई हुई राष्ट्रीयता पुनः लौट सकती है। पहला रास्ता चालीस करोड़ आदमियों को जगाकर यह दिखलाना है कि आज उनकी क्या स्थिति है। हम उस संकट काल में हैं जबकि हमें दुःख तकलीफ को दूर कर सुख की खोज करनी है, मृत्यु से बचकर जीवन प्राप्त करना है। पहले हम अच्छी तरह देख लें और तब काम में जुट पड़ें। सज्जनो ! अगर आप जानना चाहते हैं कि 'समझना कितना कठिन है और करना कितना आसान है' तो मेरे सिद्धान्त को पढ़िए। चीन ने पहले नहीं जाना कि उसका पतन हो रहा है इसलिए वह नष्ट हुआ। अगर वह पहिले ही इसे देखे हुए होता तो नष्ट नहीं होता। प्राचीन कहावत है— 'बाहरी शत्रु और बाहरी खतरे के बिना राष्ट्र नष्ट हो जाया करते हैं' और 'बहुत आपदायें राष्ट्र को पुनर्जीवित कर देती हैं।' यह कथन अक्षरशः मनोवैज्ञानिक सत्य है। उदाहरण के लिए विदेशी शत्रु और खतरे को लीजिए। अगर कोई राष्ट्र समझता है कि उसे बाहरी खतरा नहीं है, वह एकदम सुरक्षित है, वह संसार में सबसे अधिक शक्तिशाली राष्ट्र है और उसके ऊपर विदेशी लोग हमला करने का साहस नहीं करेंगे इसलिये बचाव का प्रबन्ध करना अनावश्यक है, तो वह राष्ट्र निश्चय ही गिर जायगा। 'बहुत आपदाएँ राष्ट्र

को पुनर्जीवित कर देती हैं' यह इसीलिए ठीक है कि जैसे ही हम समझेंगे कि ये आपदाएँ क्या चीज़ हैं तो वीरतापूर्ण कार्य करने के लिए हमारी सारी शक्ति उमड़ पड़ेगी। यह भी एक मनोवैज्ञानिक सत्य है। मैंने अपने प्रथम चार व्याख्यानों में जिस स्थिति का वर्णन किया है अगर वह ठीक है तो खोई हुई राष्ट्रीयता कैसे मिलेगी, इसको जानने के पहिले अपनी भयंकर परिस्थिति और संकट-काल को स्पष्टरूप से ध्यान में रख लेना होगा। अगर स्थिति को बिना समझे हमने राष्ट्रीयता लाने की कोशिश की तो हमारी सब आशा सब दिनों के लिए धूल में मिल जाएगी और चीनी जनता जल्द ही नष्ट हो जाएगी।

मेरे पहिले के व्याख्यानों में से उन बातों को लीजिए कि वे कौन-कौन सी आपदाएँ हैं जो हमारे लिए भय के कारण हैं और वे किस-किस तरफ से आती हैं? वे आपदाएँ बड़े राष्ट्रों की ओर से आती हैं और वे हैं राजनीतिक प्रभुत्व, आर्थिक नियंत्रण और शक्तिशाली राष्ट्रों में तीव्रता के साथ जनसंख्या का बढ़ना। ये तीनों आपदाएँ हमारे सिर पर पहिले से ही हैं और हम बहुत ही भयंकर स्थिति में हैं। राजनीतिक प्रभुत्व द्वारा राष्ट्र को समाप्त करने वाली पहली आपदा किसी भी दिन हमारे ऊपर आ सकती है। शक्तिशाली राष्ट्रों के राजनीतिक प्रभुत्व के नीचे दबा हुआ चीन किसी भी क्षण टुकड़े-टुकड़े हो सकता है। हम निश्चय के साथ यह भी नहीं कह सकते कि दूसरे सुबह का सूर्य उगना हम देख सकेंगे या नहीं? दो तरीकों से राजनीतिक प्रभुत्व किसी राष्ट्र को नष्ट कर सकता है—सैनिक शक्ति द्वारा और कूटनीति से। सैनिक शक्ति किस प्रकार राष्ट्र को नष्ट करती है यह जानने के लिए जरा इतिहास की ओर नजर दौड़ाइए। याइमन्[1] में हुई एक ही लड़ाई में चीन का सुङ् राजवंश मंगोलों द्वारा समाप्त कर दिया गया। याङ्ग्च्वो[2] की लड़ाई में मिङ् राजवंश का पतन हो गया। विदेशी इतिहास में नेपोलियन प्रथम के साम्राज्य को वाटरलू की लड़ाई ने समाप्त कर दिया। नेपोलियन तृतीय का साम्राज्य सेडान की लड़ाई में चला गया। अगर एक ही लड़ाई में किसी राष्ट्र का पतन हो सकता है तो चीन को अपने जीवन का खतरा प्रतिदिन है क्योंकि हमारी फौज, हमारी नौसेना और युद्ध के प्रधान नाके इस हालत में नहीं हैं

१. यह स्थान केण्टन के पास है। यहाँ मिङ् और मंगोल के बीच सन् १२७९ ई० में लड़ाई हुई थी।

२. यह क्याङ्सु प्रान्त में है। यहाँ सन् १६४५ ई० में लड़ाई हुई थी।

कि वे देश की रक्षा कर सकें। और विदेशी फौज़ किसी भी समय देश में घुस कर हम पर विजय प्राप्त कर सकती है।

सबसे नजदीक का राष्ट्र जो हमको समाप्त कर सकता है जापान है। शांति के समय उसके पास दस लाख तैयार सेना रहती है जो मैदान में किसी समय लड़ सकती है और युद्ध के समय तो उसकी संख्या तीस लाख तक हो सकती है। उसकी नौसेना भी बहुत शक्तिशाली है जो ग्रेटब्रिटेन और संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका की नौसेना से मुक़ाबिला कर सकती है। वाशिंगटन सम्मेलन ने उसके जहाजी बेड़े के लिए तीन लाख टन की मात्रा निर्धारित कर दी है। जापान की नौसेना के अंग जैसे जंगी जहाज (क्रूजर), पनडूब्बी (सबमेरिन) और विध्वंसक (डिस्ट्रायर) आदि बहुत ही सुदृढ़ बने हुए हैं और उनकी लड़ने की शक्ति भी असीम है। उदाहरण के लिए देखिए जबकि हाल में ही जापान ने दो विध्वंसक पाइ-ओ-थान्[१] भेजे थे तो उनसे मुकाबिला करने के लिए चीन के पास वैसा एक भी जहाज नहीं था। जापान के पास इस प्रकार के एक सौ से भी अधिक विध्वंसक हैं। अगर जापान इन विध्वंसकों को लेकर हमसे लड़ने के लिए आए तो वह हमारी रक्षा-शक्ति को तुरत ही तोड़कर हम पर भारी चोट कर सकता है। फिर, हमारे यहाँ के समुद्र किनारे के युद्ध के प्रधान-प्रधान नाकों पर सुरक्षा के लिए मजबूत किलाबन्दी भी नहीं है। इस प्रकार हमारा पूर्वी पड़ोसी जापान के पास फौज और नौसेना दोनों ही हैं और एक ही क्षण में सीधे हम पर धावा बोल सकता है। वह हम पर अभी चोट नहीं कर रहा है क्योंकि शायद उपयुक्त मौका अब तक उसे नहीं मिला है। लेकिन अगर वह चढ़ाई कर दे तो किसी दिन भी चीन को समाप्त कर सकता है। चीन पर चढ़ाई करने के लिए जिस दिन से जापान सैनिक तैयारी प्रारम्भ करेगा उस दिन से चढ़ाई करने के दिन तक की अवधि दस दिन से अधिक न होगी। इसलिए अगर चीन जापान से अपना संबंध तोड़ ले तो वह दस दिनों के अन्दर ही चीन को समाप्त कर सकता है।

जापान के बाद प्रशान्त महासागर के पूर्वी तट पर महान् शक्तिशाली राष्ट्र अमेरिका है। उसके पास पहिले जापान से तीन गुनी अधिक नौसेना थी लेकिन वाशिंगटन सम्मेलन के फलस्वरूप उसकी नौसेना शक्ति भी घटाकर पाँच लाख टन निर्धारित कर दी गई है। नये प्रकार के जहाज जैसे पनडुब्बी

---

१. यह स्थान केण्टन के पास है।

और विध्वंसक आदि उसके पास जापान से भी अधिक हैं। जहाँ तक सैनिक शिक्षा का संबंध है वह संयुक्त राष्ट्र में सभी के लिए सुलभ है। प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य है। देश की हर लड़की-लड़के को पाठशाला जाना पड़ता है और बहुत से आदमियों को हाई स्कूल और कालेज तक की शिक्षा मिली हुई है। हाई स्कूलों और कालेजों में वहाँ के हर नागरिक को सैनिक शिक्षा मिलती है जिससे सरकार किसी भी समय फौज में अनगिनत सैनिक भर्ती कर सकती है। जब संयुक्त राष्ट्र अमेरिका युद्ध में सम्मिलित हुआ तो वह एक वर्ष से कम समय के अन्दर ही बीस लाख सैनिक भेजने में समर्थ हो सका। इस प्रकार यद्यपि अमेरिका की स्थायी सेना छोटी है लेकिन उसकी (अमेरिका) सैनिक क्षमता अद्भुत है। थोड़े ही समय में लाखों सैनिक युद्ध मैदान में उतारे जा सकते हैं। अगर चीन और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के बीच का राजनीतिक सम्बन्ध टूट जाय तो अमेरिका एक महीने के अन्दर चीन पर चढ़ाई करने लिए पूर्ण सङ्गठित हो सकता है। इस प्रकार अमेरिका सम्बन्ध टूटने के एक महीने के अन्दर ही चीन को समाप्त कर सकता है।

संयुक्तराष्ट्र अमेरिका से पूर्व की ओर यूरोप महादेश पर नजर दौड़ाने से अटलांटिक महासागर में ब्रिटिश द्वीपपुंज देखने में आता है। एक समय इंगलैण्ड समुद्र का मालिक कहलाता था जबकि संसार में उसकी नौसेना सब से मजबूत थी। लेकिन वाशिंगटन सम्मेलन ने उसकी भी नौसेना शक्ति को घटा कर पाँच लाख टन कर दिया है। साधारण जङ्गी जहाज, विध्वंसक और पनडुब्बियाँ तो उसके पास संयुक्त राष्ट्र अमेरिका से भी अधिक हैं। चीन से इंगलैण्ड की यात्रा चालीस या पचास दिनों की है और चीन में तो ब्रिटेन के बने-बनाए मोर्चे हैं—जैसे हाङ्काङ् जिसे वह कई दशाब्दियों से तैयार करता रहा है। हाङ्काङ् केवल एक छोटा-सा स्थान है लेकिन उसका व्यापार बड़ा ही समृद्ध है और अपनी प्राकृतिक स्थिति के कारण वह चीन के सभी दक्षिणी प्रान्तों पर फौलादी पंजा गड़ा सकता है। सैनिक वहाँ क़वायद करते हुए नजर आते हैं और जहाजी सैनिकों का वहाँ अड्डा है। यद्यपि हाङ्काङ् स्थित फौज और नौसेना की चढ़ाई हमको तुरत नहीं समाप्त कर सकती है परन्तु हमारे पास उन्हें रोकने के लिए कोई शक्ति नहीं है। हाङ्काङ् के अलावे नजदीक ही भारतवर्ष और अस्ट्रेलिया हैं और अगर इन उपनिवेशों में स्थित जल-थल सेना भी काम में लाई जाय तब तो ब्रिटिश लोगों के लिए चढ़ाई की तैयार करने के दिन से चीन पर विजय करने तक दो मास से अधिक नहीं लगेंगे।

इसलिए अगर इंगलैण्ड और चीन अपना संबंध तोड़ता है तो हद से हद दो महीने के अन्दर इंगलैण्ड चीन को समाप्त कर देगा।

यूरोप में फ्रांस की ओर देखिए। वह इन दिनों सबसे अधिक शक्तिशाली है और उसकी सेना संसार में सबसे मजबूत है। उसके पास दो-तीन हजार हवाई जहाज हैं जो ज़रूरत पड़ने के समय बढ़ाये भी जा सकते हैं। फ्रांसीसियों का भी चीन के बहुत पास अन्नाम में अपना अड्डा है और अन्नाम से उन्होंने सीधे चीन के यून्नान् प्रान्त की राजधानी तक रेलवे लाइन बिछाई है। अगर चीन फ्रांसीसियों सम्बन्ध तोड़ ले तो फ्रांस की फौज चालीस या पचास दिनों के अन्दर चीन पर चढ़ाई कर सकती है। इस प्रकार इंगलैण्ड की तरह फ्रांस भी दो महीनों के अन्दर चीन को समाप्त कर सकता है।

इसका अर्थ यह होता है कि शक्तिशाली राष्ट्रों में से कोई भी ऐसा नहीं है जो सैनिक शक्ति से चीन को छिन्न-भिन्न न कर सके। तो क्यों फिर अब तक चीन बचा हुआ है? यह अपनी बचाव करने की शक्ति के कारण नहीं बल्कि केवल इसलिए बचा हुआ है कि सभी शक्तियाँ चीन का शोषण करना चाहती हैं। सब के सब सावधानीपूर्वक मौका देख रहे हैं। चीन-स्थित विभिन्न राष्ट्रों की ताकत शक्ति-सन्तुलन का काम कर रही है। जिसके कारण चीन अब तक बचा हुआ है। चीन में कुछ लोग ऐसे हैं जो मूर्खता और अत्युक्तिपूर्ण बातों की आशा बाँधा करते हैं। उनका कहना है कि शक्तिशाली राष्ट्र चीन के प्रश्न को लेकर अब आपस में ही ईर्ष्यालु हैं इसलिए शक्ति-सन्तुलन बराबर बना ही रहेगा तथा वे आपस में संगठित नहीं हो सकेंगे। इसलिए जब तक यह स्थिति बनी रहती है चीन को अपनी रक्षा के मामले को लेकर माथापची नहीं करना चाहिए क्योंकि वह (चीन) नष्ट नहीं होगा। अपने की अपेक्षा दूसरों पर इस प्रकार निर्भर रहना क्या 'आकाश की ओर टकटकी लगाकर भाग्य टटोलना' नहीं है? चूँकि इस प्रकार की भविष्यवाणी पर विश्वास नहीं किया जा सकता इसलिए ऐसी मूर्खतापूर्ण आशा रखने से हमें अन्त में कुछ भी हाथ नहीं लगेगा। शक्तिशाली राष्ट्र अभी भी चीन को कुचलना चाहते हैं। लेकिन वे सोचते हैं कि सैनिक शक्ति का प्रयोग चीन के प्रश्न को पुनः हाल के यूरोपीय युद्ध के समान दूसरे महायुद्ध का रूप न दे दे। जिससे नतीजा यह होगा कि हर तरफ की हार और हानि उठानी पड़ेगी और अन्त में किसी को विशेष लाभ भी नहीं होगा। विदेशी राजनीतिज्ञ इस बात को स्पष्ट देखते हैं और इसलिए ही वे सैनिक शक्ति का प्रयोग चीन के प्रति नहीं करते हैं। क्योंकि ऐसा करने से

शक्तिशाली राष्ट्रों के बीच पुनः युद्ध होना अनिवार्य हो जायगा। इस पर भी अगर वे अपने अधिकार और सुविधाओं के सन्तुलन पर आपसी कलह को न होने दें तो भी चीन पर शासन करने की समस्या मुठभेड़ लाए बिना नहीं रह सकती। चूँकि वह अनिवार्य मुठभेड़ उनके लिए बहुत नुकसान-देह होगी जिसे शक्तिशाली राष्ट्र अच्छी तरह अनुभव करते हैं, अतएव वे युद्ध के अस्त्र-शस्त्र नियंत्रण की बात कर रहे हैं। जापान की नौसेना शक्ति तीन लाख टन तक सीमित कर दी गई है तथा इंगलैण्ड और संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका की पाँच लाख टन तक। यह सम्मेलन (वाशिंगटन में) अस्त्र-शस्त्र पर नियंत्रण करने के लिए ही हुआ था। लेकिन वास्तव में वहाँ चीन के प्रश्न पर भी विचार हुआ। चीन में अधिकार और सुविधाओं को लेकर शक्तिशाली राष्ट्र किस प्रकार आपसी मुठभेड़ से अपने को बचा सकते हैं ?

जैसा कि मैंने अभी कहा है, राजों को समाप्त करने के लिए राजनीतिक शक्तियों द्वारा दो तरीके काम में लाए जाते हैं—पहला सैनिक शक्ति और दूसरा कूटनीति। सैनिक शक्ति का अर्थ बन्दूक और तोप का व्यवहार करना है जिसे रोकने का हमको कुछ-कुछ ज्ञान है। लेकिन कूटनीति का अर्थ कागज और कलम द्वारा चीन को समाप्त करना है। इसका प्रतिकार कैसे करना चाहिए यह हमने नहीं सीखा है। यद्यपि चीन ने वाशिंगटन सम्मेलन में अपना प्रतिनिधि भेजा था और यद्यपि ऊपरी तौर से कहा गया था कि चीन के संबंध में जो प्रस्ताव पास हुए हैं वे उसी के फायदे के लिए हैं तथापि सम्मेलन समाप्त होने के कुछ ही दिनों बाद सभी विदेशी राष्ट्रों के समाचार-पत्रों में चीन के अन्तर्राष्ट्रीय नियंत्रण की चर्चा होने लगी। यह निश्चित है कि यह चर्चा प्रतिदिन बढ़ती ही जाएगी। शक्तिशाली राष्ट्रों के केन्द्रित विचार (Concentrated thinking) चीन को उखाड़ फेंकने के लिए जरूर कोई न कोई उपाय निकालेगा ही। इसके बाद उनको (शक्तिशाली राष्ट्रों को) अपनी फौज या जहाज भेजने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। केवल कागज और कलम तथा आपसी सन्तोषजनक समझौता ही हमको बर्बाद कर देगा। सिर्फ यही आवश्यक है कि विभिन्न राष्ट्रों के कूटनीतिज्ञ एक जगह मिलें और अपने हस्ताक्षर कर दें। एक दिन का समझौते पर हस्ताक्षर करना और एक दिन की सम्मिलित राजनीतिक कार्रवाई चीन को समाप्त कर देगी। ऐसी घटना बेनजीर नहीं है। रूस, जर्मन और आस्ट्रिया द्वारा पोलैण्ड के अंग-विच्छेद की घटना एक दिन की सलाह और समझौते का फल था। इसलिए चीन भी ग्रेटब्रिटेन, फ्रांस,

संयुक्तराष्ट्र अमेरिका, जापान और दूसरी शक्तियों के एक दिन की सम्मिलित राय के फलस्वरूप नष्ट हो सकता है। राजनीतिक शक्तियों पर, जो राष्ट्र को नष्ट-भ्रष्ट कर देती हैं, गौर करने से पता चलता है कि चीन इन दिनों अत्यंत ही भयंकर स्थिति में है।

दूसरी आपदा विदेशी आर्थिक नियंत्रण है जो चीन की बुरी हालत किए हुए है। इसके विषय में मैं पहिले ही कह चुका हूँ। हर वर्ष विदेशी लोग हमारा एक अरब बीस करोड़ डालर लूट लेते हैं और यह नुकसान दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। व्यापार का सन्तुलन दस वर्ष पहिले बीस करोड़ डालर था अब पचास करोड़ डालर है। प्रत्येक दस वर्षों में २५० फी सदी की बढ़ती के हिसाब से हम हर वर्ष तीन अरब डालर नुकसान उठाने लगेंगे। इस रकम को अगर अपने चालीस करोड़ आदमियों के बीच बांटें तो हर आदमी पर साढ़े सात डालर सालाना पड़ता है। इसका अर्थ यह है कि चीन के लोगों में से हर को प्रतिवर्ष साढ़े सात डालर विदेशी राष्ट्रों को देना पड़ता है। दूसरे शब्दों में कहें तो प्रत्येक आदमी पर साढ़े सात डालर का कर लगा है। अगर हम अपनी बीस करोड़ स्त्री जाति की जन-संख्या को नहीं गिनें जो इस साढ़े सात डालर के लिए जिम्मेवार नहीं है तो यह स्पष्ट है कि हर पुरुष को अपना हिस्सा दो गुना कर देना पड़ेगा और तब पन्द्रह डालर सालाना हर पुरुष को देना पड़ेगा। फिर पुरुष में भी तो तीन वर्ग हैं—वृद्ध, बच्चे और उत्पादक वर्ग। इनमें पहिले दो हिस्सा तो लेते हैं पर कमाई नहीं करते। पहिले दो वर्गों से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे भी टैक्स का भार सहन करें। इसका अर्थ यह हुआ कि पन्द्रह डालर टैक्स देने वाले पुरुषों की संख्या में दो तिहाई पुरुषों को कम कर देना चाहिए और तब युवक और प्रौढ़ वर्ग बच जाते हैं जो और सबों के बोझ को ढोने के लिए उत्पादन करते हैं। इस वर्ग के हर आदमी को ४५ डालर सालाना कर विदेशी राष्ट्रों को देना पड़ेगा।

क्या आप इसे भयावनी स्थिति नहीं मानते हैं? और यह हर आदमी पर जो कर है वह बढ़ता ही जाएगा, घटेगा नहीं। इसलिए जैसा कि मैं देखता हूँ अगर अब भी हम नहीं चेतते हैं बल्कि उसी तरह से चलते रहते हैं जिस तरह चलते आये हैं तो यद्यपि विदेशी कूटनीतिज्ञ अपने कामों पर ध्यान न देकर सो भी जाएँ तथापि हमारा राष्ट्र दस वर्षों के अन्दर बर्बाद हो जाएगा। आज हमारी जनता गरीब है। हमारे साधन भी समाप्त हो गए हैं। परन्तु अब से दस वर्षों के अन्दर हमारी गरीबी कहाँ पहुँच जाएगी यह तो केवल अनुमान ही किया जा सकता है। जब हमारे कर्ज का बोझा आज

से ढाई गुना और अधिक हो जाएगा, तो क्या आप सोचते हैं कि चीन जिंदा रह सकेगा ?

यह हो सकता है कि यूरोपीय राष्ट्र यूरोपीय युद्ध के अनुभव के बाद लड़ाई और हिंसक कामों में फिर प्रवृत्त नहीं होना चाहें और उत्तेजना के बदले शांति को तरजीह दें। तब तो हम शक्तिशाली राष्ट्रों के सैनिक नियंत्रण से बच सकते हैं। लेकिन इसी तरह हम कूटनीतिक चालों से नहीं बच सकते हैं। पर मान लें कि हम भाग्यवश इससे भी बच गए तो भी अकेले आर्थिक नियंत्रण से ही हम समाप्त हो जाएँगे जो दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है और हमारी जिन्दगी के रक्त को सोख रहा है।

इसके बाद भी एक तीसरी आफत हमारे सिर पर है। गत सौ वर्षों से हमारी जनसंख्या में वृद्धि नहीं हुई है और जब तक हम इसके बढ़ाने का कोई उपाय नहीं करेंगे तो आने वाली शताब्दी में यह मुश्किल से ही बढ़ेगी। गत शताब्दी में संयुक्तराष्ट्र की जन-संख्या में दस गुनी, रूस में चार गुनी, ब्रिटेन और जापान में तीन गुनी, जर्मनी में ढाई गुनी वृद्धि हुई है और फ्रांस में सब से कम वृद्धि होने पर भी वहाँ की जन-संख्या एक चौथाई बढ़ी है। जबकि उनकी जन-संख्या प्रतिदिन बढ़ती जाती है हमारी जहाँ की तहाँ स्थिर है और सबसे बुरी बात तो यह है कि वह कम होती जा रही है। अपने इतिहास की ओर ध्यान दीजिए; ज्यों-ज्यों हान् (चीन) नस्ल की जन-संख्या बढ़ती गई चीन के आदिनिवासी म्याव्, याव्, लाव्, तुङ् और दूसरी नस्लें लुप्त होती गईं। इसके विपरीत अगर उन नस्लों की जन-संख्या बढ़ती और उसका दबाव हम पर पड़ता तो आसानी से यह देखा जा सकता था कि हम ही नष्ट हो गए होते। शक्तिशाली राष्ट्रों के राजनीतिक प्रभुत्व के नीचे चीन को सुबह से संध्या तक भी अपनी स्थिति बनाए रखने की आशा नहीं है। विदेशी आर्थिक नियंत्रण के मारे जैसा कि हमने अभी तुरत अन्दाज लगाया है, दस वर्ष के भीतर ही हमारा पतन हो जाएगा और विदेशी राष्ट्रों की बढ़ती हुई जनसंख्या हमारे भविष्य के लिए सबसे बड़ा खतरा है।

ये तीनों आपदाएँ हमारे सिर पर पहिले से ही पहुँची हुई हैं। हम पहिले सही बातों को अच्छी तरह जान लें और अच्छी तरह यह भी समझ लें कि ये आपदाएं हमारे द्वार पर खड़ी हैं। हम इस बात को घर-घर फैला दें ताकि हर आदमी यह अनुभव करे कि हमारे राष्ट्र का पतन हमारे लिए कितना भयावह होगा और कितनी कठिनाई के साथ चीन संकट से निकल सकेगा जो उसे चारों ओर से घेरे हुए है। हम जब ये सब सही बातें अच्छी तरह

समझ लेंगे तब हम क्या करेंगे ? कहावत है—'निराश प्राणी अन्तिम बार भी लड़ता है।' जब हम देखेंगे कि हमारे बचने की कोई आशा नहीं है तब हमें अपनी शक्ति जागृत कर मरने-जीने के संग्राम में शत्रु से लोहा लेना ही पड़ेगा। ये आपदाएं हमारे सिर पर मंड़रा रही हैं। क्या हम लोहा ले सकते हैं ? निश्चय ही हम लोहा ले सकते हैं। लोहा लेने के योग्य होने के लिए हम इस बात को हृदयंगम कर लें कि हमारी मृत्यु की घड़ी नजदीक है। अगर हम राष्ट्रीयता का प्रचार करना चाहते हैं तो अपने चालीस करोड़ लोगों को यह अच्छी तरह बता दें मृत्यु उनके शिर पर है और इस पर तब आकुल प्राणी निश्चय ही उठेगा और लड़ेगा। क्या मृत्यु के मुँह में पड़े हुए हम लड़ना चाहते हैं ? सज्जनो आपमें से अनेकों विद्यार्थी हैं, सैनिक हैं और राजनीतिज्ञ हैं और आप सभी दूरदर्शी हैं। आप चालीस करोड़ लोगों को यह साफ दिखा दीजिए कि हमारी नस्ल अत्यन्त खतरे में है। अगर हमारे चालीस करोड़ लोग खतरे को समझ लेंगे तो अपनी राष्ट्रीयता को पुनः जीवित करना कठिन नहीं होगा।

विदेशी लोग बराबर कहते हैं कि चीन के लोग 'बिखरे बालू की परत' हैं। राष्ट्रीय भावना की दृष्टि से देखा जाय तो यह कथन ठीक है। हमारे यहाँ कभी भी राष्ट्रीय ऐक्य नहीं हुआ। क्या और दूसरे तरह की एकता हमारे यहाँ है ? जैसा कि मैंने पहिले कहा है चीन में परिवार और कुल के समुदाय अत्यंत संगठित हैं और चीन वालों में परिवार और कुल की भावना अत्यन्त ही बद्धमूल हो गई है। उदाहरण के लिए देखिए:—जब दो अपरिचित चीनी सड़क पर मिलते हैं और आपस में बात करते हैं तो पहिले एक-दूसरे से 'विशिष्ट कुलनाम' और 'महान् नाम'[४] पूछते हैं। अगर संयोग से वे दोनों एक ही कुल के निकल आते हैं तो आश्चर्यजनक रूप से आपस में वे अत्यन्त ही घनिष्ट हो जाते हैं और एक दूसरे को अपने परिवार के चचा या भाई की नाईं समझते हैं। अगर इस कीमती भावना का विस्तार किया जाय तो

४. चीन में अक्सर नाम तीन शब्द के होते हैं। पहला शब्द कुल-नाम होता है और पिछले दोनों असली नाम। चीनी लोग नम्रता के लिए तो प्रसिद्ध ही हैं। वे जब आपस में एक-दूसरे से मिलते हैं (जिनमें जान-पहचान नहीं है) तो पहिले कुल-नाम पूछते हैं। पर सीधे यह नहीं कि आपका कुलनाम क्या है बल्कि पूछते हैं' 'आपका विशिष्ट कुल-नाम (कुइ शिङ्)' और जब नाम पूछते हैं तो 'महान् नाम (ना-मिङ्)।'

हम कुलवाद को विकसित कर उसे राष्ट्रीयता के रूप में ला सकते हैं। अगर हम खोई हुई अपनी राष्ट्रीयता को लौटाना चाहते हैं तो हमें किसी प्रकार का समुदाय संगठन (group unity), बड़े समुदाय का संगठन (large group unity) चाहिए ही। बड़े समुदाय के संगठन करने का सबसे सहल और अच्छा रास्ता यह है कि उसका आधार छोटे-छोटे समुदाय संगठन पर हो। चीन में ये छोटे-छोटे समुदाय कुल और परिवार के हैं। चीन के लोगों में 'जन्म-स्थान' के प्रति आदर की भावना भी बद्धमूल है। इसलिए एक प्रान्त या एक बस्ती के रहनेवालों का संगठन करना बहुत आसान है।

जैसा कि मैं अनुभव करता हूँ अगर हम इन दो अच्छी भावनाओं को आधार मान लें तो सम्पूर्ण देश की जनता का संगठन करना आसान हो जाएगा। लेकिन इच्छित उद्देश्य तक पहुँचने के लिए सब का सहयोग अत्यन्त ज़रूरी है। अगर हम यह सम्बन्ध स्थापित कर लें तो अन्य देशों की अपेक्षा चीन के लिए राष्ट्रीयता प्राप्त करना आसान है। पश्चिम में व्यक्ति ही इकाई है तथा माता-पिता और सन्तान, भाई-बहिन, स्त्री-पुरुष आदि के अधिकार सम्बन्धी कानून का उद्देश्य व्यक्ति की रक्षा करना है। मुकदमों में पारिवारिक हालतें नहीं पूछी जाती हैं, केवल व्यक्ति के आचार-विचार पर ध्यान दिया जाता है। व्यक्ति ही राज का अंग बन जाता है (The Individual expands immediately into the state) तथा राज और व्यक्ति के बीच कोई सामान्य और दृढ़ सामाजिक बन्धन नहीं है। इसलिए जनता को एक सूत्र में बांधकर एक राज के रूप में परिणत करना चीन में जितना आसान है उतना विदेशी राष्ट्रों में नहीं। क्योंकि चीन में परिवार और व्यक्ति दोनों पर जोर दिया जाता है; परिवार के मुखिया से हर बात में सलाह लेनी होती है। इस प्रथा को कोई तो पसन्द करते हैं और कोई इसकी आलोचना करते हैं। लेकिन मैं सोचता हूँ कि चीन की जनता और राज के बीच के सम्बन्ध में, पहिले परिवार के प्रति भक्ति होनी चाहिए, तब कुल के प्रति और अन्त में राष्ट्र के प्रति। इस प्रकार से उत्तरोत्तर विकसित होने वाली प्रणाली सुव्यवस्थित और सुनियंत्रित होगी और इस प्रकार के छोटे और बड़े सामाजिक संगठनों में जो सम्बन्ध होगा वह वास्तविक सम्बन्ध होगा। अगर हम कुल को सामाजिक इकाई मान लें और उसके भीतरी संगठन में सुधार कर सब इकाइयों को मिलाकर एक राज का निर्माण करें तो स्वभावतः विदेशी लोगों की अपेक्षा जो व्यक्ति को इकाई मानते हैं, हमारा काम अत्यन्त सहज होगा। जहाँ हर व्यक्ति एक इकाई है वहाँ एक

देश में कम से कम करोड़ों इकाइयाँ होंगी; जैसे चीन में चालीस करोड़ हो सकती हैं। और इतनी अलग-अलग इकाइयों को एक सूत्र में गूँथना निश्चय ही बहुत कठिन काम है।

पर मान लीजिए कि हमने कुल को इकाई बना ली तो यह तो जानी हुई बात है कि चीन में केवल एक सौ कुलनाम हैं। एक ही कुल के विभिन्न पुरखों को समय-समय पर खास-खास इज़्ज़त बख्शी गई थी और इस प्रकार कुलों की संख्या बढ़ गई है तथापि इस समय चार सौ से अधिक कुल चीन में नहीं हैं। कुल के सभी आदमी एक गोत्र के होते हैं। हर परिवार बराबर अपनी वंशावली में हेर-फेर करता रहता है और अपने पूर्वज को सैकड़ों पीढ़ी पीछे बहुत अतीत का बताता है। पूर्वजों के नाम अक्सर बदल दिए जाते थे और आज कोई भी मूल कुलनाम की खोज नहीं करता है। इस प्रकार पूर्वजों को बहुत प्राचीन मानने की प्रथा चीन में हज़ारों वर्षों से है और यह चीनी जनता के सामाजिक जीवन में बद्धमूल हो गई है। विदेशी लोग इस प्रथा को निरर्थक मानते हैं लेकिन 'पूर्वजों के प्रति आदर की भावना और कुल के आदमियों के प्रति दया की भावना' हज़ारों वर्षों से चीनी दिमाग में घुसी हुई है। इसलिए चीनियों ने देश के पतन पर ध्यान नहीं दिया। उन्हें इस बात की फ़िक्र नहीं थी कि कौन उनका सम्राट है। वे केवल अनाज-कर (Corn tax) देना जानते थे। लेकिन अगर उनके कुल के नाश की संभावना के विषय में कुछ कहा जाता था तो कुल-परम्परा के टूटने का भय उनके मन में घर कर लेता था और उसे (कुल-परम्परा को) बचाने के लिए वे अपनी जान दे सकते थे। क्वाङ्-तुङ् और फु-चिएन प्रान्तों में पहिले जो पारिवारिक कलह थे उनकी उत्पत्ति यों हुई थी कि किसी परिवार या परिवार के एक सदस्य की इज्जत या धन पर दूसरे परिवार के किसी आदमी ने धक्का पहुँचाया था। अपने नाम की इज़्ज़त रखने के लिए परिवार के सदस्य अपने जीवन और धन के बलिदान करने की परवा नहीं करते हैं यद्यपि यह प्रथा बर्बरतापूर्ण जान पड़ती है परन्तु इसके कई गुण सुरक्षित रखने योग्य हैं। अनुमान कीजिए कि हम उन्हें यह बता सकें कि वे विदेशियों द्वारा सताए जा रहे हैं तथा उनकी जाति जल्द ही समाप्त हो जाएगी और तब परिवार के बचने की भी कोई आशा नहीं रहेगी। चीन के आदिनिवासियों ने (म्यान्, याव् आदि) बहुत पहिले से ही अपनी वंश-परम्परा को तोड़ दिया है। अगर हम अपने कुलों को संगठित कर एक राष्ट्र नहीं बना लेते हैं जो दूसरे राष्ट्रों का मुकाबिला कर सके, तो किसी न किसी दिन म्याव् और याव् नस्लों की तरह हमारे

पूर्वजों की संतान न रह जाएगी और न उनकी (पूर्वजों की) पूजा ही हो सकेगी।

हम सबसे पहिले इस कुल की आपसी कलह को विदेशी राष्ट्रों के विरुद्ध कलह के रूप में परिणत कर सकते हैं और इस प्रकार देश में होने वाले इन भयंकर झगड़ों को सदा के लिए नष्ट कर सकते हैं और कुल के नाश होने के डर को दिखाकर बहुत आसानी और शीघ्रतापूर्वक अपनी जाति को संगठित कर एक शक्तिशाली राष्ट्र बना सकते हैं। हम कुल को ही छोटा-छोटा आधार मान लें और इसी आधार पर राष्ट्र-निर्माण का कार्य प्रारम्भ कर दें। अनुमान कीजिए कि चीन में चार सौ कुल हैं। हमारा काम तो केवल चार सौ व्यक्तियों के साथ काम करने के समान होगा। हम पहिले हर परिवार के नाम के साथ जो बनी हुई मूल संस्था है उसी से प्रारम्भ करेंगे और कुल के नाम पर लोगों को संगठित करेंगे। पहिले यह काम अड़ोस-पड़ोस और कसबों में, फिर प्रान्त में अन्त में सारे देश में करेंगे जब तक कि हर परिवार के नाम पर बड़ा-बड़ा संगठित समुदाय न बन जायगा। उदाहरण के लिए देखिए:—'चेन्' नामक कुल नाम के सभी सदस्य अपने प्रारम्भिक संगठन को ही आधार मानकर पहिले अड़ोस-पड़ोस और कसबों में और फिर प्रान्त में रहने वाले अपने कुल नाम के सभी सदस्यों को संगठित करें, तो मैं समझता हूँ के दो-तीन वर्षों के अन्दर ही चेन् कुल एक बड़ी जमात के रूप में संगठित हो जाएगा। जब हर कुल प्रकार के विस्तृत पैमाने पर संगठित हो जायगा तो हम उन कुलों को जिनका आपस में कुछ संबंध मिलाकर एक बड़ा समुदाय बना सकते हैं। हम हर समुदाय को अच्छी तरह बता देंगे कि हमारे ऊपर कितनी बड़ी आपदा है तथा हमारी मृत्यु घड़ी नजदीक आती है। हम यह भी बता देंगे कि अगर हम सभी मिल-कर एक राष्ट्रीय संगठन—प्रजातंत्र चीन—की स्थापना कर सकें तो इस प्रकार के संगठन के होने पर हमें बाहरी शत्रुओं से डरने का कोई कारण नहीं रह जायगा और अपने राज को पुनर्जीवित करने में हम असमर्थ नहीं रह सकेंगे।

प्राचीन इतिहास में याव् के बारे में लिखा है—'उसने नौ सगोत्रों[५] को प्यार कर आदर्श गुण का प्रदर्शन किया था।' जब ये सगोत्र आपस में मित्रता के साथ रहने लगे तो उसने (याव्) सौ परिवार के बीच शांति स्थापित की

५. नौ सगोत्र के बारे में कई मत हैं। पर दो मत अधिक प्रचलित और मान्य हैं। प्रथम—अपने से चार पुश्त पहिले और चार पुश्त पीछे कुल नौ पुश्त नौ सगोत्र हैं। द्वितीय—१. नौ पुश्तों का अपना एक गोत्र २. नाना ३. नानी ४. मौसी के बाल-बच्चे ५. ससुर ६. सास ७. फूफा-फूफू के बाल-बच्चे ८. बहिन के बाल-बच्चे ९. बेटी के बाल-बच्चे—कुल नौ सगोत्र।

थी। जब सौ परिवार शिक्षित हो गए तो उसने (याव्) बहुत से राजों का संगठन किया और तब काले बाल वाली नस्ल ने शांति युग में प्रवेश किया। उनके (याव्) शांतिमय शासन का कार्य परिवार से ही प्रारम्भ हुआ था। धीरे-धीरे वह सभी आदमियों के बीच फैलता गया और अन्त में सभी छोटे-छोटे राज संगठित हो गए और काले बाल वाली नस्ल एकता के युग में आनन्द से रहने लगी। क्या उसने (याव्) हमारे सामने राज के पुनरुद्धार करने और शत्रुओं का विरोध करने के लिए एक उत्कृष्ट उदाहरण नहीं रखा है ? अगर हम चार सौ कुलों के बदले चालीस करोड़ व्यक्तिगत आदमी से काम प्रारम्भ करें तो हमको पता भी नहीं चलेगा कि इस 'बिखरे बालू की परत' को कहाँ से ठोस बनाने का काम शुरू किया जाय। जापान ने महान् यामातो जाति को निर्माण करने के लिए पहिले अपने सामंतशाही राजों के स्वार्थों का संगठन किया और जिन कारणों से जापान ने यह किया ठीक वे ही कारण हैं जिसकी वजह से मैं चीनी जाति के निर्माण के लिए कुल के स्वार्थों के संगठन का प्रचार कर रहा हूँ।

अगर हमारे सभी लोग जान जाएँ कि वे शोषित हैं तथा उस अवस्था पर आ पहुँचे हैं कि हमारा उबार होना असंभव है और अगर हम संगठित होते हैं तो हमें पहिले विभिन्न कुलों को कुल समुदाय में और तब इन कुल समुदायों को महान् राष्ट्रीय संघ में ज़रूर संगठित करना है। तभी हमारे पास कुछ क्रियात्मक उपाय हो सकते हैं जिनके द्वारा हम विदेशियों से मुक़ाबिला कर सकेंगे। जिस हालत में हम अभी हैं, हम विदेशियों से नहीं लड़ सकते। क्योंकि हमारे पास संगठित समुदाय नहीं है। अगर संगठित समुदाय हो जाय तो विरोध करना आसान हो जायगा। उदाहरण के लिए देखिए:—भारतवर्ष इस समय ब्रिटिश प्रभुत्व के अन्दर है और वहाँ का शासन पूर्णरूप से ब्रिटिश सरकार करती है। भारतीय जनता को राजनीतिक प्रभुत्व के विरोध करने का कोई उपाय नहीं है लेकिन गांधीजी के असहयोग की नीति द्वारा वे आर्थिक नियंत्रण का मुक़ाबिला कर रहे हैं। यह असहयोग क्या है ? भारतीय जनता विदेशियों को उनके ज़रूरत की चीज़ें उन्हें नहीं देगी और ब्रिटिश लोग जो चीज़ भारतीयों को देना चाहेंगे उन्हें वे नहीं लेंगे। उदाहरण के लिए लीजिए:—अँगरेज मजदूर चाहते हैं तो भारत के लोग उनके लिए काम नहीं करेंगे; अँगरेज भारतीयों को नाना प्रकार की वस्तुएँ देते हैं लेकिन भारतीय लोग विदेशी माल व्यवहार में नहीं लाएँगे बल्कि अपने देश की बनी चीज़ें ही व्यवहार करेंगे। जब गांधीजी की योजना

पहिले पहल प्रकाशित हुई तो अँगरेजों ने उसे निरर्थक समझ कर गांधी की ओर ध्यान नहीं दिया। लेकिन काफ़ी दिनों के बाद जब सम्पूर्ण भारत में असहयोग समितियाँ बनाने लगीं तब ब्रिटेन के कारबार पर गहरा धक्का लगा। इसलिए ब्रिटेन ने गांधी को जेल में बन्द कर दिया। अगर हम भारत की असहयोग नीति के फलीभूत होने का कारण ढूँढ़ें तो हमें पता चलेगा कि यह सम्पूर्ण देशवासियों की योग्यता थी कि वे उस योजना को व्यावहारिक रूप दे सके। अगर गुलाम देश भारत असहयोग की नीति को कार्यान्वित कर सकता है तो निश्चय ही चीन में, जो अब तक समाप्त नहीं हुआ है, यहाँ की जनता यद्यपि वह दूसरे कामों को आसानी से नहीं कर सके तो निम्न बातें तो कर ही सकती है जैसे—विदेशियों के लिए नहीं काम करना, विदेशियों की दासता नहीं स्वीकार करना, या विदेशी तैयार माल व्यवहार में लाने से इन्कार करना, देशी चीज़ों को प्रोत्साहन देना, विदेशी बैंक-नोट नहीं स्वीकार करना, केवल चीन सरकार द्वारा चालू किया गया सिक्का व्यवहार करना और विदेशियों के साथ के आर्थिक संबंध को तोड़ लेना आदि। जनसंख्या रूपी समस्या आसानी से हल हो जाएगी। चीन की जनसंख्या पहिले से ही सबसे बड़ी है और उसके पास (चीन के पास) साधन भी अपार हैं। हमारे भूतकाल के शोषण का कारण हमारे यहाँ की जनता की अज्ञानता है जो (जनता) 'जड़ता में पैदा होती है और स्वप्न में मरती है।' अगर भारत की नाईं हमारे लोग भी असहयोग करने लगें और अगर कुल के आधार पर हम राष्ट्रीय एकता कायम कर सकें, तो कोई बात नहीं चाहे विदेशी लोग किसी प्रकार का—सैनिक, आर्थिक या जनसंख्या संबंधी दबाव क्यों न लाएँ, हम निर्भय रहेंगे। इसलिए चीन को तात्कालिक मृत्यु के मुख से बचाने के लिए सबसे मौलिक उपाय यह है कि हम पहिले एकता कायम करें। अगर तीन या चार सौ कुल समुदाय राज के लिए संगठित हो जाएँगे तो हमारा रास्ता स्वयं निकल आएगा और तब कोई बात नहीं चाहे जिस राष्ट्र से हो हम मुकाबिला करने में समर्थ होंगे।

विदेशी शक्तियों के विरोध करने के दो रास्ते हैं—पहला क्रियात्मक जैसे राष्ट्रीय भावना को जगाना, प्रजातंत्र और जीविका की समस्याओं के हल का रास्ता ढूँढ़ना और शक्तिशाली राष्ट्रों से लोहा लेना। दूसरा निषेधात्मक है जैसे असहयोग और निष्क्रिय विरोध, जिनसे विदेशी साम्राज्य-वादी कार्रवाइयाँ कमजोर हो जाएँगी, राष्ट्रीय स्थिति सुरक्षित रहेगी और राष्ट्र सत्यानाश से बच जाएगा।

फ़रवरी २२, १९२४ ई०

छठवाँ व्याख्यान

सज्जनो ! आज मेरे भाषण का विषय है—अपनी राष्ट्रीय स्थिति को हम कैसे पुनर्संगठित कर सकते हैं ? इस प्रश्न के अध्ययन करने के लिए पिछले व्याख्यानों में जो कुछ कहा गया है उसे हमें नहीं भूलना चाहिए। वर्तमान समय में हमारी राष्ट्रीय स्थिति क्या है ? आज के संसार में हमारी जाति और हमारे राष्ट्र का क्या स्थान है ? विचारकों का एक दल का जिन्हें लोग पैगम्बर और उद्धारक कहते हैं, कहना है कि चीन की स्थिति अर्द्ध उपनिवेश-सी है। लेकिन जैसा कि इस समस्या की छानबीन करते समय मैंने बताया है कि चीन अर्द्ध उपनिवेश से भी कहीं अधिक गया गुजरा है। अन्नाम फ्रांस का उपनिवेश है और कोरिया जापान का। अगर चीन अर्द्ध उपनिवेश होता तो अन्नाम और कोरिया से, जो पूर्ण उपनिवेश हो चुके हैं, उसका स्थान थोड़ा ऊँचा होता। लेकिन सच्ची बात तो यह है कि अन्नाम और कोरिया से हमारी स्थिति की कैसे तुलना की जा सकती है ? मेरे विचार से चीन पूर्ण उपनिवेश से एक सीढ़ी और नीचे है ! इसलिए मैंने चीन के लिए एक नया नाम रखा है और वह है 'हाइपो। उपनिवेश' इस नाम की व्याख्या मैं भली भाँति कर चुका हूँ इसलिए उसे आज पुनः दोहराने की जरूरत नहीं समझता।

प्राचीन काल में चीन का स्थान संसार में क्या था ? एक समय चीन अत्यन्त ही शक्तिशाली और सुसंस्कृत राष्ट्र था। वह संसार का सर्व श्रेष्ठ राष्ट्र था और उसका स्थान वर्तमान समय के शक्तिशाली राष्ट्र ग्रेटब्रिटेन, संयुक्तराष्ट्र अमेरिका, फ्रांस और जापान से कहीं अधिक ऊँचा था। चूँकि एक समय में चीन ही संसार का एकमात्र शक्तिशाली राष्ट्र था और हमारे पूर्वज इतने ऊँचे स्थान तक पहुँच गए थे इसलिए मैं कहता हूँ कि आज हमारा स्थान उपनिवेश-सा भी नहीं है। क्यों चीन एक समय उच्चता के उत्तुंग शिखर पर पहुँच गया और फिर क्यों एक ही बार दस हजार फीट नीचे गिर पड़ा। प्रधान कारण मैं आपको पहिले ही बता चुका हूँ:—चूँकि हमने राष्ट्रीय भावना खो दी इसलिए हमारा राष्ट्र दिनों दिन गिरता गया। इसलिए अगर हम अपनी राष्ट्रीय स्थिति को पुनः लौटाना चाहते हैं तो सबसे पहिले हम को राष्ट्रीय भावना जगानी पड़ेगी। अगर हम अपनी राष्ट्रीय भावना

जगाना चाहते हैं तो हमें दो शर्तें पूरी करनी होंगी। पहली—हम इस बात को अच्छी तरह समझ लें कि हमारी स्थिति आज अत्यन्त भयावह है और दूसरी, अपने खतरे को जानकर हम चीन के प्राचीन सामाजिक समुदाय—परिवार और कुल—को अच्छी तरह से काम में लावें और उन्हें एक महान् राष्ट्र बनाने के लिए संगठित और मजबूत करें। जब ये काम पूरे हो जाएंगे और हमारे पास चालीस करोड़ की सम्मिलित शक्ति लड़ने के लिये हो जाएगी तो कोई परवाह की बात नहीं; चाहे हमारी स्थिति कितनी भी नीची क्यों न हो हम उसे ऊपर उठाने में समर्थ होंगे। इसलिए जानना और संगठित होना अपनी राष्ट्रीयता को पुनर्जीवित करने के लिए एकदम जरूरी है। जब आप सभी इन जरूरतों को समझने आये हैं तो सम्पूर्ण देश की चालीस करोड़ जनता के बीच इन्हें फैला दीजिए ताकि सब आदमी इसे अच्छी तरह समझ लें और तब हम अपनी खोई हुई राष्ट्रीय भावना को फिर से जागृत करने की ओर अग्रसर होंगे। हमारी पुरानी राष्ट्रीय भावना सोई हुई है। हम उसे पहिले जरूर जगा लें और तब हमारी राष्ट्रीयता में पुनः चेतना का संचार शुरू हो जाएगा। जब हमारी राष्ट्रीयता जाग्रत हो जाएगी तो हम एक कदम और आगे बढ़ा सकेंगे और तब राष्ट्रीय स्थिति के लौटाने के मसलों की छानबीन कर सकेंगे।

चीन ने अपनी प्राचीन प्रतिष्ठा को केवल एक रास्ते से प्राप्त नहीं किया था। साधारणतः पहिले कोई भी राष्ट्र अपनी विशाल सैनिक शक्ति के कारण और तब संस्कृति की विभिन्न शाखाओं का विकास कर शक्तिशाली बनता है। लेकिन अगर कोई जाति या राष्ट्र अपनी स्थिति अक्षुण्ण बनाए रखना चाहती है तो उसके लिए नैतिकता एकदम जरूरी है। उच्च नैतिकता का विकास करके ही कोई राष्ट्र लम्बे समय तक और शान्ति के साथ रहने की आशा रख सकता है। प्राचीन समय में एशिया में मंगोल जाति से बढ़ कर कोई दूसरी शक्तिशाली जाति नहीं थी। पूर्व में इस जाति ने चीन पर आधिपत्य जमाया और पश्चिम में यूरोप को अपना दास बनाया। चीन अपने महान् उत्कर्ष के दिनों में भी कास्पियन सागर के पश्चिमी किनारे से आगे अपनी शक्ति नहीं ले जा सका था तथा मुश्किल से पूर्वी किनारे तक भी पहुँच सका था। इसलिए उसकी (चीन की) सीमा कभी भी यूरोप से नहीं जुड़ सकी थी। लेकिन मंगोल राजवंश के समय मंगोलों ने प्रायः सम्पूर्ण यूरोप को हड़प लिया था। इस प्रकार चीन वाले अपने उत्कर्ष के समय जितने शक्तिशाली थे। मंगोल उनसे भी अधिक शक्तिशाली थे। फिर भी मंगोल

राजकुल बहुत दिनों तक नहीं टिक सका। जबकि दूसरे राजकुल जो मंगोल से कम शक्तिशाली थे, बहुत दिनों तक बने रहे। इसका कारण हम मंगोलों के चरित्र-बल में पाते हैं जो और राजकुलों की अपेक्षा हीन था। चूँकि चीन जाति का चरित्र-बल दूसरी जातियों से कहीं ऊँचा था और यद्यपि मंगोलों ने षुङ् राजवंश के समय चीन को दखल कर लिया था परन्तु बाद में वे चीनियों द्वारा अपने में घुला-मिला लिए गए और यद्यपि मांचुओं के हाथ मिङ् राजवंश का दो बार पतन हुआ लेकिन वे भी चीनियों द्वारा अपने में खपा लिए गए। अपनी जाति के उच्च चारित्रिक बल के कारण ही हम केवल अपने को बनाए ही नहीं रह सके बल्कि राष्ट्र के पतन हो जाने पर भी हमारे पास बाहरी जातियों को घुला-मिला लेने की शक्ति बची रही। असली बात तो यह है कि अगर हम राष्ट्रीय प्रतिष्ठा को लौटाना चाहते हैं तो हम सभी लोगों को एक राष्ट्र के रूप में संगठित करने के अलावे हमें पहिले अपनी प्राचीन नैतिकता भी पुनः प्राप्त करनी होगी। तभी हम अपने पहिले की-सी राष्ट्रीय प्रतिष्ठा प्राप्त करने की योजना बना सकते हैं।

चीन की प्राचीन नैतिकता को अभी भी चीनियों ने नहीं छोड़ा है। हमारी नैतिकता में पहिले राजभक्ति और मातृ-पितृ-भक्ति, तब दयालुता और प्रेम तब ईमानदारी और न्याय और इसके बाद सामंजस्य और शांति आती है। चीनी जनता में अभी भी ये प्राचीन गुण पाए जाते हैं। लेकिन विदेशी-जातियों का जब से चीन में प्रभुत्व हुआ है और जब से विदेशी संस्कृति ने अपना प्रभाव सम्पूर्ण देश में फैलाना प्रारम्भ किया है तब से जनता के एक समुदाय ने जो विदेशी संस्कृति के कारण बेहोश हो गए हैं, प्राचीन नैतिक गुणों को यह कह कर छोड़ना प्रारम्भ कर दिया है कि नई संस्कृति के सामने प्राचीन संस्कृति बेमतलब है। हम यह नहीं समझते हैं कि प्राचीन काल की अच्छी बातों को हमें सुरक्षित रखना चाहिए और केवल बुरी बातों को ही छोड़ देना चाहिए। चीन में अभी पुराने और नए दो विचारों के बीच संघर्ष हो रहा है और हमारे बहुत से लोग नहीं जानते हैं कि उन्हें किस पथ का अनुसरण करना चाहिए।

कुछ ही दिन पहिले मैं एक देहात में था और वहाँ मैं एक पूर्वज-मंदिर[1] में गया। आराम करने के लिए जब मैं मंदिर के सबसे भीतरी हिस्से

---

1. चीन के लोग अपने पूर्वजों की पूजा करते हैं। इसके लिए हर शहर तथा बड़े गाँवों और कसबों में पूर्वज मंदिर होता है।

में पहुँचा तो मैंने अपनी दाहिनी ओर 'मातृ-पितृ भक्ति' शब्द लिखा पाया लेकिन बांई ओर कुछ नहीं था। मैं समझता हूँ वहाँ जरूर पहिले 'राजभक्ति' शब्द लिखा होगा। इस प्रकार लिखा हुआ शब्द मैंने कई बार देखा है। बहुत से पूर्वज मंदिरों और परिवार मंदिरों में ऐसी ही हालत है। दूसरे दिन जब मैंने गौर से देखा तो ज्ञात हुआ कि 'मातृ-पितृ भक्ति' शब्द बड़े अक्षरों में लिखा है। जबकि बांई ओर की दीवार पर अक्षर मिटाने के चिह्न हैं जो नये जान पड़े। यह या तो देहात के लोगों का या उस मंदिर में रहने वाले सैनिकों का काम होगा। लेकिन मैंने ऐसे बहुत पूर्वज मंदिरों को देखा है जहाँ सैनिकों का डेरा नहीं रहा है। वहाँ भी दीवार पर से 'राजभक्ति' शब्द मिटा दिया गया है। यह आदमी के एक समुदाय की मनोवृत्ति का परिचय है कि चूँकि अब हमने प्रजातंत्र की स्थापना की है इसलिए 'राजभक्ति' की चर्चा की कोई जरूरत नहीं है। उनका कहना है कि प्राचीन काल में राजाओं के प्रति राजभक्ति प्रदर्शित की जाती थी और चूँकि गणतंत्र प्रणाली में कोई राजा नहीं है इसलिए राजभक्ति की भी जरूरत नहीं है और इसे उठा फेंकना चाहिए। इस प्रकार का कथन सचमुच में गलतफहमी के कारण है। हम देश में राजाओं को नहीं चाहते हैं लेकिन राजभक्ति के बिना हमारा काम नहीं चलेगा। अगर हम कहें कि राजभक्ति अब सड़ी हुई चीज हो गई है तो राष्ट्र के बारे में क्या होगा? क्या हम राष्ट्र के प्रति राजभक्ति नहीं प्रदर्शित कर सकते हैं? यह तो सच है कि हम राजाओं के प्रति राजभक्ति रखने की बात अब नहीं सोच सकते हैं लेकिन जनता के प्रति, अपने कर्त्तव्य के प्रति राजभक्ति का क्या होगा? जब हम किसी काम का भार लेते हैं तो सम्पूर्ण रूप से जब तक काम समाप्त न हो जाय हमको पीछे नहीं हटना चाहिए। अगर सफलता नहीं मिलती है तो हमें अपना जीवन बलिदान करने में भी आगा-पीछा नहीं करना चाहिए—यही राजभक्ति है। प्राचीन राजभक्ति की शिक्षा की सीमा प्राण न्योछावर करने तक की थी। यह तो एकदम गलत धारणा है कि प्राचीन काल की राजभक्ति राजाओं के प्रति थी और चूँकि अब राजा नहीं हैं इसलिए इसकी भी ज़रूरत नहीं रही और अब हम अपनी मर्जी के मुताबिक जैसा चाहें वैसा कर सकते हैं। अब हर आदमी जो प्रजातंत्र की बात करता है प्राचीन नैतिक मापदंड को तोड़ डालता है और सिद्धान्ततः तो यह ठीक है। गणतंत्र प्रणाली में भी राजभक्ति का होना ज़रूरी है लेकिन वह राष्ट्र और जनता के प्रति होती है, राजाओं के प्रति नहीं। चालीस करोड़ के प्रति राजभक्ति रखना स्वभावतः ही किसी एक

०यक्ति के प्रति रखने से कहीं उच्च स्तर का होगा। इसलिए मैं कहता हूँ कि राजभक्ति के ऊँचे नैतिक गुणों को हमें अभी भी अपनाना चाहिए।

मातृ-पितृ-भक्ति गुण तो चीन में और भी विलक्षण रूप से पाया जाता है। इसे पालन करने में और जातियों से हम बहुत आगे बढ़े हुए हैं। 'मातृ-पितृ-भक्ति कानून' नामक पुस्तक में माता पिता के प्रति किए जाने वाले कर्त्तव्यों का इतना विशद वर्णन है कि वह मनुष्य के सम्पूर्ण कार्य-क्षेत्र को समाविष्ट किए हुए है और हर विषय में परिव्याप्त है। संसार के किसी भी सभ्य देश में मातृपितृ भक्ति के ऊपर इतनी सुन्दर पुस्तक नहीं है। मातृ-पितृ-भक्ति तो अभी भी अपरिहार्य है। अगर गणतंत्र प्रणाली के मानने वाले सभी लोग राजभक्ति और मातृ-पितृ-भक्ति को अंतिम सीमा तक करते रहें तो हमारा राष्ट्र स्वभावतः ही फूले-फलेगा।

दयालुता और प्रेम भी चीन के उच्च नैतिक सिद्धान्तों के अंग हैं। प्राचीन काल में मो-च[२] ने जिस प्रकार प्रेम की व्याख्या की है वैसी किसी ने भी नहीं की है। उनके 'बिना भेद-भाव के प्रेम' का सिद्धान्त वैसा ही है जैसा ईसामसीह के 'विश्व प्रेम' का सिद्धान्त। पूर्वजों ने देश की सरकार पर प्रेम का सिद्धान्त यों लागू किया था:—'प्रजा को अपने बच्चों-सा प्यार करो और सभी आदमियों के प्रति सदय रहो और सभी प्राणियों को प्यार करो'। कर्त्तव्य के सभी क्षेत्रों में प्रेम की भावना थी जिससे हम देख सकते हैं कि कितनी अच्छी तरह उन्होंने दयालुता और प्रेम को व्यावहारिक रूप दिया था। जब से हमारा विदेशियों के साथ सम्पर्क होने लगा है तब से कुछ लोगों ने सोच लिया है कि विदेशियों की अपेक्षा चीनियों की दयालुता और प्रेम का आदर्श निम्नकोटि का है। क्योंकि चीन में विदेशी लोग शिक्षा-प्रचार और रोग-दुःख दूर करने के लिए स्कूल और अस्पताल कायम कर दयालुता और प्रेम के आदर्श को व्यावहारिक रूप दे रहे हैं। दयालुता और प्रेम के सुन्दर गुणों को व्यावहारिक रूप देने में लगता है माने अन्य दूसरे देशों से चीन बहुत पीछे है और इसका कारण यह है कि इन गुणों का दिखावा वे (चीनी) कम करते हैं। पर दयालुता और प्रेम चीनी चरित्र के प्राचीन गुण हैं और जब हम दूसरे देशों की बातों का अध्ययन करते हैं तो हम उनसे व्यावहारिक तरीका लें और प्राचीन चीन की

---

२. चीन के एक दार्शनिक जिनका समय ई० पू० पाँचवीं शताब्दी माना जाता है।

दयालुता और प्रेम को पुनः जागृत करें और उसे अधिक भव्यता के साथ चमकने दें।

ईमानदारी और न्याय—प्राचीन काल में चीन अपने पड़ोसी राष्ट्रों से व्यवहार करने में और अपने मित्रों से मिलने-जुलने में हमेशा ईमानदारी का वर्त्ताव रखता था। मेरी राय में ईमानदारी के गुण विदेशियों की अपेक्षा चीनी लोग अधिक व्यवहार में लाते हैं। यह तो कारबार के मामलों में अच्छी तरह से देखा जा सकता है। चीनी लोग अपना कारबार करने में लिखा-पढ़ी की बातें नहीं करते हैं। अकसर जबानी ही सभी काम होते हैं जिस पर पूर्णरूप से विश्वास किया जाता है। इस प्रकार जब विदेशी लोग चीन वालों को किसी प्रकार के माल का आर्डर देते हैं तो लिखा-पढ़ी के शर्त्तनामे की ज़रूरत नहीं होती है। केवल हिसाब की बही में दर्ज कर लिया जाता है और सब काम पूरा समझा जाता है। लेकिन जब चीन वाले विदेशियों को किसी प्रकार के माल का आर्डर देते हैं तो व्योरेवार शर्तनामे की ज़रूरत होती है। अगर कोई मुख्तार या सरकारी प्रतिनिधि (Deplomatic officer) उस स्थान पर नहीं रहा तब विदेशी लोग भी चीनी-प्रथा का अनुसरण कर अपनी लेन-देन की बही में आर्डर दर्ज कर लेते हैं। पर इस प्रकार की घटना बहुत कम होती है। प्रायः शर्त्तनामा लिखा ही जाता है। मान लीजिए दोनों दल (आर्डर देने वाले और लेने वाले) बिना लिखा-पढ़ी के इस बात पर राजी हो जाएं कि पूर्व निश्चित मूल्य पर ही माल लेंगे और अगर माल की बिक्री का दर इस बीच घट जाय और फिर भी वह माल ले ले तो उसे (माल लेने वाले को यानी जिसने माल का आर्डर दिया था) स्वभावतः ही घाटा उठाना पड़ेगा। उदाहरण के लिए लीजिए जब कि किसी माल का आर्डर दिया गया उस समय माल की कीमत दस हज़ार डालर हो लेकिन माल छुड़ाने के समय बिक्री का दर घट जाने के कारण उसका मूल्य पाँच हज़ार डालर हो जाय तो उसे (आर्डर देने-वाले को) माल लेने में पाँच हज़ार की घटी होगी। चूँकि माल के लेन-देन की बातचीत के समय कोई शर्त्तनामा नहीं लिखा गया इसलिए चीन का व्यापारी माल लेने में इंकार कर सकता है लेकिन, नहीं, वह अपनी प्रतिज्ञा-पालन के लिए पाँच हज़ार का घाटा उठाना सहन करेगा पर माल लेने से इंकार नहीं करेगा। जिसके फल-स्वरूप विदेशी लोग जिन्होंने चीन के भीतर मार्गों में व्यापार किया है चीनी लोगों की अत्यन्त प्रशंसा करते हैं और कहते हैं चीनी लोग अपनी बात का विदेशियों के लिखित शर्त्तनामे से भी अच्छी तरह पालन करते हैं। जापान

में, यद्यपि-विदेशी व्यापार जब भी जापानी व्यापारी का आर्डर लेते हैं तो बराबर शर्त्त नामा लिखा लेते हैं तथापि जापानी व्यापारी शर्त्तनामे को बराबर तोड़ देते हैं। उदहरण के लिए अगर माल का आर्डर देते समय उसका दाम दस हज़ार डालर तय हुआ लेकिन माल लेने के समय अगर दाम घट कर पाँच हज़ार डालर पर आ गया तो शर्त्तनामे के रहने पर भी जापानी व्यापारी माल लेने से इंकार कर देते हैं जिसके फलस्वरूप विदेशी लोग जापानियों के विरुद्ध बराबर कचहरी में मुकद्दमा पेश किया करते हैं। जिन विदेशी लोगों ने पूर्वी एशिया में बहुत दिनों तक रह कर चीनियों और जापानियों दोनों के साथ व्यापार किया है वे चीनियों की बराबर प्रशंसा करते हैं लेकिन जापानियों की नहीं।

न्याय :—अपनी चरम शक्ति के दिनों में भी चीन ने किसी दूसरे राष्ट्र को कभी पूर्णरूप से नाश नहीं किया। कोरिया पर नजर दौड़ाइए जो पहिले नाम के लिए चीन का करद राज्य था पर वास्तव में एक स्वतंत्र राष्ट्र था। बीस वर्ष पहिले तक कोरिया स्वतंत्र था। केवल गत दश या इससे कुछ अधिक वर्ष हुए कि उसने अपनी स्वतंत्रता खो दी है। उस समय की बात है जब कि यूरोपीय युद्ध घमासान रूप से चल रहा था, मैं एक दिन एक जापानी मित्र से संसार की समस्याओं पर बात कर रहा था। उसी समय जापान भी मित्रराष्ट्रों की ओर से जर्मनी के विरुद्ध युद्ध में सम्मिलित हुआ था। मेरे जापानी मित्र ने कहा कि वे जापान का जर्मनी के विरुद्ध युद्ध में सम्मिलित होना पसन्द नहीं करते हैं। वह ज्यादा अच्छा समझते थे कि जापान या तो निष्पक्ष रहता या अगर युद्ध में सम्मिलित भी होता तो मित्रराष्ट्रों के विरुद्ध जर्मनी की ओर से। लेकिन इतना कहने के बाद वे आगे कहते गये कि चूँकि जापान और इंगलैण्ड मित्र थे और उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर किया था इसलिए जापान को 'ईमानदारी और न्याय' के साथ उस शर्त्त को पूरा करने के लिए अपने अधिकारों की बलि चढ़ानी चाहिए थी और मित्र राष्ट्र का पक्ष लेना चाहिए था। मैंने तुरत ही उसी जापानी सज्जन से पूछा 'क्या चीन और जापान ने शीमोनोसेकी (Shimonoseki) के सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर नहीं किए थे जिसकी सबसे महत्वपूर्ण शर्त कोरिया को पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करनी थी? क्यों जापान इंगलैण्ड के साथ हुई सन्धि को कायम रखने के लिए अपने राष्ट्रीय अधिकार का बलिदान करता है जब कि चीन के प्रति वह ईमानदार नहीं है और शीमोनोसेकी की सन्धि को तोड़ रहा है? कोरिया की स्वतंत्रता की माँग और उसका

प्रस्ताव जापान की ओर से ही हुआ था और धमकी के बल पर उसे स्वीकार कराया गया था। और अब जापान ही अपनी बात से मुकर रहा है। इसे आप किस प्रकार की ईमानदारी और न्याय कहते हैं? सचमुच में जापान इंगलैण्ड के साथ हुई सन्धि को पालन करने की वकालत करता है और चीन के साथ हुई सन्धि की नहीं क्योंकि इंगलैण्ड शक्तिशाली है और चीन कमजोर। जापान दबाव के मारे यूरोपीय युद्ध में सम्मिलित हुआ है, ईमानदारी और न्याय की भावना से नहीं। चीन हज़ारों वर्षों तक शक्तिशाली राष्ट्र था और उस समय कोरिया बचा रहा। बीस वर्षों से अधिक नहीं बीते हैं कि जापान शक्तिशाली हुआ है पर कोरिया समाप्त हो गया। इसी एक उदाहरण से कोई भी देख सकता है कि जापान की 'ईमानदारी और न्याय' की भावना चीन से हीन है और चीन की ईमानदारी तथा न्याय का मापदंड दूसरे राष्ट्रों से ऊँचा उठा हुआ है।

चीन के पास एक और दिव्य गुण है और वह है सामंजस्य और शांति की इच्छा। आज संसार के सभी राष्ट्रों और जातियों के बीच अकेला चीन ही ऐसा है जो शांति का प्रचार करता है। दूसरे राष्ट्र युद्ध संबंधी बातें करते हैं और साम्राज्यवाद के जरिये राष्ट्रों को नष्ट करने की वकालत करते हैं। हाल के वर्षों में, बहुत सी बड़ी लड़ाइयों और अपरिमित मृत्यु से हुई हानि के अनुभव के बाद वे युद्ध मिटाने की बात करने लगे हैं। बहुत से शांति सम्मेलन हुए हैं जैसे पहिले का हेग सम्मेलन, युद्ध के बाद वार्सलीज सम्मेलन, जनेवा सम्मेलन, वाशिंगटन सम्मेलन और सबसे हाल में हुआ लौसान (Lausanne) सम्मेलन। लेकिन विभिन्न राष्ट्रों के प्रतिनिधि युद्ध के भय से शांति की चर्चा करने के लिए सम्मलित हुए हैं। उनकी शांति-स्थापना की यह इच्छा स्वाभाविक प्रवृत्ति से नहीं है बल्कि उन्हें इसकी आवश्यकता महसूस हुई है। चीनी लोगों में शांति की उत्कट इच्छा हज़ारों वर्षों से चली आ रही है। वह उनकी (चीनियों की) स्वाभाविक प्रवृत्ति है। व्यक्तिगत संबंध में 'नम्रता और विनय' पर अधिक जोर दिया जाता है। देश के शासन के संबंध में एक प्राचीन कहावत है—'जिसे आदमी की हत्या करने में आनन्द नहीं आता है वही सभी आदमियों को संगठित कर सकता है।' यह सब विदेशी राष्ट्रों के आदर्श से बहुत भिन्न हैं। चीन की राजभक्ति, मातृ-पितृ भक्ति, दया, प्रेम, ईमानदारी और ऐसे ही और प्राचीन गुण स्वभावतया विदेशी सदाचारों से बढ़े हुए हैं। लेकिन शांति के नैतिक गुण में तो दूसरे देशों की जनता से हम और अधिक बढ़े हुए हैं। यह विशिष्ट गुण हमारी

जाति की खूबी है और हम केवल इसे दिल में ही न रखें बल्कि भव्यता के साथ चमकने भी दें और तब हमारी राष्ट्रीय प्रतिष्ठा पुनः कायम हो जाएगी।

हमको केवल प्राचीन नैतिकता ही नहीं बल्कि प्राचीन विद्या को भी पुनर्जाग्रत करना ज़रूरी है। मांचू लोगों के आधिपत्य के बाद से हमारे चालीस करोड़ लोग सोते रहे हैं। हमारी प्राचीन नैतिकता भी सोती रही है और हमारी प्राचीन विद्या भी गाढ़ी निद्रा में है। अगर हम अपनी राष्ट्रीय भावनाओं को पुनः प्राप्त करना चाहते हैं तो हम अपनी विद्या और नैतिक आदर्श को, जिसका पालन हम न करते रहे थे, पुनः लाएँ। यह प्राचीन विद्या है क्या? राज के संबंध में मनुष्यों ने जितने सिद्धान्त बनाए हैं उनमें चीन का राजनीतिक दर्शन सबसे ऊँचा है। हम सोचते हैं कि हाल के वर्षों में यूरोप और अमेरिका के राष्ट्रों ने बड़ा कदम बढ़ाया है। फिर भी उनकी नई संस्कृति चीन के प्राचीन राजनीतिक दर्शन के समान पूर्ण नहीं है। चीन के पास राजनीतिक दर्शन का इतना ब्यौरेवार और स्पष्ट नमूना है कि विदेशी राजनीतिज्ञों ने उनके मुकाबले में न कोई ईजाद की है न कुछ कहा ही है। 'महाविद्या' नामक पुस्तक में लिखा है—'किङ् चीज़ के स्वभाव को अच्छी तरह परखो, ज्ञान की परिधि बढ़ाओ, अपने उद्देश्य को शुद्ध रखो, मन पर अधिकार करो, निजी गुणों को बढ़ाओ, परिवार में व्यवस्था रखो, देश पर शासन करो और संसार में शांति स्थापित करो।' यह आदमी को भीतर से बाहर की ओर विकसित करने की शिक्षा देता है। यह अपने भीतरी गुण से प्रारम्भ करके संसार में शांति स्थापित करने तक ले जाता है। इस प्रकार के गंभीर और सबके ऊपर लागू होनेवाला तर्क विदेशी राजनीतिक दार्शनिकों में न तो पाई जाती है और न उन्होंने कभी कहा ही है। यह पाण्डित्य का अमूल्य पिण्ड है जो चीन के 'राज-दर्शन' की खूबी है और यह सुरक्षित रखने योग्य है।

'मन पर अधिकार रखने, उद्देश्य को सच्चा बनाने, व्यक्तिगत गुणों को विकसित करने और पारिवारिक व्यवस्था रखने' का सिद्धान्त स्वभावतः ही नैतिक क्षेत्र का है। लेकिन आज के दिनों में इसे ज्ञान के क्षेत्र में रखना ही अधिक उचित होगा। हमारे पूर्वजों ने नैतिक दिशा में अपना बड़ा प्रभाव स्थापित किया था। पर जब से हमारी राष्ट्रीयता का ह्रास प्रारम्भ हुआ तब से राष्ट्रीयता के समान ही हमारी विद्या का वास्तविक मर्म भी समाप्त हो गया। साधारण जनता प्राचीन पुस्तकों को पढ़ती है और बराबर रूढ़ रूप से इस वाक्य को अपने वार्त्तालाप में व्यवहार करती है जिसे मैंने अभी ऊपर उद्धृत

किया है। लेकिन वह इन शब्दों की बिना व्याख्या ढूढ़े और बिना गूढ़ अर्थ को जाने ही दोहराती रहती है। 'मन पर अधिकार रखने और उद्देश्य को सच्चा बनाने' का ज्ञान भीतरी इच्छाओं के नियंत्रण करने पर होता है और इसकी व्याख्या करना कठिन है। सुङ् राजकुल के समय के विद्वानों ने इस मानसिक शिक्षा पर बहुत ध्यान दिया था और जैसे-जैसे हम उनकी पुस्तकों को पढ़ते हैं तो हम देखते हैं कि उन्हें कितनी सफलता मिली थी। लेकिन 'व्यक्तिगत गुणों का विकास करना, परिवार में व्यवस्था रखना और राष्ट्र पर शासन करना' बाहरी सुधार हैं जिन्हें हमने व्यवहार में नहीं लाया है। कम से कम भूत काल के सैकड़ों वर्षों के बीच तो इनमें से किसी में भी हमें ऊपरी सफलता तक नहीं मिली है। जिसके फलस्वरूप हम अपने देश पर भी शासन नहीं कर सकते हैं और विदेशी लोग यह देख कर कि हम शासन करने में असमर्थ हैं, यहाँ आना चाहते हैं और हमारे ऊपर अन्तर्राष्ट्रीय नियंत्रण स्थापित करना चाहते हैं।

हम चीन पर शासन क्यों नहीं कर सकते हैं? कैसे विदेशी लोग हमारी इस कमजोरी को जान जाते हैं? मेरा व्यक्तिगत अनुमान है कि विदेशी लोगों को यह देखने का तो अवसर मिलता नहीं कि हम अपने परिवार की व्यवस्था ठीक से करते हैं या नहीं। लेकिन वे इस बात को देख सकते हैं कि हममें व्यक्तिगत शिष्टता की कमी है। चीनियों के प्रत्येक शब्द और काम में सुरुचि की कमी जान पड़ती है। चीनी जनता के साथ किसी का अगर एक बार भी सम्पर्क हुआ कि वह हमारी इस कमजोरी को समझ जाता है। साधारण विदेशियों की चीनी लोगों के प्रति यह धारणा है कि वे अशिक्षित और असभ्य हैं। अपवाद-स्वरूप केवल वे विदेशी हैं जो चीन में दस-बीस वर्ष रह चुके हैं या बरट्रेन्ड रसल (Bortrand Russell) के समान बड़े-बड़े दार्शनिक लोग हैं जिन्हें जीवन परखने की सूक्ष्म दृष्टि है और जो चीन आते ही यह समझ जाते हैं कि यहाँ की सभ्यता यूरोपीय या अमरीकी सभ्यता से कहीं ऊँची है। इस प्रकार के लोग ही चीन की योग्य प्रशंसा करते हैं। साधारण लोगों की ऐसी धारणा क्यों है? इसका कारण-यह है कि चीन वाले व्यक्तिगत शिष्टता पर बहुत कम ध्यान देते हैं। मैं बड़ी-बड़ी गलतियों की बात नहीं कर रहा हूँ। प्रतिदिन की जिन्दगी के कामों और आचरणों में चीन के लोग बड़े असावधान हैं। जब चीन के लोग प्रारम्भ में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका गये तो वहाँ अमरीकी लोगों ने उनके साथ समानता का व्यवहार किया और अमरीकी जनता और चीनी जनता में कोई अन्तर नहीं माना। बाद

में सभी बड़े होटलों में चीनी अतिथियों को जगह नहीं मिलने लगी और बड़े-बड़े भोजनालयों ने अपने यहाँ भोजन करने के लिए चीनियों का प्रवेश निषेध कर दिया। इसका एकमात्र कारण यह है कि चीनियों में स्वच्छता की कमी है।

एक बार मैं एक जहाज में एक अमरीकी कप्तान से बात कर रहा था। उसने मुझे चीन के एक मंत्री के बारे में कहा जो उसी जहाज से मेरी यात्रा करने के पहिले वाले खेप (खेवे) में गये थे। वे मंत्री महोदय जहाज पर जहाँ कहीं भी नाक छिड़कते थे और थूकते फिरते थे। यहाँ तक कि मूल्यवान् कालीन पर भी वे ऐसा करने से बाज नहीं आते थे। यह सचमुच ही घृणा की बात है। मैंने कप्तान से पूछा कि उसने मंत्री महोदय के उस आचरण पर क्या किया। कप्तान ने कहा, 'मैं तो कुछ दूसरी बात सोच ही नहीं सका और उनके सामने ही अपना रेशमी रूमाल निकाल कर कालीन पर से मैंने उनके थूक को साफ कर दिया लेकिन मेरे इन कार्य की ओर भी उनका कम ही ध्यान गया।" चीनी मंत्री की यह आदत चीनी जनता के लिए साधारण बात है और यह घटना इन बात का द्योतक है कि हम व्यक्तिगत स्वच्छता के मामले में कितने गिरे हुए हैं।

कनफ़्युसियस ने कहा है—'अगर चटाई ठीक से बिछी हुई नहीं है तो उस पर मत बैठो।' इससे ज्ञात होता है कि उन्होंने व्यक्तिगत आचरण पर कितना ध्यान दिया था। यहाँ तक कि उन्होंने बैठने-उठने तक की छोटी-छोटी बातें तक कह दी हैं। सुङ् राजकुल के समय के कनफ़्युसियस के अध्येता 'मन पर अधिकार रखने, उद्देश्य को सच्चा बनाने और व्यक्तिगत विकास करने' के मामलों में बहुत सावधान थे। लेकिन आधुनिक चीन के लोग इस पर मुश्किल से ध्यान देते हैं। क्यों विदेश के बड़े-बड़े भोजनालय चीनियों को घुसने नहीं देते? किसी ने मुझे एक घटना बताई थी जो इस प्रश्न का उत्तर देती है। एक बार ठीक भोजन के समय जबकि कई भद्र-पुरुष और महिलायें भोजन-गृह में इकट्ठे होकर आपस में विनोद कर रहे थे उसी समय वहाँ उपस्थित एक चीनी भद्र पुरुष ने बड़ी आवाज के साथ वायुत्याग किया। सभी विदेशी घृणा-सूचक शब्द बोलते हुए तितिर-बितिर हो गए और भोजनालय के मालिक ने चीनी सज्जन को बाहर निकाल दिया। इस घटना के बाद किसी चीनी आदमी को बड़े-बड़े भोजनालयों में प्रवेश नहीं करने दिया जाता है। एक बार शंघाई में एक चीनी व्यापारी ने कुछ विदेशी लोगों को एक भोज में आमंत्रित किया और खाने के लिए जब सब टेबुल के चारों ओर

बैठ गए तो ठीक उसी समय व्यापारी ने वायुत्याग किया। सभी विदेशियों का चेहरा व्यग्रता से लाल हो उठा। वह व्यापारी वायुत्याग तो नहीं ही रोक सका उल्टे खड़े होकर अपना कपड़ा झाड़ता हुआ जोर से टूटी-फूटी अँगरेजी में कहने लगा—'ए-स-कोस-मी' क्षमा कीजिये—(अँगरेजी शब्द एक्सक्युज मी का विकृत उच्चारण)। इस प्रकार का व्यवहार अत्यन्त ही असभ्यतापूर्ण और बेहूदा है। फिर भी विद्वान लोग और विद्यार्थी इस काम को बराबर करते हैं और सचमुच में इसका सुधार कठिन है। कुछ लोग कहते हैं कि शक्ति भर हल्ला करने की आदत स्वास्थ्य के लिए बड़ा लाभदायक है। इस प्रकार की गलत धारणा तो और भी निन्दनीय है। मैं चाहता हूँ कि हमारे देश की जनता जल्द से जल्द इन खराब आदतों को छोड़ दे और यह उनकी व्यक्तिगत शिष्टता के मामले में पहला कदम होगा।

फिर, चीनी लोग अपनी अँगुली के नखों को एक इंच या इससे भी अधिक बढ़ाना पसन्द करते हैं तथा उन नखों को साफ भी नहीं करते और इसे ही शिष्टता मानते हैं। फ्रांसीसियों को भी नख बढ़ाने की आदत है पर वे $\frac{१}{१०}$ या $\frac{२}{१०}$ इंच बढ़ाते हैं। वे सोचते हैं कि यह उनके कठिन काम करनेवाला मजदूर नहीं होने का सबूत है। सम्भवतः चीनियों की भी यही धारणा है। परन्तु कठिन श्रम के प्रति इस प्रकार की घृणा-भावना श्रम की मर्यादा के, जो हमारे कुमिङ्-ताङ् का सिद्धान्त है, एकदम विरुद्ध है। फिर, चीनियों के दाँत बहुत पीले और काले होते हैं और उन्हें वे कभी ठीक तरह से साफ नहीं करते। अपने शरीर के प्रति ध्यान नहीं देने का यह दूसरा दोष है। ये सभी गंदी आदतें प्रतिदिन की स्वच्छता के सरल तरीकों से मिट सकती हैं। परन्तु चीन के लोग इस पर ध्यान नहीं देते हैं। जिसके फलस्वरूप यद्यपि हमें 'व्यक्तिगत गुणों के विकास करने, परिवार को व्यवस्थित रखने, राज पर शासन करने और संसार में शांति-स्थापित' करने की विद्या है परन्तु जैसे ही विदेशी हमसे मिलते हैं वे हमको असभ्य करार दे देते हैं और इसलिए हमारी विद्यायों का अध्ययन गंभीरता से नहीं करते। रसल जैसे दार्शनिकों को छोड़ कर कोई भी विदेशी पहली नजर में चीन को देखकर उसकी सभ्यता को नहीं समझ सकता है और केवल वे लोग ही जो चीन में दस या इससे भी अधिक वर्षों तक रह चुके हैं हमारी संस्कृति की लम्बी परम्परा की प्रशंसा कर सकते हैं। अगर हर आदमी कुछ ठीक ढंग से व्यक्तिगत आदतों को सुधारने की कोशिश करे, 'भीतरी चरित्र को बाहर की ओर प्रकट होने दे,' चरित्र की छोटी से छोटी बातों पर ध्यान दे, और विदेशियों के साथ मिलने पर उनकी

स्वतंत्रता पर बेहूदे ढंग से आघात न करें तो विदेशी लोग निश्चय ही चीन वालों की इज्ज़त करेंगे। यही कारण है कि मैं आज व्यक्तिगत स्वच्छता पर बोल रहा हूँ। आप युवक लोग विदेशियों की आधुनिक संस्कृति से ज़रूर शिक्षा ग्रहण करें और पहिले अपना विकास करें तभी आप 'परिवार की व्यवस्था करने और राज पर शासन करने' की बात कर सकते हैं। आज हर देश का शासन-प्रबन्ध उन्नतिशील है पर चीन में अवनति की ओर जा रहा है। क्यों? क्या इसलिए कि हम विदेशी राष्ट्रों की राजनीतिक प्रभुत्व और आर्थिक नियंत्रण के नीचे हैं? हाँ, यह बात तो ठीक है लेकिन अगर इसके मौलिक कारण को ढूँढ़ें तो हमको पता चलेगा कि यह चीनी लोगों के व्यक्तिगत गुण को विकास न करने के और भी कारण हैं। हम यह भूल गए हैं कि चीन के पूर्वजों ने व्यक्तिगत सुधार को 'मन पर अधिकार रखना, उद्देश्य को सच्चा बनाना, हर चीज़ के असली तत्व को परखना और ज्ञान की परिधि को बढ़ाना' तक पहुँचा दिया था। कितनी विवेकपूर्ण शिक्षा है, कितना विस्तृत दर्शन है! और यह चीन की प्राचीन विद्या है। अगर अब हम अपने परिवार को व्यवस्थित रखना चाहते हैं और अपने राष्ट्र पर शासन करना चाहते हैं और विदेशी नियंत्रण में नहीं रहना चाहते हैं तो हम अपना व्यक्तिगत सुधार अवश्य प्रारम्भ कर दें; हम अपनी प्राचीन विद्या और विस्तृत दर्शन को पुनः जीवित करें और तभी हम उत्साह की जागृति कर सकते हैं, चीनी राष्ट्र की प्रतिष्ठा को पुनः लौटा सकते हैं।

प्राचीन विद्याओं के अलावे उसी तरह की हमारी प्राचीन योग्यताएँ भी हैं। आज चीन की जनता विदेशी यंत्रों के विकास और आधुनिक विज्ञान की आश्चर्यजनक प्रगति देखती है तो वह स्वभावतः सोचती है कि विदेशियों के मुकाबिले में उनकी योग्यता कुछ भी नहीं है। लेकिन हज़ार वर्ष पहिले चीनियों की योग्यता क्या थी? यूरोप की कुछ अमूल्य चीज़ों का आविष्कार प्राचीन चीन में ही हुआ था। उदाहरण के लिए कम्पास को लीजिये। आज के महान् जहाजी युग में कम्पास एक घंटा क्या एक क्षण के लिए भी हटाया नहीं जा सकता है। यह कम्पास चीन वालों ने हज़ारों वर्ष पहिले आविष्कार किया था। चीनियों ने बिना किसी प्रकार की योग्यता के ही कम्पास का आविष्कार नहीं किया होगा और जिसे चीन वाले पहिले ही व्यवहार में लाये थे उसे ही विदेशी लोग आज व्यवहार में ला रहे हैं। यह इस बात का परिचायक है कि चीन की योग्यता विदेशियों से कितनी बढ़ी-चढ़ी थी। एक और चीज़ है जिसका स्थान सभ्यता के इतिहास में बहुत ऊँचा है और

वह है मुद्रण-कला। पश्चिम का सुधरा हुआ आधुनिक छापाखाना लाखों समाचार-पत्र एक घण्टे में छाप सकता है। लेकिन मुद्रण कला का इतिहास चीन के प्राचीन आविष्कारों से प्रारम्भ होता है। फिर चीनी मिट्टी का बर्तन लीजिए। यह आज मानव-समाज के प्रतिदिन के व्यवहार की चीज़ हो गई है। इसके आविष्कार का श्रेय भी चीन को ही है और यह चीन की खास चीज़ है। विदेशी लोग अब तक भी इसकी नकल करने की कोशिश कर रहे हैं। लेकिन चीनियों द्वारा बनाए गए बर्तन में जो लालित्य और सुन्दरता है वह नकल में कहाँ! आधुनिक युद्धों में बिना धुआँ वाली बारूद व्यवहार की जाती है लेकिन यह भी चीनियों द्वारा आविष्कृत धुआँदार काली बारूद का परिष्कृत रूप है। ये प्रधान-प्रधान और अमूल्य आविष्कार—कम्पास, मुद्रण-यंत्र, बारूद आदि—पश्चिमी राष्ट्र आज अच्छी तरह जानते हैं और व्यवहार में लाते हैं तथा इन्हीं के द्वारा आज वे महान् बने हुए हैं।

आदमी के भोजन, वस्त्र, घर और यातायात के साधनों में भी चीन ने बहुत सी चीज़ों का आविष्कार कर मानव-समाज को दिया है। जैसे पेय पदार्थों को ही लीजिए। चीन ने चाय की पत्तियों का आविष्कार किया जो आधुनिक संसार की परमावश्यक वस्तुओं में से एक है। सभ्य देश आज चाय को व्यवहार करने में होड़ लगाए हुए हैं और मदिरा के स्थान पर इसे व्यवहार में लाने लगे हैं। इस प्रकार चाय शराब पीने की गन्दी आदतों को छुड़ा रही है; साथ-साथ मनुष्य को इससे कई दूसरे लाभ भी हैं। वस्त्र को लीजिए—विदेशी लोग रेशमी चीज़ों को सबसे मूल्यवान समझते हैं और रेशमी कपड़ा पहनने वालों की संख्या धीरे-धीरे बढ़ रही है। रेशम का कीड़ा जिससे रेशम पैदा होता है, हज़ारों वर्ष पूर्व सबसे पहिले चीन में पाया गया था। घर—विदेशियों द्वारा बनाए जाने वाले घर सचमुच में हर तरह से पूर्ण होते हैं लेकिन मकान बनाने का सिद्धान्त और मकान में लगने वाली सभी मुख्य-मुख्य चीजें चीनियों द्वारा ही निकाली गई हैं। उदाहरण के लिए देखिए—मेहराबदार दरवाजा चीन में ही सबसे पहिले पहल बना था। यातायात के साधन को लीजिए—पश्चिमी लोग सोचते हैं कि लटकता हुआ पुल आधुनिक इंजिनियरिंग की उपज है और यह पश्चिमी लोगों की योग्यता का ही फल है। लेकिन विदेशी लोग जो चीन के भीतरी प्रदेशों की यात्रा करते हैं और सच्वान् तथा तिब्बत की सीमा पर पहुँचते हैं, वे देखते हैं कि चीनी लोग दो ऊँचे पर्वतों के बीच का रास्ता और गहरी नदियों को लटकते हुए पुल पर से पार करते हैं। तब वे अनुभव करते हैं कि लटकते हुए पुल के

आविष्कार का श्रेय भी चीनी लोगों को ही है विदेशियों को नहीं जैसा कि वे पहले सोचा करते थे। इन सारी बातों से पता लगता है कि प्राचीन काल में चीन वाले अयोग्य नहीं थे। लेकिन उनकी योग्यता आगे चलकर खतम हो गई और जिसके फलस्वरूप हमारी राष्ट्रीय प्रतिष्ठा का भी ह्रास हो गया। अगर हम पहिले जैसी ही प्रतिष्ठा प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें प्राचीन योग्यता को भी निश्चय ही जगाना होगा।

अगर हम अपनी प्राचीन नैतिकता, विद्या और योग्यता को पुनः लाने में सफल हो जाते हैं तो भी इस आधुनिक संसार में चीन को आगे बढ़ाकर और राष्ट्रों के मुकाबिले में हम प्रथम स्थान देने के योग्य न हो सकेंगे। अगर हम अपने पूर्वजों के समय-सी, जबकि चीन की धाक संसार भर पर कायम थी, विरासत में मिली चीज़ों को फिर से प्रस्तुत कर सकें तो भी चीन को प्रथम दर्जे का राष्ट्र बनाने के लिए हमको यूरोप और अमेरिका की अच्छी बातों को सीखना ही पड़ेगा। जब तक हम विदेश की अच्छी चीज़ों को नहीं सीखते हैं हम पीछे ही पड़ते जाएँगे। क्या दूसरे देशों से चीन के लिए सीखना कठिन होगा? हमने अपनी धारणा बना ली है कि विदेशी यंत्र बड़े पेचीले होते हैं और उनके चलाने की क्रियाओं को सीखना आसान नहीं है। पश्चिम में हवाई जहाज चलाने का काम सबसे कठिन समझा जाता है और यह सबसे आधुनिक आविष्कारों में से है। फिर भी हम प्रतिदिन ताइ-षातौ (केण्टन के एक स्थान का नाम) से हवाई जहाजों को उड़ते हुए देखते हैं। और क्या वायुयान-संचालक चीनी नहीं हैं?

अगर चीनी लोग वायुयान-संचालन का काम सीख सकते हैं तो और दूसरा कौन सा कठिन कार्य है जिसे वे नहीं सीख सकते? अपने ज्ञान और युगों से चली आती हुई संस्कृति के दृढ़ आधार और साथ-साथ अपनी बुद्धि के कारण विदेश की अच्छी-अच्छी चीज़ों को सीखने में हम निश्चय ही समर्थ होंगे। पश्चिम की सबसे अच्छी चीज़ विज्ञान है। यह ज्ञान तीन सौ वर्षों से प्रगति कर रहा है लेकिन गत आधी शताब्दी में तो इसने बड़ी ही तीव्र गति से आगे पैर बढ़ाया है। विज्ञान की प्रगति ने आदमियों के लिए 'प्रकृति की शक्तियों को छीन लेना' और प्राकृतिक शक्तियाँ जो कर सकती हैं उन्हें कर दिखाना सम्भव कर दिया है।

सबसे हाल में आविष्कृत शक्ति बिजली है। पहिले शक्ति (Power) कोयले से पैदा की जाती थी और उससे मशीनें चलती थीं। अब पश्चिमी

विज्ञान एक कदम आगे बढ़कर बिजली के युग में पहुँच गया है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में एक आश्चर्यजनक योजना तैयार हो रही है जिससे सम्पूर्ण देश के कारखानों की बिजली शक्ति एक संगठित प्रणाली में गूँथ दी जाएगी। वहाँ हज़ारों कारखाने हैं और हर कारखाने में शक्ति पैदा करने की अपनी-अपनी मशीन है और हर मशीन में बिजली की शक्ति पैदा करने के लिए कोयला जलता है। इस प्रकार हज़ारों कारखानों में बहुत कोयले और बहुत परिश्रम की ज़रूरत होती है। इन कारखानों में कोयले की इतनी ज्यादा खपत है कि हज़ारों मीलों में बिछी हुई रेल लाइनें भी उतना जलावन् नहीं ला सकतीं जितने की ज़रूरत होती है। इसका नतीजा यह हुआ है कि रेलगाड़ियाँ विभिन्न स्थानों की कृषि की उपज को इधर-उधर नहीं ले जा सकती हैं और जिससे इन पदार्थों के बिकने का उतना बड़ा बाज़ार नहीं मिलता है जितना बड़ा मिलना चाहिए। चूँकि कोयले को व्यवहार करने से इस प्रकार की भयानक दो असुविधाएँ हैं, इसलिए संयुक्त राष्ट्र अमेरिका एक केन्द्रीय शक्ति उत्पादक घर (Central Power House) बनाने को सोच रहा है जो हज़ारों कारखानों में लगने वाली बिजली शक्ति को एक प्रणाली में गूँथ देगा। अगर इस महाशक्ति की योजना सफलीभूत होती है तो हज़ारों कारखानों के शक्ति उत्पादक यंत्र एक केन्द्रीय यंत्र में एकत्रित कर दिए जा सकेंगे। हर कारखाने को कोयला झोंकने के लिए बहुत से मज़दूरों की ज़रूरत नहीं रहेगी। काम को अच्छी तरह चलाने के लिए बिजली शक्ति वाहक एक ताँबे का तार काफी होगा। इस योजना के लाभ का उदाहरण इस व्याख्यान-भवन में एकत्रित हज़ारों आदमियों से दिया जा सकता है। अगर यहाँ एकत्रित हज़ारों आदमियों से हर एक के पास एक छोटा-छोटा चूल्हा भोजन बनाने के लिए होता यह कितना बड़ा तकलीफदेह और व्यर्थ का काम होगा। लेकिन अगर हम सभी लोग मिल जाएँ और भोजन एक बड़े चूल्हे में बने तो हम सबों के लिए बड़ा ही आरामदायक होगा और सस्ता भी पड़ेगा। अभी संयुक्त राष्ट्र अमेरिका अपने सभी कारखानों को एक विद्युत शक्ति प्रणाली में गूँथने की योजना बना रहा है। अगर चीन पश्चिम की बातों को सीखना चाहता है तो उसे कोयले की शक्ति से नहीं बल्कि बिजली की शक्ति से प्रारम्भ करना होगा और सम्पूर्ण राष्ट्र को एक मन से होकर काम में जुट जाना पड़ेगा। इस प्रकार से सीखने के रास्ते की तुलना सैनिकों द्वारा सामने से आक्रमण करने वाली नीति से की जा सकती है जिसमें आगे बढ़ी हुई सेना को रोक कर आक्रमण किया जाता है। अगर

हम आज तक की गई उन्नति से फायदा उठा सकें तो दस वर्षों के अन्दर दूसरे राष्ट्रों से आगे तो नहीं बढ़ सकेंगे लेकिन उनके साथ कदम तो ज़रूर मिला सकेंगे। अगर हम पश्चिम से सीखना चाहते हैं तो हमें अगली पंक्ति के समकक्ष होना होगा, पीछे से अनुसरण करने से काम नहीं चलेगा। उदाहरण के लिए विज्ञान के अध्ययन में हमको दो सौ वर्षों के समय की बचत होगी। आज हम इस परिस्थिति में हैं कि अगर हम अब भी सोए ही रहें और संघर्ष करना नहीं प्रारम्भ करें और अपनी राष्ट्रीय प्रतिष्ठा प्राप्त करने के तरीकों को नहीं जानें तो सब दिनों के लिए हमारा राष्ट्र समाप्त हो जाएगा और हमारी जाति लुप्त हो जाएगी। लेकिन अब जब हम जानते हैं कि कैसे काम करें तो हमें संसार की आधुनिक धाराओं का अनुसरण करना ही होगा और पश्चिमी राष्ट्रों की अच्छी बातों को सीखना ही पड़ेगा। हम इस बात के अध्ययन में लग जाएँगे उसमें निश्चय ही दूसरों से आगे बढ़ जाएँगे और 'सबसे अन्तिम का प्रथम होना' वाली कहावत को पूरा कर दिखाएँगे। यद्यपि हम कई शताब्दी पीछे पिछड़े हुए हैं लेकिन अब संसार के साथ अपना कदम बढ़ाने में हमें कुछ ही वर्ष लगेंगे। जापान हमारे सामने सबसे अच्छा उदाहरण है। पहिले चीन से उसने अपनी संस्कृति को नकल की थी और हमसे उसकी संस्कृति कहीं हीन थी। लेकिन हाल के वर्षों में जापान ने केवल यूरोप और अमेरिका की सभ्यता का अध्ययन ही नहीं किया है बल्कि कुछ ही दशाब्दियों में वह संसार का एक शक्तिशाली राष्ट्र बन गया है। मैं तो नहीं सोचता हूँ कि हमारी बुद्धि जापान से कम तेज है। और अब जापान की अपेक्षा हमें पश्चिम से सीखने में आसानी है। इसलिए अगला दस वर्ष का समय हमारे लिए संकट-काल है। अगर हम भी जापानियों की तरह अपने को जाग्रत कर लें और राष्ट्रीयप्रतिष्ठा को ऊँचा उठाने के लिए पूर्ण इच्छा से काम में जुट जाएँ तो एक दशाब्दी के अन्दर ही विदेशी राजनीतिक और आर्थिक नियंत्रण तथा विदेशियों की बढ़ती हुई आबादी के दबाव और हमारे जो अन्य प्रकार की आपदाएँ हैं इन सबों से अपना पिंड छुड़ाने में अवश्य ही समर्थ हो सकेंगे। जापान ने पश्चिम से कुछ दशाब्दियों तक ही सीखा और संसार का एक शक्तिशाली राष्ट्र बन गया। लेकिन चीन की जन-संख्या जापान से दसगुनी और क्षेत्र-फल तीस गुना अधिक है और जापान की अपेक्षा उसके साधन भी अधिक हैं। अगर चीन जापान के मुकाबिले का हो जाय तो वह अकेला ही दस बड़ी शक्तियों के बराबर होगा। इन दिनों संसार में पाँच ही बड़ी शक्तियाँ

हैं—ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, फ्रांस, जापान और इटली; और जब जर्मनी और रूस अपना संगठन कर लेंगे तो छः या सात शक्तियाँ हो जाएगी। अगर चीन केवल जापान के ऐसा भी हो जाय तो उसे अपने राष्ट्र के अन्दर ही दस शक्तियों की ताकत होगी और तब वह अपनी महत्वपूर्ण राष्ट्रीय प्रतिष्ठा प्राप्त करने के योग्य हो सकेगा।

जब चीन इस प्रतिष्ठा को प्राप्त कर लेगा उसके बाद क्या होगा? प्राचीन काल में चीन में एक कहावत प्रचलित थी—'कमजोरों को उबारो और गिरे हुओं को उठाओ।' इस भद्र नीति के कारण ही चीन हजारों वर्षों तक उन्नतिशील रहा और अन्नाम, श्याम, बर्मा, कोरिया तथा दूसरे छोटे-छोटे राज अपनी स्वतंत्रता कायम रखने में समर्थ हो सके थे। जैसे ही यूरोपीय प्रभाव पूर्वी देशों पर फैला, अन्नाम फ्रांस द्वारा, बर्मा ग्रेट ब्रिटेन द्वारा और कोरिया जापान द्वारा हड़प लिया गया। अगर हम चीन को शक्तिशाली बनाना चाहते हैं तो हमें केवल राष्ट्रीय प्रतिष्ठा ही प्राप्त नहीं करनी चाहिए बल्कि संसार की जिम्मेवारी भी अपने ऊपर लेनी चाहिए। अगर चीन इस जिम्मेवारी को नहीं ले सका तो वह संसार के लिए लाभ के बदले महान् हानिकारक ही सिद्ध होगा चाहे वह जितना भी मजबूत क्यों न हो जाय। संसार के प्रति सचमुच हमारा कर्त्तव्य क्या है? शक्तिशाली राष्ट्र जिस रास्ते का अनुसरण कर रहे हैं उसका मतलब दूसरे राष्ट्रों को समाप्त करना है। अगर चीन शक्तिशाली हो जाय, और दूसरे देशों को रौंदना चाहे और बड़े-बड़े राष्ट्रों की साम्राज्यवादी नीति का अनुसरण कर उन्हीं लोगों के रास्ते जाय तो यह उसका बड़े राष्ट्रों का केवल पदानुकरण मात्र होगा। इसलिए हम अपनी नीति पहिले ही निर्धारित कर लें। सिर्फ अगर हम कमजोरों को उबारें और गिरे हुओं को ऊँचा उठाएँ तो हम अपने राष्ट्र के दैवी कर्त्तव्य का ही पालन करेंगे। हम कमजोरों और अल्पसंख्यक लोगों की सहायता निश्चय ही करेंगे और संसार के बड़े शक्तिशाली राष्ट्रों का विरोध करेंगे। अगर सम्पूर्ण देश की जनता इस बात के लिए कटिबद्ध हो जाय तो हमारा राष्ट्र निश्चय ही उन्नतिशील होगा अन्यथा हमारे लिए कोई आशा नहीं है। आज हम चीन की प्रगति करने के पहिले इस बात की प्रतिज्ञा कर लें कि हम गिरे हुए को उठाएँगे और कमजोरों की सहायता करेंगे और जब हम मजबूत हो जाएँगे और शक्तिशालियों के राजनीतिक और आर्थिक प्रभुत्व की आप बीती मुसीबतों पर गौर करेंगे और दूसरे निर्बल और अल्पसंख्यक लोगों को उसी तरह की तकलीफों में पड़े हुए देखेंगे तो हम उठ खड़े होंगे

और साम्राज्यवाद को ध्वंस कर देंगे। तब सच्चे रूप में 'देश में शासन करना और संसार में शांति स्थापित करना होगा।'

अगर भविष्य में हम इस उद्देश्य तक पहुँचना चाहते हैं तो अब हम निश्चित रूप से अपनी राष्ट्रीय भावनाओं को जगायें, राष्ट्रीय प्रतिष्ठा को प्राप्त करें और अपनी प्राचीन नैतिकता और शांति की इच्छा के आधार पर संसार को संगठित करें और समानता तथा भ्रातृत्व का विश्व-शासन कायम करें। हम चालीस करोड़ जनता पर इसकी बड़ी जिम्मेवारी है। आप सज्जन वृन्द हमारे चालीस करोड़ के एक हिस्से हैं। आप सभी इस जिम्मेवारी को को कंधे पर ज़रूर लीजिए और अपने राष्ट्र की सच्ची भावना को प्रगट कीजिए।

मार्च २, सन् १९२४ ई०

प्रजातन्त्र का सिद्धान्त

पहला व्याख्यान

सज्जनो, आज मैं जनता की सर्वभौमिकता के सम्बन्ध में बोलने जा रहा हूँ। जनता की सार्वभौमिकता है क्या? इस शब्द की परिभाषा करने के पहले हम यह जान लें कि 'जनता' क्या है? मनुष्यों का एकत्रित और संगठित समुदाय ही जनता है। यह सार्वभौमिकता क्या है? राज के सम्पूर्ण क्षेत्र पर स्थापित शक्ति और अधिकार ही सार्वभौमिकता है। आज के सब-से अधिक शक्तिशाली राष्ट्र को चीनी भाषा में 'सामर्थ्यवान राष्ट्र' कहते हैं और विदेशी भाषा में शक्तिशाली राष्ट्र। चीनी भाषा में यंत्रों की ताकत को 'घोड़े का सामर्थ्य' और विदेशी भाषाओं में 'घोड़े की शक्ति' कहते हैं। इस प्रकार सामर्थ्य और शक्ति परस्पर एक दूसरे के अर्थ में व्यवहृत होते हैं। आदेश को पालन कराने और जनसाधारण की कार्यवाही को व्यवस्थित रखने की शक्ति ही 'सार्वभौमिकता' है और जब 'जनता' और 'सार्वभौमिकता' एक साथ मिला कर बोले जाते हैं तो वे जनता की राजनीतिक शक्ति के अर्थ में लागू होते हैं। 'राजनीतिक शक्ति' को समझने के लिए हमें यह जानना ज़रूरी है कि शासन व्यवस्था क्या चीज़ है। बहुत लोग सोचते हैं कि शासन व्यवस्था बहुत गूढ़ और कठिन विषय है जिसे साधारण लोग नहीं समझ सकते हैं। चीन के सैनिक बराबर कहा करते हैं 'हम सैनिक ही हैं और राजनीति के बारे में कुछ नहीं जानते हैं।' वे क्यों इसके बारे में अनजान हैं इसका एकमात्र कारण यह है कि वे शासन-व्यवस्था को एक गंभीर और गूढ़ अध्ययन का विषय मानते हैं। वे नहीं जानते कि यह बहुत ही स्पष्ट और समझ में आने वाला विषय है। अगर सैनिक वर्ग कहते हैं कि वे शासन व्यवस्था में दखल नहीं देंगे तो हम उनकी बात समझ सकते हैं लेकिन अगर वे कहते हैं कि वे शासन व्यवस्था को समझ नहीं सकते हैं तो वे मूर्ख हैं। चूँकि सरकार के पीछे सैनिक शक्ति रहती है इसलिए उन्हें ज़रूर समझना चाहिए कि शासन व्यवस्था क्या है? संक्षेप में, सरकार जनता की चीज़ है जो जनता द्वारा जनता के कामों को नियंत्रित करती है। यह नियंत्रण करने की शक्ति ही राजनीतिक सार्वभौमिकता है और जब जनता सरकार का नियंत्रण करती है तो उसे हम 'जनता की सार्वभौमिकता' कहते हैं।

अब जब हमने 'जनता की सार्वभौमिकता' को समझ लिया तो इसके कार्यों का अध्ययन करें। हम जब अपने आसपास के जीवन को देखते हैं या अतीत की घटनाओं का अध्ययन करते हैं तो सीधे शब्दों में अगर कहें तो हम मानव जाति के अस्तित्व की रक्षा के लिए हम मानव शक्ति का उपयोग होता हुआ पाते हैं। अस्तित्व बनाए रखने के लिए मानव जाति को सुरक्षा और जीविका ज़रूर चाहिए और इन दो चीज़ों की पूर्ति करने में ही मानव जाति प्रतिदिन व्यस्त है। सुरक्षा का अर्थ है आत्म-रक्षा चाहे वह व्यक्तिगत हो या एक समुदाय का या एक राज का। आत्म-रक्षा की शक्ति अस्तित्व बनाए रखने के लिए ज़रूरी है। जीविका का अर्थ भोजन की तलाश करना है। आत्म-रक्षा और भोजन की तलाश—ये दो प्रमुख साधन हैं जिनसे मानव जाति अपना अस्तित्व बनाए रखती है। लेकिन जहाँ मनुष्य अपने अस्तित्व को बनाए रखने की चेष्टा करता है वहाँ दूसरे प्राणी भी अपनी रक्षा में सचेष्ट रहते हैं। जबकि मनुष्य भोजन की तलाश कर रहा है तो दूसरे प्राणी भी अपने भोजन की तलाश में हैं और इस प्रकार मनुष्य की सुरक्षा और जीविका दूसरे प्राणियों की सुरक्षा और जीविका के साथ टकराती है और तब संघर्ष पैदा हो जाता है। संघर्ष के बीच अपने को जिन्दा रखने के लिए मनुष्य ज़रूर लड़ता है और इस प्रकार मानव-जीवन के प्रारम्भ से मनुष्य जाति ने लड़ना नहीं छोड़ा है। इस तरह मानव जाति ने अपनी ताकत संग्राम में लगाई है और वह इस धरती पर जन्म लेने के समय से आज तक भीषण संघर्ष के बीच ही रही है।

मानव जाति का यह संघर्ष कई कालों में विभक्त किया जा सकता है। मानव इतिहास के प्रारम्भ होने के पूर्व का प्रारम्भिक और जंगली जीवन का समय ही पहला काल है। हम नहीं जानते कि वह काल कितना लम्बा बीता होगा। परन्तु हाल में भू-गर्भ-तत्ववेत्ताओं ने पत्थरों की परतों का अध्ययन करते समय उनमें मानव प्राणि के जो अवशेष पाए हैं वे बीस लाख वर्षों से अधिक प्राचीन नहीं हैं। बीस लाख वर्षों से अधिक प्राचीन पत्थरों में मानवीय चिह्न नहीं मिलते हैं। औसत आदमी कई लाख वर्ष पहले की घटनाओं को अत्यन्त ही संदिग्ध और अनिश्चित मानते हैं लेकिन आधुनिक भू-गर्भ-विज्ञान की प्रगति से भू-गर्भ-तत्ववेत्ता पत्थरों की विभिन्न परतों में अन्तर कर सकते हैं और हर परत कई पीढ़ियों का प्रतिनिधित्व करता है। वे उन पत्थरों से विभिन्न भू-गर्भ-युग की व्याख्या करते हुए यह बतला सकते हैं कि कौन परत आधुनिकतम है और कौन परत प्राचीन।

हम लोगों को बीस लाख वर्ष बहुत ही लम्बा समय जान पड़ता है लेकिन भू-गर्भ-तत्ववेत्ताओं के लिए यह एक अल्प काल सा है। पत्थर के कितने परत ऐसे हैं जो बीस लाख वर्षों से भी अधिक पुराने हैं। लेकिन जब से पत्थर बनना शुरू हुआ उससे पहले की पृथ्वी के इतिहास जानने की कोई सामग्री नहीं है। लोक-प्रचलित सिद्धान्त यह है कि पत्थर बनने के पहले एक तरह का तरल पदार्थ था। उसके पहले गैस जैसी कोई चीज़ थी विकासवाद दर्शन के अनुसार प्रारम्भ में पृथ्वी गैस-पिंड थी और सूर्य का एक अंश था। शुरू-शुरू में सूर्य और गैस-पिंड से आकाश में तारा-मंडल बना। जब सूर्य में सिकुड़न पैदा हुई तो बहुत से गैस-पिंड उससे टूट-टूट कर बिखर गए जो कि अन्त में जमकर तरल पदार्थ के रूप में हो गए और वे तरल पिंड ही पीछे कड़े होकर पत्थर में परिणत हो गए। सबसे प्राचीन चट्टान करोड़ों वर्ष पहले का मिलता है। भू-गर्भ-तत्ववेत्ताओं ने दो करोड़ वर्ष प्राचीन पत्थरों का निश्चित प्रमाण पा लिया है। इसलिए वे अनुमान करते हैं कि गैस-पिंड के तरल पिंड के रूप में परिणत होने में करोड़ों वर्ष ज़रूर लगे होंगे और फिर उतना ही समय तरल पिंड के कड़े होकर पत्थर बनने में भी लगा होगा। सबसे प्रथम पत्थर बनने के समय से आज तक का समय कम से कम दो करोड़ वर्षों का है। चूँकि इस बात का कोई लिखित वृत्तान्त नहीं है इसलिए हमें यह बहुत दीर्घ काल सा जान पड़ता है। लेकिन भू-गर्भ-तत्ववेत्ता इसे अपेक्षाकृत अर्वाचीन मानते हैं।

इस भू-गर्भशास्त्र से हमारे आज के विषय का क्या सम्बन्ध है? पृथ्वी की उत्पत्ति से ही मनुष्य की उत्पत्ति का हाल हम जान सकते हैं। भू-गर्भ-तत्ववेत्ताओं ने पाया है कि मानव-इतिहास केवल बीस लाख वर्षों के अन्दर का ही है और मानव सभ्यता की उत्पत्ति तो केवल दो लाख वर्ष पहले हुई है। इस काल के पहले मनुष्य और पशु में बहुत कम अन्तर था इसलिए दार्शनिकों का कहना है कि मनुष्य का पशु से ही विकास हुआ है; वह एकाएक मनुष्य होकर ही नहीं पैदा हुआ था। इन दो लाख वर्षों के अन्दर मनुष्य और सभी प्राणी क्रमिक विकास से गुजरते हुए वर्त्तमान अवस्था तक में पहुँचे हैं। हम कौन से युग में आ पहुँचे हैं? यह युग जनता की शक्ति का है; प्रजातंत्र का है। यद्यपि प्रजातंत्र की चर्चा दो हजार वर्ष पहिले यूनान और रोम में हुई थी तथापि केवल गत डेढ़ शताब्दियों से ही संसार में उसका पैर स्थिर रूप से जम सका है। इस काल के पहले निरंकुश राज और उसके भी पहले दैवी-प्रभुत्व का युग था। दैवी प्रभुत्व युग के पहले जङ्गली जीवन का समय था

जिसमें मनुष्य पशुओं से लड़ता था। मनुष्य भी रहना चाहता था और पशु भी। मनुष्य के पास अपनी स्थिति बनाए रखने के दो साधन थे—एक तो जीविका की तलाश और दूसरा आत्म-रक्षा। अति प्राचीन काल में मनुष्य पशुओं का भक्षण करता था और पशु मनुष्य का। इन दोनों के बीच निरन्तर संघर्ष चलता रहता था। सम्पूर्ण पृथ्वी विषैले सांपों और खूँखार जानवरों से भरी थी। मनुष्य खतरों से घिरा हुआ था और इसलिए उसे अपनी जीवन-रक्षा के लिए लड़ना पड़ता था। मनुष्य और जानवरों के बीच होने वाला उस समय का संग्राम अव्यवस्थित ढङ्ग का था। उसमें दलबन्दी नहीं थी। हर आदमी अपने लिए लड़ता था।

मनुष्यों की उत्पत्ति के मूल-स्थान के सम्बन्ध में कुछ लोगों की राय है कि पहले पहल कुछ खास स्थानों पर ही मनुष्यों की उत्पत्ति हुई होगी। लेकिन भू-गर्भ-तत्ववेत्ताओं का कथन है कि पृथ्वी पर जब एक बार मनुष्य पैदा हुआ तो वह हर जगह पैदा होने लगा होगा। क्योंकि जहाँ भी पृथ्वी के नीचे देखा जाता है वहाँ ही मानव अवशेष पाए जाते हैं। मनुष्यों और जङ्गली जानवरों के बीच का संघर्ष अभी तक बन्द नहीं हुआ है। अगर हम मलयसिया (Malysia Islands) द्वीपसमूह के जङ्गली भागों में जायँ तो हम पायेंगे कि यह संघर्ष अभी भी चल रहा है। अगर हम किसी जङ्गली पहाड़ों या बड़ी मरुभूमि में जाएँ जो निर्जन और निर्धूम है तो हम अभी भी उन प्राचीन युगों के मनुष्यों और पशुओं के वातावरण का कुछ अनुमान कर सकते हैं। धुँधले अतीत का इतिहास हम इसीलिए जान सकते हैं कि हमने उस काल के मनुष्यों के चिह्न और अवशेषों का पता पा लिया है। इनके बिना अतीत में घटी घटनाओं के सम्बन्ध में हम कुछ भी नहीं जान सकते हैं।

भूतकाल की घटनाओं के अध्ययन करने का साधारण तरीका यह है कि हम इतिहास का अध्ययन करते हैं। लेकिन इतिहास लिखित वृत्त है और लेखन-कला के आविष्कार के पहले की सभ्यता का कोई भी लिखित इतिहास नहीं है। चीन के पास पाँच या छः हज़ार वर्षों से अधिक प्राचीन लिखित इतिहास नहीं है और मिश्र के पास दस हजार वर्षों से अधिक का नहीं है। सभी प्रकार के ज्ञान उपार्जन करने में चीन पूर्णरूप से पुस्तकों पर निर्भर रहा है लेकिन विदेशी राष्ट्र दूसरे उपायों का अवलंबन करते हैं। उन देशों के प्रारम्भिक और माध्यमिक पाठशालाओं के छात्र किताबों से ज्ञान उपार्जन करते हैं लेकिन विश्वविद्यालयों के छात्र वास्तविक पर्यवेक्षण करते हैं। चट्टानों-जानवरों और जङ्गली जातियों के जीवन के अध्ययन के साथ-साथ किताबों

का भी अध्ययन कर वे परिणाम निकालते हैं कि हमारे पूर्वजों का समाज कैसा था। उदाहरण के लिए देखिए—अफ्रीका या मलयसिया द्वीपसमूहों की जङ्गली जातियों का पर्यवेक्षण हम को प्राचीन असभ्य जातिओं की अवस्था जानने में मदद करता है। इसलिए विज्ञान पढ़ने वाले आधुनिक विद्यार्थी अपने अनुसंधान में केवल पुस्तकों पर ही निर्भर नहीं रहते हैं। अनुसंधान के बाद वे जो पुस्तक प्रकाशित करते हैं वह उनके निरीक्षण करने वाली पैनी बुद्धि की उपज होती है। और वह मानव जाति सम्बन्धी वृत्त की सामग्री हो जाती है। खोज करने के दो तरीके हैं—निरीक्षण करना या वैज्ञानिक तरीका और निर्णयात्मक या दार्शनिक तरीका। मानव विकास के सिद्धान्त इन्हीं दो तरीकों से कायम किए गए हैं। मनुष्य और जङ्गली पशुओं के बीच प्रारम्भिक संघर्ष में मनुष्य केवल अपनी निजी शारीरिक ताकत व्यवहार करते थे या कभी-कभी पूरी जाति भी मिलकर लड़ती थी। उदारहण के लिए, अगर एक जगह कुछ लोग कुछ जानवरों के साथ संघर्ष में लगे हों और दूसरी जगह मनुष्य का दूसरा समुदाय भी ठीक वैसा ही कर रहा हो तो इन दोनों जगहों के मनुष्य एक दूसरे के प्रति आपस के सादृश्य को तथा जानवरों से अपनी विभिन्नता को समझ सकते हैं और ऐसी अवस्था में एक साथ संगठित होकर दूसरे प्राणियों के साथ लड़ सकते हैं। यह निश्चित है कि मनुष्य-मनुष्य के साथ ही लड़कर उसे नष्ट करने तथा इस प्रकार अपनी ही नस्ल की हानि पहुँचाने के लिए दूसरे वर्ग के प्राणियों के साथ नहीं संगठित हुआ होगा। इसलिए उस काल के मनुष्यों का साँपों और जानवरों के विरुद्ध एक में संगठित होना एकदम स्वाभाविक था—कृत्रिम नहीं और जब साँप तथा जानवर नष्ट हो गए तो मनुष्य भी इधर-उधर फैल गए। उस काल में लोकप्रिय सार्वभौमिकता ऐसी कोई चीज़ नहीं थी। जानवरों के साथ लड़ने के लिए मनुष्य केवल अपना शारीरिक सामर्थ्य व्यवहार में लाया, किसी प्रकार का अधिकार नहीं। वह जङ्गलीपन का युग था।

बाद में जब मनुष्यों ने विषैले साँपों और जङ्गली जानवरों का प्रायः सफाया कर डाला और जब उनकी अवस्था में कुछ सुधार हुआ तथा उन्होंने रहने योग्य अच्छी जगह पाली और तब मनुष्यों का समुदाय एक जगह बसने लगा और पालने योग्य जानवरों को घरेलू बनाने लगा। यह चरागाह वाली ज़िन्दगी तथा सभ्यता का प्रारम्भिक युग था उस काल के मनुष्य लगभग आजकल के मंगोलिया या दक्षिण-पश्चिम एशिया के अरब लोगों के समान थे जो अभी भी चरागाह वाले युग में ही हैं। अब मनुष्य के रहने के तरीकों में महान्

परिवर्त्तन हुआ। जानवरों के साथ संग्राम एक प्रकार से समाप्त हो गया था और सभ्यता का विकास हो रहा था तथा जिसे हम मानव-इतिहास का प्राचीन युग कहते हैं वह आ पहुँचा था। अब मनुष्य ने प्राकृतिक शक्तियों के साथ संग्राम करना प्रारम्भ किया। संक्षेप में, प्रथम अवस्था में मनुष्य ने जानवरों के साथ लड़ाई की जिसमें या तो उसने निजी पाशविक शक्ति का या अनेकों की सङ्गठित शक्ति का उन्हें (जानवरों) मार डालने में प्रयोग किया। दूसरी अवस्था में, मनुष्य प्रकृति के साथ युद्ध करने लगा। प्रथम अवस्था में चूँकि मनुष्य नहीं जानता कि कब जानवर उस पर हमला कर देगा इसलिए उसे विश्वास नहीं था। कि एक क्षण से दूसरे क्षण तक वह जी सकेगा या नहीं। अपनी रक्षा के लिए उसके पास केवल दो पाँव और दो हाथ थे, लेकिन वह पशुओं से अधिक बुद्धिमान था इसलिए लाठी और पत्थर को हथियार के रूप में व्यवहार करना उसने सीख लिया। इस प्रकार अन्त में उसने जङ्गली जानवरों पर पूर्ण विजय प्राप्त की और तभी वह एक दिन आगे की बात सोच सका। जब वह जानवरों से लड़ रहा था उसकी ज़िन्दगी एक क्षण के लिए भी सुरक्षित नहीं थी।

जब जंगली जानवरों का भय जाता रहा तो मानव जाति में वृद्धि होने लगी और संसार में बसने के अनुकूल स्थान मनुष्यों से भरने लगे। ये अनुकूल स्थान कौन-कौन थे? ये वे ही स्थान थे जो हवा और वर्षा से सुरक्षित थे और जहाँ आँधी-तूफ़ानों का भय नहीं था जैसे कि नील नदी के काँठे और एशिया में मेसोपोटामिया। यहाँ की भूमि अत्यन्त उपजाऊ थी और चारों ऋतुओं में शायद ही कभी वर्षा होती थी। साल में एक बार नील नदी में बाढ़ आती थी और उसके दोनों किनारों की जमीन बाढ़ की मिट्टी से पट जाती थी। खेती करना आसान था और अनाज तथा धान अपरिमित पैदा होते थे। इस प्रकार के भू-भाग केवल नील नदी के काँठों और मेसोपोटामिया में ही थे। इसलिए साधारणतः यह कहा जाता है कि नील नदी के काँठे और मेसोपोटा-मिया ही संसार की सभ्यता के उत्पत्ति-स्थान थे। इन दोनों काँठों के उर्वरा होने तथा वर्ष भर आंधी-तूफ़ान और वर्षा से सुरक्षित रहने के कारण वहाँ खेती करना और जानवर पालना आसान था और वहाँ की नदियों में काफ़ी जलजन्तु मिल जाते थे इसलिए रहना भी आसान था। बिना अधिक मानसिक और शारीरिक परिश्रम के मनुष्य बैठा-बैठा जीवन व्यतीत करता था। धीरे-धीरे उसकी सन्तान बढ़ने लगी। जब यह जाति बहुत समृद्धिशाली हो गई तब वहाँ मनोनुकूल जगह की कमी के कारण कुछ लोगों को वैसी जगह

जाना पड़ा जो उतनी अच्छी नहीं थी और जहाँ आँधी-तूफ़ान और बाढ़ आदि प्राकृतिक आफ़तों का डर बराबर बना रहता था।

पीली नदी का काँठा चीनी सभ्यता का उद्गम-स्थान था। यद्यपि यह भू-भाग आँधी-तूफ़ान और बाढ़ का बराबर शिकार होता रहता है और अत्यधिक ठंढा भी है और इस कारण यह स्थान स्वभावतः ही सभ्यता की उत्पत्ति के योग्य नहीं हो सकता है तथापि कैसे चीन की प्राचीन सभ्यता का आविर्भाव यहाँ से ही हुआ ? पीली नदी के किनारे रहने वाले दूसरे भू-भाग से आए थे, सम्भवतः मेसोपोटामिया से जिसकी सभ्यता चीनी सभ्यता से दस हज़ार वर्ष पुरानी है। तीन सम्राटों और पाँच शासन-कर्त्ताओं[1] के समय से पहले ही चीनी जाति के ये पुरखा मेसोपोटामिया से हटकर पीली नदी के काँठे में आ गए थे और चीनी सभ्यता का विकास करने लगे थे। विषैले साँपों और जंगली जानवरों को मार भगाने के बाद उन्हें प्राकृतिक आपदाओं जैसे आँधी-तूफ़ान और बाढ़ का मुक़ाबला करना पड़ा था। यह स्वाभाविक है कि इन आपदाओं के टालने और प्रकृति के साथ संघर्ष करने की कोशिश करते होंगे। आँधी और वर्षा से बचने के लिए उन्हें घर बनाना पड़ा होगा और शीत से बचने के लिए कपड़ा तैयार करना पड़ा होगा। जिस समय मनुष्यों ने इन चीज़ों को बनाना सीख लिया तो वह सभ्यता के दौरान में बहुत दूर आगे बढ़ चुका था। लेकिन प्राकृतिक आपदाएँ न तो नियमित रूप से आया करती होंगी और न वे आसानी से रोकी जा सकती होंगी। आँधी का एक झोंका घर को उजाड़ देता होगा, बाढ़ उन्हें बहा ले जाती होगी; अग्नि की एक भभक घर को राख कर देती होगी और बिजली का प्रहार उन्हें ध्वस्त कर देता होगा। बाढ़, अग्नि, आँधी और बिजली इन चार आफ़तों को प्राचीन काल के लोग नहीं समझ सकते थे। उनके झोपड़े घास और लड़की के बने होते थे और इन बड़ी आपदाओं के सामने नहीं टिक सकते होंगे। इसलिए उनको नष्ट होने से बचाने के लिए उनके पास कोई उपाय नहीं था। जानवरों के साथ संग्राम करने के युग में लड़ने के लिए मनुष्य अपनी शारीरिक ताकत लगा सकता था परन्तु प्रकृति के साथ संघर्ष करने के युग में केवल लड़ाई का कोई महत्व नहीं था। इस हालत में मनुष्य जाति को काफ़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा होगा तभी कोई बुद्धिमन पुरुष मनुष्य मात्र की भलाई के लिए योजनाओं के साथ आविर्भाव हुआ होगा।

---

१. चीनी इतिहास का प्रागैतिहासिक काल

इस प्रकार महान यू[2] ने पानी को वश में किया तथा बाढ़ की आफ़त से लोगों को बचाया और यू छाव-श[3] (नीड़ निर्माता) ने लोगों को बताया कि जंगलों में वृक्षों पर कैसे घर बनाना चाहिए और आँधी-तूफ़ान रूपी आपदाओं को कैसे रोकना चाहिए।

इस समय के बाद से धीरे-धीरे सभ्यता आगे बढ़ती ही गई। मनुष्य संगठित होने लगे और चूँकि जमीन काफी थी और उस पर बसने वाले थोड़े थे इसलिए खाद्य-सामग्री प्राप्त करना बहुत आसान था। अब एक ही समस्या रह गई थी प्राकृतिक महान् आपदाओं की, जिनसे जानवरों के साथ लड़ने की तरह शारीरिक ताकत से नहीं लड़ा जा सकता था। इसीके बाद दैवी शक्ति की भावना का उदय हुआ। बड़े-बड़े बुद्धिमान लोग देवता और दैवी शिक्षाओं के सिद्धान्त का प्रचार करने लगे और उन्होंने आपत्तियों से बचने तथा दैवी आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए प्रार्थना करने की प्रथा चलाई। उनकी प्रार्थना फलदायक होती थी या नहीं यह जानने का कोई उपाय नहीं था। जो कुछ हो, चूँकि वे दैव के विरुद्ध लड़ रहे थे इसलिए उनके सामने देवताओं का आशीर्वाद प्राप्त करने को छोड़ और कोई उपाय नहीं था। एक दूरदर्शी व्यक्ति ही नायक चुना जाता होगा जैसा कि अफ्रीका में आजकल जंगली कबीलों का सरदार होता है। इस व्यक्ति का मुख्य कर्त्तव्य प्रार्थना करना ही था। इसी प्रकार अभी भी मंगोलिया और तिब्बत के रहने वाले 'जीवित बुद्ध' को अपना शासक चुनते हैं और एक धार्मिक शासन के अन्दर रहते हैं। इसीलिए प्राचीन काल के लोग कहा करते थे कि राज के दो कर्त्तव्य हैं—पूजा और युद्ध—प्रार्थना करना और लड़ना।

चीन में प्रजातंत्र को स्थापित हुए अभी तेरह वर्ष ही हुए हैं। हमने राजतंत्र को हटाकर निरंकुश शासन-प्रणाली को समाप्त किया है। जापान में अभी भी राजतन्त्र है और वहाँ वाले देवताओं की पूजा करते हैं। जापानियों ने अपने सम्राट को 'तेन्नो' (दैवी सम्राट्) की उपाधि दे रखी है। हम भी चीन से सम्राट को 'देव-पुत्र' कहा करते थे, और इस प्रकार दैवी प्रभुत्व युग से ही चिपटे हुए थे यद्यपि निरंकुश शासन-प्रणाली बहुत पहले से ही हमारे यहाँ फलने-फूलने लगी थी। कई सौ वर्ष पूर्व शूगो द्वारा जापानी सम्राट् गद्दी से उतार दिया गया था पर 'मेजी (Meiji) पुनर्स्थापन' के बाद जो आज से साठ वर्ष

१. देखिए राष्ट्रीयता के तीसरे व्याख्यान का नोट नं० २०

२. चीन के प्राग्-ऐतिहासिक काल के पौराणिक सम्राट

पहले हुआ है, तोकोगवा से गद्दी छीन ली गई और पुनः 'स्वर्गीय सम्राट' का पद प्रतिष्ठित हुआ। इसलिए जापान में अभी भी निरंकुश शासन-प्रणाली वाला और दैवी प्रणाली वाला प्रभुत्व शासन दोनों प्रकार का राज है। पहिले रोम का सम्राट भी अपने राज का धार्मिक मुखिया भी होता था। जब रोम का पतन हुआ और सम्राट गद्दी पर से उतार दिया गया तो उसका (रोम का) राजनीतिक प्रभुत्व जाता रहा। पर किसी तरह रोम का धार्मिक प्रभुत्व कायम रहा और सभी राष्ट्रों के लोग अभी भी रोम स्थित पोप की अभ्यर्थना करते हैं ठीक उसी तरह से जैसा कि 'वसन्त और पतझाड़ विवरण'[४] काल में विभिन्न राष्ट्र चउ राजकुल के प्रति अपनी श्रद्धा-भक्ति प्रकट करते।

इस प्रकार जानवरों के साथ संग्राम करने के बाद प्रकृति के साथ संघर्ष का काल आया और इस संघर्ष से 'दैवीय प्रभुत्व' का जन्म हुआ। इसके बाद का कदम निरंकुश शासन था जबकि बड़े-बड़े शक्तिशाली योद्धाओं और राजनीतिक नेताओं ने धार्मिक अधिकारियों के हाथों से प्रभुत्व छीन लिया था। वे अपने को ही धार्मिक संस्थाओं का प्रधान मानकर स्वयं सम्राट बन गए। अब आदमी-आदमी के बीच के संग्राम का युग उपस्थित हुआ। प्रकृति के साथ होने वाले संघर्ष ने जब आदमी-आदमी के संघर्ष का रूप लेना प्रारम्भ किया तो लोगों ने अनुभव किया कि केवल धार्मिक विश्वासों पर निर्भर रहने से न तो समाज की रक्षा ही हो सकती है और न संग्राम में सहायता ही मिल सकती है। साथ-साथ दूसरी जातियों से होड़ लेने के लिए सभ्य सरकार तथा शक्तिशाली सैनिक प्रभुत्व की एकान्त ज़रूरत है। जब से लिखित इतिहास मिलता है तब से ही मनुष्य के विरुद्ध मनुष्य की होने वाली लड़ाई का पता चलता है। पहले मनुष्यों ने धार्मिक और निरंकुश शासन दोनों ही शक्तियों का उपयोग अपने संग्राम में किया। लेकिन बाद में जब दैवी प्रभुत्ववाद कमजोर पड़ गया और क्रमशः नष्ट होने वाला रोम साम्राज्य लुप्त हो गया तब निरंकुश शासन सुदृढ़ हो गया और फ्रांस के सम्राट लुई चौदहवें (Louis XIV) के समय तक वह शक्ति की चरम सीमा तक पहुँच गया। लुई चौदहवें ने कहा था कि राज और राजा के बीच कोई

---

४. चउ राजवंश (ई० पू० ११२२-२४८) के ई० पू० ७२२-४८१ तक का काल 'वसन्त पतझड़ काल' कहलाता है। कनफ्यूसियस ने 'वसन्त और पतझड़ विवरण' नामक एक इतिहास की पुस्तक लिखी है जिसमें इस काल का वर्णन है।

अन्तर नहीं है—'मैं राजा हूँ और मैं ही राज भी हूँ।' उसने राज के प्रत्येक अधिकार को अपने हाथ में ले लिया और निरंकुशता की हद कर दी जैसा कि चीनी सम्राट छिन्-श ह्वाङ्_ति[५] ने किया था। यह निरंकुश राजतन्त्र प्रतिदिन भयानक ही होता जाता था और अन्त में जनता इसे सहन नहीं कर सकी। प्रायः इसी समय विज्ञान में भी उत्तरोत्तर प्रगति हो रही थी और मानव जाति की बुद्धि भी निश्चित रूप से विकसित हो रही थी। जिसके फलस्वरूप एक नई जागृति पैदा हुई। जनता ने देखा कि निरंकुश शासन-प्रणाली केवल शक्ति को अपने चंगुल में रखने का साधन है; वह राज और जनता को अपनी निजी सम्पत्ति बनाता है, एक व्यक्ति को बड़ा बनाता है और बहुतों के दुःख-तकलीफ की ओर ध्यान नहीं देता है। जब यह हालत असह्य हो उठी और लोगों ने स्पष्ट अनुभव किया कि यह प्रणाली बहुत निकृष्ट है और इसलिए उनको इसका विरोध करना चाहिए और तब उस विरोध ने क्रान्ति का रूप धारण किया। इस प्रकार गत सौ वर्षों में क्रान्तिकारी विचारों की धारा बड़े वेग से बहती रही है और इसने प्रजातन्त्रात्मक क्रान्तियों को जन्म दिया है। यह क्रान्ति जनता और राजाओं के बीच का संघर्ष है।

समय का यह विभाजन हमें प्रजातन्त्र की उत्पत्ति के समझने में मदद देगा। सारांश में, पहला युग मनुष्यों और पशुओं के बीच लड़ाई का युग था जिसमें और किसी शक्ति का नहीं बल्कि अपनी शारीरिक ताकत का उपयोग मनुष्यों ने किया। दूसरे युग में मनुष्य प्रकृति से लड़ा और उसने दैवी शक्तियों का पल्ला अपनी सहायता के लिए पकड़ा। तीसरे युग में मनुष्य का मनुष्य के साथ, एक राज का दूसरे राज के साथ और एक जाति का दूसरी जाति के साथ का संग्राम प्रारम्भ हुआ और निरंकुश शासन-प्रणाली इस युग की प्रधान हथियार रही। हम अब चौथे युग में हैं जिसमें एक राज के अन्दर ही जनता का सम्राटों और राजाओं के विरुद्ध संघर्ष चल रहा है। आज का संघर्ष है अच्छाई और बुराई के बीच, न्याय और ताकत के बीच। चूँकि जनता का प्रभुत्व दृढ़ता के साथ बढ़ता जाता है इसलिए हम इस युग को जनता की सार्वभौमिकता—प्रजातन्त्र—का युग कह सकते हैं। यह काल अत्यन्त ही नया है। हमने इसके अन्दर अभी हाल में ही प्रवेश किया है और प्राचीन युग का निरंकुश शासन मिटा दिया है।

---

५. चीन का एकदम निरंकुश सम्राट् जिसने प्रथम-प्रथम सम्पूर्ण चीन को एक सूत्र में बाँधा और छिन् राजवंश की स्थापना की। इस राजवंश का समय ई० पू० २४६-२०७ है। कोई-कोई ई० पू० २५५-२०६ मानते हैं।

परिवर्त्तन होना अच्छा है या बुरा ? जबकि जनता में बुद्धि नहीं थी और वह धार्मिक राजाओं और दयालु महात्माओं के ऊपर निर्भर रहती थी तो उस समय निरंकुश शासन प्रणाली का कुछ मूल्य था। निरंकुश शासन के पहले धार्मिक मनुष्यों ने सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए देवताओं का आश्रय लेकर धर्म की स्थापना की। उस काल में दैवी प्रभुत्ववाद ने बड़ा अच्छा काम किया। लेकिन अब दैवी प्रभुत्व और निरंकुश शासन-प्रणाली भूतकाल की चीज़ें हो गई हैं और हम प्रजातन्त्र—जनता के प्रभुत्व युग में आ गए है। क्या इसके लिए कोई न्यायसंगत कारण है कि क्यों हमको निरंकुश शासन का विरोध करना चाहिए और प्रजातंत्र पर जोर देना चाहिए ? हाँ है; क्योंकि सभ्यता का तेजी से आगे बढ़ने के साथ-साथ मनुष्य की बुद्धि भी विकसित होती जा रही है और एक नई आत्म-चेतना का विकास होता जा रहा है; जिस प्रकार कि हम जब बच्चे थे तो माता-पिता के ऊपर निर्भर रहते थे लेकिन जब युवा हो गए तो हमें उन्हीं के ऊपर निर्भर नहीं रहना चाहिए बल्कि स्वतंत्रतापूर्वक अपनी जीविका का मार्ग ढूँढ़ना चाहिए। फिर भी आज कुछ ऐसे बुद्धि-जीवी हैं जो निरंकुश शासन के पक्षपाती हैं और प्रजातंत्र की भर्त्सना करते हैं। जापान में ऐसे कितने ही लोग हैं और यूरोप तथा अमेरिका में भी हैं। चीन में ही बहुत से पुराने विद्वान् राजतंत्रवादी हैं और हमारे यहाँ पुराने राजकर्मचारियों का एक समुदाय है जो अभी भी सम्राट को पुनः गद्दी पर बैठाने और राजतंत्र शासन-प्रणाली कायम करने की वकालत करता है। हमारे यहाँ के शिक्षित वर्ग के कुछ लोग निरंकुश शासन का समर्थन करते हैं और कुछ लोग प्रजातंत्र का। इसमें कोई संदेह नहीं कि हमारी सरकार अभी भी दृढ़ नहीं हो सकी है। हम प्रजातंत्र शासन प्रणाली की वकालत करते हैं; इसलिए हमें विभिन्न देशों में लागू की गई प्रजातंत्र शासन प्रणाली का अध्ययन करना चाहिए।

दो लाख वर्ष पहिले से लेकर दस या कुछ और अधिक हज़ार वर्ष पहले तक मानव जाति दैवी प्रभुत्व के अन्दर रही और दैवी प्रभुत्ववाद उस काल के लिए एकदम ठीक भी था। अगर अभी तिब्बत में धार्मिक नेता को हटाकर उसके स्थान पर किसी राजा को नियुक्त किया जाय तो जनता अवश्य ही विद्रोह कर उठेगी; क्योंकि उसे धार्मिक नेता में विश्वास है। उसने 'जीवित बुद्ध' को अपना शासक चुना है। वह उसके प्रभुत्व का आदर करती है और उसकी आज्ञा का पालन करती है। एक हज़ार या कुछ और अधिक वर्ष पहले यूरोप में भी ऐसी ही स्थिति थी। चीनी संस्कृति का विकास

यूरोपीय संस्कृति से पहले हुआ है इसलिए हमारे यहाँ दैवी प्रभुत्व की अपेक्षा निरंकुश शासन ही अधिक दिनों तक था। चीन में निरंकुश शासन बहुत पहिले प्रारम्भ हुआ था। लेकिन प्रजातंत्र शब्द—लोकप्रिय सार्वभौमिकता—बहुत हाल में चीन में प्रवेश कर पाया है। आप सभी जो आज यहाँ मेरे द्वारा चालित क्रान्ति का समर्थन करने आए हैं स्वभावतः ही प्रजातंत्र में विश्वास करते हैं। वे पुराने राजकर्मचारी जो राजतंत्र को पुनः स्थापित कर फिर से सम्राट बनना चाहते हैं स्वभावतः ही प्रजातंत्र के विरोधी हैं और निरंकुश शासन में विश्वास करते हैं। आधुनिक चीन के लिए राजतंत्र या प्रजातंत्र कौन वास्तव में अधिक लाभप्रद है? इस प्रश्न को गंभीरता के साथ अध्ययन करने की आवश्यकता है। मूलतः दोनों ही शासन चलाने और जनता के लिए राज की कार्यवाही सम्पादित करने की प्रणालियाँ हैं। लेकिन प्रत्येक युग की राजनीतिक अवस्था में परिवर्त्तन होता रहता है इसलिए शासन-प्रणाली में भी परिवर्त्तन आवश्यक है।

सबसे ज़रूरी प्रश्न यह है कि क्या चीन आज प्रजातन्त्र के योग्य हो गया है? कुछ लोग ऐसे भी जो हैं कहते हैं कि चीनी जनता अभी बहुत पिछड़ी हुई है इसलिए वह लोकप्रिय शासन के लिए तैयार नहीं है यद्यपि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका एक प्रजातन्त्र राज है लेकिन जब युनान् श खाइ सम्राट बनने की चेष्टा कर रहा था तब गुडनाव (Dr. Frank J. Good Now. ये जॉन हॉपकिन्स विश्वविद्यालय के प्रोफेसर थे) नामक एक अमेरिकी प्रोफ़ेसर राजतन्त्र प्रणाली की शासन-व्यवस्था के सम्बन्ध में उसे सलाह देने चीन आया था। उसकी दलील थी कि चीनी जनता का विचार प्रगतिशील नहीं है, उसकी संस्कृति यूरोप और अमेरिका से पीछे है; इसलिए उसे प्रजातन्त्र स्थापित करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। गुडनाव की दलील से युनान् श खाइ ने काफ़ी फायदा उठाया और प्रजातन्त्र को तोड़ अपने को चीन का सम्राट घोषित किया। अब जब हम चीन के लिए प्रजातन्त्र शासन-प्रणाली की वकालत करते हैं तो हमें यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि इसका अर्थ क्या है? चीन में इतिहास के प्रारंभिक काल से ही कभी प्रजातन्त्र की स्थापना नहीं हुई। यहाँ तक कि गत १३ वर्षों में भी हमारे यहाँ प्रजातन्त्र नहीं रहा है। चीन के गत चार हज़ार वर्षों की शान्ति या अशान्ति के युग में केवल राजतन्त्र का ही बोलवाला रहा है। अगर हम इतिहास देखें कि क्या वास्तव में राजतन्त्र चीन के लिए अच्छा था या नहीं तो हमें पता चलेगा कि इसका नतीजा आधा लाभप्रद रहा है और आधा हानिकारक। लेकिन

अगर हम अपनी राय चीनी जनता की बुद्धि और योग्यता पर कायम करें तो हम इस नतीजे पर पहुँचेंगे कि जनता की सार्वभौमिकता चीन के लिए कहीं अधिक लाभप्रद होगी। कनफ़्यूसियस (ई० पू० ५५१-४७६) और मेनसुअस (३७२-२८६ ई० पू०) ने दो हज़ार वर्ष पहले जनता के अधिकार के सम्बन्ध में कहा है। कनफ्यूसियस ने कहा है—'जब महासिद्धान्त लागू होगा तो आकाश के नीचे के सब प्राणी सार्वजनिक भलाई के लिए कार्य करेंगे।' वे स्वतन्त्र और भाईचारे वाले संसार के समर्थक थे जिसमें जनता ही शासन करती हो। वे बराबर याव् और षुन् की उपमा देते थे क्योंकि इन्होंने साम्राज्य पर एकाधिकार करने की कोशिश नहीं की थी। यद्यपि उनका शासन भी निरंकुशवादी ही था लेकिन उन्होंने जनता को अधिकार दे दिए थे, इसलिए कनफ्यूसियस उनकी इतनी अधिक प्रशंसा करते थे। मेनसुअस ने कहा है— 'संसार में जनता सबसे मूल्यवान है उसके बाद जमीन और अनाज और सबसे अन्त में राजा।' उन्होंने फिर एक जगह कहा है—'जिस प्रकार मनुष्य देखता है उसी प्रकार दैव भी देखता है और जैसा मनुष्य सुनता है वैसा दैव भी सुनता है' और 'मैंने अत्याचारी चउ[६] की सजा के बारे में सुना है लेकिन किसी सम्राट की हत्या के बारे में नहीं सुना है।[७] उन्होंने अपने समय में ही अनुभव किया था कि राजा हो ही यह कोई ज़रूरी नहीं हैं और राजा होने की प्रथा सब दिन टिकेगी भी नहीं। इसलिए उन्होंने (मेनसुअस) उन्हें ही धार्मिक साम्राट् कहा जो जनता के सुख के लिए काम करते थे। लेकिन जो लोग निर्दयी थे और जिनके सिद्धान्त का कोई ठिकाना नहीं था उनको उन्होंने व्यक्तिवादी कहा और जिनका (व्यक्तिवादियों का) विरोध सब को करना चाहिए। इस प्रकार चीन में दो हज़ार वर्ष पूर्व प्रजातन्त्र की भावना का उदय हुआ था। लेकिन उस समय यह भावना चीन में फैल नहीं सकी। जैसा कि विदेशी लोग कहते हैं प्रजातन्त्र उस समय एक मनोराज्य (Utopia) था; एक आदर्श था जिसकी पूर्ति तुरत नहीं हो सकती थी।

---

६. षंड् राजवंश (ई० पू० १७६६-११२२) का अन्तिम सम्राट जो बड़ा अत्याचारी था। चीन के सभी इतिहासकारों ने इसकी भर्त्सना की है।

७. इसका-तात्पर्य यह है कि चउ यद्यपि सम्राट था पर जब वह अत्याचारी हो गया तो उसे सम्राट की संज्ञा नहीं दी जा सकती है। क्योंकि सम्राट वही है जो न्यायपूर्वक प्रजा की रक्षा करता है। इसलिए मेनसियस कहते हैं कि वास्तविक सम्राट सजा नहीं पाते हैं।

चूँकि विदेशी लोगों में चीन वालों के लिए अच्छी धारणा नहीं है और वे चीनियों को अफ्रीका या दक्षिणी समुद्र की जङ्गली जातियों के समान देखते हैं इसलिए जब चीनी लोग उनसे प्रजातन्त्र की बात करते हैं तो वे इस पर दृढ़ता के साथ अपनी असम्मति प्रकट करते हैं। उनका कहना है कि यूरोप और अमेरिका के मुकाबले चीन को प्रजातन्त्र पर बोलने का कौन सा अधिकार है। यह गलत धारणा उन्होंने इसलिए बना ली है कि विदेशी विद्वानों ने हमारे इतिहास या हमारे देश की हालत का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन नहीं किया है और न वे यह बात जानते हैं कि सचमुच चीन प्रजातन्त्र के लिए तैयार है या नहीं। यूरोप और अमेरिका से पढ़ कर लौटे हुए हमारे देश के विद्यार्थी सुर में सुर मिला कर कहते हैं कि चीन अभी प्रजातन्त्र के योग्य नहीं है। इस प्रकार की धारणा एकदम गलत रास्ते पर ले जाने वाली है। मैं जब इतिहास का अध्ययन करता हूँ तो पाता हूँ कि यूरोप और अमेरिका से बहुत पहले ही चीन उन्नति की ओर उन्मुख था और वह हज़ारों वर्ष पहले ही प्रजातन्त्र की चर्चा करता था। यह सच है कि प्रजातन्त्र की भावना केवल सैद्धान्तिक रूप में ही यहाँ उपजी और व्यावहारिक रूप में विकसित नहीं हो सकी। अब केवल डेढ़ सौ वर्षों से ही यूरोप और अमेरिका ने प्रजासत्तात्मक राज (Republic) की स्थापना कर प्रजातन्त्र का व्यवहार किया है। हम जिनके पूर्वज इसका (प्रजातन्त्र का) स्वप्न देख चुके हैं, अगर चाहते हैं कि हमारा राष्ट्र अधिक काल तक और शांतिपूर्वक बना रहे और हमारे यहाँ के लोग सुखमय जीवन व्यतीत करें तो हम निश्चय ही संसार की गति का अनुसरण करेंगे और जनता के प्रभुत्व को व्यवहार में लावेंगे। लेकिन निरंकुश शासन के मुकाबले में प्रजातन्त्र की पैदाइश अभी हाल में हुई है और संसार के बहुत से राष्ट्रों में अभी निरंकुश शासन प्रणाली ही चालू है। जिन्होंने प्रजातन्त्र को अपनाया है उन्हें बहुत सी निराशाओं और असफलताओं का सामना करना पड़ा है। प्रजातन्त्र की चर्चा तो चीन में दो हज़ार वर्ष पहले ही की गई थी पर वह केवल डेढ़ सौ वर्ष पहले पश्चिम में लागू किया गया है। अब वह बहुत तेज़ी के साथ संसार में फैल रहा है।

आधुनिक युग में सबसे पहले प्रजातन्त्र इंगलैण्ड में लागू किया गया। चीन में जिस समय मिङ् राजकुल का अन्त और मांचू राजकुल का प्रारम्भ हो रहा था, इंगलैण्ड में क्रॉमवेल (Cromwell) के नायकत्व में एक जन-क्रान्ति हुई जिसके फलस्वरूप राजा चार्ल्स प्रथम (King Charlse I) कत्ल

किए गए। इस कार्य से यूरोप और अमेरिका की जनता में सनसनी और डर फैल गया क्योंकि उसने संसार में ऐसी घटना पहले कभी नहीं सुनी थी। उसने सोचा कि इस कार्य के करने वाले दग़ाबाज और विद्रोही हैं। राजाओं की गुप्त हत्या तो हर देश की आम बात थी लेकिन क्रॉमवेल द्वारा चार्ल्स प्रथम का वध गुप्त रूप से नहीं हुआ था। राजा पर खुले आम मुकद्दमा चलाया गया और वे ('राजा चार्ल्स प्रथम) राष्ट्र तथा जनता के प्रति वफादार नहीं रहने के दोषी करार दिए गए और इसलिए मृत्यु-दण्ड उन्हें मिला। यूरोप में यह धारणा हुई कि इंगलैण्ड के लोग जनता के अधिकारों की रक्षा करेंगे और प्रजातन्त्र को आगे ले जाने में सहायक होंगे लेकिन सबों ने आश्चर्य के साथ देखा कि अंगरेजों ने प्रजातन्त्र के बदले निरंकुश शासन को तरजीह दी। यद्यपि चार्ल्स प्रथम मारा गया लेकिन वे (अंगरेज) दूसरे राजा के लिए लालायित हो उठे। दस वर्षों के अन्दर ही पुनः राजतन्त्र की स्थापना हो गई और चार्ल्स द्वितीय का राजा के रूप में स्वागत किया गया। यह घटना ठीक उस समय की है जब मांचू लोग मिङ् राजकुल के पतन के ठीक पहले महान् दीवार को पारकर रहे थे। यह दो सौ या कुछ और अधिक वर्षों की ही तो बात है। दो शताब्दियों से कुछ पहले इंगलैण्ड में प्रजातन्त्र का युग रहा परन्तु वह जल्दी ही समाप्त हो गया और निरंकुश शासन ने पुनः वहाँ अपना पंजा फैला लिया।

इस घटना के एक सौ वर्ष बाद अमेरिका की क्रान्ति हुई जबकि इंगलैण्ड से अलग होकर उपनिवेशों ने अपनी स्वतन्त्रता घोषित की और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने संघ-शासन की स्थापना की। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका जिसको कायम हुए अब डेढ़ सौ वर्ष बीत रहे हैं, आधुनिक संसार में प्रजातन्त्र को लागू करने वाला पहला राष्ट्र है। अमरीकी प्रजासत्तात्मक राज की स्थापना के दस वर्ष बाद फ्रांस की राज-क्रान्ति हुई। फ्रांस की राज-क्रांति के समय स्थिति यों थी—जब से लुई चौदहवें ने राज के सब अधिकारों को अपने हाथ में ले लिया और एकदम से निरंकुश होकर शासन करने लगा तब से फ्रांस की जनता को असीम कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं। जब लुई चौदहवें के उत्तराधिकारी ने निर्दयता और अत्याचार की और भी हद कर दी तब जनता असहनशील हो उठी और विद्रोह करने लगी। उसने लुई सोलहवें को उसी प्रकार मार डाला जिस प्रकार अंगरेजों ने चार्ल्स प्रथम पर मुकद्दमा चला कर और उसे राष्ट्र तथा जनता के प्रति वफादार नहीं होने का दोषी सिद्ध कर मार डाला था। लेकिन लुई सोलहवें के मारे जाने पर यूरोप के और

सभी राष्ट्र उसका बदला लेने के लिए उठ खड़े हुए और दस वर्षों तक लड़ाई होती रही। जिसके फलस्वरूप क्रान्ति असफल हो गई और राजतन्त्र ने पुनः एक बार सिर उठाया। जो कुछ हो, परन्तु इस समय के बाद से फ्रांस की जनता में प्रजातन्त्र की भावना और भी अधिक जागृत हुई।

प्रजातन्त्र के इतिहास की चर्चा करने वाला हर आदमी फ्रांसीसी दार्शनिक रूसो (Rousseau) के बारे में जानता है जिसने कि पूर्ण रूप से जनता के अधिकारों की वकालत की थी और जिसके प्रजातन्त्र के सिद्धान्त के फलस्वरूप फ्रांस की राज-क्रान्ति में शक्ति पैदा हुई थी। रूसो की सम्पूर्ण जिन्दगी के प्रजातन्त्र के ऊपर किए गए विचारों और लेखों का सबके प्रधान ग्रन्थ 'सामाजिक कबूलियत' (Social Contract) है। जिन भावनाओं के ऊपर यह पुस्तक लिखी गई है वे यों हैं—मनुष्य को स्वतन्त्रता और समानता का पैदाइशी अधिकार है। यह अधिकार उसे प्रकृति की ओर से मिला है लेकिन इसे मनुष्य ने ठुकरा दिया है। रूसो के सिद्धान्त के अनुसार जनता को प्रकृति के द्वारा 'सार्वभौमिक अधिकार' मिलता है लेकिन जब हम इतिहास के विकास का अध्ययन करते हैं तो पता चलता है कि प्रजातन्त्र स्वर्ग से पैदा हुई चीज नहीं है बल्कि समय की हालतों और घटनाओं के हेर-फेर से उसका जन्म हुआ है। नस्ल के विकास में ऐसी कोई बात नहीं पाई जाती है जिससे रूसो का दर्शन सत्य सिद्ध हो, इसलिए वह निराधार सा है। प्रजातन्त्र के विरोधी अपने मत के प्रतिपादन में रूसो के निराधार तर्कों का ही सहारा लेते हैं परन्तु हम लोगों को जो प्रजातन्त्र के हिमायती हैं, इन तर्कों के फेर में पड़ने की कोई जरूरत नहीं। विश्वव्यापी नियम (Universal Principle) पहले यथार्थ बातों के ऊपर निर्भर रहता है और तब सिद्धान्तों पर। यथार्थ बातों के ऊपर ही सिद्धान्त बनते हैं।

उदाहरण के लिए पैदल लड़ने के दाव-पेंच के विज्ञान को लीजिए, जिसका अध्ययन अब व्यवस्थित रूप से किया जाता है। क्या वह कुछ सिद्धान्तों से प्रारम्भ हुआ या यथार्थ बातों से ? आधुनिक सैनिक विज्ञान विशारद कहते हैं कि अपने देश के लिए लड़ने जाने के पहले सैनिक स्कूलों में प्रवेश करो और सैनिक विज्ञान का अध्ययन करो। यह कथन ऐसा लगता है कि मानो यथार्थ के पहले सिद्धान्त रखा जा रहा हो। लेकिन जब हम संसार की प्रगति का अध्ययन करते हैं तो पता चलता है कि आदि मानव ने विषैले साँपों और पशुओं को मार भगाने के पहले उनसे लाखों वर्षों तक संग्राम किया था। क्या उस समय के मनुष्यों के पास किसी प्रकार का सैनिक विज्ञान था ?

हो सकता है कि उनके पास हो, लेकिन उन्होंने कोई लिखित वृत्त नहीं छोड़ा है इसलिए उसके जानने का भी कोई उपाय नहीं है। फिर दो लाख वर्षों से मनुष्य आपस में एक-दूसरे से और एक राष्ट्र से लड़ता रहा लेकिन चूँकि इन सबों का कोई लिखित इतिहास नहीं है इसलिए यह जानने का कोई जरिया नहीं है कि मानव जाति कितनी लड़ाइयों के बीच से गुजर चुकी है। चीनी इतिहास से हमको पता चलता है कि दो हज़ार वर्ष पहले सैनिक शास्त्र की तेरह पुस्तकें थीं। उन पुस्तकों में उस समय तक के जाने हुए लड़ाई के सिद्धान्त वर्णित थे और उन्हीं से चीनी सैनिक दर्शन का विकास हुआ है। जब हम इन तेरह पुस्तकों को पढ़ते हैं तो जान पड़ता है कि उन पुस्तकों के लिखने के पहले निश्चय ही बहुत सी वास्तविक लड़ाइयाँ हुई होंगी।

आधुनिक सैनिक विज्ञान भी भूत काल के युद्ध-सम्बन्धी अनुभवों और तब से धीरे-धीरे होने वाली प्रगति पर निर्भर है। हाल में निर्धूम बारूद के आविष्कार के बाद से युद्ध करने की कला में महान् परिवर्त्तन हो गए हैं। पहले जब सैनिक शत्रुओं को देखते थे तो वे एक पंक्ति के पीछे दूसरी पंक्ति बनाकर उनसे लड़ने के लिए आगे बढ़ते थे। आधुनिक संग्राम में सेना जैसे ही शत्रुओं को देखती है जमीन में लेट कर गोली चलाने लगती है। क्या बारूद के बन्दूक का व्यवहार ही जमीन पर लेटकर गोली चलाने का कारण है? क्या व्यावहारिक ज्ञान और अनुभव इन विषयों की पुस्तकों के पहले के हैं या पुस्तकों के लिखे जाने के बाद के हैं? सेना को फैला कर रखना, लेट कर गोली चलाना या इसी तरह के दूसरे सैनिक तरीके, जो विदेशी राष्ट्र व्यवहार में लाते हैं, अफ्रीका के बोअर युद्ध (Boer War) के समय से चले हैं। बोअर लोगों से अँगरेजी फौज क़तार बाँधकर लड़ती थी। जिसके फलस्वरूप अँगरेजी फौज को बड़ी हानि उठानी पड़ी। जमीन पर लेट कर युद्ध करने की कला बोअर लोगों से प्रारम्भ हुई। प्रारम्भ में जब वे (बोअर) हॉलेण्ड से अफ्रीका में आकर बसे तो उनकी संख्या केवल तीन लाख थी और उन्हें अफ्रीका के निवासियों से लड़ना पड़ा। जब बोअर लोग पहले आए थे तो उन्हें बड़ी असुविधाएँ हुई थीं क्योंकि अफ्रीकावासी उनसे लेटकर लड़ते थे। तब उन लोग ने भी यह तरीका सीख लिया। जब अँगरेजी सेना बोअर लोगों से लड़ी तो उसे (अँगरेजी फौज को) काफ़ी क्षति उठानी पड़ी। तब अँगरेजी सैनिकों ने भी बोअर लोगों के दाव-पेंच सीख लिए और जब वे लौट कर इंगलैण्ड गए तो यह दाव-पेंच पूरी सेना को सिखा दिया। संसार के दूसरे राष्ट्रों ने यह तरीका इंगलैण्ड से सीखा और अब

हर देश सैनिक शिक्षा में इस तरीके को व्यवहार करता है। इससे यह स्पष्ट पता लग जाता है कि यथार्थ बात और अनुभव से ही सिद्धान्त बनता है और यह बात गलत है कि पहले सिद्धान्त ही बनता है।

रूसो की 'सामाजिक कबूलियत' नामक पुस्तक का सिद्धान्त कि जनता के अधिकार और प्रभुत्व प्रकृति प्रदत्त हैं, ऐतिहासिक विकास के सिद्धान्त से भूल में ही टक्कर खा जाता है और इसीलिए प्रजातंत्र के शत्रुओं ने रूसो की लचर दलीलों को प्रजातंत्र के हिमायतियों के मुँह बन्द करने के लिए व्यवहार में लाया है। रूसो का मत कि प्रजातंत्र प्रकृति प्रदत्त है, ठीक नहीं है लेकिन विरोधियों का रूसो के एक गलत अनुमान को सभी प्रजातंत्र के विरुद्ध प्रमाण-रूप में पेश करना भी उसी तरह गलत है। जब हम विश्व के सत्यों का अध्ययन कर रहे हैं तो हमें यथार्थ तथ्यों से प्रारम्भ करना चाहिए केवल विद्वानों की पुस्तकों पर ही निर्भर नहीं रहना चाहिए। अगर रूसो का दर्शन यथार्थ बातों पर आधारित नहीं था तो फिर क्यों लोगों ने उस दर्शन का स्वागत किया ? और कैसे रूसो उस प्रकार की बातें लिख सका ? उसने जनता की शक्ति को अत्यन्त ही तेजी से बढ़ते देखा और 'जनता की सार्वभौमिकता' स्वीकार कर ली। उसके प्रजातंत्र सम्बन्धी सुझाव उस समय की जनता की मनोवृत्ति के अनुकूल थे इसलिए जनता ने उनका स्वागत किया। इसलिए यद्यपि उसके प्रजातंत्र के सिद्धान्त ऐतिहासिक प्रगति के सिद्धान्त से मेल नहीं खाते हैं लेकिन प्रजातंत्र की भावना के कारण, जो लोगों के जीवन में वास्तविक रूप धारण कर रही थी, लोगों ने उनका भरपूर स्वागत किया गोकिउसकी दलीलें भोंड़ी थीं। और यह भी कहा जा सकता है कि रूसो की प्रजातंत्र सम्बन्धी मूल-धारणा शासन-विज्ञान के इतिहास को एक बड़ी देन है।

मानव इतिहास के प्रारम्भ से ही सरकार जिस प्रकार की शक्ति का प्रयोग करती रही है वह निश्चित रूप से युग की परिस्थिति और विचारों के अनुसार बदलती रही है। उस युग में जबकि देवताओं की भक्ति होती थी दैवी प्रभुत्व का उपयोग करना पड़ा था और राजाओं के युग में निरंकुश शक्ति लागू की गई थी। छिन् श हवाङ के राजत्वकाल में चीन की निरंकुश शासन प्रणाली अपनी चरम सीमा को पहुँच गई थी फिर भी बाद के राजाओं ने उसकी ही नकल करने की कोशिश की और राजाओं ने चाहे जितनी भी शक्ति का प्रयोग किया जनता ने उसे खुशी-खुशी स्वीकार कर लिया। लेकिन अब संसार के जीवन की धारा बहते-बहते प्रजातंत्र-युग में चली आई है और हम जितनी जल्दी प्रजातंत्र के अर्थ को समझ लें उतना ही हमारे लिए अच्छा

है। चूँकि प्रजातंत्र के ऊपर लिखी गई कुछ किताबों में, जैसे रूसो का सामाजिक क़बूलियत, वास्तविक सिद्धान्तों के बारे में कुछ असम्बद्धता है यह कोई कारण नहीं है कि इसीलिए प्रजातंत्र में जो कुछ अच्छी बातें हैं हम उनका भी विरोध करें। और न यही हमको सोचना चाहिए कि प्रजातंत्र अव्यावहारिक है क्योंकि क्रॉमवेल की क्रान्ति के बाद भी इंगलैण्ड में राजतंत्र की स्थापना हो गई या क्रान्ति के बाद फ्रांस में बहुत दिनों तक अराजकता फैली रही। फ्रांस की क्रान्ति को सफलीभूत होने में अस्सी वर्ष लग गए। अमरीकी क्रान्ति ने आठ वर्षों से सफलता पाई। लेकिन इंगलैण्ड में दो सौ वर्षों की क्रान्ति के बाद भी वहाँ आज राजा है। लेकिन हम अनेकों पहलुओं से संसार की निश्चित प्रगति को देखें तो हमें विश्वास हो जाएगा कि यह प्रजातंत्र का युग है और चाहे प्रजातंत्र को कितनी भी निराशाओं और असफलताओं का क्यों न सामना करना पड़े संसार में यह अपना अस्तित्व बहुत दिनों तक बनाए रहेगा।

इसलिए तीस वर्ष पहले हम क्रान्तिकारी साथियों ने दृढ़तापूर्वक प्रतिज्ञा की कि अगर हम चीन को शक्तिशाली और अपनी क्रान्ति को सफल बनाना चाहते हैं तो हमें प्रजातंत्र स्वीकार करना चाहिए। लेकिन उन दिनों इस प्रकार की बात भी उठाना विरोध का एक बड़ा तूफ़ान खड़ा करना था; केवल चीनियों की तरफ से ही नहीं बल्कि विदेशियों की ओर से भी। जब चीन का क्रान्तिकारी आन्दोलन प्रारम्भिक अवस्था में ही था उस समय कुछ स्वेच्छाचारी राजा थे जो अपने ही हाथों में राज के सब अधिकारों को रखे हुए थे जैसे रूस का जार। और दूसरे स्वेच्छाचारी राजा जर्मनी और आस्ट्रिया के सम्राट थे। जिन्होंने शक्तिशाली फौज और नौसेना को अपने ही हाथों में रखा था, यूरोप में ऐसे शक्तिशाली सम्राटों के रहते भला एशिया के लिए प्रजातंत्र स्थापित कर लेना कैसे संभव था? युआन् श खाइ के राजतंत्र आन्दोलन के लिए और चाङ् शुन्[८] के मांचू राजकुल को पुनः स्थापित करने के लिए वह बड़ा ही सुअवसर था। लेकिन अब रूस और जर्मनी के सम्राट गद्दी पर से उतार दिए गए हैं और दोनों देशों में प्रजातंत्र की स्थापना हो गई है। यह इस बात का परिचायक है कि संसार प्रजातंत्र के युग में प्रवेश कर गया है। प्रजातंत्र विरोधी चीनी लोग अक्सर पूछा करते थे कि हमारे

---

८. यह 'शिखा वाला डकैत सरदार' था जिसने दस दिनों तक जुलाई १९१७ ई० में मांचू सम्राट को पुनः पिकिङ् में राजगद्दी पर बैठाया।

क्रान्तिकारी दल में मांचू सम्राट को उखाड़ फेंकने की कौन सी शक्ति थी। लेकिन सन् १९११ ई० में मांचू सम्राट एक ही धक्के में उलट गया—दुनिया की वर्त्तमान परिस्थिति का वह भी एक शिकार हुआ। इस संसार की गति याङ्टिज नदी के समान है जो टेढ़ी-मेढ़ी चाल से कभी उत्तर तथा कभी दक्षिण जाती है और अन्त में पूर्व की ओर बहती है तथा उसे कोई नहीं रोक सकता है। इसी प्रकार मानव जाति का जीवन-प्रवाह दैवी प्रभुत्व युग से बहकर निरंकुश शासन काल में और निरंकुश शासन से अब प्रजातंत्र युग में आया है और इस प्रवाह को रोकने का कोई उपाय नहीं है। अगर हम रोकने का प्रयत्न करते हैं तो हम अन्त में ज़रूर असफल होंगे चाहे हमारे पास युआन् श खाइ सा प्रभुत्व और चाङ् शुन् के ऐसा बर्बर और निर्दयी सेना ही क्यों न हो। उत्तर के सैनिक सत्ताधारी स्वेच्छाचारी लोग संसार की इस प्रवृत्ति का विरोध करते हैं जबकि दक्षिण के हम प्रजातंत्र के पक्षपाती संसार की धारा के साथ चल रहे हैं। यद्यपि दक्षिणी सरकार कमज़ोर है, हमारी सेना दक्षता, सामग्री और अस्त्र-शस्त्रों के खयाल से उत्तरी सेना से निम्नकोटि की है फिर भी अगर हम संसार की वर्त्तमान धारा के साथ चलते हैं तो क्षणिक काल के लिए असफल हो जाने पर भी अन्त में हम सफलीभूत होंगे और सदा के लिए सफल हो जाएँगे। चूँकि उत्तर के लोग युग की धारा के विपरीत चल रहे हैं और न्याय के सभी सिद्धान्तों को उठाकर फेंक रहे हैं इसलिए चाहे उनकी ताकत कितनी भी क्यों न हो या क्षणिक सफलता पाने में उनका भाग्य कितना ही तेज क्यों न हो अन्त में उनका पतन होगा और फिर वे कभी नहीं उठ सकेंगे।

दैवी प्रभुत्व शासन वाले देश मंगोलिया में वहाँ के 'जीवित बुद्ध' को हटाने के लिए क्रान्ति प्रारम्भ हो चुकी है और दैवी प्रभुत्ववाद अब वहाँ से गया ही हुआ सा है। तिब्बत का भी दैवी प्रभुत्ववाद शीघ्र ही वहाँ की जनता द्वारा उठाकर फेंक ही दिया जाएगा। तिब्बत और मंगोलिया के दैवी प्रभुत्ववाद के अन्तिम दिनों को आप देख ही रहे हैं। जब उसकी समाप्ति का दिन आ जाएगा तो चाहे उसे जिंदा रखने के लिए कितनी भी कोशिशें क्यों न की जाएँ वह कभी नहीं रह सकेगा। यूरोप का निरंकुश शासन अपने उतार पर है। ग्रेटब्रिटेन राजा की अपेक्षा एक राजनीतिक दल के हाथों में देश की शासन-व्यवस्था का भार देता है। वह राजायुक्त प्रजासत्तात्मक राज कहा जा सकता है। इन सब बातों से हम देखते हैं कि केवल दैवी प्रभुत्व ही नहीं बल्कि निरंकुश शासन प्रणाली भी अग्रसर होने वाली संसार की धारा के

सामने जल्द ही ढह जाएगी। प्रजातंत्र का वर्त्तमान युग यूनान और रोम-काल के प्रजातंत्रात्मक विचारों का फल है। प्रजातंत्र के प्रारम्भ हुए अभी केवल डेढ़ सौ वर्ष ही बीते हैं। इसका भविष्य दिनों दिन अधिक से अधिक उज्ज्वल होता जाएगा।

इसलिए हमने अपनी क्रान्ति में प्रजातंत्र को पसन्द किया है। क्योंकि पहली बात यह है कि इससे हम लोग संसार की धारा के साथ चल सकेंगे और दूसरी बात कि गृह-युद्ध की अवधि को कम कर सकेंगे। प्राचीन काल से ही चीन में महत्वाकांक्षी लोग राजा होना चाहते रहे हैं। इस प्रकार, जब ल्यु पाङ्[९] ने छिन् श हवाङ्[१०] को भागते देखा तो कहा—'बहादुर आदमियों का तो यही काम है!' और षिआङ् यू[११] ने कहा—'अच्छा तो उसकी जगह मुझे हथियाने दो!' एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक इस विवेकहीन प्रभुत्व प्राप्ति के लोग का अन्त नहीं था। जब मैंने क्रान्ति की शुरूआत की थी तो जितने लोग मेरा पक्ष लेने आए उनमें से हर दस में छः या सात तो राजतन्त्रवादी भावना रखने वाले थे। लेकिन जब हमने यह जाहिर कर दिया कि हमारा क्रान्तिकारी सिद्धान्त केवल मांचू राज्य को ही समाप्त नहीं करना चाहता है बल्कि प्रजासत्तात्मक राज की भी स्थापना करना चाहता है तब इस दल ने धीरे-धीरे अपनी स्वार्थपूर्ण आकांक्षाओं को त्याग दिया। लेकिन प्रजासत्तात्मक राज स्थापित हो जाने के तेरह वर्षों के बाद भी आज उनमें से कुछ लोग ऐसे हैं जो सम्राट बनने की पुरानी आशा को रखे हुए हैं और यही कारण है कि क्यों हमारे अनुयायियों के बीच में भी कुछ लोग आपस में एक-दूसरे से लड़ा करते हैं। जब हमने पहले पहल क्रान्ति की घोषणा की तो हमने जनता के अधिकार को ही सबसे ऊँचा स्थान दिया, जिसके आधार पर प्रजासत्तात्मक राज की स्थापना होगी। मैंने आशा की थी कि इससे राजा बनने की प्रति-द्वंदिता का अन्त हो जाएगा। लेकिन अफ़सोस है कि कुछ लोग ऐसे हैं जो मूर्ख हैं और जिनका सुधार नहीं हो सकता है! आप ऐसे लोगों के साथ कुछ नहीं कर सकते।

थाइपिङ्[१२] क्रान्ति हमारे लिए एक चेतावनी थी। जब हुङ् शिउ-छुआन्[१३] ने क्वाङ् सी में अपने विद्रोह का झण्डा उठाया और हुनान्, हु-

९. हान् राजवंश का प्रतिष्ठाता

१०. छिन् राजवंश का सम्राट

११. ल्यु पाङ् का प्रतिद्वंदी।

१२ और १३. राष्ट्रवाद के तीसरे व्याख्यान का नोट नं० ४ देखिए।

पे, क्याङ्सी और अन्हवइ को जीतकर नानकिङ् को अपने राजधानी बनाई तो मांचू साम्राज्य का आधा हिस्सा उसके अधिकार में आ गया। तब क्यों थाइपिङ् विद्रोह अन्त में असफल हो गया? इससे कई कारण हैं। कुछ लोग कहते हैं कि प्रधान कारण यह था कि थाङ्पिङ् विद्रोही कूटनीति को नहीं समझ सके क्योंकि उस समय जब ग्रेटब्रिटेन ने अपने मन्त्री पोट्टींजर (Pottinger) को हुङ् शिउ छुआन् के साथ संधि की बातचीत के लिए नान्किङ् भेजा तो उसे केवल पूर्वी राजकुमार याङ् शिउ-छिङ्[१४] से मिलने की इजाजत दी गई, स्वर्ग सम्राट हुङ् शिउ छुआन् से नहीं। हुङ् शिउ-छुआन् से वह (पोट्टींजर) तभी मिल सकता था अगर वह साष्टांग दण्डवत (ख तउ) स्वर्ग सम्राट को करता। पर पोट्टींजर ने साष्टांग दण्डवत करने से इनकार कर दिया। पोट्टींजर पेकिङ् चला गया और मांचू सरकार से सन्धि कर ली। बाद में उसने गोरडोन (Gordon) को सेना के साथ सुचौ पर चढ़ाई करने भेजा और अन्त में हुङ् शिउ छुआन् हार गया। इसलिए कुछ लोग कहते हैं कि इस असफलता का कारण यह था कि थाइपिङ् नेता कूटनीति को नहीं समझ सके। थाइपिङ् विद्रोह के असफल हो जाने के बहुत कारणों में से एक यह भी हो सकता है। कुछ लोग कहते हैं कि हुङ् शिउ छुआन् की हार का कारण यह था जब वह नान्किङ् पहुँचा तो उसने उस सुअवसर का लाभ उठाकर पेकिङ् पर कब्जा नहीं किया। यह भी बहुत से कारणों में से एक है।

लेकिन मैं जब इतिहास पढ़ता हूँ तो मुझे जान पड़ता है कि हुङ् शिउ छुआन् के असफल होने में उपर्युक्त दो कारणों का विशेष महत्व नहीं है। प्रधान कारण यह था कि क्रान्तिकारियों के नान्किङ् पहुँचते पहुँचते उन लोगों के बीच आपस में ही गद्दी पर बैठने के लिए संघर्ष प्रारम्भ हो गया। क्रान्तिकारियों ने शहर का दरवाजा बन्द कर दिया और आपस में ही एक-दूसरे की हत्या करने का षड्यंत्र करने लगे। पहले हुङ् शिउ छुआन् और याङ् छिङ् आपस में ही अधिकारों के लिए लड़ने लगे। जब हुङ्शिउ छुआन् सम्राट हो गया तो याङ् शिउ छिङ् ने भी सम्राट होना चाहा। याङ् शिउ छिङ् के अधीन साठ या सत्तर हज़ार दक्ष सैनिक थे जिन्हें अपने साथ नानकिङ् लाया था। लेकिन जब आन्तरिक कलह प्रारम्भ हुआ तो वइ छाङ् हवइ ने उसे मार डाला और उसकी सेना को तितर-बितर कर डाला। तब जब

१४. थाइ पिङ् क्रान्ति के एक नेता

वइ छाङ्_ह्वइ की उच्छृङ्खलता बढ़ी और उसने हुङ्_शिउ छुआन् को धमकी दी तो और सबों ने मिलकर उसे मार डाला। प्रायः इसी समय श ता-खाइ ने नानकिङ्_में होनेवाली गड़बड़ी को सुना और वह क्याङ्_सी से जल्दी-जल्दी नानकिङ्_ आया ताकि वह बीच में पड़कर सुलह करा सके। उसने देखा कि गुत्थी सुलझने वाली नहीं है और साथ-साथ लोगों को उसी पर शंका हो गई है कि वह स्वयं सम्राट बनना चाहता है। इसलिए वह नान्किङ्_ से भाग खड़ा हुआ और अपनी सेना सच्वान् प्रान्त में ले गया जहाँ कि मांचू सेना ने थोड़े काल में ही उसे तहस-नहस कर डाला। राजगद्दी प्राप्त करने के लिए हुङ्_और याङ्_के बीच हुई प्रतिद्वंद्विता के कारण ही हुङ्_शिउ छुआन्, याङ्_शिउ जाङ्_छिङ्_, वइ छाङ्_ह्वइ और श ता-खाइ की चार सेनायें जो थाङ्-पिङ्_क्रान्ति के असली स्तम्भ थीं, तहस-नहस कर दी गईं और इस कारण थाइ-पिङ्_क्रान्तिकारियों का पतन भी बहुत जल्दी ही हो गया। थाइपिङ्_क्रान्ति की अफलता का मौलिक कारण हुङ्_शिउ छुआन् की गलती थी कि उसने राजा होने की कोशिश की। हुङ्_शिउ छुआन् की क्रान्ति में प्रजातंत्र की कोई भावना नहीं थी इसलिए एकदम से प्रारम्भ में ही उसने पाँच आदमियों को 'राजकुमार' की पदवी दे दी। नानकिङ्_पहुँचने के बाद याङ्_शिउ छिङ्_ और वइ छाङ्_शिउ ह्वइ के बीच होने वाले कलह को देखकर उसने निश्चय किया कि अब वह अधिक 'राजकुमार' नहीं बनाएगा। बाद में लि शिउ छङ्_ और छन् यू-छङ्_ने इतनी ख्याति प्राप्त की उन्हें 'राजकुमार' का ख़िताब देना ज़रूरी हो गया। लेकिन हुङ्_शिङ्_ छुआन् ने इस डर से कि कहीं ये दोनों भी मेरे काबू से बाहर न चले जाएँ इन दोनों के अलावा तीस या चालीस और आदमियों को 'राजकुमार' की पदवी दे दी ताकि वे जब आपस में एक समान दर्जे के रहेंगे तो एक-दूसरे के लिए अंकुश का काम करेंगे। लेकिन इसके बाद जब सब आपस में समान हो गए तो लि शिउ छङ्_ और छन् यू छङ्_तथा दूसरे एक-दूसरे की आज्ञा नहीं मानने लगे और इस प्रकार हुङ्_शिउ छुआन् असफल हो गया। इस विद्रोह के असफल होने का कारण सभी नेताओं का राजा होने की महत्वाकांक्षा थीं।

आज से तीन वर्ष पहले छन् छ्युङ्_मिङ्_ ने केण्टन में क्यों हमारे विरुद्ध बगावत की ? बहुत लोग कहते हैं कि वह अपने लिए क्वाङ्_तुङ्_और क्वाङ्_सी पर कब्जा करना चाहता था। पर यह बात सत्य से बहुत दूर है। छन् छ्युङ्_मिङ्_के विद्रोह करने के पहले मैंने उसके सामने उत्तर के लोगों को दंड देने के लिए आक्रमण करने का प्रस्ताव रखा था और अपनी योजना

की गम्भीरता के सम्बन्ध में उसे काफी समझाने का प्रयत्न किया। परन्तु उसने बराबर मेरे प्रस्ताव का विरोध किया। बाद में मैंने सोचा कि सम्भवत: वह दोनों क्वाङ् (क्वाङ् तुङ् और क्वाङ् सी) प्रान्तों के लिए लड़ रहा है इसलिए हमारे उत्तर का अभियान उसकी समझ में उसके प्रदेशों की सुरक्षा के विरुद्ध हो सकता है सो मैंने सम्मेलन के अन्तिम दिन उससे साफ-साफ कहा—'अगर हमारे उत्तर का अभियान सफल हो गया तो हमारी सरकार या तो वुहान् या नान्किङ् चली जाएगी और यह निश्चित है कि पुनः यहाँ (केण्टन) लौट कर नहीं आएगी। वैसी हालत में हम दोनों क्वाङ् प्रान्तों का भार तुम्हारे ऊपर सौंप देंगे और तुम्हीं हमारी पिछली पंक्ति के रक्षक रहोगे। अगर अभाग्यवश उत्तर का हमारा आक्रमण असफल हो गया तो हम यहाँ आकर मुँह दिखाने के योग्य नहीं रहेंगे और तब उत्तरी सरकार के साथ चाहे तुम जिस प्रकार का भी राजनीतिक संबंध रखोगे हम तुम्हारे प्रभाव-क्षेत्र में निश्चय ही दखल नहीं देंगे। यहाँ तक कि अगर तुम उत्तरी सरकार की तरफ मिल भी जाओगे तो हम न तुम्हें तंग करेंगे और न तुम्हारी आलोचना ही करेंगे।' इसका उत्तर देने में वह असमर्थ हो गया जिससे यह पता चलता है कि वह केवल दो क्वङ् प्रान्तों तक ही अपनी अभिलाषा को सीमित रखना नहीं चाहता था। उसके बाद जब हमारी आक्रमक सेना कान् चौ फू (क्याङ् सी प्रान्त में) में प्रवेश कर गई तो पीछे से उसने हमारे विरुद्ध बगावत शुरू कर दी। क्यों उसने ठीक उस अवसर पर बगावत की? क्योंकि वह राजा बनना चाहता था और अपनी योजना की नींव डालने के पहले उसे क्रान्तिकारी फौज का सफाया कर डालना था जो कि राजतन्त्र के एकदम विरुद्ध थी।

एक दूसरी बात भी है जिससे यह पता चलता है कि छन् छ्युङ् मिङ् को राजगद्दी प्राप्त करने का लोभ था। सन् १९११ ई० की क्रांति के बाद वह अकसर लोगों से अपनी युवावस्था के एक स्वप्न के बारे में कहा करता था जिसमें कि उसने एक हाथ से सूर्य और एक हाथ से चन्द्रमा पकड़ लिया था। उसकी लिखी हुई कविताओं में की एक पंक्ति यों है—'सूर्य और चन्द्रमा को नहीं पकड़ सकने के कारण मैं अपनी युवावस्था के स्वप्न के प्रति झूठा साबित हुआ।' इस पंक्ति के साथ उसने नोट में अपनी युवावस्था के स्वप्न की कहानी लिख दी थी और सबों को दिखलाता फिरता था। अपने लिए उसने जो नाम रखा था (उसके नाम का अर्थ स्वच्छ और उज्ज्वल है) वह भी उसके स्वप्न से मिलता-जुलता हुआ था। और ज़रा उसके अधीन रहने वाले

आदमियों को तो देखिए—यिह चू, हुङ् चौ-लिन्, याङ् खुन्-रु, छन् छ्युङ्-क्वाङ् और वह समूह। तङ् खङ् को छोड़ उनमें से एक भी क्रान्तिकारी दल का सदस्य नहीं था और तङ् खङ् भी बहुत दिन पहले गुप्त रूप से मरवा डाला गया। छन् छ्युङ्-मिङ् क्रान्तिकारी दल का सदस्य था क्योंकि उसने राजा होने की आशा की थी और वह अभिलाषा उसकी आज तक नहीं गई है। इसके अलावा कुछ दूसरे लोग भी थे जो राजा होने की अभिलाषा अपने दिल में पाले हुए थे। मैं नहीं जानता कि आज प्रजासत्तात्मक राज के १३वें वर्ष में उनके क्या विचार हैं और मेरे पास यह पता लगाने का समय भी नहीं है।

आज मैं 'जनता की सार्वभौमिकता' पर बोल रहा हूँ और मैं चाहता हूँ कि आप सभी अच्छी तरह समझ लें कि इसका वास्तव में क्या अर्थ है। जब तक हम इसे स्पष्ट तौर से नहीं समझ लेते हैं तब तक हम अपने दिल के अन्दर की उस राजतन्त्र भावना से छुटकारा नहीं पा सकते जो एक ही शुभ कार्य में लगे हुए लोगों तथा एक ही देश के नागरिकों को आपस में एक दूसरे से लड़ा देती है। इससे सालों साल सम्पूर्ण देश गृह-युद्ध से टुकड़ा-टुकड़ा होता जाएगा और जनता के दुःख-तकलीफ की कोई सीमा नहीं रहेगी। चूँकि मैंने चाहा कि हम सभी इस प्रकार की आफ़त को नहीं आने दें इस लिए क्रान्ति शुरू होते ही मैंने प्रजातन्त्र का झण्डा ऊँचा उठाया और निश्चय कर लिया कि हम प्रजासत्तात्मक राज ही कायम करेंगे। जब हम वास्तविक प्रजासत्तात्मक राज स्थापित कर लेंगे तब कौन राजा होगा? तब हमारी चालीस करोड़ जनता स्वयं राजा होगी। इससे हर आदमी को प्रभुत्व के लिए लड़ने से छुटकारा मिल जाएगा और लड़ाई से होने वाली बुराइयाँ भी चीन में कम हो जाएँगी। चीन का इतिहास बताता है कि हर राजवंश के बदलने का अर्थ युद्ध था। जब कि छिन् श हवाङ् के स्वेच्छाचार के विरुद्ध जनता विद्रोह कर रही थी और जब छन् चे तथा वु-क्वाङ् ने विद्रोह का झण्डा उठाया और जिस विद्रोह में सभी प्रान्त सम्मिलित हो गए थे, तब से ही लोकसम्मत विद्रोह का प्रारम्भ होता है। लेकिन तब लिङ् पाङ् और शिआङ् यू मैदान में आए तो छु तथा हान् राजों (Sates) के बीच झगड़ा प्रारम्भ हुआ। लिङ् पाङ् और शिआङ् यू किस चीज के लिए लड़ रहे थे? वे राजगद्दी के लिए लड़ रहे थे और हान् तथा थाङ् राजकुलों के समय से ही कोई राजवंश ऐसा नहीं हुआ जिसमें राजगद्दी प्राप्त करने के लिए संघर्ष नहीं हुआ हो। चीन के इतिहास में शान्ति काल के बाद बराबर

अशांति होती रही है और यह अशांति राजगद्दी प्राप्त करने की प्रतिद्वंद्विता के कारण थी। विदेशी राष्ट्रों में धर्म और स्वतन्त्रता के लिए युद्ध होता रहा है लेकिन चीन के हज़ारों वर्षों के इतिहास में केवल एक ही तरह का युद्ध हुआ है और वह है राजगद्दी प्राप्त करने का युद्ध। और अधिक गृह-युद्ध न हो इसके लिए हमने जैसे ही अपनी क्रान्ति प्रारम्भ की, इस बात की घोषणा कर दी कि हम प्रजासत्तात्मक राज कायम करना चाहते हैं—राजतन्त्र नहीं। अब प्रजासत्तात्मक राज कायम हो गया है लेकिन अभी भी हमारे देश में ऐसे मनुष्य हैं जैसे दक्षिण में छन् छ्युङ्-मिङ् उत्तर में छाव् खुन्, क्वाङ्सी में लु युङ् थिङ् तथा मैं नहीं जानता कि और कितने हैं, जो राजगद्दी प्राप्त करने के लिए षड्यन्त्र कर रहे हैं। जब कि चीन में कोई प्राचीन राजवंश समाप्त होकर उसके स्थान पर नए वंश की स्थापना होती थी तो वह आदमी जिसके पास सबसे अधिक सैन्य शक्ति रहती थी राजा होना चाहता था। और जिसके पास थोड़े सैनिक होते थे वह राजकुमार या मार्किस होना चाहता था। आज के सैनिक सत्ताधारी लोगों में राजकुमार या मार्किस होने की उत्सुकता नहीं है इससे यह पता चलता है कि हम किसी तरह गृह-युद्ध के विपरीत दिशा की ओर प्रगति कर रहे हैं!

मार्च ६, सन् १९२४ ई०

दूसरा व्याख्यान

विदेशी विद्वान बराबर 'प्रजातन्त्र' शब्द को 'स्वतन्त्रता' के साथ जोड़ते हैं और बहुत-सी विदेशी पुस्तकों और निबन्धों में दोनों पर साथ-साथ चर्चा की गई है। यूरोप और अमेरिका की जनता प्रजातन्त्र के लिए ही गत दो-तीन सौ वर्षों से सङ्घर्ष करती रही है और जिसके फलस्वरूप प्रजातन्त्र अब वहाँ फूलने फलने लगा है। फ्रांस की राजक्रान्ति का नारा था—'स्वतंत्रता, समानता और भातृत्व'। यह ठीक उसी तरह का नारा था जिस तरह कि हमारा नारा है 'मिन् छु, मिन् कुश्रान्, मिन् षङ्' (जनता की राष्ट्रीयता, जनता की सार्वभौमिकता, जनता की जीविका)। हम कह सकते हैं कि स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्व जनता की सार्वभौमिकता पर आधारित है या जनता की सार्वभौमिकता ही स्वतन्त्रता, समानता और भातृत्व से विकसित हुई है। जब हम प्रजातन्त्र की चर्चा कर रहे हैं तो हमें फ्रांस के नारे का अर्थ ठीक-ठीक समझ लेना चाहिए।

पूर्व में जब से क्रान्तिकारी भावनाओं का प्रचार हुआ है तब से 'स्वतन्त्रता' शब्द का भी व्यवहार होने लगा है। नए आन्दोलन के बहुत से भक्त और समर्थकों ने ब्यौरेवार ढङ्ग से इसके अर्थ की व्याख्या करने की कोशिश की है कि स्वतन्त्रता अत्यन्त ही ज़रूरी चीज़ है। गत दो-तीन सौ वर्षों में यूरोप के इतिहास में स्वतन्त्रता के आन्दोलन का बड़ा ही जोर रहा है और अधिकांश यूरोपीय लड़ाइयाँ स्वतन्त्रता के लिए ही लड़ी गई हैं। इसलिए पश्चिमी विद्वान स्वतन्त्रता को बड़ी चीज़ समझते हैं और पश्चिम के बहुत से लोग इसके गहरे अध्ययन में लगे हुए हैं। लेकिन जब से यह शब्द चीन आया है तब से यहाँ के कुछ ही विद्वानों ने इसके बारे में अध्ययन करने और इसे समझने की कोशिश की है। अगर हम लोग गाँवों या सड़कों पर रहने वाली चीन की साधारण जनता से 'स्वतन्त्रता' के सम्बन्ध में बात करें तो उनकी समझ में ही नहीं आएगा कि हम उनसे क्या कह रहे हैं। इसलिए हम कह सकते हैं कि चीन के लोगों ने अब तक इस शब्द को कुछ नहीं समझा है। यहाँ तक कि चीन के नये युवकों और विदेश से पढ़कर लौटे हुए विद्यार्थियों को भी बहुत ही धुँधला ज्ञान है कि 'स्वतन्त्रता' शब्द का मतलब क्या है। यद्यपि उन्होंने पश्चिमी राजनीतिक मामलों के जानने

की ओर ध्यान दिया है और उन्होंने बराबर 'स्वतन्त्रता' के सम्बन्ध की बात-चीत सुनी है या पुस्तकों में इस शब्द को देखा है इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि विदेशी लोग चीनियों की आलोचना यह कह कर करते हैं कि उनकी (चीनियों की) सभ्यता हम से (विदेशियों से) हीन है, उनकी विचार-शक्ति अपरिपक्व है, उन्हें अब तक भी 'स्वतन्त्रता' का ज्ञान नहीं है और न इसकी भावना को व्यक्त करने के लिए उनके पास कोई शब्द है फिर भी वे चीनियों के असंगठित रहने की आलोचना 'बिखरे बालू की परत' कह कर करते हैं।

ये दोनों आलोचनाएँ परस्पर विरोधी हैं। विदेशी लोग हमें जो 'बिखरे बालू की परत' कहते हैं उसका क्या अर्थ है ? केवल यही न कि हमारा हर आदमी अपनी इच्छानुसार चलता है और जीवन के सभी क्षेत्रों में व्यक्तिगत स्वतंत्रता को प्रोत्साहन देता है इसलिए चीन अलग-अलग बालू के कणों का एक ढेर मात्र है। एक मुट्ठी भर बालू लीजिए। मुट्ठी में बालू के कितने भी कण क्यों न हों, धीरे धीरे वे हाथ से खिसकने लगते हैं; उनमें संबद्ध होकर रहने की कोई प्रवृत्ति नहीं है। यही बिखरा हुआ बालू कहाता है। लेकिन अगर हम बिखरे हुए बालू में सिमेंट मिला दें तो सभी कण चिपक कर पत्थर के समान कड़े हो जाएँगे और फिर बालू के कणों को इधर-उधर खिसकने की कोई स्वतंत्रता नहीं रहेगी। जब हम पत्थर और बालू की तुलना करते हैं तो हम स्पष्ट देखते हैं कि पत्थर मूलतः बालू के कणों से ही बना हुआ है पर पत्थर की दृढ़ता में बालू ने स्वतंत्रतापूर्वक इधर उधर खिसकने की अपनी शक्ति खो दी है। 'स्वतंत्रता' का सीधा अर्थ यह है कि एक संगठित समुदाय के अन्दर हर कोई अपनी इच्छा के अनुसार चल सकता है। चूँकि चीन में इस भावना को व्यक्त करने के लिए कोई शब्द नहीं है इसलिए हर आदमी इसकी बारीकियों को नहीं समझ सका है। हमारे यहाँ एक कहावत है 'बेलगाम का भागना' जो 'स्वतंत्रता' के अर्थ को बताता है। लेकिन यह तो ठीक 'बिखरे बालू' के समान है—हर आदमी के लिए अत्यधिक स्वतंत्रता। इसलिए जो विदेशी हमारी आलोचना यह कह कर करते हैं कि हममें संगठित होने की शक्ति नहीं है और हम बालू के अलग-अलग कण के समान हैं और दूसरी तरफ यह कहते हैं कि हम 'स्वतंत्रता' के अर्थ को ही नहीं समझते हैं, क्या वे नहीं सोचते कि यह हर व्यक्ति की स्वतंत्रता ही है जो हमें बिखरे बालू की परत बनाए हुए है और अगर हम सभी मिलकर एक मजबूत शरीर के रूप में संगठित हो जाँय तो हम बिखरे बालू की परत नहीं रह सकते

हैं ? ये आलोचक 'अपनी ढाल की ओर अपनी ही बर्छी की नोंक किए हुए हैं'।

गत दो तीन शताब्दियों के अन्दर विदेशियों ने अपनी अपरिमित शक्ति 'स्वतंत्रता' प्राप्ति की लड़ाई में लगाई है। क्या स्वतंत्रता वास्तव में अच्छी चीज़ है ? यह है क्या ? मैं समझता हूँ कि साधारण चीनी जनता को इस 'स्वतंत्रता' का अर्थ क्या है—के सम्बन्ध में कुछ भी धारणा नहीं है; जिसके लिए पश्चिमी लोग कहते हैं कि वे लड़ते रहे हैं। अपने युद्धों में विदेशियों ने स्वतंत्रता की प्रशंसा में आकाश तक पुल बांध दिया है और इसे पवित्र बना दिया है। उन्होंने अपने युद्ध का एक नारा ही बना लिया है—'स्वतंत्रता दो या मृत्यु दो।' पश्चिमी सिद्धान्तों का प्रचार करते हुए चीनी विद्यार्थियों ने चीन में भी इन शब्दों को फैला दिया है। उन्होंने स्वतंत्रता का समर्थन किया है और उसके लिए लड़ने के लिए कटिबद्ध हैं। अपने जोश के प्रथम उफान में वे पश्चिमी लोगों के मुकाबले में पहुँच गए। लेकिन चीन की आम जनता नहीं समझती है कि स्वतंत्रता का क्या अर्थ है। आप सभी इस बात को समझ लीजिए कि ज्यों-ज्यों जनता का प्रभुत्व बढ़ता है वैसे-वैसे 'स्वतंत्रता' की भावना भी विकसित होती है। इसलिए आज प्रजातंत्र पर बोलते समय पहले मैं स्वतंत्रता से ही प्रारम्भ करता हूँ। हम इसे ठीक से समझें कि यूरोप और अमेरिका ने स्वतंत्रता की लड़ाई में बहुत ही खून बहाया है और बहुत लोगों की आहुति चढ़ाई है। जैसा मैंने गत व्याख्यान में आपसे कहा था कि हम प्रजातंत्र के युग में हैं। पश्चिम में प्रजातंत्र एक शताब्दी से है लेकिन ऐतिहासिक दृष्टि से इसने स्वतंत्रता की लड़ाई का अनुसरण किया है स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए पहले जीवन की कुर्बानी करनी पड़ती थी और स्वतंत्रता का ही फल प्रजातंत्र था। उस समय यूरोप और अमेरिका के विद्वान नेताओं ने स्वतंत्रता को अपना नारा बनाया था जैसा कि हमने अपनी क्रान्ति के लिए 'जनता के तीन सिद्धान्त' को अपना नारा बनाया है। इन सब घटनाओं से हम देख सकते हैं कि पश्चिम में पहले स्वतंत्रता के लिए लड़ाई लड़ी गई और जब स्वतंत्रता मिल गई तो उसके फल को विद्वानों ने 'प्रजातंत्र' नाम दिया। डेमोक्रेसी शब्द (प्रजातंत्र) एक प्राचीन यूनानी शब्द से निकला है। अब तक भी विदेशी लोगों को प्रजातंत्र शब्द नहीं लुभा सका है। वे इसे कम या अधिक रूप में राजनीतिक विज्ञान का एक पारिभाषिक शब्द मानते हैं और इसे जीवन-मरण के प्रश्न से, जो स्वतंत्रता में निहित है, दूर की चीज़ समझते हैं। प्रजातंत्र की वास्तविक शुरुआत यूनान और रोम के उत्कर्ष काल में ही

हुई थी। उस समय प्रजासत्तात्मक राज था जो सच्चरित्र लोगों द्वारा नियंत्रित किया जाता था और वह एक शब्द था जिससे जनता की सार्वभौमिकता का बोध होता था। बाद में जब यूनान और रोम का पतन हो गया तो वह शब्द भी विस्मृति के गर्भ में चला गया। गत दो शताब्दियों में स्वतंत्रता के लिए होने वाले युद्ध पुनः इस शब्द को प्रकाश में लाए और हाल की शताब्दियों से तो यह बहुत से लोगों की ज़बान पर है। चीन में भी बहुत से लोगों ने इसे सीख लिया है और बराबर इसके संबंध में बोला करते हैं।

लेकिन हाल की यूरोपीय लड़ाइयों में लड़ने का उद्देश्य प्रजातंत्र की अपेक्षा स्वतंत्रता घोषित की गई है। स्वतंत्रता एक ऐसा शब्द था जिसे यूरोप में सभी लोग आसानी से समझ लेते थे। यूरोप के लोगों को 'स्वतंत्रता' शब्द के प्रति जो आकर्षण था वही आकर्षण आज चीनी लोगों को 'धन कमाओ' शब्द के प्रति है। आज चीन में लोग बराबर धन कमाने के बारे में सोचते हैं। अगर आप चीनी लोगों से स्वतंत्रता के लिए लड़ने को कहें तो वे न तो आपकी बात समझेंगे और न आपके काम में हाथ बटाएँगे। लेकिन अगर आप उन्हें धन कमाने के लिए चलने कहें तो झुण्ड के झुण्ड आपके पीछे हो लेंगे। आधुनिक यूरोपीय लड़ाइयों में 'स्वतंत्रता' एक ऐसा नारा था जिस पर जनता संगठित हो जाती थी क्योंकि यूरोप के लोगों ने इस शब्द को अच्छी तरह से समझ लिया था और इसके लिए वे लड़ते तथा बलिदान करने के लिए सदा तैयार रहते थे। हर आदमी स्वतंत्रता का पुजारी था। क्यों यूरोपीय जनता ने इस शब्द को इतना अपनाया जब कि चीनी जनता ने इस पर कोई ध्यान तो नहीं ही दिया बल्कि 'धन कमाओ' शब्द का स्वागत किया? इसके कई भीतरी कारण हैं और जिन्हें समझने के लिए हमें ध्यान पूर्वक अध्ययन करना चाहिए। चीनी लोग 'धन कमाओ' शब्द की ओर आकर्षित हुए क्योंकि चीन अब दिवालिया हो गया है और उसकी जनता गरीब हो गई है। जनता सबसे अधिक तक़लीफ़ गरीबी के कारण पा रही है। गरीबी से बचने का एक ही उपाय है और वह है 'धन कमाना'। इसीलिए सभी जगह इसका स्वागत हुआ। गरीबी से बचने का मतलब दुःख-तकलीफ़ से बचना है, अभाग्य और पीड़ा से छुटकारा पाना है। गरीबी की दुर्दशा में जब कोई आदमी अचानक किसी से धनी होने और पीड़ा से छुटकारा पाने की बात सुनता है तो यह स्वाभाविक है कि वह धन कमाने के लिए अपने जीवन को खतरे में भी डाल सकता है। गत शताब्दी या दो शताब्दी पहले की पश्चिमी जनता ने 'स्वतंत्रता' शब्द को उसी तरह

अपनाया था जिस तरह चीनी जनता 'धन कमाने' की बात आज अपनाए हुए है।

पश्चिम के लोग स्वतन्त्रता की ओर इसलिए झुके कि निरंकुश शासन अपनी चरम सीमा तक पहुँच चुका था। रोम साम्राज्य के समय वे (पश्चिमी लोग) सभ्यता के उस स्तर पर थे जिस पर चीनी लोग चउ राजकुल (ई० पू० ११२२-२५८) के अन्तिम समय और चीन के छोटे-छोटे राजों के एक में सम्बद्ध होने के सयम थे। चीन के चउ छिन् और हान् राजकुलों के समय पश्चिम में रोम भी यूरोप को सङ्गठित कर रहा था। रोम में पहले प्रजासत्तात्मक राज की स्थापना हुई और बाद में वही राजतन्त्र के रूप में परिणत हो गया। रोम साम्राज्य के पतन होने के बाद तो एक साथ बहुत से राज यूरोप में कायम हो गए जैसा कि चउ राजवंश के समाप्त होने पर चीन में आपसी सम्बन्ध रखने वाले बहुत से राज हो गए थे। इसलिए बहुत से विद्वानों ने चउ राजवंश के अन्तिम समय के 'सात नेताओं'[1] के बीच की लड़ाई की तुलना रोम साम्राज्य के पतन के बाद की स्थिति से की है। रोम साम्राज्य के छिन्न-भिन्न होकर छोटे-छोटे राजों में विभक्त हो जाने के बाद सामंतशाही प्रणाली का जन्म हुआ। सबसे शक्तिशाली नेता राजा और राजकुमार होते थे। उनसे कम शक्तिशाली मार्किस (Marquis) और उनसे भी कम वाले क्रमशः अर्ल, विसकाउन्ट और बैरन (Earl, Viscount, Baron) होते थे। ये सब के सब अपनी इच्छानुसार चलने वाले होते थे और सम्पूर्ण शासन प्रणाली चीन के चउ राजकुल की सामन्तशाही प्रणाली से भी अधिक स्वेच्छाचारपूर्ण थी। आज हम इस बात की कल्पना ही नहीं कर सकते कि सामंतशाही शासन युग में जनता को कितनी कठिनाइयाँ उठानी पड़ी थीं। चीन में निरंकुश शासन के समय यहाँ की जनता को जितनी मुसीबतें उठानी पड़ी थीं उनसे कहीं अधिक दुःख-तकलीफ यूरोप की जनता को भोगनी पड़ी थी। इसका कारण यह है कि छिन् राजकुल अपने स्वेच्छाचार का बोझ जनता पर सीधे इस प्रकार लादता था कि अगर कई शासन की बुराइयों के विरुद्ध बोलता था तो उसे मृत्यु की सजा दी जाती थी। यहाँ तक कि अगर आपस में दो आदमी शासन के विरुद्ध बातचीत

---

१. चउ राजकुल (ई० पू० ११२२-२५८, के अन्तिम दिनों में चीन सात राजों में विभक्त हो गया और ये आपस में एक-दूसरे से लड़ते थे। सात राजों की चर्चा ही सात नेताओं के नाम से यहाँ की गई है।

करते थे तो दोनों को फाँसी की सजा मिलती थी। इसीलिए जल्द ही इस राजवंश का खातमा भी हो गया। छिन् राजकुल के बाद जिन राजकुलों और सरकारों की स्थापना हुई उन्होंने जनता के प्रति बड़ी उदार नीति अख्तियार की। अनाज-कर देने को छोड़ जनता को सरकारी अफ़सरों से कोई संबंध नहीं रहता था। लेकिन यूरोप का क्रूर शासन किसी न किसी प्रकार से सीधे जनता पर दबाव डालता था। ऐसी हालत बहुत दिनों तक जारी रही और निरंकुश शासन-प्रणाली अधिक से अधिक ब्यौरेवार ढंग से विकसित होती गयी। इसलिए जनता की हालत दिन प्रतिदिन इतनी बदतर होती गई कि चीन में वैसा हाल कभी हम लोगों ने अनुभव ही नहीं किया है। दो सौ वर्ष पहले तक निरंकुश शासन के जुये के नीचे पड़ी यूरोपीय जनता कराह रही थी जैसा आज गरीबी के नीचे पड़ी चीनी जनता छटपटा रही है। इस प्रकार के लम्बे युग के क्रूर शासन से यूरोपीय जनता को 'स्वतंत्रता' की कमी बेहद खटकने लगी थी। इस क्रूर शासन से छुटकारा पाने का एक ही उपाय था कि वह स्वतंत्रता के लिए लड़ती। इसलिए जब स्वतंत्रता की आवाज उठाई गई तो लोगों ने आनन्दपूर्वक उसका स्वागत किया।

चीन की प्राचीन सामंतशाही प्रथा टूटने के बाद निरंकुश शासन के राजकीय ठाट-बाट का जनता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। छिन् राजकुल के समय से ही चीन के सम्राटों का प्रधान उद्देश्य अपनी राजगद्दी को सुरक्षित रखना हो गया था। ताकि साम्राज्य उन्हीं के परिवार के हाथों में रहे और उनके उत्तराधिकारी सदा के लिए शांति के साथ राज्य करें। इसलिए जनता का कोई भी काम जिससे राज्य को खतरा दिखता था, वह जहाँ तक संभव हो सकता था दृढ़ता के साथ दबाया जाता था। अगर कोई विद्रोह करता था तो केवल वही नहीं उसकी नौ पीढ़ियों के संबंधियों तक को सजा दी जाती थी। लोकप्रिय क्रान्ति को रोकने के लिए कड़ी से कड़ी कार्रवाई की जाती थी। वे निरंकुश सम्राट अपनी गद्दी सदा के लिए बनाए रखना चाहते थे। दूसरे शब्दों में कहें तो जब तक जनता राजगद्दी पर किसी तरह का आघात नहीं करती थी तब तक वह जो चाहे कर सकती, सम्राट उसमें कुछ भी दखल नहीं देता था। इसलिए छिन् राजकुल के बाद से जितने भी सम्राट हुए उन्होंने केवल अपनी राजगद्दी सुरक्षित रखने की ओर ही ध्यान दिया और जनता के जीवन की ओर से लापरवाह रहे। जनता को खुशहाल करने की बात उनके दिमाग में आती ही नहीं थी। चीन में तेरह वर्षों से प्रजा सत्तात्मक राज भी कायम है लेकिन चूँकि हमारी शासन-प्रणाली असंगठित है और

हमें अभी तक अच्छी शासन-व्यवस्था के कायम करने का समय नहीं मिला है इस लिए जनता और राज के बीच के सम्बन्ध की ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया गया है। मांचू राजकुल के समय क्या दशा थी? सन् १६११ ई० के पहले जनता और मांचू सम्राट के बीच कैसा सम्बन्ध था? मांचू राजकुल के समय हर प्रान्त में सबसे ऊपर एक वाइसराय या गवर्नर होते थे। उसके नीचे तौताइ और प्रिफेक्ट (Taotai and Prefect) और सबसे नीचे मदद करने वाले बहुत से मजिस्ट्रेट और अधीनस्थ कर्मचारी होते थे। जनता को सालाना अनाज-कर देने के सिवाय सम्राट से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं रहता था। जिसके फलस्वरूप जनता की राजनीतिक भावना कमजोर पड़ती गई। लोगों को इसकी परवाह नहीं थी कि कौन सम्राट है। सालाना अनाज-कर अदाकर देना मात्र ही वे अपना कर्त्तव्य समझते थे। सम्राट भी प्रजा से केवल अनाज-कर चाहता था और उसे प्रजा के जीने-मरने से कोई वास्ता नहीं था। इससे हम जान सकते हैं कि चीनी जनता निरंकुश शासनवाद के दबाव का प्रत्यक्ष शिकार नहीं हुई। उसका दुःख अप्रत्यक्ष था। चूँकि हमारा राष्ट्र कमजोर होता गया इसलिए हम विदेशी राजनीतिक और आर्थिक नियन्त्रण के नीचे आते गए तथा उसका विरोध नहीं कर सके। अब हमारी सम्पत्ति समाप्त हो गई है और हमारी जनता बेघरबार के हो गई है और वह अप्रत्यक्ष अत्याचार के कारण पैदा हुई दरिद्रता से पिस रही है।

इसलिए चीनी जनता अपने सम्राट के प्रति किसी प्रकार की ईर्षा नहीं रखती थी। यूरोप की निरंकुश शासन-प्रणाली चीन की निरंकुश शासन-प्रणाली से एकदम भिन्न थी। रोम साम्राज्य के पतन के बाद से लेकर आज से दो या तीन शताब्दी पहले तक यूरोप में निरंकुशता तेजी के साथ बढ़ती रही और इससे जनता को असीम और असह्य दुःख झेलना पड़ा। कई प्रकार की स्वतन्त्रता से वहाँ के लोग वंचित थे, खासकर सोचने की स्वतन्त्रता, बोलने की स्वतन्त्रता, इधर-उधर चलने-फिरने की स्वतन्त्रता आदि तो उन्हें थी ही नहीं। ये प्रतिबन्ध अब यूरोप में अतीत की चीजें हो गई हैं और आज हम उस दशा को नहीं देख सकते जैसी कि किसी समय वहाँ थी। इधर-उधर आने जाने की परतन्त्रता का क्या मतलब होता है, उसका आज भी हमको अनुभव है। फ्रांस और हॉलैण्ड अधिकृत मलाया द्वीपसमूह में यहाँ से जाकर बसे हुए चीनी लोगों के ऊपर लगे प्रतिबन्ध से जो कष्ट उन्हें भोगना पड़ता है उसके बारे में हम कुछ जानते हैं। उदाहरण के लिए जावा को लीजिए। जावा एक समय चीन के अधीन था और चीन को कर देता था लेकिन अब वह डच

लोगों के अधिकार में है। जब से इस द्वीप का शासन-भार डच लोगों के हाथों में गया है तब से बन्दरगाह पर जहाज लगते ही वहाँ जाने वाले हर चीनी व्यापारी, विद्यार्थी या मजदूर की डच पुलिस द्वारा सख्त तलाशी ली जाती है। चीनी लोग एक छोटे कमरे में लेजाकर बन्द कर दिए जाते हैं जहाँ कि उन्हें अपना सब कपड़ा उतार देना पड़ता है। तब डाक्टर स्वास्थ्य की जाँच के लिए शिर से पैर तक उनकी परीक्षा करते हैं, उनके अँगूठे का निशान लेते हैं तब कहीं वे किनारे पर पैर रख सकते हैं। उसके बाद देश भर में जहाँ-कहीं भी वे जाते हैं वहाँ उन्हें डच सरकारी आफिस में अपना नाम दर्ज कराना पड़ता है और एक जगह से दूसरी जगह जाने के लिए सरकारी पास लेना पड़ता है। रात में नौ बजे के बात घर से बाहर रहने के लिए साधारण पास से काम नहीं चलता है। उसके लिए 'रात का पास' लेना पड़ता है और अपने पास एक-एक बत्ती रखनी पड़ती है। इस प्रकार का बर्त्ताव डच सरकार जावा में चीनी यात्रियों के साथ करती है। व्यक्ति के चलने-फिरने की स्वतन्त्रता पर इस प्रकार का प्रतिबन्ध यूरोप में निरंकुश शासन युग से ही चला आता है और अब डच सरकार द्वारा चीनी जनता पर लगाया जाता है। इससे हमको पता चलता है कि प्राचीन यूरोपीय निरंकुश शासन-प्रणाली कैसी थी। स्वतन्त्रता के ऊपर और भी कितने प्रकार के प्रतिबन्ध हैं जैसे व्यापार की स्वतन्त्रता के ऊपर, काम करने की स्वतन्त्रता के ऊपर, धर्म में विश्वास करने की स्वतन्त्रता के ऊपर तथा और भी इस प्रकार की कितनी ही बातों के ऊपर। धर्म में विश्वास करने की स्वतन्त्रता को लीजिए। अगर किसी खास जगह पर जनता को कोई खास धर्म मानने के लिए बाध्य किया जाता है जिसे चाहती हो या नहीं तो यह स्थिति उसके लिए अत्यन्त ही असह्य हो उठती है। यूरोप की जनता ने स्वतन्त्रता से वंचित रहने के कारण अनेकों कष्ट उठाए हैं। इसलिए जब वह किसी के द्वारा लड़ी जाने वाली स्वतन्त्रता की लड़ाई के बारे में सुनती है तो वह आनन्दित हो उठती है और उसके पक्ष का समर्थन करती है। यूरोप में क्रान्तिकारी भावों की शुरुआत इसी प्रकार से हुई।

यूरोप में स्वतन्त्रता की लड़ाई के लिए क्रान्तियाँ हुईं। स्वतन्त्रता के लिए जनता ने बेहद खून बहाया और अनगिनत प्राणों और परिवारों का बलिदान किया। इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि जब स्वतन्त्रता प्राप्त हुई तो लोगों ने उसे पवित्र चीज माना और आज भी वे उसकी पूजा करते हैं। स्वतन्त्रता की यह भावना हाल में ही चीन पहुँची है और विद्वानों

का एक समूह इसका पक्का प्रचारक हो गया है। जिसके फलस्वरूप आज बहुतों के दिलों में स्वतन्त्रता के लिए लड़ने की भावना पैदा हो गई है। आज हम प्रजातन्त्र की चर्चा कर रहे हैं। यहाँ प्रजातंत्र का सिद्धान्त यूरोप और अमेरिका से आया है और हमको इसका अर्थ अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए और उससे सादृश्य रखने वाली स्वतन्त्रता की भावना का क्या मतलब है इसे भ. समझना चाहिए। यूरोप के लोगों ने परतंत्रता के कारण एक समय बेहद दुःख उठाया था और उससे अधिक दुःख उठाना उनके सामर्थ्य के बाहर की बात थी। इसीलिए लाखों आदमी एक ही भावना से स्वतन्त्रता के लिए लड़ने गए और जब स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई तो प्रजातन्त्र का विकास हुआ। इसलिए अगर हम प्रजातन्त्र की चर्चा करते हैं हमको पहले स्वतन्त्रता की लड़ाई का इतिहास निश्चय ही जान लेना चाहिए।

हाल के वर्षों में जबसे पश्चिमी क्रान्तिकारी भावना चीन में आयी है यहाँ के नए विद्यार्थी और बहुत से ईमानदार विद्वान स्वतन्त्रता की घोषणा करने लगे हैं। वे सोचते हैं कि यूरोप की क्रान्तियाँ फ्रांस की राजक्रान्ति के समान स्वतन्त्रता की लड़ाइयाँ थीं इसलिए हमको भी स्वतन्त्रता के लिए लड़ना चाहिए। उनका यह कथन दूसरे लोगों के कथन से कुछ भिन्न नहीं है। उन्होंने प्रजातन्त्र या स्वतन्त्रता के अध्ययन में अपना ध्यान नहीं दिया है और वे इनके भीतरी अर्थ को भी नहीं जानते हैं। हमारे क्रान्तिकारी दल के इस प्रस्ताव का बड़ा ही गंभीर तात्पर्य है कि हमारे क्रान्तिकारी का आधार स्वतन्त्रता की लड़ाई नहीं बल्कि 'जनता के तीन सिद्धान्त' होना चाहिए। फ्रांस की राजक्रान्ति का नारा था 'स्वतन्त्रता', अमेरिका की क्रान्ति का 'स्वाधीनता' और हमारी क्रान्ति का नारा है 'जनता के तीन सिद्धान्त'। हमने अपना नारा निश्चित करने में काफी समय लगाया है और उस पर बहुत सोच-विचार किया है। हम केवल दूसरों की नकल नहीं कर रहे हैं। क्यों हम कहते हैं कि हमारे नवयुवकों का स्वतन्त्रता के लिए प्रचार करना ठीक नहीं है जबकि यूरोप के लोगों के लिए स्वतंत्रता का नारा एकदम ठीक था? मैंने पहले ही बता दिया है कि जब संघर्ष के लिए हम कोई आदर्श सामने रखते हैं और हम चाहते हैं कि सब लोग इच्छापूर्वक उस संघर्ष में भाग लें तो उसका उद्देश्य अन्तस्तल तक पहुँची हुई दुःख-तकलीफ को मिटाने का होना चाहिए। यूरोप की जनता निरंकुश शासन से इतनी बुरी तरह सताई जा चुकी थी कि जैसे ही स्वतंत्रता का झंडा उठाया गया लाखों आदमी उसके नीचे आ गए। अगर हम चीन में, जहाँ की जनता उस तरह के निरंकुश शासन का शिकार नहीं हुई है,

स्वतंत्रता का नारा बुलन्द करें तो कोई भी उसकी ओर ध्यान नहीं देगा। लेकिन अगर हम 'धन कमाने' का नारा लगाएँ तो जनता उसका स्वागत करेगी। हम लोगों के 'जनता के तीन सिद्धान्त' बहुत बातों में धन कमाने के सिद्धान्त के समान हैं। हम पहले इस कथन को अपने दिमाग में अच्छी तरह रख लें और गौर से इस पर विचार करें तो हम इसके असली अर्थ को समझ सकेंगे। क्यों हम प्रत्यक्ष रूप से धन प्राप्त करने की बात नहीं कहते हैं? चूँकि जनता के तीन सिद्धान्त में केवल धन प्राप्त करना ही नहीं है बल्कि धन प्राप्त करना भी उसमें सम्मिलित है। अपनी क्रान्ति के प्रारम्भ में रूस ने जो समाजवादी प्रणाली जारी की थी वह भी धन प्राप्त करने के समान ही थी। वह सीधे और प्रत्यक्ष रूप से धन प्राप्त करने की नीति थी। लेकिन हमारे क्रान्तिकारी दल के एक से अधिक उद्देश्य हैं। इसलिए केवल धन प्राप्त करना सभी उद्देश्यों का द्योतक नहीं हो सकता। 'स्वतंत्रता' शब्द द्वारा हमारे उद्देश्य तो और भी नहीं सूचित किए जा सकते।

चीन में दिलचस्पी रखनेवाले आधुनिक यूरोपीय विद्वान कहते हैं कि हमारी सभ्यता पिछड़ी हुई है और हममें राजनीतिक जागृति इतनी कम है कि हम 'स्वतंत्रता' शब्द को भी नहीं समझते हैं। वे कहते हैं—'हम यूरोप के लोगों ने एक या दो सौ वर्ष पहले स्वतंत्रता के लिए लड़ाई की और उसके लिए बलिदान किया और कोई अन्दाज भी नहीं कर सकता है कि हमने कितने आश्चर्यजनक काम किए हैं। लेकिन चीन के लोग अभी तक भी नहीं जानते हैं कि स्वतंत्रता क्या है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि यूरोप की राजनीतिक चेतना चीन की राजनीतिक चेतना से कहीं आगे बढ़ी हुई है।' चूँकि हम स्वतंत्रता के बारे में चर्चा नहीं करते हैं इसलिए वे कहते हैं कि हमारे राजनीतिक विचार अपरिपक्व हैं। मैं नहीं समझता हूँ कि इस प्रकार के तर्क से कोई फायदा है। अगर यूरोप के लोग स्वतंत्रता का मूल्य इतना आँकते हैं तो वे चीनियों को 'बिखरे बालू की परत' क्यों कहते हैं? जब यूरोप के लोग स्वतंत्रता के लिए लड़ रहे थे तो उन्होंने स्वभावतः ही स्वतंत्रता की भावना को दृढ़ता के साथ अपनाया था। लेकिन जबसे उन्हें स्वतंत्रता प्राप्त हो गई है और वे अपने उद्देश्य में सफल हो गए हैं सम्भवतः उनकी स्वतंत्रता का विचार भी कमजोर पड़ गया है। अगर आज पुनः स्वतंत्रता का झंडा उठाया जाय तो मैं नहीं सोचता हूँ कि पहले की तरह उत्साह के साथ आज भी लोग उसके नीचे आएँगे। साथ-साथ, दो या तीन शताब्दियों पहले स्वतंत्रता के लिए लड़ना क्रान्ति करने का यूरोपीय ढंग था और जिसे

अब फिर नहीं दुहराया जा सकता है। 'बिखरे बालू' शब्द के व्यवहार की मुख्य विशेषता क्या है? इसकी मुख्य विशेषता है पूर्ण स्वतंत्रता, क्योंकि इसके बिना 'बिखरे बालू' जैसी कोई भी चीज़ नहीं हो सकती है। जब यूरोपीय प्रजातंत्र की, कली ठीक फूट ही रही थी तभी यूरोप के लोग 'स्वतंत्रता' के लिए लड़ने की चर्चा करते थे। जब उन्हें अपने उद्देश्य में सफलता मिल गई तो हर आदमी अपनी-अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सीमा बढ़ाने लगा और जल्द ही अत्यधिक स्वतंत्रता से अनेकों बुराइयाँ भी पैदा हो गईं। इसलिए मिल (John Stuart Mill) नामक एक अँगरेज विद्वान ने कहा—'केवल वही व्यक्तिगत स्वतंत्रता जो दूसरे की स्वतंत्रता के साथ नहीं टकराती है, सच्ची स्वतंत्रता मानी जा सकती है।' अगर एक की स्वतंत्रता दूसरे की स्वतंत्रता के विरुद्ध पड़ती है तो वह स्वतंत्रता नहीं रह जाती है। उसके पहले पश्चिमी लोगों ने स्वतंत्रता की कोई सीमा निर्धारित नहीं की थी। लेकिन जब मिल ने सीमित स्वतंत्रता के अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन किया तब व्यक्तिगत स्वतंत्रता बहुत अंशों में कम हो गई। स्पष्ट ही पश्चिमी विद्वानों ने इस बात का अनुभव किया था कि स्वतंत्रता वह पवित्र चीज़ नहीं है जिसके ऊपर हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है। उन्हें तो यह अनुभव हुआ कि स्वतंत्रता को एक सीमा के अन्दर ही रखना चाहिए। विदेशी लोगों द्वारा यह कह कर चीनी लोगों की भर्त्सना किया जाना कि वे (चीनी) यह भी नहीं समझते हैं कि स्वतंत्रता क्या है और वे 'बिखरे बालू' की तरह हैं, निश्चय ही एक विरोधाभास है। अगर चीनी लोग 'बिखरे बालू' की तरह हैं तब तो उन्हें पहले से ही पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त है। अगर हमारा 'बिखरे बालू' की तरह रहना ठीक नहीं है तो पत्थर की तरह सख्त होकर एक हो जाने के लिए जितनी जल्दी हो सके हमें सिमेंट और पानी मिलाना चाहिए। जब यह हो जाएगा तो बालू इधर-उधर बिखर नहीं सकेगा और वह स्वतंत्र नहीं रहेगा। चीनी लोग जिस तकलीफ़ को भोग रहे हैं उसका कारण स्वतंत्रता का अभाव नहीं है। अगर हमारा स्वभाव 'बिखरे बालू' की तरह है तब तो हमें बहुत पहले से ही काफ़ी स्वतंत्रता प्राप्त है। चीनी जनता के पास स्वतंत्रता बोध कराने के लिए शब्द नहीं है इसलिए स्वतंत्रता की भावना भी नहीं है। लेकिन इस भावना की कमी को शासन से क्या लेना-देना है? क्या चीनियों को सचमुच में स्वतंत्रता है?

जब हम उस 'बिखरे बालू की परत' के बारे में सोचते हैं तो हम पाते हैं कि चीन में काफ़ी स्वतंत्रता है। चूँकि हमारे पास यह इतनी अधिक मात्रा

में है कि कोई इस पर ध्यान ही नहीं देता है यहाँ तक कि इसके नाम के ऊपर भी ध्यान नहीं दिया गया है। ऐसा क्यों है? इसका उदाहरण हम अपने प्रतिदिन के जीवन से लें। हमारी सबसे बड़ी दैनिक आवश्यकता की चीज़ें खाना और कपड़ा हैं। कम से कम दिन में दो बार खाना और साल में दो जोड़ा कपड़ा यह तो हमारे लिए ज़रूरी है। लेकिन एक दूसरी चीज़ है जो खाने और कपड़े से भी अधिक आवश्यक है। साधारण लोग सोचते हैं कि उनके जीवन में खाना सबसे ज़रूरी है क्योंकि अगर वे नहीं खाते हैं तो मर जायेंगे। लेकिन यह दूसरी चीज़ खाने से दस हज़ार गुना अधिक आवश्यक है। चूँकि हमको उसके लिए सचेत नहीं रहना पड़ता है इसलिए हम उसकी आवश्यकता का भी अनुभव नहीं करते हैं। यह दूसरी चीज़ है—स्वच्छ हवा में साँस लेना। स्वच्छ हवा में साँस लेना क्यों भोजन से हज़ार गुना अधिक आवश्यक है? अगर हम दिन भर में दो बार या एक ही बार खाएँ तो भी जिन्दा रह सकते हैं। लेकिन अच्छी तरह रहने के लिए हम को प्रति मिनिट में सोलह बार प्राणदायिनी स्वच्छ हवा में साँस लेना पड़ता है। बिना इतनी हवा के हम खड़े भी नहीं रह सकते। अगर आपको मेरी बात पर विश्वास न हो तो आप अपनी नाक एक मिनट के लिए बन्द कर सोलह बार की साँस को रोक देखिए। बिना कष्ट पाए हम एक मिनट भी इसके बिना नहीं रह सकते। एक दिन में चौबीस घण्टे होते हैं और एक घण्टे में साठ मिनट। हर मिनट में सोलह बार साँस लेने का मतलब एक घण्टे में ६६० बार साँस लेना है। इस प्रकार एक दिन में २३ हजार ४० बार हम साँस लेते हैं। इसलिए मैं कहता हूँ कि इसमें जरा भी अतिशयोक्ति नहीं है कि सांस लेना खाने से कहीं अधिक ज़रूरी है। इस बात की ओर हम लोग क्यों नहीं ध्यान देते हैं? इसका कारण यह है कि स्वच्छ हवा हमारे चारों ओर असीम रूप से फैली हुई है और जो कभी समाप्त होने वाली नहीं है। हम दिन-रात बिना समय बर्बाद किए और बिना परिश्रम किए सांस लेते रहते हैं। पर भोजन के लिए ऐसी बात नहीं है। इसलिए हम सोचते हैं कि हवा का पाना आसान है और भोजन का पाना कठिन। स्वच्छ हवा इतनी आसानी से हमको मिल जाती है कि हम इसके विषय में जरा भी नहीं सोचते हैं। नाक बन्द कर सांस रोकना स्वच्छ हवा की प्रधानता को सिद्ध करने का एक छोटा-सा प्रयोग है। बड़ा प्रयोग तो यह होगा कि अगर हम इस हाल की सभी खिड़कियों को अच्छी तरह से बन्द कर दें। तब धीरे-धीरे स्वच्छ हवा का परिमाण हाल से कम होता जायगा और कुछ ही मिनटों में

यहाँ बैठे सैकड़ों मनुष्य बड़ी तकलीफ़ का अनुभव करेंगे। या किसी आदमी को दिन भर के लिए एक छोटी-सी कोठरी में बन्द कर दीजिए। जब वह पहली बार कोठरी से बाहर आयगा तो बड़ी सजीवता का अनुभव करेगा। यह हमारे सिद्धान्त का दूसरा उदाहरण है। चूँकि चीनी लोगों को अपरिमित मात्रा में स्वतन्त्रता प्राप्त है इसलिए उन्होंने इस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया है जैसाकि जब कोठरी में काफ़ी हवा रहती है तो हम उसके महत्व को कुछ नहीं समझते हैं लेकिन जब खिड़कियाँ और दरवाजे बन्द कर दिए जाते हैं और बाहर से स्वच्छ हवा का आना रुक जाता है तो हम उसकी खूबी को समझते हैं। दो-तीन शताब्दियों पहले निरंकुश शासन के अन्दर यूरोप के लोगों को किसी प्रकार की स्वतन्त्रता नहीं थी। इसलिए हर आदमी स्वतन्त्रता को अमूल्य समझ रहा था और उसके लिए जान देने को तैयार रहता था। स्वतन्त्रता प्राप्त होने के पहले वे कोठरी में बन्द आदमी की तरह थे। स्वतन्त्रता प्राप्त होने पर उनकी दशा कोठरी में बन्द आदमी को बाहर स्वच्छ हवा में निकाल देने के समान हो गई। इसलिए स्वभावतः हर आदमी ने स्वतन्त्रता को आश्चर्यजनक और अमूल्य चीज़ समझा और पश्चिम के लोग कहने लगे—'स्वतन्त्रता दो या मृत्यु हो।'

लेकिन चीन की परिस्थिति यूरोप से भिन्न है। चीन के लोग स्वतन्त्रता के बारे में नहीं जानते हैं, वे केवल 'धन कमाने' के बारे में जानते हैं। चीनी लोगों से स्वतन्त्रता के बारे में बात करना क्वाङ्सी पहाड़ के भीतरी भागों में बसने वाले आदिनिवासी यौ-नामक कबीले से धन कमाकर रुपया जमा करने की बातचीत करने के समान है। यौ कबीले के लोग पहाड़ के भीतरी भागों से बराबर माजूफल और हरिण के सींग लेकर बाहरी दुनिया के खुले बाजार में दूसरी चीज़ों से बदलने आते हैं। पहले बाजार के व्यापारियों ने उन्हें उनकी चीज़ों के बदले रुपया देना चाहा। लेकिन उन्होंने रुपया लेना इन्कार कर दिया पर अपनी चीज़ों के बदले नमक और कपड़े लेकर संतुष्ट हुए। हम सोचते हैं कि धन कमाकर रुपए पैदा करने से बढ़कर और कोई अच्छी चीज़ नहीं है लेकिन यौ कबीले के लोग व्यवहार की चीज़ लेकर ही संतुष्ट रहते हैं। चूँकि वे धन कमाने का अर्थ नहीं समझते हैं इसलिए रुपये की परवाह नहीं करते। आधुनिक चीनी विद्वान्, जो चीन के लोगों से 'स्वतन्त्रता' की बात करते हैं, उन व्यापारियों के समान हैं जो यौ कबीले के लोगों को धन जमा करने की सलाह देते हैं। चीनी जनता को स्वतन्त्रता की कोई जरूरत नहीं है। फिर भी यहाँ के विद्यार्थी उसी का प्रचार करते हैं।

यह निश्चित है कि उन्हें 'समय की पहचान' नहीं है। यूरोप और अमेरिका के लोगों ने आज से १५० वर्ष पहले स्वतन्त्रता की लड़ाई में अपने जीवन को खतरे में डाला था क्योंकि स्वतन्त्रता उनके लिए बहूमूल्य चीज थी। जब संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और फ्रांस ऐसे राष्ट्रों ने स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली तो वे प्रजातन्त्र शासन के अग्रदूत हो गए। फिर भी क्या इन देशों में हर व्यक्ति स्वतन्त्र है? बहुत से वर्गों को जैसे विद्यार्थी, सैनिक, राजकर्मचारी और बीस वर्ष से कम उम्र के नाबालिगों को स्वतन्त्रता नहीं है? दो-तीन शताब्दी पहले पश्चिम में जो स्वतन्त्रता की लड़ाई हुई थी वह बीस वर्ष के अधिक उम्र वालों, तथा जो लोग सैनिक, राजकर्मचारी और विद्यार्थी नहीं थे उनके द्वारा लड़ी गई थी। और जब स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली गई तो उससे (स्वतन्त्रता से) केवल उन्हें जो इन वर्गों के नहीं थे, फायदा उठाने दिया गया। आज भी इन वर्गों के नागरिक पूर्णरूप से स्वतन्त्र नहीं हैं। चीन के विद्यार्थी स्वतन्त्रता की भावनाओं को लेकर और उन्हें (भावनाओं को) कहीं व्यवहार में लाने की जगह न पाकर अपनी पाठशालाओं में ही उनका व्यवहार करने लगे हैं। 'स्वतन्त्रता' के लिए लड़ने के नाम पर विद्यार्थियों का विद्रोह और हड़ताल जारी हुई। पश्चिम के लोग जिस स्वतन्त्रता के बारे में चर्चा करते हैं वह बन्धनों से जकड़ी हुई है और वह हर व्यक्ति की सम्पत्ति नहीं कही जा सकती है। नवयुवक विद्यार्थी जब स्वतन्त्रता की बात करते हैं तो सभी बन्धनों को तोड़ देते हैं। चूँकि समाज में उनके सिद्धान्तों को कोई नहीं अपनाता है तो वे उनको (सिद्धान्तों को) अपनी पाठशालाओं में ही व्यवहार में लाते हैं और जिसके फलस्वरूप लगातार पाठशालाओं में अशांति और हड़ताल होती है। यह 'स्वतंत्रता' का दुरुपयोग करना है। विदेशी लोग अगर चीन के इतिहास से परिचित नहीं हैं और नहीं जानते हैं कि प्राचीन काल से ही चीनी लोग काफ़ी मात्रा में स्वतंत्रता का उपयोग करते आए हैं, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। लेकिन हमारे देश के विद्यार्थी भी चीन के प्राचीन स्वाधीनता के इस गीत को भूल गए हैं :—

"जब सूर्य उदय होते हैं तो मैं काम करता हूँ;
जब सूर्य अस्त हो जाते हैं तो मैं आराम लेता हूँ;
मैं पानी के लिए कुवाँ खोदता हूँ;
मैं भोजन के लिए जमीन जोतता हूँ;
सम्राट की प्रभुता से मुझे क्या लेना देना है।"

यह सचमुच ही बड़ा आश्चर्य है। हम इस स्वतंत्रता के गीत से जान सकते हैं कि चीन यद्यपि सैद्धान्तिक रूप में स्वतंत्र नहीं है पर यहाँ के लोगों को प्राचीन काल से ही वास्तविक स्वतंत्रता प्राप्त है और वह इतनी अधिक है कि उससे अधिक पाने की आवश्यकता नहीं है।

चूँकि प्रजातंत्र स्वतंत्रता से ही मिला है इसलिए प्रजातंत्र की चर्चा करते समय हम पश्चिम की स्वतंत्रता की लड़ाई के इतिहास को साथ-साथ समझ लें। अन्यथा हम यह नहीं जान सकेंगे कि स्वतंत्रता अमूल्य वस्तु है। यूरोप के लोगों में स्वतंत्रता की लड़ाई के लिए बहुत जोश था जो कि अब ठंढा पड़ गया है। इससे यह पता चलता है कि स्वतंत्रता में अच्छाई और बुराई दोनों ही निहित हैं और इसमें कोई खास धार्मिकता नहीं है। अगर लोग कहते हैं कि हम 'बिखरे बालू की परत' के समान हैं तो हमें यह सत्य स्वीकार है पर लोगों की यह धारणा कि चीनियों में स्वतंत्रता के समझने का माद्दा ही नहीं है और उनमें राजनीतिक चेतना कम है तो इन्हें हम कदापि नहीं मान सकते। क्यों चीन 'बालू की परत'-सा हो गया है? क्योंकि यहाँ के लोगों को अत्यधिक वैयक्तिक स्वतंत्रता प्राप्त है। इसलिए चीन की क्रान्ति का उद्देश्य विदेशी क्रान्तियों के उद्देश्य से सर्वथा भिन्न है और इस कारण अपनी क्रान्ति को सफल बनाने की जो प्रणाली हम काम में लाएँगे वह निश्चय ही विदेशी प्रणाली से भिन्न होगी। चीन में सचमुच में क्यों क्रान्ति हो रही है? अगर सीधे तरह से उत्तर दिया जाय तो हमारी क्रान्ति का लक्ष्य यूरोपीय क्रान्ति के लक्ष्य से ठीक उलटा है। यूरोप के लोगों ने विद्रोह किया और स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ी क्योंकि उन्हें कुछ भी स्वतंत्रता नहीं थी। हमारे पास स्वतंत्रता पर्याप्त मात्रा में रही है लेकिन संगठन और प्रतिरोध की शक्ति का अभाव रहा है और चूँकि हम 'बालू की परत' बन गए हैं इसलिए विदेशी साम्राज्यवाद के शिकार हैं और शक्तिशाली राष्ट्रों के आर्थिक नियंत्रण और व्यापारिक होड़ के कारण पिस रहे हैं। इनका विरोध करने योग्य होने के लिए हमें अपनी वैयक्तिक स्वतंत्रता छोड़नी पड़ेगी और बालू में सिमेंट मिलाने से जैसा दृढ़ चट्टान बनता है उसी प्रकार हमें संगठित होकर एक होना होगा ताकि हमें कोई झुका नहीं सके। चीन के लोग आज इतनी स्वतंत्रता का उपभोग कर रहे हैं कि उससे स्वतंत्रता की बुराइयाँ ही प्रदर्शित होती हैं। यह केवल पाठशालाओं में होने वाली घटनाओं के सम्बन्ध में ही सत्य नहीं है बल्कि हमारे क्रान्तिकारी दल के सम्बन्ध में भी सत्य है। मांचू राज्य के

समाप्त होने के बाद से लेकर आज तक के बीच क्यों नहीं हम शासन-व्यवस्था स्थापित कर सके हैं ? इसका कारण हमारे द्वारा स्वतंतत्रा का दुरुपयोग करना है। ठीक इसी कारण से हमारे क्रान्तिकारी दल को युआन् श खाइ से हार खानी पड़ी थी। प्रजासत्तात्मक राज की स्थापना के द्वितीय वर्ष में बिना प्रतिनिधि-सभा (पार्लियामेंट) की मंजूरी के ही युआन् श खाइ ने विदेशों से बहुत भारी कर्ज लेने की बात तय की, सुङ् चिआौ-रन्[२] को मरवा डाला और प्रजासत्तात्मक राज को धक्का पहुँचाने के लिए और भी बहुत कुछ किया। मैंने सभी प्रान्त के लोगों को इसका विरोध करने और युआन् को सजा देने की बात कही। लेकिन चूँकि हमारे दल में ही हर आदमी स्वतंत्रता की बात करता था इसलिए संगठन कुछ भी नहीं था। उदाहरण के लिए देखिए:—दक्षिणी-पश्चिमी प्रान्तों में, डिवीजन कोमांडर (Divisional Commanders) और ब्रिगेडियर जनरल (Brigadier General) से लेकर साधारण सैनिक तक, हर आदमी वैयक्तिक स्वतंत्रता की बात करता था। कोई एक साथ मिलकर काम करने को तैयार नहीं था। धीरे-धीरे इस प्रकार की स्वतंत्रता का विस्तार सभी प्रान्तों में हुआ। उस समय हर प्रान्त अपनी ही स्वतंत्रता पर जोर देता था और दूसरे प्रान्तों से सहयोग करने को तैयार नहीं था। सन् १९११ ई० की क्रान्ति की बची-खुची प्रतिष्ठा का उपभोग करने वाले दक्षिणी प्रान्तों ने ऊपर ही ऊपर बड़ी तड़क-भड़क दिखलाई लेकिन हमारा दल तो भीतर ही भीतर छिन्न-भिन्न हो गया था और कोई भी अनुशासन मानने को तैयार नहीं था। युआन् श खाइ की तरफ अगर देखें तो हम पाते हैं कि उसके अधीन पइ याङ् दल की पुरानी छः रक्षात्मक फ़ौज और इन छः फौजों के डिवीजन कमांडर, ब्रिगेडियर जनरल और सैनिक सब के सब एक अनुशासन में बंधे थे और वे एक हुक्म मानने को तैयार रहते थे। एक शब्द में कहें तो युआन के पास दृढ़ संगठन था और हम क्रान्तिकारी दल वाले 'बिखरे बालू की परत' थे और इसलिए युआन् ने हमारे दल को पराजित कर दिया। यह इस बात को स्पष्ट करता है कि एक सिद्धान्त जो दूसरे देशों में ठीक लागू होता है, यह ज़रूरी नहीं है कि वह चीन में भी लागू होगा ही। पश्चिमी की क्रान्तियों में 'स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करना, शब्द का उपयोग क्रान्ति को सफल बनाने के लिए किया गया था। लेकिन चीन की क्रान्ति का लक्ष्य स्वतंत्रता नहीं है। अगर हम यह घोषित करें कि हम स्वतंत्रता के लिए लड़ रहे हैं तो हम 'बिखरे बालू की परत'-सा ही रह

२. ये प्रतिनिधि-सभा (पार्लियामेंट) के अध्यक्ष चुने गए थे।

जाएँगे और संगठित नहीं हो सकेंगे। हम अपनी क्रान्ति के इच्छित उद्देश्य में कभी भी सफलता प्राप्त नहीं कर सकेंगे।

पश्चिम में क्रान्तियां स्वतन्त्रता की लड़ाई के साथ प्रारम्भ हुईं। दो या तीन शताब्दियों के युद्ध और आन्दोलन के बाद स्वतन्त्रता प्राप्त हुई और उससे प्रजातन्त्र का जन्म हुआ। फ्रांस की राजक्रान्ति का नारा था स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व। हमारा नारा है—जनता की राष्ट्रीयता, जनता की सार्वभौमिकता और जनता की जीविका। इन दो नारों के बीच क्या सम्बन्ध है? मेरी व्याख्या के अनुसार हमारी राष्ट्रीयता उनकी (फ्रांसीसियों की) स्वतंत्रता के सदृश है। क्योंकि जनता की राष्ट्रीयता को कार्यरूप में परिणत करने का अर्थ अपने राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए लड़ना है। यूरोप के लोग वैयक्तिक स्वतंत्रता के लिए लड़े थे लेकिन आज हमें 'स्वतंत्रता' को दूसरी तरह से काम में लाना है। अब 'स्वतंत्रता' शब्द कैसे लागू किया जायगा? अगर हम इसे व्यक्ति पर लागू करते हैं तो हम 'बिखरे बालू की परत' जैसा हो जाएँगे। किसी भी हालत में हम व्यक्ति को अधिक स्वतंत्रता नहीं देंगे। इसके बदले हम राष्ट्र के लिए स्वतंत्रता प्राप्त करें। वैयक्तिक स्वतंत्रता बहुत अधिक नहीं होनी चाहिए लेकिन राष्ट्र को पूर्णरूप से स्वतंत्र होना चाहिए। जब राष्ट्र स्वतंत्रतापूर्वक काम करेगा तभी चीन शक्तिशाली कहा जा सकता है। राष्ट्र को स्वतंत्र करने के लिए हमें अपनी-अपनी वैयक्तिक स्वतंत्रता का बलिदान करना चाहिए। वह विद्यार्थी जो अपनी वैयक्तिक स्वतंत्रता त्याग देता है; दिन प्रतिदिन अधिक परिश्रमी होकर अपना समय विद्याध्ययन में लगाता है। जब विद्यार्थियों का अध्ययन-काल समाप्त हो जायगा, और उनकी बुद्धि का विस्तार हो जायगा और उनकी शक्ति कई गुनी बढ़ जाएगी, तभी वे राष्ट्र के लिए कुछ कर सकते हैं। जो सैनिक वैयक्तिक स्वतन्त्रता का बलिदान करेगा वही आज्ञा-पालन करने के योग्य हो सकेगा। अपनी वफ़ादारी द्वारा देश का भला कर सकेगा और राष्ट्र की स्वतन्त्रता प्राप्त करने में सहायता पहुँचा सकेगा। अगर विद्यार्थी और सैनिक स्वतन्त्रता को अपनाते हैं तो चीनी भाषा में स्वतन्त्रता के लिए जो शब्द हैं उसमें कहें तो वे जल्द ही 'बेलगाम' हो जाएँगे। पाठशालाओं में कोई नियम नहीं रहेगा और सेना में कोई भी अनुशासन का पालन नहीं करेगा। कैसे आप बिना नियम के पाठशाला चला सकेंगे? बिना अनुशासन के कैसी सेना होगी?

क्यों हम चाहते हैं कि हमारा राष्ट्र स्वतन्त्र हो जाय? इसलिए कि चीन ने शक्तिशाली राष्ट्रों के प्रभुत्व के नीचे अपना राष्ट्रीय महत्व खो दिया

है। वह अर्द्ध-उपनिवेश भी नहीं बल्कि सचमुच में हाइपो-उपनिवेश हो गया है। अन्नाम, बर्मा और कोरिया से भी इसकी हालत गई गुजरी हो गई है। इनमें से प्रत्येक किसी न किसी राष्ट्र के संरक्षण में है और एक मालिक का गुलाम है। चीन सभी राष्ट्रों का उपनिवेश है और सभी का गुलाम है। असल में, अब हम दस से अधिक मालिक के गुलाम हैं। हमारी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता बहुत ही कम रह गई है। अगर हम चीन की स्वतन्त्रता पुनः प्राप्त करना चाहते हैं तो हम आपस में सुदृढ़ता के साथ सङ्गठित हो जाएँ और अपने राष्ट्र को एकता के सूत्र में बांधने के लिए हम क्रान्तिकारी तरीकों को व्यवहार में लाएँ। बिना क्रान्तिकारी सिद्धान्त के हम कभी सफलीभूत न होंगे। हमारा क्रान्तिकारी सिद्धान्त सिमेंट-सा है। अगर हम अपने चालीस करोड़ को एक जगह सङ्गठित कर सकें और उनका एक शक्तिशाली संघ बनाकर पूर्णरूप से उसे स्वतन्त्र कर सकें तो चीनी राष्ट्र स्वतन्त्र हो जायगा और चीनी जनता वास्तविक रूप से स्वतन्त्र होगी। फ्रांस की राजक्रांति के नारे की तुलना हम अपने नारे से करें। फ्रांस की राजक्रान्ति के 'स्वतन्त्रता' का नारा और हमारा 'जनता की राष्ट्रीयता' का नारा एक समान है। 'जनता की राष्ट्रीयता' हमारे राष्ट्र की स्वतन्त्रता की मांग का द्योतक है। 'समानता' हमारे 'जनता की सार्वभौमिकता' के सिद्धान्त के सदृश है जिसका उद्देश्य निरंकुश शासन को खतम कर सब नागरिकों को एक समान अधिकार देना है। 'भ्रातृत्व' का असली अर्थ भाईपन है और उसका वही अभिप्राय है जो चीनी शब्द 'थुङ् पौ' (एक देश के रहने वाले साथी) का है। 'भ्रातृत्व' का सिद्धान्त हमारे 'जनता की जीविका' के सिद्धान्त के समान है जिसका उद्देश्य अपने चालीस करोड़ लोगों के सुख आनन्द के लिए प्रयत्न करना है। मैं इसकी विवेचना 'जनता की जीविका' की व्याख्या करते समय और विस्तृत रूप से करूँगा।

मार्च १६, १९२४

तीसरा व्याख्यान

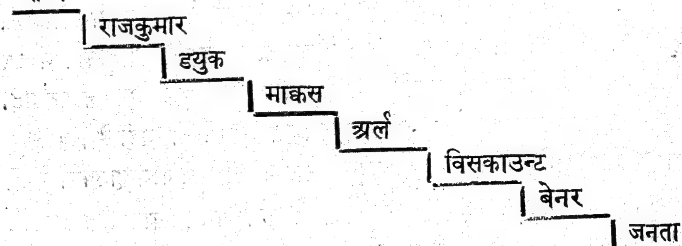
मिन्-छुश्रान्—जनता की सार्वभौमिकता—हमारे क्रान्तिकारी नारों का दूसरा भाग है श्रौर फ्रांस के 'समानता' के नारे के सदृश है। इसलिए श्राज हम 'समानता' के ऊपर ही चर्चा करें। 'समानता' शब्द प्रायः 'स्वतंत्रता' शब्द के साथ जुड़ा रहता है। यूरोप के विभिन्न राष्ट्रों में पहले क्रान्तियों के समय सभी लोगों ने समान ताकत लगाई श्रौर स्वतंत्रता श्रौर समानता के युद्ध में समान रूप से बलिदान किया श्रौर जिसके फलस्वरूप उन्होंने स्वतंत्रता के ऐसा ही 'समानता' को भी महत्व दिया। जो कुछ हो बहुत से लोगों ने श्रनुभव किया कि श्रगर वे स्वतंत्र होते हैं तो उन्हें 'समानता' भी ज़रूर प्राप्त होगी श्रौर श्रगर वे 'समानता' का दर्जा नहीं पाते हैं तो उन्हें श्रपनी स्वतंत्रता को प्रकट करने का कोई रास्ता नहीं है। उन्होंने समानता को स्वतंत्रता से भी श्रधिक महत्व दिया। समानता क्या है श्रौर वह कहाँ से श्राती है? यूरोप श्रौर श्रमेरिका के क्रान्तिकारी दर्शन स्वतंत्रता को मनुष्य के लिए प्रकृति-प्रदत्त चीज़ मानते हैं। उदाहरण के लिए देखिए :—श्रमरीकी क्रान्ति की 'स्वाधीनता की घोषणा' श्रौर फ्रांस की राजक्रांति की 'मनुष्य श्रौर नागरिक के श्रधिकारों की घोषणा' दोनों में निश्चित रूप से श्रौर जोरदार शब्दों में 'स्वतंत्रता श्रौर समानता' को मनुष्यों के लिए प्रकृति-प्रदत्त चीज़ें मानी गई हैं जो कि उनसे (मनुष्यों से) श्रलग नहीं की जा सकतीं।

क्या मनुष्य सचमुच में समानता का विशेष श्रधिकार लेकर पैदा होता है? पहले हम इसी प्रश्न पर ध्यानपूर्वक विचार करें। पहले व्याख्यान (प्रजातंत्र पर दिया गया पहला व्याख्यान) में हमने लाखों वर्ष पहले के श्रादि मानव से लेकर वर्तमान प्रजातंत्र युग के मनुष्यों के श्रधिकारों के इतिहास की छानबीन की थी। इस छानबीन में मनुष्यों के लिए प्रकृति-प्रदत्त समानता का सिद्धान्त तो हमें कहीं नहीं मिला था। प्रकृति की दुनिया में हम जल की सतह को छोड़कर किन्हीं भी दो चीज़ों को एक धरातल पर नहीं पाते हैं। समतल भूमि पर कोई भी जगह सचमुच में समतल नहीं है। वाङ्-षा स्टेशन (केण्टन) श्रौर यिन्-चाङ्-हवान् स्टेशन के बीच केण्टन-हान्क्वो रेलवे लाइन समतल मैदान से होकर जाती है। लेकिन श्रगर श्राप रेलगाड़ी में श्रपनी जगह पर बैठे-बैठे झरोखे से सावधानीपूर्वक जमीन की ऊँचाई-निचाई

को देखें तो आपको पता चलेगा कि एक मील लाइन का रास्ता भी ऐसा नहीं है जिसको समतल करने के लिए मानवीय श्रम और इंजिनियरिंग की ज़रूरत नहीं पड़ी हो। हम जिसे प्राकृतिक समतल भूमि कहते हैं वह भी पूर्णरूप से समतल नहीं है। अथवा इस मेज़ पर रखी फूलदानी को लीजिए। मैं जिस फूल को अपने हाथ में लिए हुए हूँ उस पर आप गौर करें। अगर आप इस पर केवल एक सरसरी निगाह डालते हैं तो इसका एक-एक दल और रेशा आपको समान दिखाई पड़ेगा। लेकिन अगर आप ध्यान से देखें या अणुवीक्षण यंत्र के सामने इसे रखें तो आपको पता चलेगा कि कोई भी दो दल या दो रेशे एक जैसे नहीं हैं। इस फूल के गाछ की लाखों पत्तियों में कोई भी दो पत्तियाँ आपको बिलकुल एक तरह की नहीं मिलेंगी। इस असमानता को समय और स्थान की कसौटी पर भी परख देखिए। यह फूल की पत्ती जो यहाँ है, वह किसी दूसरी जगह के इसी फूल की पत्ती के समान नहीं है। इस वर्ष की पत्ती गत वर्ष की पत्ती से भिन्न है। यह इस बात को स्पष्ट करता है कि संसार में कोई चीज ऐसी नहीं है जो दूसरी चीज के समान हो। और चूँकि सभी चीज़ें भिन्न-भिन्न हैं वे स्वभावतः ही समान नहीं कही जा सकती हैं। अगर प्रकृति की दुनिया में समानता नहीं है तो मानवीय समानता ऐसी कोई चीज़ कैसे हो सकती है?

मूलतः प्रकृति ने मनुष्यों को समान नहीं बनाया है लेकिन जब निरंकुश शासन का मनुष्य जाति में विकास हुआ तो निरंकुश राजाओं और राजकुमारों ने इस मानवीय भिन्नता को चरम सीमा तक पहुँचा दिया। जिसके फलस्वरूप प्राकृतिक असमानता से कहीं अधिक खराब असमानता समाज में पैदा हुई। राजाओं और राजकुमारों द्वारा निर्मित असमानता कृत्रिम थी। उससे जो फल निकला उसके उदाहरण स्वरूप यहाँ मैं ब्लैकबोर्ड पर एक चित्र बनाता हूँ—

चित्र नं० १—असामानता

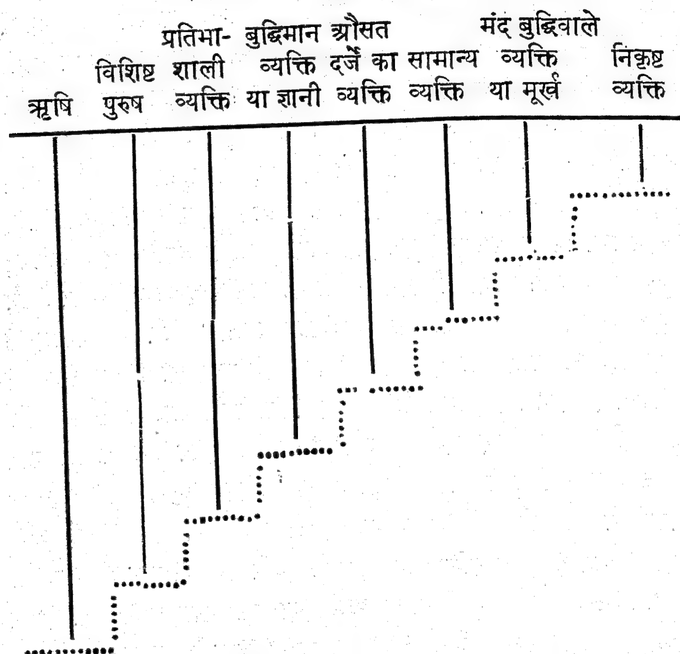


इस चित्र को ध्यानपूर्वक देखिए और तब आपको पता चलेगा कि कृत्रिम असमानता का क्या अर्थ है। इन कृत्रिम पदों के कारण, खास रियायत पाए हुए वर्ग अत्यन्त ही क्रूर और अन्यायी हो गए। जब पीड़ित जनता में सन्तोष करने की शक्ति नहीं रही तो वह अन्त में विद्रोह कर उठी और उसने असमानता के विरुद्ध लड़ाई छेड़ दी। क्रान्ति का मूल लक्ष्य मनुष्य निर्मित असमानता को मिटाना था और जब यह कार्य पूरा हो गया तो लोगों ने सोचा कि उनकी क्रान्ति भी समाप्त हो जाएगी। लेकिन उग लोगों ने, जो सम्राट या राजा बने उच्च आसन ग्रहण किए हुए थे, अपने आसन को बचाने के लिए अपने को 'देव द्वारा नियुक्त' किया हुआ बतलाने लगे। उन लोगों का कहना था कि उन्हें ईश्वर की ओर से खास स्थान मिला है इसलिए उनका विरोध करना ईश्वर का विरोध करना जैसा होगा। अनपढ़ जन समुदाय ने नहीं सोचा कि इन बातों में सचाई है या नहीं और उसने अन्धानुकरण कर अपने सम्राट को अधिकार दिलाने के लिए लड़ाई की समानता और स्वतंत्रता की बात करने वाले बुद्धिमान लोगों का भी उसने विरोध किया। इसलिए क्रान्ति के समर्थक विद्वानों ने राजाओं के निरंकुश शासन को मिटाने के लिए प्रकृति प्रदत्त समानता और स्वतंत्रता के अधिकार के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया उनका मूल उद्देश्य मनुष्य निर्मित कृत्रिम असमानताओं को मिटा देने का था। लेकिन 'करना आसान है और समझना कठिन है' यह उक्ति हर बात में चरितार्थ होती है। यूरोप का जनसमुदाय उस समय यह विश्वास करता था कि सम्राट और राजा ईश्वर के भेजे हुए हैं और उन्हें विशेष 'दैवी अधिकार' प्राप्त हैं। अपढ़ जनता की बड़ी संख्या इसका समर्थन करती थी। बहुत युक्ति से काम लेने और कोशिश करने पर भी बुद्धिमान और शिक्षित लोगों का छोटे-सा समुदाय सम्राटों को नहीं उखाड़कर फेंक सका।

अन्त में जब जनता में यह विश्वास जम पाया कि मनुष्य स्वतंत्र और समान होकर पैदा हुआ है और हर व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह स्वतंत्रता और समानता के लिए लड़े तब यूरोप के सम्राटों और राजाओं का आप ही आप पतन हो गया। सम्राटों और राजाओं के पतन के बाद जनता दृढ़ता पूर्वक प्राकृतिक समानता के सिद्धान्त में विश्वास करने लगी और सभी मनुष्यों को एक समान बनाने के धुन में रात दिन लगी रही। वह नहीं जानती थी कि इस प्रकार की चीज़ का होना असम्भव है। केवल हाल से विज्ञान के प्रकाश में लोग अनुभव करने लगे हैं कि प्राकृतिक समानता के सिद्धान्त जैसी

कोई चीज नहीं है। अगर उस समय हम बिना सत्य की परवाह किए लोगों के विश्वास के अनुसार चलते और मानव समाज पर समानता का भार जबरदस्ती लाद देते तो वह समानता अकृत्रिम (false equality) होती।

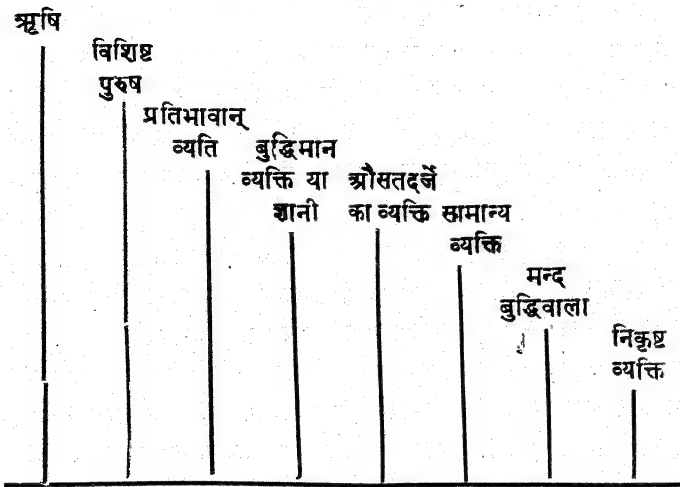
चित्र नं० २ कृत्रिम समानता



इस दूसरे चित्र से ज्ञात होता है कि ऊपर समानता लाने के लिए हमें विशिष्ट स्थानों को नीचे कर देना होगा। लेकिन ये विभिन्न प्रकार के व्यक्ति जिस आधार रेखा पर खड़े होंगे वह वक्र ही रहेगी, सीधी नहीं। इस प्रकार की जो समानता होगी वह कृत्रिम होगी। मानव-समाज में समान दर्जा किसी दूसरी ही चीज़ से होती है। हर आदमी अपना व्यक्तित्व प्रकृति प्रदत्त बुद्धि और योग्यता से विकसित करता है। चूँकि हर आदमी की बुद्धि और योग्यता भिन्न हैं इसलिए उसके द्वारा विकसित व्यक्तित्व भी भिन्न ही होगा। और चूँकि हर आदमी भिन्न तरीके से काम करता है इसलिए निश्चय ही सब आदमी एक सतह पर काम नहीं कर सकते हैं। यही हमें समानता के एक सच्चे सिद्धान्त पर पहुँचाता है। अगर हम आदमी की बुद्धि और योग्यता पर ध्यान दिए बिना ही सबको समान करने के लिए लोगों को उन स्थानों से नीचे कर दें जो

उन्होंने अपनी बुद्धि और योग्यता के कारण प्राप्त किया है, तो संसार की प्रगति ही नहीं होगी और मानव जाति पीछे हटयी जाएगी। जब हम प्रजातन्त्र और समानता की बात करते हैं और साथ-साथ यह भी चाहते हैं कि संसार प्रगति करे, तो उसका मतलब राजनीतिक समानता से है। क्योंकि समानता कृत्रिम चीज़ है प्राकृतिक नहीं और एक ही समानता जो हम ला सकते हैं वह है राजनीतिक समानता।

चित्र नं० ३ सच्ची समानता



क्रान्ति के बाद हम चाहते हैं कि हर आदमी का राजनीतिक दर्जा बराबर हो जैसा कि चित्र नं० ३ की आधार-रेखा में दिखाया गया है। यही एकमात्र सच्ची समानता है और प्रकृति का सच्चा सिद्धान्त है।

यूरोप की क्रान्तियों में जनता ने अपनी समानता और स्वाधीनता की लड़ाई के लिए बहुत संघर्ष और बलिदान किए। यह समझने के लिए कि ऐसा उन्होंने क्यों किया। हमें क्रांति के पहले यूरोप में पैदा हुई असमानताओं को जान लेना आवश्यक है। मैंने जो पहला चित्र बनाया है वह क्रांति के पहले यूरोप की दशा का और वहाँ फैली हुई राजनीतिक असमानता का सूचक है। चित्र की सीढ़ियाँ—सम्राट, राजा, राजकुमार, ड्यूक, मार्किस अर्ल, विसकाउन्ट, बैरन—पहले के यूरोप की राजनीतिक प्रणाली के विभिन्न वर्गों को व्यक्त करती हैं। चीन में भी इस प्रकार के वर्ग-भेद थे लेकिन आज से १३ वर्ष पहले जो क्रांति हुई थी और जिसके फलस्वरूप यहाँ निरंकुश

शासन समाप्त हो गया उसके बाद से ही ये सभी असमान दर्जे तोड़ कर समान कर दिये गये हैं। लेकिन चीन में पहले जो असमानता थी वह यूरोप के समान भयङ्कर नहीं थी। दो सौ वर्ष पूर्व तक यूरोप सामन्तशाही रियासतों की तरह था जैसा कि दो हज़ार पहले चीन था। चूँकि चीन में शासन-व्यवस्था यूरोप से पहले ही कायम हुई इसलिए यहाँ की सामन्तशाही प्रणाली दो हज़ार वर्ष पहले ही समाप्त हो गई जब कि यूरोप में अब तक भी पूर्णरूप से नहीं समाप्त हुई है। केवल आज से दो या तीन शताब्दी पहले यूरोप के लोग असमानता की बुराइयों का अनुभव करने लगे। और समानता की भावना से ओतप्रोत हो गए जैसा चीन में दो हज़ार वर्ष पहले हुआ था। यूरोपीय राष्ट्रों के बहुत पहले ही चीन राजनीतिक संगठन में प्रगति कर चुका था। लेकिन गत दो शताब्दियों के भीतर यूरोप केवल चीन के समान ही नहीं हो गया बल्कि इससे आगे भी बढ़ गया है। जो सबसे पीछे था वह सबसे आगे हो गया है।

क्रांति के पहले निरंकुश शासन के कारण यूरोप की जो दुर्दशा हो गई थी वैसी हालत चीन की कभी नहीं हुई है। क्यों ऐसा हुआ था? ऐसा इसलिए हुआ था कि यूरोप में पैतृक अधिकार की प्रथा थी। यूरोप के सम्राट, राजा, राजकुमार, ड्यूक, मार्किस और दूसरे अधिकारी लोगों के पद खानदानी हो गये थे और इन खानदानी अधिकार को कभी किसी ने नहीं बदला। साधारण लोगों का पेशा भी पुश्तैनी ही था। वे कभी दूसरा पेशा नहीं करते थे। अगर एक आदमी किसान है तो उसके बेटे, पोते सब किसान ही होते थे। मजदूरों के बेटे-पोतों आदि को बराबर मजदूरी ही करनी पड़ती थी। पोता अपने दादा के पेशे से भिन्न कोई दूसरा पेशा नहीं कर सकता था। अपने पेशे को भी न बदल सकने का अधिकार ही वह असमानता थी जो उस समय यूरोप में कायम थी। चीन में सामन्तशाही प्रथा के नष्ट होने के बाद से ही पेशा सम्बन्धी प्रतिबन्ध सम्पूर्ण रूप से समाप्त हो गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जब चीन में भी विदेशी राष्ट्रों के समान-वर्ग प्रणाली और एक तरह की असमानता थी उस समय भी यहाँ (चीन में) एक विशेषता थी कि केवल सम्राट का पद ही पैतृक था। जब तक कोई सम्राट की गद्दी पर दखल कर सम्राट को हटा नहीं देता था तब तक शासन करने का अधिकार उसी सम्राट के परिवार की एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के हाथों में जाता था। केवल जब कोई व्यक्ति सम्राट को हराकर गद्दी पर अधिकार कर लेता था और स्वयं सम्राट बनकर एक नये राजवंश की स्थापना करता था तभी पिछले सम्राट के

वंशज राज्य करने के अधिकार को खो देते थे। लेकिन ड्यूक, मार्क्विस, अर्ल, विसकाउन्ट और बैरन आदि पद तो प्राचीन समय में भी हर पीढ़ी में बदल जाते थे। चीन में बहुत से साधारण व्यक्ति भी राजमन्त्री के पद तक पहुँच गये थे और राजा तथा राजकुमार आदि के उच्च पद तक पा चुके थे। ये सब पद पुश्तैनी नहीं थे। यूरोप में भी कुछ साधारण व्यक्ति राजमंत्री या राजकुमार तथा दूसरे पद पा चुके हैं पर वहाँ अधिकांश पद पुश्तैनी ही था और साधारण लोग पुश्तैनी पेशे को छोड़कर दूसरा पेशा करने को स्वतंत्र नहीं थे। इस स्वतंत्रता की कमी के कारण ही लोगों ने समानता का अधिकार भी खो दिया था। यूरोप में केवल राजनीतिक असमता ही नहीं थी बल्कि साधारण जनता के सामाजिक दर्जे भी असम थे। जिसके फलस्वरूप साधारण जनता के लिए पहले तो ड्यूक, मार्क्विस, अर्ल, विसकाउन्ट या बैरन के दर्जे तक पहुँचना और दूसरे स्वतंत्रतापूर्वक पेशा अख्तियार करना ताकि वह जिन्दगी में आगे बढ़ सके, बड़ा ही कठिन था। अन्त में उसने यह बात महसूस की कि वह इस प्रणाली को नहीं चलने देगी और इसलिए उसे स्वतंत्रता के संग्राम में अपना जीवन लगा देना चाहिए, स्वतंत्रतापूर्वक पेशा नहीं करने के बंधन से मुक्त होना चाहिए और प्रगति के लिए उद्योग करना चाहिए। स्वतंत्रता के लिए ऐसी लड़ाई और भयंकर वर्ग असमानता को मिटाने का ऐसा प्रयत्न चीन के इतिहास में नहीं पाया जाता है। यद्यपि चीन के लोगों को भी वर्ग-भेद का अनुभव हुआ है लेकिन स्वतंत्रता के लिए उन्होंने कभी अपने को या अपने परिवारवालों को बलिदान नहीं किया है। यूरोप के लोगों की क्रान्ति स्वतंत्रता और समानता प्राप्त करने पर केन्द्रित थी लेकिन चीनवालों ने कभी समझा ही नहीं कि वास्तव में इनका (स्वतंत्रता और समानता का) क्या अर्थ है। इसका कारण यह है कि चीन का निरंकुश शासन यूरोप के निरंकुश शासन-सा कभी भयंकर नहीं रहा। और यद्यपि प्राचीन काल में चीन की सरकार स्वेच्छाचारी थी और इसने गत दो हज़ार वर्षों में कोई प्रगति नहीं की है तथापि इसके पहले ही चीन के शासन में बहुत सुधार किए गए थे ? जिनसे निरंकुश शासन की बहुत-सी बुराइयाँ कम हो गई थीं। इसके कारण चीनी जनता निरंकुश शासन से उतना नहीं पीड़ित हुई और उसे समानता के लिए उतना नहीं लड़ना पड़ा।

जब से यूरोपीय सभ्यता का प्रभाव पूर्व में पड़ना शुरू हुआ है तब से यूरोप की राजनीतिक प्रणाली, अर्थशास्त्र और विज्ञान ने चीन में भी प्रवेश किया है। जब चीन के लोग यूरोप के राजनीतिक सिद्धान्तों के बारे में सुनते

हैं तो साधारणतः वे उनमें कुछ हेर-फेर करने के संबंध में बिना सोचे ही शब्दशः उनकी नकल करने लगते हैं। दो-तीन शताब्दी पहले यूरोप की क्रान्तियाँ 'स्वतन्त्रता के संग्राम' के लिए हुई थीं। इसलिए चीन अभी स्वतन्त्रता के लिए ज़रूर लड़े! यूरोप के लोग समानता के लिए लड़े थे इसलिए चीन भी समानता के लिए लड़े! लेकिन चीन की कमज़ोरी का कारण यह नहीं है कि वह स्वतन्त्र नहीं है और यहाँ समानता नहीं है। अगर हम स्वतन्त्रता और समानता के नाम पर जनता को आह्वान करते हैं तो हम अपने लक्ष्य से दूर रहेंगे। ऐसी बात नहीं है कि स्वतन्त्रता और समानता के अभाव में हमें दुःख-तकलीफ़ है। चीनी जनता इन चीज़ों के लिए उत्सुक नहीं है इसलिए निश्चय ही वह हमारे झण्डे के नीचे नहीं आएगी। लेकिन गत दो-तीन शताब्दी पहले स्वतन्त्रता और समानता के खो जाने से यूरोप की जनता को अनेकों कष्ट झेलने पड़े थे। उसने अनुभव किया था कि जब तक स्वतन्त्रता और समानता उसे नहीं मिलती है उसका कोई प्रश्न हल नहीं होगा। इसलिए स्वतन्त्रता और समानता की लड़ाई में उसने अपने जीवन की बाजी लगा दी थी।

इस आन्दोलन ने गत तीन शताब्दियों में तीन बड़ी-बड़ी क्रान्तियों को जन्म दिया है—पहली इंगलैण्ड में, दूसरी अमेरिका में और तीसरी फ्रांस में। अमेरिका और फ्रांस की क्रान्तियाँ सफल हुई पर इंगलैण्ड की क्रान्ति को हम असफल कह सकते हैं। जिसके फलस्वरूप अंगरेजों के राजनीतिक सङ्गठन में बहुत बड़ा परिवर्त्तन नहीं हुआ है। अंगरेजों की क्रान्ति उस समय हुई थी जब चीन में मिङ् राजकुल का पतन और छिङ् राजकुल का प्रारम्भ हो रहा था अंगरेजों ने गद्दी उलट दी थी और राजा को मार डाला था। लेकिन दस वर्षों के अन्दर ही वहाँ पुनः राजतन्त्र की स्थापना हो गई। इसलिए आज तक अंगरेजी शासन का रूप राजतन्त्र के ढंग का ही है और ओहदे तथा पद वाले लोग अभी भी वहाँ बहुत हैं। अमरीकी उपनिवेश इंगलैण्ड से अलग होकर स्वतंत्र हो गए और उन्होंने प्राचीन राजनीतिक वर्गों को एकदम से खतम कर प्रजासत्तात्मक शासन कायम किया। फ्रांस वालों ने भी इनका ही अनुसरण किया और प्राचीन वर्ग-प्रणाली को नीचे से ऊपर तक एकदम से बदल डाला। अभी ठीक छः वर्ष पहले रूस में भी क्रान्ति हो गई और उसने भी वर्ग-प्रणाली को उलट कर प्रजासत्तात्मक राज की स्थापना की। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, फ्रांस और रूस ये सभी शक्तिशाली राष्ट्र हैं और हम उनकी ताकत का पता उनकी सफल हुई क्रान्तियों से लगा सकते हैं। रूस

ने सबसे हाल में क्रान्ति की है और उसकी क्रान्ति सबसे अधिक सफल हुई है। उसने केवल राजनीतिक दर्जों को ही समान नहीं कर दिया है बल्कि समाज के सभी पूँजीवादी वर्गों को भी मिटा दिया है।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका को देखिए। क्रान्ति के समय अमेरिकावासियों के दिमाग में स्वाधीनता प्राप्त करने का उद्देश्य था। क्यों? चूँकि उनके तेरह उपनिवेश ब्रिटिश अधिकृत भू-भाग थे और ब्रिटेन के नियंत्रण में थे। ग्रेटब्रिटेन निरंकुशर राजतंत्र वाला ठहरा। इसलिए वह अपनी जनता की अपेक्षा अमेरिका की जनता को बड़ी बुरी तरह सता रहा था जब अमेरिका वालों ने देखा कि यद्यपि वे और ब्रिटेन की जनता एक ही शासन के अन्दर है तथापि ब्रिटिश नागरिक के साथ उदारतापूर्वक व्यवहार किया जाता है और वे लोग बुरी तरह सताए जाते हैं। उन्हें यह असमानता बुरी तरह खटकी और उन्होंने ब्रिटेन से अलग होकर स्वाधीन राष्ट्र कायम करने का विचार किया। स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए उन्होंने ब्रिटेन का विरोध किया और आठ वर्षों तक उससे लड़ते रहे। अन्त में उन्हें अपने उद्देश्य में सफलता मिली। अमेरिका की सरकार ने गोरे लोगों के साथ समानता का बर्त्ताव किया लेकिन काली जातियों के प्रति उसका बर्ताव बहुत ही भिन्न रहा है। उदाहरण के लिए, निग्रो लोगों को वह गुलाम समझती आई है। यद्यपि अमरीकी क्रान्ति के बाद गोरे लोगों को समान राजनीतिक अधिकार प्राप्त हैं लेकिन गोरे और काले लोगों का राजनीतिक दर्जा समान नहीं है। यह बात अमरीकी विधान और स्वाधीनता की घोषणा से विपरीत पड़ती है जिसका प्रथम वाक्य है, 'जन्म से सब आदमी बराबर हैं। ईश्वर की ओर से सबों को जीने, स्वतन्त्र रहने और अपने सुख की खोज करने के ऐसे अधिकार प्राप्त है जो उनसे अलग नहीं किए जा सकते।' इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर बाद में अमेरिका का विधान बना जो मनुष्य जाति की समानता के ऊपर अधिक जोर देता है। फिर भी वहाँ के निग्रो लोगों को गुलाम ही रखा गया।

स्वतन्त्रता और समानता के पुजारी कुछ विद्वान लोगों ने देखा कि यह दशा उन भावनाओं से एकदम सामंजस्य नहीं खाती है जिन पर राष्ट्र का निर्माण हुआ है और उन्होंने स्वाधीन और समानता का अधिकार देने वाले प्रजा-सत्तात्मक राज में इतने गुलामों के होने का विरोध किया। उस समय के अमेरिकावासी निग्रो लोगों के साथ कैसा बर्त्ताव करते थे? वे निग्रो गुलामों के साथ निर्दयतापूर्वक पेश आते थे और उनसे बैल और घोड़े सा काम लेते थे।

निग्रो लोग गुलाम की तरह कठिन परिश्रम करते थे और प्रतिदिन इतना कठिन परिश्रम करने के बाद भी उन्हें मजदूरी नहीं मिलती थी, सिर्फ भोजन मिलता था। जब राष्ट्र के लोगों ने इस दयनीय दशा को देखा तो उन्होंने महसूस किया कि ऐसा करना विधान के सिद्धान्त से कितना विपरीत तथा न्यायहीन और असमान है। इसलिए वे मानवता के नाम पर इस गुलामी की प्रथा का विरोध करने लगे। जैसे-जैसे इस भावना का प्रचार अधिक से अधिक होता गया वैसे-वैसे इस आन्दोलन (गुलामी प्रथा मिटाने के) समर्थकों की संख्या भी बढ़ती गई। बहुत से ईमानदार व्यक्तियों ने निग्रो गुलामों की तकलीफ की जाँच की और आँख देखी बातों का विवरण प्रकाशित किया। इन विवरणों में से सबसे अधिक प्रसिद्ध और जिनमें गुलाम जीवन की कितनी वास्तविक घटनाओं की दर्दनाक बातें हैं, एक उपन्यास के रूप में है। इस उपन्यास को हर आदमी ने बड़ी उत्कंठा के साथ पढ़ा। इसका नाम है—'काले गुलामों की स्वर्ग से दुहाई' (टाम काका की कुटिया नामक अंगरेजी उपन्यास का चीनी नाम)। जब इस पुस्तक का प्रकाशन हुआ तब लोगों ने अनुभव किया कि गुलामों को कैसी यंत्रणायें सहनी पड़ती हैं और तब उन्हें (लोगों को) इसके लिए बहुत ही रोष हुआ। तब सभी उत्तरी राजों ने, जो गुलाम नहीं रखते थे, गुलामों की स्वाधीनता के लिए आवाज उठाई। दक्षिणी राजों में काफी संख्या में गुलाम थे। हर दक्षिणी राज में बहुत ही विस्तृत रूप से बागवानी होती थी जिसकी खेती पूरी की पूरी गुलामों द्वारा कराई जाती थी। अगर वे गुलामों को स्वाधीन कर देते तो उनके पास कठिन परिश्रम करने को कोई नहीं बचता और इस प्रकार उनके खेत आबाद नहीं हो सकते। दक्षिणी राजों ने अपने स्वार्थ के कारण गुलामों की मुक्ति का विरोध किया। उनका कहना था कि गुलामी-प्रथा किसी एक आदमी द्वारा नहीं चलाई गई है। अमेरिका वासियों ने अफ्रिका से निग्रो लोगों को गुलाम बनाने के लिए लाया था जैसा कि कुछ दशाब्दी पहले पश्चिमी लोग अमेरिका महादेश और मलयसिया में चीनी लोगों को गुलाम बनाकर ले गए थे और उन्हें 'सूअर' कहकर संबोधित करते थे। काले गुलाम (निग्रो) भी उसी प्रकार अफ्रीका के सूअर कहलाते थे। दक्षिणी राजों ने गुलामों की मुक्ति का विरोध किया। उनका कहना था की गुलाम उनकी पूँजी है इसलिए अगर गुलामों को स्वाधीन किया जाता है तो उन्हें (जिनके पास गुलाम हैं) मुआवजा मिलना चाहिए। उस समय बाजार में एक निग्रो की कीमत पाँच-छः हज़ार डालर थी और दक्षिणी राजों में कई लाख गुलाम थे जिनका टोटल मूल्य अरबों डालर होता

था। सरकार के पास गुलामों के मालिकों को इतनी बड़ी रकम देने का कोई साधन नहीं था।

इसलिए यद्यपि गुलामों को स्वाधीन कर देने का आन्दोलन बहुत पहले ही शुरू हुआ था पर बहुत दिनों तक केवल आन्दोलन का उफान ही रहा। केवल साठ वर्ष पहले की बात है कि आन्दोलन बड़े जोर से फूट पड़ा और दक्षिणी तथा उत्तरी राजों के बीच युद्ध प्रारम्भ हुआ। यह लड़ाई पाँच वर्षों तक चलती रही और यह संसार की बड़ी लड़ाइयों में से एक थी। दोनों दलों के बीच दुर्द्धर्ष संग्राम हुआ और हर तरफ के लाखों आदमी खेत आए। यह लड़ाई काले गुलामों के प्रति होनेवाली असमानता के विरुद्ध तथा मानवीय असमानता के विरुद्ध थी। यह समानता के लिए हुआ युद्ध था। अब तक यूरोप और अमेरिका के लोगों ने समानता के लिए जो युद्ध किया था उसका कारण था उनमें (लोगों) समानता प्राप्त करने के लिए पैदा हुई जागृति और अपने दुःख-तकलीफ को मिटाने की भावना का होना। लेकिन अमेरिका का गृह-युद्ध गुलामों के प्रति होने वाली असमानता के विरुद्ध हुआ था; इसलिए नहीं कि गुलाम निग्रो जान गए थे कि कैसे लड़ा जाता है। निग्रो लोग इतने दिनों से गुलाम बने हुए थे कि वे अपने मालिकों के दिए हुए खाने, कपड़े और रहने के स्थान को पाकर पूर्ण सन्तुष्ट होने के सिवाय और कुछ नहीं समझते थे। सम्भवतः कुछ मालिक ऐसे भी थे जो बहुत उदार थे और जब तक कोई गुलाम यह जानता था कि उसका मालिक उसके साथ बुरी तरह पेश नहीं आएगा वह अपने मालिक का विरोध करने, अपने स्वाधीन होने या स्वयं अपने भाग्य का निर्माता होने की बात भी नहीं सोचता था। अमेरिका के गृह-युद्ध में गोरे लोग ही थे जो काले लोगों के प्रति होने वाली असमता के लिए लड़े थे। यह युद्ध पीड़ित समुदाय के बाहर के लोगों द्वारा लड़ा गया था। पीड़ित समुदाय के भीतर जागृति हो जाने से यह युद्ध नहीं हुआ था।

इस युद्ध में दक्षिण राज हार गए और उत्तरी राजों को विजय मिली और संयुक्त राष्ट्र की सरकार ने तुरत सभी गुलामों की स्वाधीनता की घोषणा की। पराजित दक्षिणी राजों के सामने सरकारी आज्ञा मानने के सिवा कोई दूसरा चारा नहीं था। लेकिन गुलामों की स्वाधीनता की घोषणा के बाद उन्होंने (दक्षिणी राजों ने) गुलामों की सभी जिम्मेवारी से अपने को मुक्त कर लिया। गुलामों को जिस दिन से स्वाधीनता मिली उन्होंने (दक्षिणी राजों ने) उन्हें (गुलामों को) खाना, कपड़ा या रहने की जगह देना एकदम बन्द कर दिया। अब निग्रो

लोग श्वेतांगों द्वारा मुक्त कर दिए जाने पर प्रजासत्तात्मक राज के नागरिक हो गए और अपने इस नये राजनीतिक समानता और स्वतन्त्रता के अधिकार के कारण उनका भविष्य भी उज्ज्वल हो गया पर फिलहाल वे भोजन-कपड़े और रहने के स्थान से वंचित हो गए क्योंकि अब वे अपने मालिकों के लिए काम नहीं करते थे। चूँकि 'पीला के बाद जल्द ही हरा नहीं मिलता है[1]' इसलिए वे महसूस करते थे कि उन्होंने थाइ-सान्[2] की कृपा खो दी है और वे दुःख में हैं। उनके मन में उन राजों के प्रति विद्वेष हो गया जिन्होंने उनके लिए स्वाधीनता प्राप्त की थी। सबसे अधिक विद्वेष तो उत्तरी राजों में रहनेवाले उस महान् राष्ट्रपति के प्रति था जिन्होंने गुलामों की मुक्ति की वकालत की थी। यह राष्ट्रपति कौन था? आप सभी जानते हैं कि अमेरिका में दो बड़े विख्यात राष्ट्रपति हो गए हैं। एक तो संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का प्रथम राष्ट्रपति वाशिंगटन। जब कभी लोग संसार के सभी राष्ट्रों में हुए राजनीतिज्ञ मुखियों की चर्चा करते हैं तो इनका नाम बराबर लिया जाता है। मनुष्य की समानता के लिए लड़ी गई लड़ाई के इतिहास में इनका स्थान बहुत ही गौरवपूर्ण है। दूसरे राष्ट्रपति हैं लिंकन जिन्होंने अपने समय के और सभी मनुष्यों की अपेक्षा ईमानदारी के साथ गुलामों की मुक्ति के लिए आवाज उठाई और चूँकि उन्होंने गुलामों को मुक्त कर मानव जाति के लिए समानता हासिल की इसलिए इनका स्थान भी बहुत ही ऊँचा है। संसार के लोग आज भी इनकी इज़्ज़त करते हैं। चूँकि नई स्वाधीनता पाए हुए निग्रो गुलामों को भोजन-कपड़े और रहने के लिए जगह की तकलीफ होने लगी इसलिए वे इनके (लिंकन के) विरुद्ध हो गए। एक व्यंग्यात्मक कविता है जिसमें लिंकन को गाली दी गई है और उन्हें पानी की बाढ़ और जङ्गली जानवर कहा गया है। इस प्रकार की चीज़ लिखने वाले आजकल के क्रान्ति विरोधियों की तरह से हैं जो क्रान्तिकारी दल की निंदा करते हैं। आजकल के बुद्धिमान निग्रो जो इस बात का अनुभव करते हैं कि स्वाधीनता का मिलना गुलामों के लिए वरदान था, स्वभावतः ही लिंकन की प्रशंसा करते हैं। लेकिन आज भी ऐसे मूर्ख निग्रो हैं जो अपने बाप-दादों की तरह लिंकन के नाम से घृणा करते हैं।

---

१. यह चीनी कहावत उस समय की द्योतक है जब नया अनाज कटने के पहले पुराना अनाज करीब-करीब समाप्त हो जाता है।

२. षान्तुङ् प्रान्त का पवित्र पहाड़। यह पूर्वी चीन का सबसे ऊँचा पहाड़ है और पवित्र माना जाता है।

अमेरिका के इतिहास में गुलामों को स्वाधीनता देने के लिए लड़ी गई लड़ाई समानता के लिए लड़ी गई लड़ाइयों में से एक है। अमरीकी इतिहास के दो उज्ज्वल काल ये थे :—पहला, जबकि अमेरिका की जनता ब्रिटेन द्वारा अपने प्रति किए गए असमान व्यवहार के कारण क्षुब्ध हो उठी थी और उसने स्वाधीनता के लिए लड़ाई ठानी थी और आठ वर्षों की लड़ाई के बाद ब्रिटेन से स्वाधीन होकर अलग अपना स्वाधीन राज कायम किया। दूसरा, जब 'स्वाधीनता की लड़ाई' के साठ वर्ष बाद उत्तरी और दक्षिणी राज आपस में ही लड़े जिसका कारण 'स्वाधीनता की लड़ाई' के ऐसा ही था। गृह-युद्ध पाँच वर्षों में समाप्त हुआ जबकि क्रान्तिकारी युद्ध आठ वर्षों तक चला था। लेकिन गृह-युद्ध में क्रान्तिकारी युद्ध से भी अधिक खून-खराबी हुई थी और अधिक लोग खेत आए थे। संक्षेप में कहें तो प्रथम अमरीकी युद्ध अमेरिका की जनता द्वारा अपने लिए स्वाधीनता और समानता पाने के लिए लड़ा गया था और दूसरा युद्ध निग्रो लोगों को समानता का अधिकार दिलाने के लिए, अपने लिए नहीं। पहले युद्ध की अपेक्षा दूसरे में अधिक बलिदान और रक्तपात हुआ था। अमेरिका का इतिहास समानता के लिए लड़ी गई लड़ाइयों की कहानी है और संसार के इतिहास का उज्वल पृष्ट है।

अमेरिका में समानता के लिए लड़ी गई लड़ाई के बाद फ्रांस में भी समानता के लिए एक क्रान्तिकारी युद्ध शुरू हो गया। इस संघर्ष में अस्सी वर्षों तक उलट-पुलट होता रहा तब जाकर कहीं समानता मिली। लेकिन जब समानता मिली तो लोगों ने उसे अति तक पहुँचा दिया और वे हर आदमी को एक ही सतह पर रखने की कोशिश करने लगे। वह इस प्रकार की समानता थी जो चित्र नं० २ में दिखाई गई है। समानता का आधार नीचे नहीं ऊपर रखा गया था—वह कृत्रिम समानता थी।

चीन में क्रान्तिकारी विचार यूरोप और अमेरिका से आए हैं और समानता का सिद्धान्त भी पश्चिम से ही आकर यहाँ फैला है। लेकिन हमारा क्रान्तिकारी दल स्वतन्त्रता और समानता के लिए नहीं बल्कि जनता के तीन सिद्धान्त के लिए संघर्ष करने का प्रचार करता है। अगर हम इन तीन सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप दे सकें तो हमें स्वतन्त्रता और समानता प्राप्त हो जाएगी। यद्यपि पश्चिमी राष्ट्र स्वतन्त्रता और समानता के लिए लड़े लेकिन तब से बराबर वे उनसे गुमराह ही हुए हैं। अगर हम तीन सिद्धान्तों को व्यवहार में लाते हैं और वास्तविक स्वतन्त्रता और

समानता प्राप्त करते हैं तो भी हम कैसे ठीक रास्ते पर चलते रहने का दावा कर सकते हैं ? अगर हम चित्र नं० २ की तरह समानता का आधार ऊपर रखते हैं तो हम ठीक मार्ग का अनुसरण नहीं करते हैं ? लेकिन अगर चित्र नं० ३ की तरह हम समानता के आधार को नीचे रख कर उस पर खड़े होते हैं तो हम समानता के ठीक रास्ते का अनुसरण करते हैं। अगर हम जानना चाहते हैं कि जिन सिद्धान्तों के आधार पर हम अपनी क्रान्ति करने जा रहे हैं वे ठीक हैं या नहीं और वे ठीक रास्ते पर हैं या नहीं तो हमें यूरोपीय क्रान्तियों का इतिहास प्रारम्भ से ही सावधानीपूर्वक पढ़ना होगा। अगर हमारे लोग हमारे तीन सिद्धान्तों को अच्छी तरह समझना चाहते हैं और यह जानना चाहते हैं कि हमारे देश की ज़रूरत के अनुकूल वे सिद्धान्त हैं या नहीं तथा अगर वे (हमारे लोग) हमारे तीन सिद्धान्तों में विश्वास करने योग्य और अपने विश्वास में दृढ़ होना चाहते हैं तो उन्हें भी पश्चिमी क्रान्तियों का इतिहास शुरू से ही ध्यानपूर्वक ज़रूर मनन करना चाहिए।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका को अपने उद्देश्य-प्राप्ति के पहले 'स्वतन्त्रता और समानता' के दो युद्धों से निबटना पड़ा था—पहला आठ वर्षों तक चला और दूसरा पाँच वर्षों तक। चीन में स्वतन्त्रता और समानता के लिए पहले कभी संग्राम नहीं हुआ है। चीन के हज़ारों वर्षों के इतिहास की सभी लड़ाइयाँ राजगद्दी प्राप्त करने के लिए हुई हैं। जिसने भी युद्ध में भाग लिया है उसकी अभिलाषा राजा बनने की थी। हाल की क्रान्ति, जिसमें मांचू राज्य को खतम कर दिया है, पहली लड़ाई कही जा सकती है जो राजा बनने की इच्छा से नहीं लड़ी गई थी। लेकिन राजा नहीं बनने की इच्छा से वे ही लोग मरे थे जो क्रान्तिकारी दल के भीतर थे। दल के बाहर के लोग जैसे उत्तर के चाव् कुन्[३] और पइ-फु[३] केवल नाम मात्र के लिए प्रजासत्तात्मक राज के समर्थक थे। वास्तव में वे बल-प्रयोग द्वारा देश को संगठित करने के हामी थे और निरंकुश प्रभुता के लिए लालायित थे। अगर बल-प्रयोग द्वारा देश को संगठित करने की उनकी योजना सफल हुई होती और उनकी योजना का किसी ने विरोध नहीं किया होता तो उनमें से हर व्यक्ति निश्चय ही सम्राट बनने की कोशिश करता। उदाहरण के लिए

३. ये उत्तरी चीन के सैनिक सत्ताधारी जेनरल (War Lords) थे जो प्रजासत्तात्मक राज की सम्पूर्ण शक्ति अपने हाथों में कर लेना चाहते थे।

देखिए :—जब सन् १६११ ई० में मांचू राजकुल समाप्त कर दिया गया तो क्या युआन् श खाइ ने प्रजातंत्र का समर्थन नहीं किया था ? क्या उसने कभी राजतंत्र का नाम तक भी लिया था ? सम्पूर्ण राष्ट्र के लोगों को विश्वास हो गया था कि राजतंत्र फिर कभी चीन में सिर नहीं उठा सकेगा। लेकिन जब प्रजासत्तात्मक राज की स्थापना के दूसरे वर्ष ही युआन् श खाइ ने क्रान्तिकारी दल को हराने तथा उसके सदस्यों को देश से बाहर खदेड़ने के लिए सैनिक शक्ति का उपयोग किया तो उसने शासन-प्रणाली भी बदल दी और अपने को ही चीन का सम्राट घोषित कर दिया। और यह सैनिक वर्ग इस समय चीन में युआन् श खाइ की तरह ही बुरे विचारों से भरी हुई है भविष्य की बात कोई नहीं कह सकता कि पुनः उसी प्रकार का खतरा नहीं उपस्थित होगा। चीन की क्रान्ति का अभी तक पूर्णरूप से सफल नहीं होने का कारण यह है कि हमने अपने मन से राजा बनने की आकांक्षाओं को पूर्ण रूप से नहीं उच्छेद किया है, उन्हें पूर्णरूप से दबाया नहीं है। अगर हम इन आकांक्षाओं को समूल नष्ट करना और पूर्णरूप से दबाना चाहते हैं तो हम एक बार पुनः उनके (आकांक्षाओं के) विरुद्ध लड़ें और दूसरी क्रान्ति प्रारम्भ करें।

चीन के बहुत से उत्साही और प्रतिभाशाली नवयुवक अभी तक कह रहे हैं कि वे स्वतंत्रता और समानता के लिए लड़ते हैं। यूरोप इन चीज़ों के लिए एक सौ वर्ष पहले ही लड़ा और उसका वास्तविक फल प्रजातन्त्र हुआ। जब लोगों ने अपना अधिकार प्राप्त कर लिया तब स्वतन्त्रता और समानता को भी जीने का अवसर मिला। बिना प्रजातन्त्र के स्वतन्त्रता और समानता केवल खाली शब्द मात्र हैं। प्रजातन्त्र की उत्पत्ति तो बहुत पूर्व के इतिहास में पाई जाती है। दो हज़ार या इससे भी अधिक वर्ष पहले रोम और यूनान में जनता के अधिकार की भावनायें थीं और वे प्रजातन्त्रात्मक राज थे। भूमध्य सागर के दक्षिण में उसी समय कारथेज (Carthage) नाम का एक प्रजासत्तात्मक राज था और उसके बाद और भी कितने छोटे-छोटे राज हुए जो प्रजासत्तात्मक ही थे। उस समय के रोम और यूनान नाम के लिए ही प्रजातन्त्रात्मक राज थे। वास्तव में वे सच्ची स्वतन्त्रता और समानता नहीं प्राप्त कर सके थे। वहाँ जनता की सार्वभौमिकता का सिद्धान्त नहीं लागू किया गया था। यूनान में गुलाम रखने की प्रथा जारी थी। उच्च वर्गों के लोगों के कब्जे में बहुत से गुलाम थे। वास्तव में जनसंख्या के दो तिहाई भाग गुलाम ही थे। स्पर्टा (Sparta) राज अपने यहाँ के योद्धाओं को

अपनी सेवा-सुश्रुषा कराने के लिए पाँच-पाँच गुलाम देता था। इसलिए यूनान में सार्वभौमिक अधिकार प्राप्त लोगों की संख्या बहुत थोड़ी थी। अधिकांश लोगों को कोई अधिकार नहीं था। रोम में भी ठीक यही बात थी। इसलिए यूनान और रोम दो हज़ार वर्ष पहले केवल नाममात्र के लिए प्रजासत्तात्मक राजा थे। वहाँ गुलाम रखने की प्रथा थी और वे स्वतन्त्रता और समानता के आदर्श को नहीं प्राप्त कर सके थे। आज से आठ वर्ष पहले जब संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने अपने गुलामों को मुक्त कर गुलाम रखने की प्रथा को एकदम से मिटा दिया और मानव जाति की समानता को वास्तविक कर दिखाया तब से आधुनिक प्रजातंत्र में सच्ची स्वतन्त्रता और समानता की आशा दिखाई पड़ने लगी है। सच्ची स्वतन्त्रता और समानता का आधार प्रजातन्त्र ही है और वे प्रजातन्त्र के ऊपर ही निर्भर रहती हैं। जहाँ प्रजातन्त्र फूलता-फलता है केवल वहाँ ही स्वतन्त्रता और समानता स्थायी रूप से टिक सकती हैं। अगर जनता की सार्वभौमिकता मिटती है तो स्वतन्त्रता और समानता को स्थायी रखने का कोई उपाय नहीं बच रहता है। इसलिए चीन के क्रान्तिकारी दल ने प्रारम्भ से ही स्वतन्त्रता और समानता को अपने प्रोग्राम का लक्ष्य रखा है लेकिन प्रजातन्त्र-जनता की सार्वभौमिकता—को अपना सिद्धान्त और नारा माना है। जब हम प्रजातन्त्र प्राप्त कर लें तभी हमें असली वस्तु मिलेगी और हम आजादी तथा स्वतन्त्रता का आनन्द उठा सकेंगे। ये सभी बातें हमारी 'जनता की सार्वभौमिकता' के सिद्धान्त में निहित हैं; इसलिए हम उनकी चर्चा अपने प्रधान विषय के साथ कर रहे हैं।

स्वतन्त्रता और समानता के लिए उतनी भीषण लड़ाई लड़ने और उतना अधिक खून बहाने के बाद यूरोप और अमेरिका से हम कितनी आशा रख सकते हैं कि वे इन सिद्धान्तों की कद्र करेंगे। इन सिद्धान्तों की खूबियों को समझने और इनके दुरुपयोग नहीं होने देने की दिशा में वे कहाँ तक सतर्क रहेंगे! लेकिन सत्य यह है जैसा कि मैंने पहले कहा है कि पश्चिम की नई प्राप्त की हुई स्वतन्त्रता में बहुत सी बुराइयाँ पैदा हो गई हैं। एक सौ वर्ष से अधिक हो रहा है जब फ्रांस और अमेरिका ने समानता प्राप्त की है। क्या समानता का भी दुरुपयोग किया गया है? मैं तो ऐसा ही समझता हूँ। पश्चिमी राष्ट्रों के अनुभव के बाद हमारे लिए यह ठीक नहीं है कि उन्हीं के रास्ते का अनुकरण करें और केवल समानता प्राप्त करने के लिए ही संघर्ष करें। हमें प्रजातन्त्र के लिए लड़ना चाहिए। अगर प्रजातन्त्र प्राप्त होता है तो हमें सच्ची

समानता मिल जाएगी। अगर प्रजातन्त्र नहीं मिलता है या नष्ट होता है तो हम कभी समानता नहीं प्राप्त कर सकेंगे। पश्चिम में समानता के सिद्धान्त का दुरुपयोग क्यों हुआ है? चूँकि इस सिद्धान्त के बारे में उनकी धारणा अत्यन्त मूर्खतापूर्ण थी और प्रजातन्त्र पूर्णरूप से विकसित नहीं हो पाया था; इसलिए समानता का उपयोग ठीक से नहीं हो सका। यही कारण है कि यूरोप के लोग आज भी प्रजातन्त्र के लिए लड़ रहे हैं। अधिक सफलतापूर्वक लड़ने के लिए स्वभावतः ही जनता ने अपने को संगठित कर लिया है। और संगठन के महत्व को समझ कर, सभा करने और संस्था कायम करने की स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली है। इस स्वतन्त्रता के फलस्वरूप कई समुदाय बन गए हैं जैसे राजनीतिक पार्टियाँ तथा मजदूर-संघ आदि।

संसार में सबसे बड़ी संगठित संस्था मजदूर-संघ है जो क्रान्ति के बाद स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाने पर बनी है। उसके विकास का इतिहास कुछ इस प्रकार है :—पुराने समय में मजदूर मूर्ख थे और उनमें सामूहिक संगठन की भावना नहीं आई थी। वे इसका अनुभव नहीं करते थे कि उनके साथ असमानता का व्यवहार किया जाता है। वे पूँजीपतियों द्वारा बुरी तरह से सताए जाते थे। वे अमेरिका के निग्रो के समान थे जो केवल यही जानते कि वे या उनके पूर्वज सदा से गुलाम होते आए हैं। वे न तो अनुभव ही करते थे कि उनकी अवस्था ठीक नहीं है और न अपनी गुलामी की परिधि के बाहर स्वतन्त्रता और समानता ऐसी कोई चीज़ ही देख सकते थे। संसार के सभी देशों के मजदूरों को अपनी स्थिति का तब तक ज्ञान नहीं था जब तक कि मजदूर वर्ग से बाहर के सद्भावना वाले लोगों ने, जो मजदूरों की दशा देखकर असन्तुष्ट थे, उनके बीच आकर पूँजीपतियों और मजदूरों के बीच फैली असमानता को दिखाकर उन्हें संगठन की ज़रूरत और पूँजीपतियों तथा उच्चवर्ग के लोगों का विरोध करने के उनके कर्त्तव्य को नहीं बताया। तब से मजदूर सङ्गठित होने लगे। पूँजीपतियों के विरुद्ध लड़ने में मजदूरों ने कौन से अस्त्र से काम लिया? उनका एकमात्र अस्त्र हड़ताल था—असहयोग रूपी नकारात्मक अस्त्र। लेकिन यह अस्त्र सैनिक अस्त्र से भी अधिक घातक है। अगर मजदूर राज या पूँजीपतियों से किसी प्रकार की माँग करते हैं और वह माँग नहीं स्वीकृत होती है तो वे आपस में सङ्गठित होकर हड़ताल कर देते हैं। इस प्रकार की हड़ताल का प्रभाव सम्पूर्ण देश की जनता पर वास्तविक लड़ाई से कम नहीं पड़ता है। चूँकि मजदूरों का नेतृत्व मजदूर वर्ग से बाहर के उनके (मजदूरों के)

बुद्धिमान मित्रों ने किया और उन्होंने मजदूरों को अपना सङ्गठन दृढ़ करने तथा हड़ताल करने के तरीके बताए इसलिए वे (मजदूर) समाज में ऊँचे उठ सके और अपनी बड़ी शक्ति का प्रदर्शन करने में समर्थ हो सके। इस नवप्राप्त महान् शक्ति के कारण मजदूरों में आत्म-चेतना आने लगी और वे भी समानता की चर्चा करने लगे। ब्रिटेन और फ्रांस के मजदूरों ने जब देखा कि उनके सङ्गठन के सभी नेता मजदूर वर्ग के नहीं बल्कि भिन्न पेशे में लगे हुए या उच्च वर्ग या बुद्धिजीवी वर्ग के हैं तो उन्होंने उन नेताओं को अपने सङ्गठन से बाहर निकाल दिया। पश्चिम में मजदूर-सङ्घ के बाहरी नेताओं को मजदूर-सङ्घ से निकाल देने का आन्दोलन गत कई दशाब्दियों में बढ़ता ही गया है क्योंकि मजदूर वर्ग समानता की खोज में वास्तविक रास्ते से भटक गया है। इसलिए मजदूर-सङ्घों ने अपने सभी बुद्धिमान पथ-प्रदर्शकों को हटा दिया। मजदूर वर्ग के पास नेतृत्व करने की आवश्यक योग्यता नहीं थी इस कारण वे अपने महान् सङ्गठन के होते हुए भी मजदूर केवल अपनी महान् शक्ति दिखाने तथा आगे बढ़ने में ही असमर्थ नहीं हो गए बल्कि योग्य नेतृत्व के अभाव में उनके सङ्घों के भीतर ही फूट पड़ गई और वे अपनी सङ्गठित शक्ति खो बैठे।

गत दशाब्दी में या कुछ दिन और पहले से चीन में भी बहुत मजदूर-सङ्घ कायम हुए हैं। क्रान्ति के बदले से हर पेशे में लगे हुए मजदूर आपस में सङ्गठित होने तथा अपना सङ्घ कायम करने लगे हैं। सङ्घ में कितने ही नेता ऐसे हुए हैं जो मजदूर नहीं थे। यह तो हम कह ही नहीं सकते कि सभी नेता मजदूरों की भलाई के लिए ही काम करते थे। बहुतों ने तो मजदूर-सङ्घ के नाम से अपना फायदा उठाया और अपने स्वार्थ के लिए मजदूरों को साधन बनाया। फिर भी बहुत से नेता ऐसे थे जिन्होंने न्याय के नाम पर मजदूरों की सचमुच में सेवा की है। इसलिए मजदूरों को यह समझना चाहिए और अपने वास्तविक नेताओं को पहचानना चाहिए।

चीन के मजदूर भी समानता की भावना का दुरुपयोग कर रहे हैं। उदाहरण के लिए देखिए:—कई दिन पहले हान्क्वो से प्रकाशित होनेवाला मजदूरों का एक समाचार-पत्र मुझे मिला जिसमें कि दो बड़े-बड़े नारे छपे हुए थे—'हम मजदूर लम्बी पोशाक वाले नेताओं को नहीं चाहते हैं' और 'हम मजदूर रोटी के लिए लड़ते हैं। हमें राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं है।' ये नारे उस प्रकार की भर्त्सना के समान हैं जैसा कि पश्चिम में मजदूर वर्ग से भिन्न मजदूर वर्ग के नेताओं को मिला था। पश्चिम के मजदूरों ने यद्यपि

मजदूर वर्ग से बाहर के अपने नेताओं की भर्त्सना की फिर भी उन्होंने राजनीति से अपना सम्बन्ध बनाए रखा। इसलिए दूसरा नारा पश्चिम के मजदूरों के नारे के समान नहीं है। जनता की भलाई और सुख-शांति पूर्णरूप से शासन-व्यवस्था पर निर्भर करती है और राज की सबसे बड़ी समस्या शासन की व्यवस्था करना है। अगर शासन-प्रणाली दूषित है तो राष्ट्र की कोई भी समस्या हल नहीं हो सकती। उदाहरण के लिए देखिए:—चीन अभी विदेशी आर्थिक नियंत्रण की जञ्जीर से जकड़ा हुआ है और प्रतिवर्ष १,२०,००,००,००० डालर की वार्षिक हानि उठा रहा है। इसका सीधा कारण यह है कि चीन की शासन-व्यवस्था खराब है। इसलिए उसकी आर्थिक दशा में उन्नति नहीं हो रही है और वह प्रतिवर्ष एक बड़ी रकम का घाटा उठा रहा है। इस घाटे का सबसे बड़ा हिस्सा आयात का निर्यात से अधिक होना है जो सालाना ५०,००,००, ००० डालर का है। इस आधे अरब डालर का माल मानवीय श्रम से पैदा होता है और हम इसे इसलिए खो रहे हैं कि हमारे उद्योग-धन्धे उन्नति नहीं कर रहे हैं। थोड़ी देर के लिए हम इस घाटे पर ध्यान दें। चीन के मजदूर संसार के और देशों के मजदूरों की अपेक्षा कम उजरत पर अधिक परिश्रम—लगातार १० घण्टे प्रतिदिन—कर सकते हैं और इसके द्वारा विदेशी उद्योग-धन्धों से हम सहज ही में होड़ ले सकते हैं। लेकिन क्यों चीन की बनी चीज़ों का निर्यात विदेशी चीज़ों की आयात के होड़ में नहीं है? क्यों हमें केवल उद्योग-धन्धों के क्षेत्र में प्रतिवर्ष आधे अरब डालर का घाटा उठाना पड़ता है? इसका कारण चीन की शासन-प्रणाली का खराब होना है। यहाँ की सरकार के पास कोई शक्ति नहीं है, अगर होती तो उद्योग-धन्धों की इस हानि को ज़रूर रोकती। इस बचत का अर्थ है देश के लिए आधे अरब डालर के मूल्य की रोटी की बचत। एक सुदृढ़ सरकार कैसे इस हानि को रोक सकती है? वह चुङ्गी बढ़ा करके रोक सकती है। तब विदेशी माल को हमारे बन्दरगाह में आने में कठिनाई होगी और चीन के देशी माल को काफ़ी बाजार मिल सकेगा। तब सम्पूर्ण देश के मजदूरों को आधे अरब डालर का अधिक नफा होगा। लेकिन हान्क्वो के मजदूरों के समाचार पत्र के अनुसार मजदूर राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं रखेंगे और इसलिए वे सरकार से विदेशी माल पर चुङ्गी लगाने तथा देशी माल को संरक्षण देने की मांग भी नहीं करेंगे। लेकिन जब तक यह नहीं किया जाता है तो चीन में माल तैयार होना ही बन्द हो जाएगा और मजदूर बेकार हो जाएँगे। तब मजदूर अपनी रोटी कहाँ कमाएँगे? यह इस बात का द्योतक

है कि बिना अच्छे नेता के मजदूर अपनी बुराई के लिए स्वयं ही अपना मुँह खोलते हैं। इस प्रकार के मजदूर सङ्घ उन्नति नहीं कर सकते और वे जल्द ही टूट जाएँगे। वे पहले दर्जे के मूर्ख हैं अगर यह नही जानते हैं कि रोटी एक आर्थिक समस्या है और राजनीति तथा अर्थशास्त्र में निकट का सम्बन्ध है। अगर वे देश की सरकार से अपना सम्बन्ध नहीं रखना चाहते हैं तो वे रोटी के आर्थिक और जीविका-उपार्जन के साधन के प्रश्न कैसे हल कर सकेंगे? हान्क्वो के मजदूरों का नारा समानता को ठीक तरह से नहीं समझने की गलती का नतीजा है। इसलिए हम अपनी क्रान्ति में केवल समानता पाने की चर्चा ही नहीं करें बल्कि जनता के अधिकार की बात भी करें। जब तक प्रजातंत्र पूर्णरूप से विकसित नहीं होता है तो जिस समानता के लिए हम लड़ेंगे वह अस्थायी होगी और जल्द ही मिट जाएगी। लेकिन यद्यपि हमारी क्रान्ति समानता को अपना नारा नहीं बनाती है फिर भी हम जनता की सार्वभौमिकता के अन्दर समानता की बात रखे हुए हैं। जब समानता एक अच्छी चीज़ है तो हम उसे काम में लाएँगे। जब वह बुरी है तो हम उसे दूर कर देंगे। केवल इसी तरीके से हम प्रजातंत्र को विकसित कर सकते हैं और समानता से लाभ उठा सकते हैं।

मैंने एक बार कहा है कि संसार की जनता प्राकृतिक वैशिष्ट्य के अनुसार तीन समुदायों में विभक्त की जा सकती है—वे जो पहले ही जान और समझ लेते हैं, वे जो बाद में जानते और समझते हैं और वे जो न जानते हैं और न समझते हैं। इन्हें हम क्रमशः आविष्कारक, उन्नायक और व्यावहारिक व्यक्ति कह सकते हैं। अगर ये तीनों समुदाय आपस में एक दूसरे के काम आवें और सहयोग करें तो मानव-सभ्यता प्रतिदिन हज़ार मील की तेजी से आगे बढ़ेगी।

यद्यपि प्रकृति ने कम और अधिक बुद्धि और योग्यता वाले लोगों को पैदा किया है फिर भी मानव-हृदय इस बात की आशा बनाए हुए है कि सभी आदमी बराबर हो सकते हैं। यह बहुत ही ऊँचे दर्जे का नैतिक आदर्श है और मानव जाति को इस ओर ईमानदारी के साथ बढ़ना चाहिए। लेकिन आरंभ कैसे किया जाय? हम जीवन के दो दार्शनिक सिद्धान्तों की तुलना कर समझ सकते हैं—एक तो स्वार्थपरायण लोग जो अपना ही फायदा उठा रहे हैं और दूसरा परोपकारी लोग जो दूसरों को फायदा पहुँचा रहे हैं। वे अपने स्वार्थ की खोज में बराबर लगे हुए हैं, दूसरों को चोट पहुँचाते हैं और इसके लिए उनकी आत्मा उन्हें कभी नहीं कोसती है। जब इस दर्शन का बोलबाला हुआ

तब बुद्धिमान और योग्य आदमियों ने अपनी सभी शक्तियों को दूसरों के अधिकार और सुविधाओं को हड़पने में लगा दिया और तब धीरे-धीरे निरंकुश वर्ग बना तथा राजनीतिक असमानता पैदा हुई। प्रजातन्त्र के लिए हुई क्रान्ति के पहले संसार की हालत ऐसी ही थी। लेकिन जो परोपकारी हैं वे सहर्ष अपना बलिदान दूसरों के लिए करने को तैयार रहते हैं। जहाँ इस दर्शन का प्रभाव होता है वहाँ बुद्धिमान और योग्य पुरुष अपनी सारी शक्तियाँ दूसरों की भलाई में लगाने को तैयार रहते हैं और तब प्रेम, धर्म और विश्व प्रेम की भावना बढ़ती है। लेकिन सभी बुराइयों को हटाने के लिए अकेला धर्म और विश्व-प्रेम काफ़ी नहीं है। इसलिए हमें एक मौलिक उपाय निकालना चाहिए—और वह मौलिक उपाय है क्रान्ति करना, निरंकुशता को मिटा देना, प्रजातन्त्र कायम करना और असमानता को दूर हटाना। अब से हमें तीनों प्रकार के लोगों में सामंजस्य स्थापित करना चाहिए, जिनके बारे में मैं कह चुका हूँ और उन्हें बराबरी का दर्जा देना चाहिए। हर आदमी का उद्देश्य सेवा करना होना चाहिए, शोषण करना नहीं। जिनमें अधिक बुद्धि और योग्यता है वे अपनी शक्ति भर हजारों और लाखों की सेवा करें और उन्हें सुखी बनावें। यह 'बुद्धिमान मूर्खों को ज्ञान दें' वाली कहावत के समान है। जिनके पास न बुद्धि है न योग्यता वे भी अपनी शक्तिभर आपस में एक दूसरे की मदद करें और एक दूसरे को सुखी बनावें। इस प्रकार यद्यपि मनुष्यों में प्रकृति प्रदत्त बुद्धि और योग्यता की भिन्नता रहेगी ही फिर भी नैतिक आदर्श और सेवा की भावना फैलने से वे निश्चय ही अधिक से अधिक समान होंगे। यही समानता का सार है।

चौथा व्याख्यान

पिछले व्याख्यानों में हमने देख लिया कि प्रजातन्त्र के लिए होने वाले युद्धों में अमेरिका और यूरोप के लोग दो या तीन शताब्दियों तक लगे रहे। आज मैं जनता के अधिकार की मात्रा जिसे उन्होंने प्राप्त की है और इतने समय के अन्दर उन्होंने प्रजातन्त्र में जितनी प्रगति की है उनके बारे में बोलना चाहता हूँ। प्रजातन्त्र की भावना चीन में पहले से ही फैल चुकी है और प्रचलित पुस्तकों और समाचार पत्रों द्वारा उसका प्रभाव चीनी जनता पर भी पड़ रहा है। प्रजातन्त्र सिद्धान्त के पोषक ग्रन्थ और समाचार पत्र सचमुच में प्रजातन्त्र के कट्टर समर्थक हैं। उनमें 'प्रजातन्त्र की लहर के गर्जन' और 'प्रजातन्त्र की भावना का आश्चर्यजनक गति से बढ़ने' का वर्णन इस ढंग से रहता है कि जो उन्हें पढ़ते हैं उनसे प्रभावान्वित हो जाते हैं। जो प्रजातन्त्र का अध्ययन करते हैं वे स्वभावतः ही केवल इसी प्रकार की पुस्तकों और समाचार पत्रों के पढ़ने की ओर आकृष्ट हो जाते हैं। हम प्रजातन्त्र के विचारों को अपनाने लगे हैं और यह अनुमान करने लगे हैं कि चूँकि यूरोपीय जनता ने राजनीतिक अधिकार की अपनी लड़ाई में इतनी बड़ी सफलता प्राप्त की है इसलिए संसार के हर राष्ट्र में निश्चय ही प्रजातन्त्र पूर्ण से प्रतिष्ठित होने जा रहा है। हम कहते हैं कि चीन भी आज संसार की प्रगतिशील धाराओं के साथ है और इसलिए इसे भी प्रजातन्त्र के कार्य में प्रोत्साहन देना चाहिए और उसे आगे बढ़ाना चाहिए। बहुत लोग ऐसे हैं जो इस बात का अनुभव करते हैं कि अगर चीन का प्रजातन्त्र पश्चिमी प्रजातन्त्र के मुकाबले आ जाय तो प्रजातन्त्र का लक्ष्य पूर्ण हो जायगा और चीन एक बड़ा ही सभ्य और प्रगतिशील राज समझा जायगा। लेकिन पश्चिमी प्रजातन्त्र में जो पुस्तकों में पाई जाती हैं और जो वास्तविक व्यवहार में हैं इन दोनों में काफी अन्तर पाया जाता है। पश्चिम के प्रजातन्त्रात्मक शासन के तथा कथित अग्रदूत जैसे संयुक्तराष्ट्र अमेरिका तथा फ्रांस की ओर देखिए। इन देशों में एक शताब्दी पहले ही क्रान्ति हुई थी लेकिन वास्तव में जनता ने कितने राजनीतिक अधिकार प्राप्त किए हैं? प्रजातन्त्र में विश्वास करने वाले देखते हैं कि जनता को बहुत ही कम अधिकार मिले हैं। जनता के अधिकार के लिए लड़ने वालों को यह

विश्वास था कि वे प्रजातन्त्रात्मक आदर्श जल्द ही प्राप्त कर लेंगे। इसलिए उन्होंने प्रजातन्त्र रूपी जीवन-मरण के संग्राम में अपना सब कुछ स्वाहा कर दिया और अपनी सारी ताकत लगाई। लेकिन विजय मिलने के बाद उन्हें पता चला कि क्रान्ति के समय में उन्होंने जितनी आशा की थी उसमें कहीं कम अधिकार उन्हें प्राप्त हुए हैं। उन्होंने अब तक पूर्ण प्रजातन्त्र नहीं प्राप्त किया है।

एक बार पुनः अमेरिका द्वारा ग्रेट ब्रिटेन के विरुद्ध हुई स्वाधीनता की लड़ाई पर दृष्टि डालिए। उपनिवेशों ने आठ वर्षों की लड़ाई के बाद लोकप्रिय सार्वभौमिकता के आदर्श को प्राप्त किया। 'स्वाधीनता की घोषणा' के अनुसार 'स्वतन्त्रता और समानता' मनुष्य के प्रकृतिप्रदत्त और ऐसे अधिकार हैं जो उनसे अलग नहीं किए जा सकते। अमेरिका के क्रान्तिकारियों ने पूर्ण स्वतन्त्रता और समानता पाने की आशा की थी लेकिन आठ वर्षों की लड़ाई के बाद भी उन्हें बहुत से लोकप्रिय अधिकार नहीं मिले थे। क्यों? अमेरिका के उपनिवेशों में जनता की सार्वभौमिकता का सबसे बड़ा दुश्मन ब्रिटेन का सम्राट था। उसके अत्याचार से वहाँ स्वाधीनता का आन्दोलन और ब्रिटेन के विरुद्ध युद्ध छिड़ा। यह निरंकुश शासन के विरुद्ध प्रजातन्त्र की लड़ाई थी। युद्ध के परिणाम स्वरूप जब प्रजातन्त्र को विजय मिली तो ऐसा जान पड़ा कि जनता को उसके सभी अधिकार मिल गए। लेकिन फिर भी प्रजातन्त्र का आदर्श पूर्ण रूप से क्यों नहीं प्राप्त हो सका? इसका कारण यह था कि स्वाधीनता प्राप्त हो जाने और निरंकुश शासन के समाप्त हो जाने के बाद प्रजातन्त्र के समर्थकों के बीच प्रजातन्त्रात्मक शासन-व्यवस्था सम्बन्धी समस्यायें उपस्थित हुईं। 'कितनी दूर तक लोकप्रिय सार्वभौमिकता व्यावहारिक रूप में लाई जा सकती है' इस प्रश्न पर प्रजातन्त्र के समर्थकों के बीच मतभेद होना शुरू हुआ। जिसके फलस्वरूप दलबन्दी आरम्भ हो गई और दो बड़े-बड़े दल कायम हो गए। आप सबों ने अमरीकी क्रान्ति के प्रसिद्ध नेता और संयुक्त राष्ट्र की राजनीति के पिता वाशिंगटन के बारे में सुना है। लेकिन और भी बहादुर लोग थे जिन्होंने वाशिंगटन को ग्रेट ब्रिटेन के विरुद्ध लड़ने में मदद दी थी। उनमें से एक तो वाशिंगटन के खज़ाने के मंत्री हेमिल्टन (Hamilton) और दूसरे उनके राज सिक्रेटरी जेफ़रसन (Jifforson, Secretary of State) थे। चूँकि शासन-व्यवस्था कायम होने के सिद्धान्त के ऊपर दोनों में गहरा मतभेद हो गया और दोनों के अनुयायी काफी बड़ी संख्या में थे इसलिए दोनों ने एकदम से अलग-अलग

अपने दल कायम किए। जेफ़रसन का दल विश्वास करता था कि मनुष्य प्राकृतिक अधिकार के साथ जन्म लेता है और यदि उसे पूर्ण प्रजातन्त्रात्मक अधिकार मिलता है तो वह अपनी स्वतन्त्रता को विवेक के साथ व्यवहार में लाएगा, अपनी शक्ति जिम्मेवार कामों में लगाएगा और राष्ट्र की प्रगति के सब कामों को पूरी मात्रा में करेगा। जेफ़रसन का सिद्धान्त था कि मनुष्य स्वभावतः अच्छा होता है और अगर पूर्ण प्रजातन्त्रात्मक शासन में कभी वह अपने प्राकृतिक गुण को नहीं प्रकट करता हैं और अच्छा काम नहीं करता है बल्कि अपने अधिकारों का दुरुपयोग कर बुराई करता है तो इसका कारण यह है कि उसके सामने कोई बाधा आकर उपस्थित हुई है और कुछ समय के लिए वह ऐसा करने को बाध्य हो गया है। संक्षेप में, हर आदमी को प्रकृति से ही स्वतन्त्रता और समानता के अधिकार प्राप्त हैं इसलिए उसे राजनीतिक अधिकार भी होना चाहिए। हर आदमी बुद्धिमान है और अगर उसे शासन करने का राजनीतिक अधिकार दिया जाता है तो वह राष्ट्र के लिए बड़ा काम करेगा। अगर अच्छे शासन की जिम्मेवारी जनता अपने कन्धे पर उठाती है तो राष्ट्र काफ़ी दिनों तक शान्तिपूर्वक उन्नति करेगा। जेफ़रसन के दल का जनता के अधिकार के सम्बन्ध में ऐसा ही विश्वास था।

हेमिल्टन के दल ने जिस नीति का समर्थन किया वह जेफ़रसन की नीति के एकदम विपरीत थी। हेमिल्टन यह नहीं मानता था कि मानव स्वभाव एकदम पूर्ण है। वह विश्वास करता था कि अगर प्रजातन्त्रात्मक प्रभुत्व हर आदमी को समान रूप से दिया जाय तो बुरे आदमी अपने राजनीतिक प्रभुत्व को बुरे कामों के करने में लगा देंगे। और अगर भ्रष्ट व्यक्तियों के हाथों में राज की अधिकांश प्रभुता चली जाती है तो वे राष्ट्र के अधिकारों और सुविधाओं को अपना स्वार्थ सिद्ध करने और अपने दल के फायदे में लगा देंगे। वे किसी प्रकार की भी नैतिकता, कानून, न्याय या व्यवस्था के बन्धन की परवाह नहीं करेंगे। अन्त में फल यह होगा कि या तो 'तीन शासकों का राज'[1] कायम होगा जिसका मतलब अधिकार की मर्यादाओं का खण्डित होना और एकता का अभाव है अथवा बलवाइयों का शासन होगा जिसका मतलब स्वतन्त्रता और समानता की अति करना और अराजकता फैलाना है। इस प्रकार के प्रजातन्त्र के प्रयोग से राष्ट्र की प्रगति नहीं होगी बल्कि राष्ट्र में केवल अव्यवस्था फैल जायगी और वह कमजोर हो जायगा। इसलिए

(१) यह चीनी कहावत है।

हेमिल्टन ने कहा कि राज का राजनीतिक अधिकार सम्पूर्ण रूप से जनता को नहीं दिया जाय बल्कि केन्द्रीय सरकार के हाथों में रखा जाय और साधारण जनता को केवल कुछ हद तक ही प्रजातन्त्रात्मक अधिकार दिये जाएँ। अगर सब मनुष्यों की अपरिमित प्रभुता हो और सबके सब उसे बुरे कामों में व्यवहार करने लगें तो राष्ट्र के ऊपर उसका जो प्रभाव पड़ेगा वह एक राजा द्वारा किए गए बुरे कामों के प्रभाव से कहीं अधिक भयङ्कर होगा। एक बुरे राजा के कामों को देखने और उसे रोकने के लिए बहुत से लोग होते हैं लेकिन अगर सब लोग अपरिमित शक्ति पा जाते हैं और उसे बुरे कार्य में लगाते हैं तो उन्हें देखने और रोकने के लिए तो कोई नहीं होगा। इसलिए हेमिल्टन ने कहा कि जिस प्रकार निरंकुश शासन को रोकना चाहिए उसी प्रकार प्रजातन्त्र की भी सीमा होनी चाहिए। उसने एक संघीय दल कायम किया जो सार्वभौमिकता के अधिकार के केन्द्रीयकरण पर जोर देता था—विकेन्द्रीयकरण पर नहीं।

'स्वाधीनता की लड़ाई' के पहले अमेरिका के तेरहों मूल उपनिवेशों पर ग्रेट ब्रिटेन का शासन था। और वे उपनिवेश आपस में संगठित नहीं हो सकते थे। बाद में, जब उन्होंने देखा कि ब्रिटिश शासन की असीम निरंकुशता वे बर्दाश्त नहीं कर सकते हैं तब उन्होंने उसका विरोध किया और इस एक लक्ष्य से उनमें एक समान भावना का जन्म हुआ। लेकिन युद्ध के बाद वे उपनिवेश पुनः विभक्त हो गए और उनमें मतैक्य नहीं रह सका। क्रान्ति के समय इन तेरहों उपनिवेशों की कुल जनसंख्या तीस लाख से अधिक नहीं था उसीमें से केवल बीस लाख लोगों ने ग्रेट ब्रिटेन का विरोध किया था। शेष दस लाख तब तक भी ब्रिटिश सम्राट के प्रति अपनी राजभक्ति बनाए हुए थे अर्थात् राजों की एक तिहाई जनसंख्या तब तक भी राजभक्त ही थी। केवल दो तिहाई लोग ही सच्चे क्रान्तिकारी थे और उस एक तिहाई राजभक्तों ने क्रान्तिकारियों के मार्ग में जो बाधाएँ उपस्थित कीं उनके ही फलस्वरूप सफलता प्राप्त करने में आठ वर्ष लग गए। जब इंगलैण्ड हार गया तो उन राजभक्तों को छिपने के लिए भी कहीं जगह नहीं रही। इसलिए वे उत्तर की ओर भाग गए तथा सेंट लारेन्स नदी (St. Lawrence river) पारकर कनेडा पहुँचे और वहाँ उन्होंने उपनिवेश बसाने में मदद दी जो आज तक भी ब्रिटेन का प्रदेश है तथा अपनी मातृभूमि के प्रति राजभक्त है।

जब राजों (States) को स्वाधीनता मिल गई तो उन्हें अपने यहाँ के आन्तरिक शत्रुओं से भी छुटकारा मिल गया। लेकिन उनके तीस लाख मनुष्य

तेरह राजों में छितराए हुए थे और हर राज में दो लाख से अधिक नहीं थे इसलिए आपस में मेल नहीं रहा। चूँकि उनमें संगठन नहीं था इसलिए राज की शक्ति भी कमजोर थी। किसी भी दूसरी यूरोपीय शक्ति द्वारा वे आसानी से हड़प लिए जा सकते थे। भविष्य खतरे से भरा था। तब विभिन्न राजों के दूरदर्शी राजनीतिज्ञों ने देखा कि अगर वे सिर पर आए खतरों को दूर करना चाहते हैं तो उन्हें अपनी राष्ट्रीय शक्ति बहुत जोरों से बढ़ानो चाहिए और एक स्थायी राष्ट्र का निर्माण करना चाहिए। इसलिए उन्होंने आपस में विचार किया कि सभी राज संगठित हो जाएँ और एक महान् राष्ट्र का निर्माण करें। संगठन लाने के लिए लोगों ने विशुद्ध लोकप्रिय सार्वभौमिकता और कुछ लोगों ने विशुद्ध राष्ट्रीय सार्वभौमिकता पर जोर दिया। दूसरा दल अधिकार के केन्द्रीयकरण और जनता के अधिकार को सीमित रखने पर जोर देता था। वे चाहते थे कि सभी राज अपने अपने अधिकार और प्रभुता को दृढ़ केन्द्रीय शासन के सुपुर्द कर दें। इसलिए वे संघवादी कहलाए। उन दो विरोधी समुदायों में मौखिक रूप से और लेखनी द्वारा जो झगड़ा प्रारम्भ हुआ वह काफ़ी दिनों तक चला और बड़ा ही कडुआ रहा। अन्त में संघवादी लोग जो लोकप्रिय सार्वभौमिकता को सीमित करने पर जोर देते थे, विजयी हुए। सभी राज एक जगह एकत्रित हुए और उन्होंने एक सङ्घ-शासन कायम किया तथा संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का विधान तैयार किया। जब से वहाँ प्रजासत्तात्मक राज कायम हुआ है तबसे आज तक संयुक्त राष्ट्र में वही विधान लागू है। इस विधान में सरकार के व्यवस्थापिका, न्याय और शासन प्रबन्ध के अधिकार साफ-साफ शब्दों में एक दूसरे से अलग हैं जिससे एक दूसरे के क्षेत्र में दखल न दे सकें। मानव इतिहास का यह पहला पूर्ण विधान था और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ही पहला राष्ट्र था जिसने सरकार के तीन अधिकारों को अलग करनेवाला विधान अपनाया। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने 'शून्य आकाश को चीरकर'[२] राष्ट्रों के लिखित विधान में एक परम्परा कायम की। यह 'संयुक्त राष्ट्र का सङ्घीय विधान' कहलाता है। जब से संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने सङ्घ शासन कायम किया है और इस विधान को अपनाया है तब से वह संसार का सबसे धनी और यूरोपीय युद्ध (सन् १९१४-१८) के समय से संसार का सबसे अधिक शक्तिशाली राष्ट्र हो गया है।

---

२. यह चीनी कहावत है जिसका मतलब होता है सर्वप्रथम।

चूँकि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने संघीय विधान को अपनाया है जिसमें संघबद्ध राजों को अपने आन्तरिक मामलों में पूरी स्वतन्त्रता है इसलिए वह आज धन और शक्ति में इतना बढ़ा-चढ़ा है। इसे देखकर चीन के बुद्धिजीवी लोगों का एक समुदाय गत शताब्दी से यह कहने लगा है कि चीन को भी धनवान् और शक्तिशाली होने के लिए अपने यहाँ सङ्घ-शासन कायम करना चाहिए। उन्होंने चीन की वर्तमान समस्याओं के हल करने पर विचार तो किया परन्तु उन्होंने अब तक संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और चीन की आधारभूत अवस्थाओं की तुलना नहीं की है। उनकी एक ही दलील है कि चूँकि संघ-शासन के कारण संयुक्त राष्ट्र धनवान और शक्तिशाली बन गया और चूँकि चीन भी धनवान और शक्तिशाली होना चाहता है इसलिए हमारे प्रान्तों का भी सङ्घ-शासन होना चाहिए। अमेरिका के सङ्घ-शासन को प्रधान लाभ इस बात से हुआ कि हर राज में पहले से ही अपनी शासन व्यवस्था और अपना विधान था। अगर हम संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की सङ्घ-शासन-योजना का अनुसरण करना चाहते हैं और प्रान्तों का सङ्घ कायम करना चाहते हैं तो सब प्रान्तों को पहले अपना-अपना विधान बनाना चाहिए और अपने-अपने यहाँ ठीक शासन व्यवस्था कायम करनी चाहिए और तब सङ्गठित होकर राष्ट्रीय विधान का निर्माण करना चाहिए। एक वाक्य में कहें तो हम लोगों को अपने पहले से संगठित चीन को बीस से कुछ अधिक स्वतन्त्र इकाइयों में विभक्त कर देना पड़ेगा ताकि वह (चीन) एक शताब्दी पहले के एक दर्जन स्वतन्त्र अमरीकी राज की तरह हो सके और तब पुनः उन्हें (स्वतन्त्र इकाइयों को) एक में सङ्गठित करना होगा। इस प्रकार का विचार और भावना एकदम से तर्कहीन हैं। हम केवल तोते की तरह दूसरे की कही बातों को आँख बन्दकर रटना जानते हैं। चूँकि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका अपने संघ-शासन के कारण संसार का सबसे धनी और शक्तिशाली राष्ट्र हो गया है इसलिए हम भी सोचते हैं कि चीन को धनी और शक्तिशाली बनाने के लिए हमें अमरीकी प्रणाली की ही नकल करनी चाहिए। यह तो उस प्रकार की बात है जैसा कि मैंने पहले कहा है कि 'जब कि पश्चिम के लोग प्रजातन्त्र के लिए लड़े तो वे प्रजातन्त्र की बात नहीं करते थे बल्कि स्वतन्त्रता और समानता की बात करते थे इसलिए हम चीन के लोगों को भी अपनी क्रान्ति में पश्चिमी नारों को ग्रहण कर यह कहना चाहिए कि हम स्वतन्त्रता और समानता के लिए लड़ रहे हैं।' ये सभी बातें अन्धों की तरह अनुसरण करने और मूर्खों की तरह सोचने जैसी हैं। जो लोग प्रस्तावित चीनी सङ्घ के प्रान्तों

को स्वायत्त शासन देने की बात कहते हैं वे यह लचर दलील पेश करते हैं कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का निर्माण कई छोटे-छोटे स्वायत्त शासन प्राप्त राजों के आधार पर हुआ था और चीन के भी बहुत से प्रान्त हैं जिनमें स्वायत्त-शासन लागू किया जा सकता है और वे धनी और शक्तिशाली हो सकते हैं। अमेरिका में जिस समय स्वाधीनता की घोषणा की गई थी उस समय की दशा का उन्हें कुछ भी ज्ञान नहीं है। जबकि राजों ने ब्रिटेन से स्वाधीनता प्राप्त कर ली तब फिर क्यों उन्होंने सङ्घ-शासन स्थापित करने की बात उठाई? चूँकि उस समय के तेरहों राज एकदम से अलग-अलग थे और एक शासन के नियन्त्रण में नहीं थे इसलिए राष्ट्र बनाने के लिए वे सब के सब सङ्गठित हो गए।

लेकिन चीन की परिस्थिति क्या है? खास चीन प्रत्यक्ष रूप से अठारह प्रान्तों में विभक्त है। उनमें मंचूरिया के तीन प्रान्त और सिन् क्याङ् को भी जोड़ दीजिए तो कुल बाइस हो जाते हैं। फिर मंगोलिया, तिब्बत और दूसरे अधीनस्थ राजों के अलावे जहोल, सुइयुआन्, कोकोनोर और बहुत से विशेष क्षेत्र भी हैं। मांचू राजकुल (सन् १६४४-१६११ ई०) के दो सौ साठ वर्षों के राजत्वकाल में ये सभी भू-भाग केन्द्रीय मांचू सरकार के अधीन थे। मिङ् राजकुल (सन् १३६८-१६४३ ई०) के समय में प्रान्त संगठित थे। यूआन् राजकुल (सन् १२७७-१३६७ ई०) के समय केवल चीन की सीमा के भीतर के भू-भाग ही संगठित नहीं थे बल्कि यूरोप और एशिया प्रायः एक शासन के अन्दर था। सुङ् राजकुल (सन् ६६०-१२७६ ई०) के समय में भी सभी प्रान्त आपस में घनिष्ट रूप से संगठित थे और याङ्टिज नदी के पार के दक्षिणी प्रान्त भी संगठित थे। उसके भी पहले थाङ् (सन् ६१८-६०६ ई०) और हान् राजकुलों (सन् २०६०-२१ ई०) के समय चीन के सभी प्रान्त एक शासन अन्दर संगठित थे। इससे पता चलता है कि भूतकाल में चीन के सभी प्रान्त अगल-अलग नहीं थे बल्कि संगठित थे और चीन के हिस्से थे तथा संगठित शासन के अनुपयुक्त नहीं थे। इतना ही नहीं, जब देश संगठित था तो शासन-व्यवस्था भी अच्छी थी और जब देश असंगठित था तो उस समय शासन भी अव्यवस्थित था। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका केवल स्वाधीन होकर और अपने मूल-राजों में स्वायत्त शासन कायम कर ही धनी और शक्तिशाली नहीं हुआ है बल्कि राजों के संघबद्ध होने के बाद संगठित सरकार ने जो प्रगति की है उसके कारण से हुआ है। उसके धनवान और शक्तिशाली होने का कारण राजों का सङ्घ-बद्ध होना है; राजों का अलग-अलग होना

नहीं। चूँकि चीन सब दिनों से संगठित रहा है इसलिए हमें उन्हें पुनः अलग-अलग प्रान्तों में नहीं विभक्त करना चाहिए।

चीन में अभी जो एकता का अभाव है उसका कारण अल्पकालीन अशान्ति का होना है और सैनिकवादियों द्वारा प्रान्तों का हड़प लिया जाना है। हम इस तरह की बातों की चर्चा ही नहीं करें। इस प्रकार के गुमराह करने वाले सङ्घ सिद्धान्तों को किसी भी तरह से हम फिर अपने देश में लागू नहीं होने देंगे जिनसे सैनिकवादियों को प्रान्तों को हड़पने में प्रोत्साहन मिले। अगर सैनिकवादी चीन को अलग-अलग प्रान्तों में विभक्त कर देने का बहाना पावें तो चीन पुनः कभी नहीं शक्तिशाली और धनवान हो सकेगा। अगर हम अमेरिका की सङ्घ-प्रणाली को ही धन और शक्ति प्राप्त करने का केन्द्र मानते हैं तो हम कारण के पहिले कार्य को रखते हैं। क्यों विदेशी राष्ट्र चीन पर अन्तर्राष्ट्रीय नियंत्रण रखना चाहते हैं ? कहाँ वे हमारी कमजोरी देखते हैं ? वे देखते हैं कि चीन के बुद्धिजीवी वर्ग ऐसी बातें करते हैं जो समय के प्रवाह के एकदम विपरीत होती हैं और जिसके फलस्वरूप वे चीन को नीची निगाह से देखते हैं। उनका कहना है कि हम चीन के लोग अपना प्रबन्ध स्वयं नहीं कर सकते हैं इसलिए शक्तिशाली राष्ट्र हमारे लिए प्रबन्ध करेंगे।

हम सुदूर-पूर्व के लोग जो वर्त्तमान संसार की प्रगतिशील धारा के साथ हैं, अगर 'राजों को संघबद्ध' करने की बात ठीक-ठीक अमल में लाना चाहते हैं तो हमें चीन और जापान या चीन, अन्नाम, बर्मा, भारतवर्ष, फ़ारस और अफ़गानिस्तान को एक संघ में लाने की बात करनी चाहिए। क्योंकि ये राज कभी आपस में संगठित नहीं हुए हैं और एशिया को धनवान तथा शक्तिशाली बनाने और यूरोप का विरोध करने के लिए इन राष्ट्रों का संघ बनाना ही संघ की भावना का समयानुकूल प्रयोग करना होगा। खास चीन के अठारह प्रान्त, मंचूरिया के तीन प्रान्त तथा चीन के और विशेष क्षेत्र मांचू राजकुल के समय में ही, संगठित हो चुके हैं। जब हमने मांचू राजवंश समाप्त कर दिया है तथा हमें उसके भू-भाग उत्तराधिकार के रूप में मिले हैं और हमने वर्त्तमान प्रजासत्तात्मक राज की स्थापना की है। तब फिर क्यों हम अपने देश को टुकड़े-टुकड़े करें जो पहले से ही संगठित है ? जो चीन के विभाजन की बात करते हैं। वे महत्वाकांक्षा के उपासक हैं और वे प्रान्तों को अपना खास राज बनाना चाहते हैं। थाङ् ची चाव् ने यून्नान्, चौ

हङ्-थाङ् ने हुनान्, लु युङ्-थिङ् ने क्वाङ्सी, छन्-छ्युङ्-मिङ्[3] ने क्वाङ्तुङ् हड़प लिए हैं। इस प्रकार के प्रान्तों का संघ होगा, स्वायत्त शासन प्राप्त संघ नहीं। इस प्रकार का संघ चीन के लिए हितकर नहीं होगा बल्कि खास व्यक्तियों के हित के लिए होगा। यहाँ हम साफ-साफ इसका अन्तर जान लें।

जब अमेरिका के तेरहों राजों ने इंगलैण्ड से स्वाधीनता प्राप्त की तो उनमें राजनीतिक एकता एकदम नहीं थी और एक संगठित राष्ट्र का निर्माण करना बड़ा ही कठिन कार्य था। इसलिए हेमिल्टन और जेफ़रसन के दल वालों के बीच भयंकर विवाद था। जब विधान निर्माण हुआ तो हर राज को विशेष वोट देने की स्वतन्त्रता दी गई। अन्त में हेमिल्टन के दल की जीत हुई और जेफ़रसन की नीति कमजोर पड़ने लगी। चूँकि जब विधान का निर्माण हुआ तो देश की जनता इन दो बड़े-बड़े दलों में विभक्त थी और दोनों के राजनीतिक सिद्धान्त अलग-अलग थे इसलिए अन्त में जो विधान लागू किया गया वह दोनों दलों के बीच हुए समझौते का फल था। विधान में केन्द्रीय सरकार के प्रधान राजनीतिक अधिकारों का स्पष्ट उल्लेख था। जो बातें विधान के अन्तर्गत नहीं रखी गई थीं वे स्थानीय सरकार के ऊपर छोड़ दी गई थीं। उदाहरण के लिए लीजिए :—केन्द्रीय सरकार के अधीन मुद्रा जारी करने का अधिकार रहा और स्थानीय शासन को इस अधिकार में हस्तक्षेप करने की मनाही रही। वैदेशिक सम्बन्ध भी केन्द्रीय सरकार के अधीन रखा गया और किसी राज को भी किसी विदेशी राष्ट्र से व्यक्तिगत रूप से संधि करने का अधिकार नहीं रहा। अन्य बातें जैसे राष्ट्रीय रक्षा, स्थल और जल-सेना की शिक्षा, राष्ट्रीय सेना को इधर-उधर भेजने का अधिकार आदि भी केन्द्रीय सरकार के अधीन रहे। और बातें जो विधान द्वारा केन्द्रीय सरकार के अधीन नहीं रखी गईं वे विभिन्न राजों के देखभाल के ताल्लुक रहीं। अधिकारों का यह विभाजन केन्द्रीय सरकार और विभिन्न राजों की सरकारों के बीच हुए समझौते का फल था। इस समझौते से जनता को कौन से अधिकार मिले? इससे केवल वोट देने का सीमित अधि-कार मिला। उस समय वोट देने का अधिकार सीमित था। कांग्रेस के सदस्यों और केन्द्रीय तथा स्थानीय कुछ अफ़सरों के चुनाव में लोग वोट दे सकते थे। प्रेसिडेन्ट और सिनेट के सदस्य अप्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा चुने गए

---

३. ये लोग सैनिक सत्ताधारी जनरल थे जो प्रान्तों के शासक बन गए थे।

सदस्यों द्वारा चुने जाते थे। बाद में धीरे-धीरे जनता के अधिकार भी बढ़ते गए। आज प्रेसिडेन्ट, सिनेट के सदस्य और सभी केन्द्रीय तथा स्थानीय अफ़सर जिनका जनता के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध रहता है, जनता के वोट द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुने जाते हैं। इसी को बालिग़ मताधिकार कहा जाता है।

इसलिए वोट देने के सीमिति अधिकार से बालिग मताधिकार प्राप्त करने में संयुक्त राष्ट्र को बहुत दिन लग गए हैं। पहले केवल पुरुषों को ही वोट देने का अधिकार था। आज से एक या दो दशाब्दी पहले तक की स्त्रियाँ वोट नहीं दे सकती थीं। स्त्रियों को भी वोट देने का अधिकार होना चाहिए इसका आन्दोलन बीस वर्ष पहले यूरोप और अमेरिका में बड़े जोरों से प्रारम्भ हुआ। आप सभी जानते हैं कि उस समय बहुतों ने समझा था कि स्त्रियाँ अपने आन्दोलन में सफल नहीं हो सकेंगी। उसका कारण लोग यह बताते थे कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ बुद्धि और योग्यता में हीन होती हैं और पुरुष जो कर सकता है वह स्त्री नहीं कर सकती है। इसलिए स्त्रियों के वोट देने के अधिकार के बहुत लोग विरोधी थे। विरोधियों में केवल पुरुष ही नहीं बल्कि बहुत सी स्त्रियां भी थीं। अगर राष्ट्र की सभी स्त्रियां वोट देने का अधिकार प्राप्त करने के लिए लड़तीं तो भी उन्हें सफलता प्राप्त करने की कम ही आशा होती। लेकिन सात या आठ वर्ष पहले ग्रेट ब्रिटेन की स्त्रियों और उसके थोड़े दिनों के बाद संयुक्त राष्ट्र की स्त्रियों को अपने संग्राम में सफलता मिली। इसका कारण यूरोपीय युद्ध (१६१४-१८) था। युद्ध के समय पुरुष फ़ौज में भर्ती हो गए और अपनी शक्ति युद्ध-मैदान में लगाने लगे। जिसके फलस्वरूप राष्ट्र के बहुत से कारबारों को देखने के लिए पुरुष नहीं रहे। अस्त्रागार में काम करने के लिए पुरुष अफ़सर और मजदूर और सड़कों पर चलने वाली गाड़ियों के लिए पुरुष इंजिनियर और कनडक्टर नहीं मिलने लगे। साथ-साथ विभिन्न प्रकार के कारबार की जिम्मेवारी संभालने के लिए जिसकी गृह-मोर्चों पर अत्यधिक ज़रूरत थी, पुरुषों की कमी हो गई। तब पुरुषों की जगह पर काम करने के लिए स्त्रियां बुलाई गईं। तब जो लोग यह कहकर कि स्त्रियां पुरुषों के काम को नहीं कर सकती हैं, स्त्रियों के वोट देने के अधिकार का विरोध करते थे, उनका यह तर्क कमजोर पड़ गया और उन्हें पुनः आन्दोलन को कुचलने का साहस नहीं हुआ। स्त्रियों के वोट देने के अधिकार के समर्थकों को पूर्ण विजय मिली और युद्ध के बाद यह प्रश्न अन्तिम रूप से तय हो गया। इससे हम देख सकते हैं कि अमरीकी क्रान्ति का उद्देश्य मूलतः प्रजातंत्र था। अमेरिका की

स्वाधीनता की लड़ाई प्रजातंत्र का युद्ध थी। युद्ध के बाद एक ही उद्देश्य को लेकर लड़ने वाले साथी दो भागों में विभक्त हो गए। एक दल ने पूर्ण प्रजातंत्र की आवाज उठाई और दूसरे दल ने कहा कि जनता को सीमित अधिकार मिलें और बड़े-बड़े अधिकार राष्ट्र की केन्द्रीय सरकार के पास रहें। बाद की बहुत सी घटनाओं से यह सिद्ध हुआ कि सर्वसाधारण के पास इतनी बुद्धि और शक्ति नहीं होती है कि वे सार्वभौमिकता को पूर्ण रूप से उपयोग में ला सकें। जेफरसन और उनके अनुयायियों ने जनता के लिए अधिक अधिकार प्राप्त करने की कोशिश की लेकिन वे असफल हो गए। यह इस बात का द्योतक है कि साधारण जनता यह नहीं जानती है कि राजनीतिक सार्वभौमिकता कैसे अमल में लाई जाती है। इसलिए यद्यपि इन गत दो-तीन शताब्दियों के अन्दर हुई पश्चिमी क्रान्तियां प्रजातंत्र के नारे को लेकर हुईं लेकिन उनका वास्तविक फल केवल स्त्री-पुरुषों के वोट देने के अधिकार के मिलने तक ही सीमित रहा।

फ्रांस की राज-क्रान्ति ने भी अपना उद्देश्य प्रजातंत्र ही रखा था। रूसो ऐसे प्रजातंत्र के विद्वान समर्थकों का कहना था कि सभी मनुष्यों के पास प्रकृति प्रदत्त अधिकार हैं जिन्हें राजा या राजकुमार नहीं छीन सकते हैं और इसी प्रकार के सिद्धान्तों से क्रान्ति का जन्म हुआ। क्रान्ति के बाद जब प्रजातंत्र लागू हुआ तो उच्च वर्ग वाले और राजघराने के सदस्य इतने सताए गए कि वे फ्रांस में रहने में भी असमर्थ हो गए और उन्हें दूसरे देशों में भाग जाना पड़ा। फ्रांस के लोग तब पूर्ण प्रजातंत्र का पहला प्रयोग कर रहे थे। देश में किसी को भी यह कहने का साहस नहीं था कि साधारण जनता को बुद्धि और शक्ति नहीं है। अगर कोई ऐसा कहता था तो वह क्रान्ति-विरोधी होने का दोषी करार दिया जाता था और उसका सिर तुरत उड़ा दिया जाता था। फलस्वरूप बलवाइयों के अत्याचार का प्रादुर्भाव हुआ। अराजकता फैल गई और सारा समाज डर से त्रस्त हो गया। किसी भी आदमी को सुबह से शाम तक बचे रहने का विश्वास नहीं था। यहाँ तक कि क्रान्तिकारी दल के नियमित सदस्यों से भी अगर असावधानी से कोई शब्द ऐसा निकल जाता था जो समूह के लिए घातक हो सकता था, तो उसे भी फांसी की सजा मिलती थी। इस पूर्ण प्रजातंत्र के प्रयोग में केवल बहुत से राजकुमार, लार्ड, उच्च वर्ग के लोग ही नहीं मारे गए बल्कि उस समय के कुछ ईमानदार क्रान्तिकारियों जैसे डेन्टन (Danton) को भी फांसी की सजा दी गई क्योंकि उनके कुछ शब्द जनता को पसन्द नहीं आए। बाद में जब फ्रांस की जनता

को यह अनुभव हुआ कि इस प्रकार की हालत बहुत ही उत्पीड़क है तब प्रजातंत्र के सच्चे समर्थकों में से बहुत लोग हतोत्साह और निराश हो गए और प्रजातंत्रात्मक शासन के विरुद्ध होकर नेपोलियन को सम्राट बनाने के समर्थक हो गए। प्रजातंत्र को अब बड़े रुकावट का सामना करना पड़ा। यह रुकावट निरंकुश शासन की ओर से नहीं था। प्रजातंत्रात्मक आन्दोलन तब तक काफ़ी शक्तिशाली हो चुका था जैसा कि मैं कहता आया हूँ कि संसार प्रजातंत्र के युग में आ पहुँचा है। और यह तर्कसंगत बात है कि प्रजातंत्र धीरे-धीरे निश्चित रूप से बढ़ेगा भी। प्रजातंत्र ने जब निरंकुश शासन को समाप्त कर दिया तब फिर क्यों प्रजातंत्र की प्रगति में इस प्रकार की रुकावट पड़ी? कैसे यह रुकावट पैदा हुई? एक कारण तो प्रजातंत्र के दकियानूसी समर्थकों की नीति थी जो जनता की सार्वभौमिकता के अधिकार को सीमित करने की बात करते थे और पूर्ण प्रजातंत्र की अपेक्षा राज के अधिकारों के केन्द्रीयकरण पर जोर देते थे। लेकिन यह समुदाय शक्तिशाली नहीं था और इसने प्रजातंत्र की प्रगति को उतनी भयंकर बाधा नहीं पहुँचाई। वास्तविक बाधा निरंकुश प्रजातन्त्र में विश्वास करने वालों की ओर से हुई। फ्रांस राजक्रान्ति के समय जब जनता ने पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया तब उसने अपने नेताओं की परवाह नहीं की और बुद्धिमान नेताओं में से बहुतों को मौत के घाट उतार दिया। प्रजातन्त्र के उग्र अनुयायियों को साफ़-साफ़ कोई ज्ञान नहीं था और वे आसानी से दूसरों के हाथ खिलौना हो गए। उनमें 'अच्छी आँख और कान' नहीं रहने के कारण देश की जनता किसी मामले के सम्बन्ध में, जो आ उपस्थित होता था यह स्थिर करने में असमर्थ रही कि कौन सही है और कौन गलत है। कोई उन्हें उत्तेजित कर देता था और वे अन्धे की तरह उसका अनुसरण करने लगते थे। इस प्रकार की हालत अत्यन्त ही भयानक थी। इसलिए थोड़े समय के बाद जब जनता ने इस बात को महसूस किया तो वह पुनः प्रजातन्त्र के समर्थन करने का साहस न कर सकी। प्रजातन्त्र के विरुद्ध हुई इस प्रतिक्रिया ने प्रजातन्त्र की प्रगति में बहुत बाधा पहुँचाई। यह बाधा उन्हींकी ओर से दी जो जनता के अधिकार के हिमायती थे।

फ्रांस की राजक्रान्ति के समय से यूरोप के छोटे-छोटे देशों जैसे डेनमार्क, हालैण्ड, स्पेन और पुर्तगाल में अज्ञात रूप से प्रजातन्त्रात्मक आन्दोलन का विकास हुआ। यूरोप के प्रजातन्त्रात्क आन्दोलन को बहुत रुकावटें और निरंकुश सत्ता की ओर से विरोध मिला लेकिन वह मिटाया नहीं जा सकता।

जब प्रजातन्त्र के समर्थकों द्वारा भी रुकावट डाली गई तब भी आन्दोलन बन्द नहीं हुआ बल्कि वह अपनी स्वाभाविक प्रगति से बढ़ता ही रहा। ऐसा क्यों हुआ ? किसी बड़ी धारा या किसी बड़े विचार को स्वाभाविक दिशा की ओर बढ़ने से कोई भी नहीं रोक सकता है। इसी सिद्धान्त के अनुसार बहुत से निरंकुश राज समय का अनुसरण कर रहे हैं और हवा के रुख के मुताबिक पाल तान रहे हैं। उदाहरण के लिए देखिए :—इंगलैण्ड वालों ने एक बार क्रान्ति की और अपने राजा तक को मार डाला। लेकिन दस वर्ष बाद पुनः वहाँ राजतन्त्र कायम हो गया। ब्रिटेश के उच्च वर्ग वाले बड़े अवसरवादी रहे हैं। उन्होंने देखा कि प्रजातन्त्र के वेग को रोकना उनके काबू के बाहर की बात है इसलिए उन्होंने इसका विरोध नहीं किया बल्कि प्रजातन्त्र के साथ समझौता कर लिया। आधुनिक प्रजातन्त्र का प्रारम्भ शुरू-शुरू में इंगलैण्ड में ही हुआ था। इंगलैण्ड में राजतन्त्र के पुनः कायम होने पर प्रजातन्त्र प्रणाली हटा दी गई और वहाँ का शासन उच्च वर्ग वालों द्वारा नियंत्रित होने लगा। सरकारी कामों में केवल उच्च वर्ग भाग ले सकते थे। दूसरे वर्ग को केवल चुपचाप रहना पड़ता था। सन् १८३२ ई० के बाद साधारण जनता को वोट देने का अधिकार मिला और यूरोपीय लड़ाई के बाद स्त्रियों को भी वोट देने का अधिकार प्राप्त हो गया। जैसे-जैसे प्रजातन्त्र प्रगति करता गया इंगलैण्ड ने अपने उपनिवेशों को धीरे-धीरे रियायत देने की नीति अपनाई। आयरलैंड को देखिए जो ग्रेट ब्रिटेन के तीन द्वीपों में से एक है। पहले आयरलैंड को दबाने के लिए इंगलैण्ड ने सैनिक शक्ति का प्रयोग किया। लेकिन जब उसने वहाँ प्रजातन्त्र के लिए होने वाले आन्दोलन को बढ़ते देखा तो उसने सैनिक शक्ति के प्रयोग की नीति छोड़ दी और वह आयरलैंड के सामने झुक गया तथा अन्त में उसे स्वाधीनता दे दी। ब्रिटिश सरकार ने ऐसा काम केवल अपने घर के अन्दर ही नहीं बल्कि बाहर भी किया है। वह मिस्र के सामने भी झुकी है। यूरोपीय युद्ध (१६१४-१८) के समय मिस्र ने ग्रेट ब्रिटेन की बड़ी मदद की और मिस्र के लोगों को लड़ाई में भाग लेने को उत्साहित करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने उन्हें युद्ध समाप्ति के बाद बहुत से अधिकार और अन्त में स्वाधीनता देने का आश्वासन दिया था। लड़ाई के बाद ग्रेट ब्रिटेन अपनी बातों से मुकर गया और उसने मिस्र को जितने भी अधिकार देने की प्रतिज्ञा की थी उनमें से एक भी नहीं दिया। मिस्र ने प्रतिज्ञा-पूर्ति करने और स्वाधीनता देने की मांग की। तब बड़ा ही भयंकर आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। ग्रेट ब्रिटेन को झुकना पड़ा और मिस्र ने स्वाधीनता प्राप्त

कर ली। भारतवर्ष के लोग वोट देने के अधिकार के विस्तार की मांग कर रहे हैं और जितनी भी बातें मांगी जा रही हैं ग्रेट ब्रिटेन देने की प्रतिज्ञा करता जा रहा है। इंगलैण्ड में एक मजदूर दल है। जिसे वहाँ के मंत्रि-मंडल में प्रतिनिधित्व प्राप्त है। यह इस बात का प्रमाण है कि उच्च वर्ग वाले रियायत दे रहे हैं और प्रजातन्त्र आगे बढ़ रहा है। ब्रिटेन के उच्च वर्ग वालों ने प्रजातंत्र की महान् शक्ति का अनुभव कर लिया है इसलिए उन्होंने विरोध करने की अपेक्षा समय की गति का अनुसरण किया है। जिसके फलस्वरूप वे अपनी प्राचीन शासन-प्रणाली को बनाए हुए हैं और राज को किसी प्रकार के भयंकर खतरे का सामना नहीं करना पड़ता है।

अमेरिका और फ्रांस की क्रान्तियों के बाद से ही प्रजातन्त्र का संदेश निश्चित रूप से संसार भर में फैल रहा है। प्रजातन्त्र का सबसे नया सिद्धान्त जर्मनी से निकला है। जर्मन मस्तिष्क प्रजातन्त्र के विचारों से सदा पुष्ट रहा है। जर्मनी में मजदूर-संघ तो अनगिणत हैं और अभी भी संसार का सबसे बड़ा मजदूर दल जर्मनी में है। जर्मनी में प्रजातन्त्र-दर्शन का विकास बहुत पहले ही हुआ था लेकिन यूरोपीय युद्ध के समय तक उससे जर्मनी को उतना लाभ नहीं हुआ था जितना फ्रांस या ग्रेट ब्रिटेन को। क्योंकि सरकार ने प्रजातंत्र प्रति जो रुख अख्तियार किया था वह ब्रिटिश सरकार के रुख से भिन्न था; इसलिए फल भी भिन्न ही हुआ। जर्मन सरकार ने कौन-सा रुख अख्तियार किया था? किसने जर्मनी में प्रजातन्त्र के विकास में बाधा दी? बहुत से विद्यार्थी कहते हैं कि यह रुकावट बिसमार्क (Bismarck) से मिली जो जर्मनी का विख्यात और बहुत ही मेधावी राजनीतिज्ञ था और जो आज से तीस या चालीस वर्ष पहले संसार की सभी प्रधान नीतियों को संचालित करने की योजना बना रहा था। संसार के राजनीतिज्ञ उसके प्रभाव से अछूते नहीं रह सके। इसलिए उसके समय का जर्मनी संसार का बड़ा ही शक्तिशाली राष्ट्र था। जर्मनी की शक्ति पूर्णरूप से बिसमार्क द्वारा कायम की गई थी शासन की बागडोर उसके हाथों में जाने के पहले जर्मनी में बीस छोटे-छोटे राज थे जिनमें एक ही नस्ल के लोग रहते थे। लेकिन सबका शासन अलग-अलग था अमेरिका के मूल तेरहों उपनिवेशों से भी वे अधिक असंगठित थे। नेपोलियन की दासता में लोगों ने भयंकर मुसीबतें उठाई थीं। उसी समय बिसमार्क आगे आया और उसने अपनी प्रतिभा और योग्यता के साथ राजनीतिक शक्ति का प्रयोग कर एक जाति के बीस राजों को एक में मिलाकर एक महान् संघटन कायम किया और जर्मनी को धनवान तथा शक्तिशाली बनाने के पथ पर अग्रसर किया।

दस वर्ष पहले जर्मनी संसार का सबसे शक्तिशाली राष्ट्र था और संयुक्त राष्ट्र सबसे अधिक धनी था। चूँकि जर्मनी और संयुक्त राष्ट्र दोनों में संघ-शासन है इसलिए बहुत से लोग सोचते हैं कि चीन को धनी और शक्तिशाली होने के लिए उनके पथ का अनुसरण करना चाहिए। वे यह नहीं सोचते कि तीस या चालीस वर्ष पहले जर्मनी ने केवल प्रशा (Prussia) से शक्ति-संचय करना प्रारम्भ किया था। जब से बिसमार्क ने राजनीतिक नियंत्रण अपने हाथों में लिया उसने प्रशा को आधार बनाया, सेना का संगठन किया, युद्ध की तैयारी की, शासन-प्रणाली में सुधार किया और बीस या अधिक राजों को संगठित कर आधुनिक जर्मनी का निर्माण किया। जब बिसमार्क संघटन बना रहा था तो फ्रांस और अस्ट्रिया ने अपनी सारी ताक़त लगाकर उसका विरोध किया। अस्ट्रिया द्वारा जर्मनी के संघ-शासन के विरोध करने का कारण यों है—यद्यपि अस्ट्रिया और जर्मन एक ही ट्य टेनिक (Teutonic race) नस्ल के हैं लेकिन अस्ट्रिया का सम्राट भी यूरोप में अपना एकछत्र शासन कायम करने की कोशिश कर रहा था। इसलिए वह नहीं चाहता था कि जर्मनी संगठित होकर अस्ट्रिया से अधिक शक्तिशाली बने। लेकिन बिसमार्क से बढ़कर कौन चतुर था! उसने शक्ति प्राप्त करने की एक योजना बनाई और सन् १८६६ ई० में वह विद्युत गति से अस्ट्रिया पर चढ़ दौड़ा। अस्ट्रिया तुरन्त हार गया। विजय के बाद जर्मनी अगर चाहता तो अस्ट्रिया का नाम ही नक्शे से मिटा सकता था लेकिन बिसमार्क ने सोचा कि यद्यपि अस्ट्रिया की सरकार ने जर्मनी का विरोध किया था फिर भी अस्ट्रिया और जर्मनी के लोग एक ही रक्त के हैं और इसलिए अस्ट्रिया वाले भविष्य में जर्मनी के लिए अधिक दुःखदायी नहीं होंगे। बिसमार्क बड़ा ही दूरदर्शी था। वह अच्छी तरह जानता था कि भविष्य में जर्मनी के लिए सबसे दुःखदायी राष्ट्र इंगलैण्ड और फ्रांस होंगे। इसलिए अस्ट्रिया पर विजय प्राप्त करने के तुरत बाद ही बिसमार्क ने अस्ट्रिया को बहुत ही उदार शर्तों पर सन्धि करने को कहा और अस्ट्रिया के दिल में यद्यपि हार का घाव ताजा ही था फिर भी उदार शर्तों को देख वह बहुत ही प्रसन्न हुआ। इसके छः वर्षों बाद ही सन् १८७० ई० में जर्मनी ने फ्रांस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की। बिसमार्क ने नेपोलियन तीसरे को पराजित कर पेरिस दखल कर लिया। जब संधि हुई तो फ्रांस को अलसाक लोराइन (Alsace-Lorraine) जर्मनी के सुपुर्द कर देना पड़ा। इन दो लड़ाइयों के फलस्वरूप जर्मनी के बीस या कुछ और अधिक छोटे-छोटे राज एकसूत्र में मजबूती के साथ संघठित हो गए

जानता था कि जर्मन जनता काफ़ी सचेत है और जर्मनी का मजदूर-संगठन काफ़ी दृढ़ हो गया है। इसलिए यदि वह राजनीतिक शक्ति द्वारा साम्यवाद को मिटाने की कोशिश करता तो उसका सारा प्रयत्न व्यर्थ जाता। बिसमार्क तो केन्द्रीय सरकार द्वारा राज के पूर्ण नियंत्रण करने के पक्ष में पहले से ही था। उसने साम्यवादियों के प्रति कौन सा रुख अख्तियार किया? साम्यवादी दल सामाजिक सुधार और आर्थिक क्रान्ति का प्रचार करता था। बिसमार्क जानता था कि साम्यवादी लोग राजनीतिक शक्ति द्वारा नहीं दबाए जा सकते हैं इसलिए उसने मार्क्सवादी साम्यवाद का प्रतिरोधक स्टेट-साम्यवाद का कार्यक्रम लोगों के सामने रखा। उदाहरण के लिए देखिए :—रेलवे राष्ट्र के यातायात के लिए अत्यन्त आवश्यक है और वह अपने आपमें किसी भी राष्ट्र के प्रधान उद्योगों में से एक है तथा दूसरे उद्योग-धन्धों को बढ़ाने के लिए इसका होना आवश्यक है। थिएन छिन्-पुक्वो रेल लाइन बनने के पहले चली, षान्तुङ् और उत्तरी क्याङ् सु चीन के बहुत ही निर्धन प्रान्त थे। रेल की लाइन बनने के बाद रेल-सड़क के दोनों बगल के भू-भाग बड़े उपजाऊ हो गए। पेकिङ्-हान्क्वो रेलवे निर्माण के पहले चली, हु पे और हनान् उजाड़ भू-भाग थे। लेकिन जब से रेल द्वारा माल ढोने की सुविधा हुई है तब से जिन-जिन प्रदेशों से होकर रेल गई है वे बहुत ही उन्नतिशील हो गए हैं। जिस समय जर्मनी के शासन-प्रबन्ध की बागडोर बिसमार्क के हाथ में थी उस समय ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस के अधिकांश रेलवे वहाँ के लोगों की व्यक्तिगत सम्पत्ति थी। चूँकि प्रधान-प्रधान उद्योग-धन्धे धनी लोगों के हाथों में थे इसलिए राष्ट्र के सभी उद्योग-धन्धों पर धनी वर्ग का एकाधिकार हो गया गया था और धन के असमान वितरण से बहुत सी बुराइयाँ पैदा हो रही थीं। बिसमार्क जर्मनी में इस प्रकार की हालत नहीं होने देना चाहता था, इसलिए उसने स्टेट-साम्यवाद लागू किया। उसने देश के सभी रेलों पर राष्ट्र का अधिकार और नियंत्रण कायम किया और सभी आवश्यक उद्योग-धन्धों को राष्ट्र के प्रबन्ध में रखा। उसने मजदूरों के काम के घण्टों पर भी विचार किया और बूढ़े मजदूरों के लिए पेन्शन की और आकस्मिक दुर्घटना के शिकार होने वाले मजदूरों के लिए इंश्योरेंस का प्रबन्ध किया। साम्यवादी दल के सुधार-कार्यक्रम में भी इन सब बातों का ही उल्लेख था। दूरदर्शी बिसमार्क ने पहले ही इन कामों को हाथ में ले लिया और राज की शक्ति को उन कामों के पूरा करने में लगाया। साथ-साथ उसने राज द्वारा नियंत्रित रेल, बैंक और दूसरे उद्योग-धन्धों से होने वाले मुनाफे को

मजदूरों की भलाई में लगाया जिससे सभी मजदूर बड़े संतुष्ट हो गए। इसके पहले प्रति वर्ष कई लाख जर्मन मजदूर दूसरे देशों में मजदूरी करने जाते थे लेकिन जब बिसमार्क ने अपनी आर्थिक नीति लागू की तो केवल जर्मन मजदूरों ने बाहर जाना ही नहीं बंद कर दिया बल्कि दूसरे देशों से मजदूर जर्मनी में काम करने के लिए आने लगे। बिसमार्क ने आने वाले साम्यवाद के खतरे को पहले ही अनुभव कर उसके लिए यथोचित उपाय निकाल लिया। अप्रत्यक्ष तरीकों से बिसमार्क ने उन बातों को ही मिटा दिया जिनके लिए जनता लड़ रही थी। जब जनता के सामने संघर्ष करने के लिए कोई बात नहीं बची तो स्वभावतः ही क्रान्ति नहीं हुई। यही वह कलापूर्ण तरीका था जिनसे बिसमार्क ने प्रजातंत्र का विरोध किया।

प्रजातंत्र की प्रगति के सम्पूर्ण इतिहास पर दृष्टिपात करने के बाद हम देखते हैं कि प्रजातंत्र को पहली बाधा अमरीकी क्रान्ति के बाद मिली जब कि प्रजातंत्र के समर्थक दो दलों में विभक्त हो गए। जेफ़रसन का दल पूर्ण प्रजातंत्र की वकालत करता था और हेमिल्टन का दल सरकार के पास शक्ति के केन्द्रीयकरण पर जोर देता था और अन्त में केन्द्रीयकरण की नीति की ही विजय हुई। दूसरा अवरोध फ्रांस की राजक्रान्ति के समय मिला जब कि जनता ने पूर्ण प्रजातंत्र तो प्राप्त किया लेकिन उसका दुरुपयोग कर उसे बलवाई-शासन के रूप में परिणत कर दिया। तीसरा अवरोध तब मिला जब बिसमार्क ने अपनी कूटनीति से जनता की शक्ति नहीं बढ़ने दी। पश्चिम में प्रजातंत्रात्मक विचार-धारा इन सब अवस्थाओं से ही गुजरी है और उसे इन अवरोधों का सामना करना पड़ा है लेकिन फिर भी यह अपनी स्वाभाविक गति से आगे ही बढ़ती गई है, जैसी आशा किसी को नहीं थी। कोई मानवीय शक्ति न तो इसे समाप्त कर सकने में और न अपनी इच्छानुसार इसे अग्रसर करने में ही समर्थ हो सकी है। आज प्रजातंत्र संसार की एक बड़ी समस्या हो उठी है और संसार के सभी विद्वान चाहे वे दकियानूसी हों या प्रगतिशील, अनुभव करते हैं कि प्रजातंत्रात्मक भावना दबाई नहीं जा सकती है। लेकिन जैसे-जैसे प्रजातंत्र का विकास होता जायगा निश्चय ही इसका भी स्वतंत्रता के समान दुरुपयोग होगा।

सारांश यह है कि यूरोप और अमेरिका की स्वतंत्रता और समानता के युद्ध से प्रजातंत्र की उत्पत्ति हुई और जब प्रजातंत्र कायम हुआ तो उसका बड़ा ही दुरुपयोग किया गया। प्रजातंत्र की प्रगति के पहले पश्चिमी राष्ट्रों ने अपने निरंकुश शासन द्वारा इसे दबाने और नष्ट-भ्रष्ट करने की कोशिश

की। जब निरंकुश शासन समाप्त हो गया तो प्रजातंत्र के समर्थक ही प्रजातंत्र के बाधक हुए। तब प्रजातंत्र कायम हुआ तो इससे बहुत-सी बुराइयाँ पैदा हुईं और इस प्रकार और भी बड़ी बाधाएं उपस्थित हुईं। अन्त में बिसमार्क ने देखा कि जनता की इच्छा को नहीं दबाया जा सकता है इसलिए उसने जनता की शक्ति के स्थान पर स्टेट की शक्ति को रखा और स्टेट साम्यवाद लागू किया। इस नीति ने भी प्रजातंत्र की प्रगति में बाधा पहुँचाई। यूरोपीय युद्ध के बाद जर्मनी और रूस के निरंकुश शासन समाप्त हो गए और अब बहुत से देशों की स्त्रियों ने भी वोट देने का अधिकार प्राप्त कर लिया है। इसलिए पहले की अपेक्षा प्रजातंत्र की समस्या और बड़ी हो गई है और इसका हल आसान नहीं है।

प्रजातंत्र के प्रयोग को अगर हम प्रारम्भ से ही देखें तो पता चलता है कि क्रान्ति के बाद अमरीकी जनता ने सबसे पहले वोट देने का अधिकार प्राप्त किया है। उस समय पश्चिम के लोगों ने सोचा कि प्रजातंत्र का मतलब केवल वोट का अधिकार प्राप्त करना है और यही सब कुछ है। सामाजिक स्थिति, धन, बुद्धि या योग्यता आदि का खयाल किए बिना अगर सब को वोट देने का अधिकार मिलता है तो प्रजातंत्र का लक्ष्य पूर्ण हो जाता है। लेकिन यूरोपीय युद्ध के बाद के इन तीन या चार वर्षों के बीच क्या हो रहा है? बहुत अवरोध के होते हुए भी प्रजातंत्र आगे ही बढ़ रहा है और यह रोका नहीं जा सकता है। हाल में स्विटज़रलैंड वालों को विजय मिली है। वोट देने के अधिकार के अलावा उन्होंने कानून बनवाने या बने कानून में सुधार करने या उसे रद्द करने के अधिकार प्राप्त किए हैं। अगर जनता को अपने अधिकारियों के निर्वाचन करने का अधिकार है तो उन्हें कानून बनाने और बने कानून में सुधार करने या उसे रद्द करने का भी अधिकार होना चाहिए। ये दोनों अधिकार कानून-क्षेत्र से सम्बन्ध रखते हैं। अगर राष्ट्र के अधिकांश लोग समझते हैं कि अमुक ढङ्ग का कानून उनके लिए लाभदायक होगा तो वे उस ढङ्ग का कानून बनाने का प्रस्ताव कर सकते हैं—यही कानून बनाने का अधिकार (Right of Initiative) है। अगर वे समझते हैं कि राष्ट्र का अमुक कानून उनके लिए अहितकर है तो वे उसमें सुधार कर सकते हैं या उसे एकदम से रद्द कर सकते हैं—यही कानून में सुधार करने या उसे रद्द करने का अधिकार (Right of Referendum) है। स्विस जनता को और दूसरे राष्ट्रों को जनता की अपेक्षा दो और लोकप्रिय अधिकार प्राप्त हैं। सब मिलाकर उन्हें तीन अधिकार प्राप्त हैं। संयुक्त

राष्ट्र अमेरिका के उत्तरी-पश्चिमी भाग के कुछ राजों ने जो हाल में ही बसे हैं, कुछ ही समय पहले स्विस जनता को जितने अधिकार प्राप्त हैं उनसे भी एक अधिक अधिकार प्राप्त किया है; वह है अपने चुने हुए अफ़सरों के प्रत्यावर्तन करने का अधिकार (Right of Recall)। यद्यपि यह अधिकार सम्पूर्ण संयुक्त राष्ट्र की जनता को नहीं प्राप्त है लेकिन कुछ राजों की जनता ने इसे व्यवहार में लाया है। इस प्रकार बहुत से अमेरिका के लोगों को चार लोकप्रिय अधिकार प्राप्त हैं—वोट देने का अधिकार, प्रत्यावर्तन का अधिकार, कानून बनाने का अधिकार और बने कानून में सुधार करने या उसे रद्द करने का अधिकार। संयुक्त राष्ट्र के उत्तर-पश्चिम राजों में बड़ी सफलता के साथ इन अधिकारों का प्रयोग हुआ है और किसी दिन ये सम्पूर्ण संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में और सम्भवतः संसार भर में लागू हो सकते हैं। भविष्य में अगर कोई राष्ट्र पूर्ण प्रजातंत्र स्थापित करना चाहता है तो उसे इन अमरीकी राजों का, जिन्होंने अपनी जनता को चार अधिकार दिए हैं, उदाहरण अनुकरण करना चाहिए। क्या इन चारों अधिकारों के मिल जाने पर प्रजातंत्र की समस्या हल हो जाती है? जनता को चार अधिकार प्राप्त हैं फिर भी प्रजातंत्र की समस्या पूर्णरूप से नहीं हल हो सकी है, यह देख कर कुछ विद्वान कहते हैं कि हल होने में अब केवल समय की देर है। वे सोचते हैं कि प्रत्यक्ष लोकप्रिय शासन की भावना अभी हाल से ही विकसित हुई है। प्राचीन दैवी अधिकार कई हज़ार वर्षों तक रहा और प्राचीन निरंकुश शासन भी हज़ारों वर्षों तक कायम रहा। ग्रेट ब्रिटेन, जापान और इटली के निरंकुश शासन को कठिन समस्याओं का मुकाबला करना पड़ रहा है और वे निश्चय ही बहुत दिनों तक नहीं टिकेंगे। यह प्रत्यक्ष प्रजातंत्र बहुत नई चीज़ है। इसे लागू हुए तो कुछ ही दशाब्दी बीते हैं। इसलिए आश्चर्य की बात नहीं कि यह अभी तक बहुत बड़ी अनिश्चित समस्या है।

उच्च दर्जे का प्रजातंत्र जिन राष्ट्रों में लागू है वहाँ की शासन व्यवस्था में जनता का कितना हाथ रहता है? उसे कितनी शक्ति प्राप्त है? गत शताब्दी की एक ही सफलता यह है कि लोगों को प्रतिनिधि चुनने और प्रतिनिधि चुने जाने का अधिकार मिला है। जनता द्वारा निर्वाचित हो जाने पर कोई भी नागरिक कांग्रेस या पार्लियामेंट में राज के कारबार के प्रबन्ध करने के लिए बैठ सकता है। राष्ट्र से संबंधित सभी मुख्य बातें कार्यरूप में परिणित होने के पहले पार्लियामेंट द्वारा स्वीकृति होनी चाहिए। बिना पार्लियामेंट की स्वीकृति के वे कार्यान्वित नहीं की जा सकती हैं। यह पार्लियामेंटरी

(प्रतिनिधि-मूलक) शासन कहलाता है । लेकिन क्या इस प्रकार की शासन व्यवस्था प्रजातंत्र को पूर्ण विकसित होने का अवसर देती है ? प्रतिनिधि-मूलक शासन-प्रणाली के लागू होने के पहले यूरोप और अमेरिका के लोग प्रजातंत्र के लिए लड़े । उनका सोचना था कि यह लोकप्रिय सर्वभौमिकता का सबसे उच्च आदर्श होगा जैसे कि चीन के क्रान्तकारी दल वाले सोचते हैं कि जापान या पश्चिमी राष्ट्रों के दर्जे तक पहुँचना ही चीन की सबसे बड़ी सफलता होगी । अगर आप विश्वास करते हैं कि जापान या पश्चिमी राष्ट्र की तरह हो जाना ही पूर्णता की सीमा है तो मेरे दूसरे वक्तव्य को सुनिए ।

यूरोप और अमेरिका के लोगों ने पहले सोचा था कि प्रतिनिधि-मूलक शासन-व्यवस्था प्राप्त करने के बाद वे पूर्ण संतुष्ट हो जाएँगे । हमने अपनी सन् १९११ ई० की क्रान्ति के बाद क्या प्रतिनिधिमूलक शासन-व्यवस्था नहीं कायम की थी ? जनता को उससे प्रजातंत्र का कौन-सा वास्तविक लाभ प्राप्त हुआ ? आप सभी जानते हैं कि हमारे सभी प्रतिनिधि 'सूअर' हो गए । अगर पैसा मिलता हो तो वे अपने को भी बेच देंगे, लूट के माल में हिस्सा लेंगे तथा और भी अधिक पाने की लोभ रखेंगे । सम्पूर्ण राष्ट्र द्वारा वे नीच समझे जाते हैं । कोई भी राष्ट्र जो अपने यहाँ प्रतिनिधि-मूलक शासन-व्यवस्था को लागू करता है, उससे होने वाली कुछ बुराइयों को नहीं रोक सकता पर चीन के प्रतिनिधि-मूलक शासन में तो असहनीय बुराइयाँ घुस गई हैं । अगर सब लोग प्रतिनिधि-मूलक शासन की ओर से लापरवाह रहते हैं और उसके सुधार का कोई उपाय नहीं निकालते हैं बल्कि राष्ट्र के कारबार को 'सूअर' प्रतिनिधियों के हाथों में छोड़ देते हैं और उन्हें अधिकार का दुरुपयोग करने देते हैं तो राष्ट्र का भविष्य अत्यन्त ही भयानक खतरे में है । इसलिए विदेशियों की आशा कि प्रतिनिधि-मूलक सरकार राष्ट्र की सुरक्षा और शांति की जिम्मेवारी लेगी, विश्वसनीय नहीं है । प्रजातंत्र को अपने जन्म के साथ ही बहुत-सी कठिनायों का मुकाबला करना पड़ा । जब कि वह लागू किया गया तो उसे बहुत अपमान उठाना पड़ा लेकिन फिर भी वह उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है । प्रजातंत्र का फल अब तक केवल प्रतिनिधि-मूलक शासन ही रहा है । जब यह प्राप्त हो जाता है तो राष्ट्र के लोग सोचते हैं कि हम सीमा पर पहुँच गए । हाल में रूस ने एक नए प्रकार की शासन-व्यवस्था कायम की है । वह प्रतिनिधि-मूलक नहीं बल्कि पूर्ण जन-शासन (an absolute government of the people) है । हमारे सामने इसके बहुत आंकड़े नहीं हैं जिनसे इस नयी प्रणाली का मूल्यांकन कर सकें । लेकिन

कोई भी देख सकता है कि पूर्ण जन-शासन में प्रतिनिधिमूलक शासन से कई एक लाभ हैं।

लेकिन तीन सिद्धान्तों में जिस प्रजातंत्र की वकालत की जाती है और जिसके ऊपर क्वोमिताङ् दल चीन का निर्माण करना चाहता है, वह पश्चिमी प्रजातंत्र से भिन्न है। जब हम पश्चिम के इतिहास को अपने अध्ययन की सामग्री बनाते हैं तो हम पूर्ण रूप से पश्चिम की नकल नहीं करते और न वहाँ के रास्ते का अनुकरण ही करते हैं। हम जनता की सार्वभौमिकता का अपना सिद्धान्त लागू करेंगे जो अमेरिका और यूरोप से आगे रहेगा। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए हम प्रजातंत्र का अध्ययन तब तक करें जब तक हम पूर्णरूप से उसे साफ़-साफ़ समझ नहीं लें। आज के मेरे व्याख्यान का प्रधान लक्ष्य यह रहा है कि हम आपको यह दिखाएँ कि पश्चिम के उन्नतिशील राष्ट्रों ने जिन्होंने गत सौ वर्षों में प्रजातंत्र का प्रयोग किया है, केवल किसी न किसी प्रकार की प्रतिनिधि-मूलक शासन-व्यवस्था प्राप्त की है। चीन पर लागू की गई इस व्यवस्था से बड़ी बुराइयाँ हुई हैं। इसलिए प्रजातंत्र हमारे लिए अब तक एक पेचीदी समस्या ही रहा है। मैं जनता की सार्वभौमिकता पर और दो व्याख्यान दूँगा और चीन की कठिनाइयों को दूर करने का मौलिक रास्ता निकालूँगा। अगर हम अपनी कठिनाइयों को हल नहीं कर सकते तो चीन पश्चिमी राष्ट्रों से पीछे ही रहेगा। अगर हमने कठिनाइयों का हल ढूँढ़ लिया तो चीन अमेरिका और यूरोप से भी आगे बढ़ जायगा।

अप्रैल १३, सन् १९२४ ई०

पाँचवाँ व्याख्यान

चीनी जनता को राजनीतिक प्रजातंत्र (Political Democracy) सम्बन्धी विचार पश्चिम से मिले हैं इसलिए अपनी क्रान्ति को आगे बढ़ाने के लिए और अपनी व्यवस्था में सुधार करने के लिए हम पश्चिम के तरीकों की नकल करते हैं। क्यों? चूँकि हम देखते हैं कि पश्चिमी सभ्यता 'मुर्गे की तरह बड़े वेग से एक दिन में हजार मील की रफ़्तार से जा रही है' और हर बात में चीनी सभ्यता से बढ़ी हुई है। लेकिन पश्चिम केवल सैनिक अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण करने की दिशा में ही प्रतिदिन उन्नति कर रहा है और चीन से बहुत आगे है। हज़ारों वर्षों से चीन का युद्धास्त्र तीर, धनुष, तलवार और बर्छे रहे हैं। बीस या तीस वर्ष पहले तक भी ये अस्त्र व्यवहार में लाए जाते रहे हैं। सन् १६०० ई० में बॉक्सर विद्रोही, (Boxers) जिनका मूल उद्देश्य चीन से सब प्रकार के पश्चिमी प्रभावों को हटा देना था, आठ राष्ट्रों की सम्मलित सेना से केवल बड़ी-बड़ी तलवार लेकर ही लड़े थे। मित्रदल के मशीनगन और तोप के विरुद्ध बड़ी-बड़ी तलवारें! बॉक्सर विद्रोह यूरोपीय और अमरीकी नवसंस्कृति के विरुद्ध चीन की जनता की प्रतिक्रिया थी; उनकी भौतिक प्रगति का एक तरह से विरोध था। बॉक्सर विद्रोही यह विश्वास नहीं करते थे कि पश्चिमी सभ्यता चीनी सभ्यता से बढ़कर है और चीनी सभ्यता की महानता प्रदर्शित करने के लिए वे इतना आगे बढ़ गए कि उन्होंने पश्चिम के राइफल और तोप जैसे भयंकर हथियारों को चीनी तवलार के सामने नगण्य समझा। बॉक्सर विद्रोह इसी प्रकार से हुआ।

बॉक्सर विद्रोहियों का पराक्रम जब वे पहले पहल पश्चिम के लोगों के विरुद्ध उठ खड़े हुए, एकदम अप्रतिरोध्य था। याङ्-चुन् की लड़ाई को लीजिए। जब ब्रिटिश जल-सेनापति सेमौर (Seymour) तीन हजार सैनिकों के साथ विदेशी राजदूतों को छुड़ाने के लिए थिएन चिन् से पेकिङ् जा रहा था तो वह याङ्-चुन् में विद्रोहियों द्वारा घेर लिया गया। विद्रोहियों के पास एक भी विदेशी राइफल या तोप नहीं थी। वे केवल तलवारों से लैस थे, जब कि मित्र-सेना के पास बड़ी-बड़ी राइफल और तोपें थीं। बॉक्सर विद्रोहियों के लिए यह युद्ध हाथ से लड़ी जाने वाली लड़ाई के समान था।

जब सेमौर ने अपने को घिरा हुआ पाया तो उसने विद्रोहियों का सफाया कर देने के लिए मशीनगन चलाने का हुक्म दिया। लेकिन यद्यपि मशीनगन से बहुत बड़ी संख्या में विद्रोही मारे गए और उनके खून और मांस की बोटियों से चारों दिशाएँ पट गईं फिर भी वे न तो डरे और न पीछे ही हटे। पहली पंक्ति के सैनिकों के मरते ही उनका स्थान दूसरी पंक्ति के सैनिक ले लेते थे। उन्होंने पक्का विचार कर लिया था कि चाहे मर जाएँगे पर शत्रु को ज़रूर घेर लेंगे। जिसके फलस्वरूप सेमौर के तीन हज़ार सैनिक याङ्चुन के सीधे रास्ते से पेकिङ् जाने का साहस नहीं कर सके और थिएनचिन् वापस आकर समय की बाट जोहने लगे। जब बहुत बड़ी संख्या में नई फौज आई तब वे पेकिङ् पहुँच सके और विदेशी राजदूतों पर जो विद्रोहियों द्वारा घेरा डाला गया था, उसे तोड़ सके। सेमौर ने याङ्चुन् की लड़ाई पर अपनी राय प्रकट की है कि अगर बॉक्सर विद्रोहियों के पास उनकी असीम वीरता के साथ-साथ विदेशी राइफलें और तोपें होतीं तो वे निश्चय ही मित्र-सेनाओं का सफाया कर देते। लेकिन विद्रोहियों को शुरू से अन्त तक विदेशी अस्त्र-शस्त्रों पर विश्वास नहीं था और उन्होंने केवल अपनी तलवारों और शरीर को ही मित्र राष्ट्रों से लड़ने में लगाया। यद्यपि कई हज़ार विद्रोही मारे गए और लाशों के ऊपर लाशें पट रही थीं फिर भी पिछली पंक्तियों के सैनिक अगली पंक्ति को भरते ही जाते थे। उनका साहस दुर्दमनीय था, जिस कारण हर आदमी उनसे डरते थे और उनका आदर करते थे। बॉक्सर विद्रोहियों के साथ होने वाले घमासान युद्ध के बाद ही विदेशियों को अनुभव हुआ कि चीनियों में अभी भी राष्ट्रीय भावना है जो मिटाई नहीं जा सकती है।

लेकिन सन् १९०० ई० के बॉक्सर विद्रोही ही चीन के अन्तिम लोग थे जिन्हें विश्वास था कि उनका अपना आदर्श और अपनी शक्ति पश्चिम से आनेवाली नई सभ्यता का विरोध कर सकती है। बॉक्सर विद्रोहियों की पराजय के बाद चीन के लोगों ने देखा कि उनके प्राचीन तीर, धनुष, तलवार और बर्छे पश्चिमी राइफल और तोप की बराबरी नहीं कर सकते हैं। लोगों ने विश्वास कर लिया कि विदेश से आई हुई नई सभ्यता प्राचीन चीनी सभ्यता से कहीं बढ़कर है। सैनिक अस्त्र-शस्त्रों के खयाल से पश्चिम के नये और चीन के पुराने हथियारों में बड़ा ही अन्तर है। लेकिन हम दूसरी चीजों की ओर भी नज़र दौड़ाएँ। यातायात के साधनों में भी रेल और तार चीन के मोटियों द्वारा माल ढोने और हरकारों द्वारा डाक

ले जाने की प्रणाली से कहीं बढ़-चढ़कर हैं। मोटियों की अपेक्षा ट्रेनें स्वभावतः ही जल्दी से माल इधर-उधर ले जा सकती है। हरकारों द्वारा डाक पहुँचने की अपेक्षा तार से बहुत जल्दी और अच्छी तरह समाचार भेजा जा सकता है। दूसरी मशीनों को ही लीजिए जो हमारे प्रतिदिन की आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं और उन तरीकों को देखिए जिनका उपयोग खेती करने, उद्योग-धन्धे और व्यवसाय में किया जाता है। इस दिशा में पश्चिम चीन से कहीं अधिक बढ़ा-चढ़ा है।

इसलिए बॉक्सर विद्रोहियों की पराजय के बाद से चीन के विचारकों ने अनुभव किया है कि चीन को शक्तिशाली बनाने और पेकिङ्-संधिपत्र का बदला लेने के लिए चीन के लोगों को विदेश की हर चीज़ अपनानी चाहिए। उन्हें केवल भौतिक विज्ञान ही नहीं बल्कि विदेशों का राजनीतिक और समाज-विज्ञान भी सीखना चाहिए। इस प्रकार बॉक्सर-विद्रोह के बाद से चीन के लोगों ने अपनी शक्ति में विश्वास करना छोड़ दिया है और वे विदेशी राष्ट्रों के प्रति उच्च से उच्च सम्मान प्रकट करते हैं। इस नकल और विदेशी राष्ट्रों के प्रति सम्मान की भावना के फलस्वरूप चीन ने बहुत सी विदेशी बातें अपना ली हैं। जिन बातों पर विदेशी लोगों ने अब तक केवल अपना मत ही प्रकट किया और उन्हें व्यावहारिक रूप नहीं दिया है उन्हें भी चीन वालों ने व्यावहारिक रूप देने की कोशिश की है। तेरह वर्ष पहले अपनी क्रान्ति में भी हमने विदेशी क्रान्तियों की नकल की और प्रजातन्त्रात्मक शासन-व्यवस्था कायम की। हमने सबसे अच्छा नमूना लेना चाहा इसलिए हमने पश्चिम के सबसे उच्च राजनीतिक दर्शन और सबसे नए राजनीतिक सिद्धान्त को चीन में लागू किया। चीन के राजनीतिक विचारों में यह एक महान् परिवर्तन था। बॉक्सर विद्रोह के पहले चीन विदेशी व्यापार में लगा हुआ था और दूसरे राष्ट्रों की बहुत सी लाभदायक बातों से वाकिफ हो गया था। लेकिन साधारण जनता को यह विश्वास नहीं था कि पश्चिम वालों की भी वास्तव में कोई सभ्यता है। इसलिए विद्रोह के समय पश्चिमी ढंग पर चीन में बनाए गए रेल-तार आदि को भी उसने तोड़-ताड़ डाला। यहाँ तक कि विदेशी राइफलों और तोपों तक पर विश्वास नहीं किया गया और प्राचीन तीर-धनुष और तलवार ही काम में लाए गए। लेकिन जब चीन की पराजय हुई तब लोग एकाएक सचेत हुए और पश्चिम की चीजों पर विश्वास करने लगे। तब उस समय चीन ने हर बात में पश्चिम की नकल की। इससे हम देख सकते हैं कि चीन के पुराने लोग अत्यन्त ही

दकियानूसी प्रकृति के थे। उन्होंने विदेशी प्रभाव का विरोध किया और उन्हें पूर्णरूप से विश्वास था कि चीन दूसरे सभी राष्ट्रों से आगे बढ़ा हुआ है। पश्चिम से हार खाकर चीन अत्यन्त ही उदार हो गया; वह पूर्णरूप से विदेशी राष्ट्रों का भक्त हो गया। उसे विश्वास हो गया कि दूसरे सभी राष्ट्र चीन से अच्छे हैं और आधुनिक चीन को प्राचीन चीन से कुछ भी लेने की ज़रूरत नहीं है; हर चीज़ पश्चिमी ढाँचे पर ही होनी-चाहिए। अगर हम किसी विदेशी चीज़ के बारे में सुनते थे तो उसकी नकल करने को दौड़ पड़ते थे और उसे चीन में लागू करने की कोशिश करते थे। प्रजातंत्र को भी इसी बुराई का सामना करना पड़ा। सन् १६११ ई० की क्रान्ति के बाद सम्पूर्ण देश पागल हो उठा और बिना वास्तविक अर्थ समझे विदेशियों द्वारा बताए गए राजनीतिक प्रजातंत्र की स्थापना पर जोर देने लगा। अपने पिछले कुछ व्याख्यानों में मैंने ब्यौरेवार ढङ्ग से पश्चिमी राष्ट्रों द्वारा प्रजातंत्र के लिए किए गए संघर्षों के इतिहास को और विजय के बाद प्राप्त हुए फल को बताया है। इस प्रकार से अध्ययन करने के बाद हम देखते हैं कि प्रजातंत्रात्मक शासन पश्चिम में पूर्णरूप से नहीं लागू हुआ है और प्रजातंत्र को अपनी प्रगति के मार्ग में बहुत सी बाधाओं का सामना करना पड़ा था। अब चीन के लोग प्रजातंत्र को कायम करने की बात कह रहे हैं। अगर हम पश्चिम की नकल करते हैं तो हमें पश्चिमी तरीकों की भी नकल करनी होगी। लेकिन पश्चिम की राजनीति में प्रजातंत्र की समस्या का कोई मौलिक हल नहीं है। वह अब तक भी जटिल समस्या ही बना हुआ है। पश्चिम के लोग इसका हल निकालने में सबसे नई विद्या का प्रयोग कर रहे हैं। पर न तो अब तक उन्होंने प्रजातंत्र के सिद्धान्तों में कोई उल्लेख-योग्य आविष्कार किया है और न प्रजातंत्र की कठिनाइयों का कोई संतोषजनक हल ही निकाला है। इसलिए पश्चिम की प्रजातन्त्र-प्रणाली हमारा आदर्श या पथ-प्रदर्शक नहीं हो सकती है।

बॉक्सर-विद्रोह के बाद से चीन के लोगों ने हर एक क्षण में और हर एक बात में साधारणतः केवल विदेशी राष्ट्रों की नकल करने की बात ही सोची है। क्या हमें विदेशी चीज़ों की नकल करनी चाहिए? अगर हम सैनिक अस्त्र-शस्त्र की बात करें तो मशीनगन और धनुष-तलवार के बीच कोई तुलना नहीं हो सकती है। निश्चय ही विदेशी मशीनगन अधिक असर करने वाली और घातक है। दूसरी सभी विदेशी वस्तुएं भी हमारे यहाँ से अच्छी हैं। इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि भौतिक विज्ञान में भी पश्चिम चीन से बहुत आगे है। लेकिन शासन के बारे में क्या है?

राजनीतिक दर्शन और भौतिक विज्ञान इन दोनों में किसने पश्चिम में अधिक उन्नति की है? भौतिक विज्ञान की अपेक्षा शासन-विज्ञान बहुत पीछे पड़ा हुआ है।

सैनिक-विज्ञान को ही लीजिए: पश्चिम के युद्ध की कला में बराबर विकास हो रहा है और उसमें बराबर सुधार भी होता है। वह 'हर दिन नया और हर महीने भिन्न' है। इसलिए एक सौ वर्ष प्राचीन हाथ से लड़ने की कला का आज कोई अनुकरण नहीं करता है। यहाँ तक कि दस वर्ष पहले की सैनिक-कला भी आज पुरानी पड़ गई है। हर दशाब्दी में पश्चिमी अस्त्र-शस्त्रों और युद्ध करने की प्रणाली में परिवर्तन होते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो हर दसवें वर्ष सैनिक-विज्ञान में क्रांतिकारी परिवर्तन होते हैं। पश्चिम का सबसे बड़ा और सबसे अधिक खर्चीला युद्धास्त्र 'जंगी जहाज' है। प्रत्येक जंगी जहाज के बनाने में पाँच करोड़ से दस करोड़ डालर तक खर्च होता है। इससे कम खर्च में बना हुआ जंगी जहाज तो 'जंगी जहाज' ही नहीं कहलाता है। भौतिक चीज़ों में भी दूसरी चीज़ों की अपेक्षा युद्धास्त्रों में सबसे अधिक तेजी से प्रगति हुई है और युद्धास्त्रों में 'जंगी जहाज़' ने सबसे अधिक प्रगति की है। अधिक से अधिक दस वर्षों के अन्दर एक जंगी जहाज पुराना पड़ जाता है। यूरोपीय युद्ध के पहले के बने जंगी जहाज अब नौसेना से हटा दिए गए हैं। स्थल-युद्ध में काम आने वाले अस्त्र-शस्त्रों में भी बड़ा परिवर्त्तन हुआ है। हर दिन कुछ न कुछ नया सुधार और हर दश वर्ष बीतते-बीतते बड़ा परिवर्त्तन हो जाता है। यह एक व्यावहारिक क्रान्ति है और एक पुनर्नवीकरण है। हम जिस प्रकार की राइफ़ल इन दिनों व्यवहार में लाते हैं वह दूसरे देशों में छोड़ दी गई है। यूरोपीय युद्ध के समय जो बड़ी-बड़ी बन्दूकें काम लाई गई वे अब पुरानी पड़ गई हैं। लेकिन पश्चिम में केवल सैनिक सामग्रियों में ही तरक्की नहीं हो रही हैं। सब चीज़ों में लगातार सुधार हो रहे हैं और बराबर नए-नए आविष्कार भी हो रहे हैं। पश्चिम की भौतिक सभ्यता सचमुच में 'हर दिन नया और हर महीने आश्चर्यजनक' है। कोई भी चीज़ आज के समान कल नहीं दिखाई देती है।

लेकिन शासन-व्यवस्था के मामले में पश्चिमी देश चीन से कितने आगे बढ़े हैं? गत दो-तीन शताब्दियों के अन्दर यूरोप और अमेरिका बहुत-सी क्रान्तियों के बीच से गुजरे हैं और उनकी राजनीतिक प्रगति चीन की अपेक्षा बहुत अधिक तेजी से हुई है। फिर भी पश्चिम के राजनीतिक विचार भूतकाल से अधिक नहीं बढ़े हैं। उदाहरण के लिए देखिए:—

यूनान में दो हजार वर्ष पहले प्लेटो (Plato) नामक एक बड़ा राजनीतिक दार्शनिक (Political Philosopher) हो गया है। उसका 'रिपब्लिक' (Republic) नामक ग्रन्थ अभी भी विद्वानों द्वारा पढ़ा जाता है। उनका कहना है कि प्लेटो के ग्रंथ में वर्णित सिद्धान्त आज की राजनीतिक प्रणाली को बहुत कुछ सिखा सकता है। यह जंगी जहाज या सैनिक कवायद शास्त्र के ऐसा नहीं है जो दश वर्षों के बाद नकाबिल कहकर हटा दिया जाय। इससे हम देखते हैं कि पश्चिम का भौतिक विज्ञान एक दशाब्दी से दूसरी दशाब्दी तक जाते-जाते स्पष्ट तौर से अपना ढाँचा बदल देता है। यह विज्ञान बड़ी तेजी से आगे बढ़ रहा है। लेकिन राजनीतिक सिद्धान्तों के मामले में हम पाते हैं कि दो हज़ार वर्ष पहले लिखा गया प्लेटो का 'रिपब्लिक' नामक ग्रन्थ अभी भी पढ़ने योग्य है और आधुनिक युग के लिए बड़े काम का है। इस प्रकार पश्चिम का राजनीतिक दर्शन पश्चिम के भौतिक विज्ञान के साथ प्रगति में अपना कदम नहीं मिला सका है। दो हज़ार वर्षों से राजनीतिक विचारों में कोई मौलिक परिवर्त्तन नहीं हुआ है। इसलिए जिस प्रकार हम पश्चिम के भौतिक विज्ञान की नकल कर रहे हैं उसी प्रकार अगर हम पश्चिमी शासन-व्यवस्था की भी नकल करें तो बड़ी गलती करेंगे। पश्चिम की भौतिक सभ्यता प्रतिदिन बदल रही है और उसके साथ कदम रखना बड़ा ही कठिन है। लेकिन पश्चिम के राजनीतिक विचार भौतिक सभ्यता की अपेक्षा बहुत ही धीमी गति से बढ़े हैं। उदाहरण के लिए देखिए:—संयुक्त राष्ट्र अमेरिका प्रजातंत्र का प्रयोग डेढ़ सौ वर्षों से कर रहा है लेकिन आज के प्रजातंत्र और एक शताब्दी पहले के प्रजातंत्र में बहुत अधिक अन्तर नहीं है। फ्रांस का आधुनिक प्रजातंत्र राजक्रान्ति के समय के प्रजातंत्र इतना भी विकसित नहीं हुआ है जिसकी (राजक्रान्ति के समय के प्रजातंत्र की) धारणा इतनी विस्तृत थी कि वह लोगों को अव्यावहारिक मालूम हुई थी और लोगों द्वारा उसका विरोध किया गया। जिसके फलस्वरूप फ्रांस के प्रजातंत्र ने गत शताब्दी के अन्दर वास्तविक कोई लाभ नहीं उठाया है। अगर हम दूसरे राष्ट्रों का अनुकरण करना चाहते हैं तो हमें उनकी हालतों का सावधानी से विश्लेषण कर लेना चाहिए। पश्चिम के प्रजातंत्र में अधिक प्रगति नहीं होने का कारण यह है कि पश्चिमी राष्ट्रों ने प्रजातंत्र को कार्यान्वित करने की समस्याओं का मौलिक हल नहीं निकाला है।

पिछले व्याख्यानों में हमने देखा कि पश्चिम के लोगों ने प्रजातंत्र को कार्यान्वित करने का कोई ठीक-ठीक रास्ता नहीं पाया है और प्रजातंत्र की

सत्यता अब तक पूरी तरह से स्पष्ट नहीं हो सकी है। गत दो-तीन शताब्दियों में प्रजातंत्र की भावना घहराते हुए जल-प्रवाह के समान बढ़ी है। जिन समस्याओं के समझने का कोई उपाय लोग नहीं निकाल सके थे उनकी धारा के साथ जनता स्वभावतः ही बहती चली गई है। हाल में जो प्रजातंत्र में प्रगति हुई है वह विचारपूर्ण पांडित्य का फल नहीं है बल्कि प्राकृतिक प्रवृत्तियों के अनुसरण करने का फल है। इसी कारण, प्रजातंत्र को कार्यान्वित करने का कोई मौलिक उपाय पहले नहीं सोचा गया था। समस्या के ऊपर प्रारम्भ से अन्त तक विचार नहीं किया गया। इसलिए प्रजातंत्र के आधे रास्ते में ही पश्चिम की जनता को अनगिनत असफलताओं और कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। क्रान्ति के समय से चीन यूरोप और अमेरिका का पदानुसरण कर रहा है और वह राजनीतिक प्रजातंत्र को कार्यान्वित करना चाहता है। चूँकि पश्चिम में राजनीतिक प्रजातंत्र विकसित होकर प्रतिनिधि-मूलक शासन तक पहुँचा है इसलिए चीन में भी प्रतिनिधि-मूलक शासन ही होना चाहिए। लेकिन पश्चिम के प्रतिनिधि-मूलक शासन की अच्छी बातों को चीन ने नहीं सीखा है लेकिन बुरी बातों की नकल उसने दस गुना क्या सौ गुना अधिक की है। प्रतिनिधि-सभा (पार्लियामेंट) के सदस्य केवल 'सूअर', कूड़ा-कर्कट और भ्रष्ट हो गए हैं और ऐसे हो गए हैं जैसा कि संसार में पहले कहीं नहीं देखा गया है। प्रतिनिधि-मूलक शासन की ऐसी विचित्र हालत! चीन केवल पश्चिम के प्रजातंत्रात्मक शासन-व्यवस्था से अच्छी तरह शिक्षा लेने में ही असफल नहीं हुआ है बल्कि उससे वह भ्रष्ट भी हो गया है।

जो कुछ भी मैंने अब तक कहा है उससे आप निश्चय ही अनुभव करते हैं कि प्रजातंत्रात्मक शासन-व्यवस्था को कार्यान्वित करने के लिए कोई अच्छी मौलिक प्रणाली नहीं है। इसलिए हमें अपने यहाँ प्रजातंत्र को लागू करने में पूर्णरूप से नकल नहीं करनी चाहिए। तब हम कौन से रास्ते का अनुसरण करें? चीन में और भी बहुत से दकियानूसी और शक्तिशाली प्रतिक्रियावादी हैं जो प्रजातंत्र को मिटाकर निरंकुश शासन की स्थापना और राजतंत्र को पुनः कायम करना चाहते हैं और इसे ही चीन के उद्धार का मार्ग मानते हैं। संसार की गति को समझने वाले स्वभावतः यह जानते हैं कि यह तरीका गलत है और इसलिए हमें उसका विरोध करना चाहिए। अगर हम शासन-व्यवस्था के अच्छे मार्ग पर चलना चाहते हैं तो हम पहले शासन के सही अर्थ को समझें। आप सभी लोगों को शासन की व्याख्या

याद होगी जो मैंने प्रथम व्याख्यान[1] में की है। सम्पूर्ण जनता की कार्रवाइयों का नियंत्रण ही शासन है। हजारों वर्षों से चीन की सामाजिक भावनाएँ, आचार-विचार और अभ्यास पश्चिम के समाज से बहुत ही भिन्न रहे हैं। इसलिए चीनी समाज को नियंत्रित करने की प्रणाली पश्चिम देशों से भिन्न होगी। जिस प्रकार हम पश्चिम की मशीन की नकल करते हैं उसी प्रकार से हमें वहाँ की सभी चीज़ों की नकल नहीं करनी चाहिए। हम जब पश्चिम की किसी मशीन को व्यवहार में लाने की उसकी क्रिया सीख जाते हैं तो हम उस मशीन को किसी समय और किसी जगह व्यवहार में ला सकते हैं। उदाहरण के लिए बिजली की रोशनी को लीजिए। वह किसी भी ढंग के चीनी घर में लगाई और व्यवहार की जा सकती है। लेकिन पश्चिम के सामाजिक आचार-विचार तथा भावनाएँ हमारे आचार-विचार और भावनाओं से अनगिनत बातों में भिन्न हैं। चीन के आचार-विचार और लोकप्रिय भावनाओं की बिना परवाह किए अगर हम पश्चिम की मशीन की तरह सामाजिक नियंत्रण की पश्चिमी प्रणाली को दृढ़ता और तेजी के साथ अपनाना शुरू करें तो हम बड़ी भारी गलती करेंगे। यद्यपि शासन (कानून और कायदे जिनसे समाज नियंत्रित होता है) एक तरह की अदृश्य मशीन है— जैसा कि इस बात से सिद्ध होता है कि हम संगठित शासन-व्यवस्था को एक 'अवयव' (Organ) कहते हैं,—तथापि देखी जाने वाली मशीन तो पदार्थ-विज्ञान के नियमों के अनुसार बनती है जब कि अदृश्य मशीन मनोविज्ञान के सिद्धान्त पर कायम होती है। पदार्थ-विज्ञान की दिशा में कई सौ वर्षों से अनुसन्धान किया गया है पर मनोविज्ञान तो केवल बीस या तीस वर्ष पहले प्रारम्भ हुआ है और इसने अभी बहुत प्रगति नहीं की है। इसलिए यह अन्तर है कि जड़ पदार्थों और शक्तियों का नियंत्रण करना यद्यपि हमें पश्चिम से सीखना चाहिए फिर भी व्यक्ति के नियन्त्रण करने के लिए हमें केवल पश्चिम से नहीं सीखना चाहिए। जड़ पदार्थों के नियन्त्रण करने के सिद्धान्तों और तरीकों के ऊपर पश्चिम वालों ने बहुत पहले से विचार किया है और उन्हें कार्यान्वित भी किया है। इसलिए हम पश्चिम की भौतिक सभ्यता का पूर्णरूप से अनुसरण कर सकते हैं। हम उन सिद्धान्तों और तरीकों को चीन में लागू करने की दिशा में अन्धानुकरण कर सकते हैं और ऐसा करने पर भी हम रास्ते से नहीं बहकेंगे। लेकिन पश्चिम ने शासन-व्यवस्था के सिद्धान्तों

---

1. प्रजातंत्र पर दिया गया प्रथम व्याख्यान

पर अभी विचार नहीं किया है और शासन-व्यवस्था को ठीक तरह से लागू करने के तरीकों की खोज मौलिक रूप से नहीं की है। इसलिए चीन आज जब अपने यहाँ प्रजातन्त्र लागू करना चाहता है और अपने यहाँ की शासन-व्यवस्था में सुधार करना चाहता है तो उसे केवल पश्चिम का अनुसरण नहीं करना चाहिए। हमें इसके लिए एकदम मौलिक तरीका ज़रूर ढूँढ़ निकालना चाहिए। अगर हम दूसरों का अन्धानुकरण करते हैं तो हम राष्ट्रीय भलाई और जनता की जीविका पर गहरा आघात करेंगे। पश्चिम का अपना समाज है और हम लोगों का अपना समाज है और दोनों की भावनाएँ और आचार-विचार एक नहीं है। अगर हम अपनी सामाजिक हालतों के अनुसार आधुनिक संसार की गति का अनुसरण करते हैं तभी हम अपने समाज को सुधारने और अपने राष्ट्र को आगे बढ़ाने की आशा रख सकते हैं। अगर हम अपनी सामाजिक हालतों पर बिना ध्यान दिए ही केवल संसार की गति का अनुसरण करते हैं तो हमारे राष्ट्र का ह्रास होगा और हम संकट में पड़ेंगे। अगर हम चीन की प्रगति चाहते हैं और अपनी जाति को सुरक्षित रखना चाहते हैं तो हम स्वयं ही प्रजातन्त्र को कार्यान्वित करें और इसके आदर्श को प्राप्त करने के अच्छे तरीकों पर एकदम मौलिक ढंग से विचार करें।

क्या हम प्रजातन्त्रात्मक शासन चलाने के लिए वास्तविक रास्ता पा सकते हैं? यद्यपि हम पूर्णरूप से यूरोप और अमेरिका का अनुसरण नहीं कर सकते तथापि हम उनकी गतिविधि अच्छी तरह देख सकते हैं। और उनके प्रजातन्त्र सम्बन्धी अनुभवों का अध्ययन सावधानीपूर्वक कर सकते हैं। क्योंकि यद्यपि पश्चिम का प्रजातन्त्र विकास की उच्च सीढ़ी तक नहीं पहुँचा है या पश्चिम उसका मौलिक हल नहीं निकाल सका है फिर भी बहुत से पश्चिम के विद्वान प्रजातन्त्र के अध्ययन में बहुत समय लगा रहे हैं और बराबर नए-नए सिद्धान्त प्रकाश में ला रहे हैं। साथ-साथ पश्चिमी राष्ट्रों ने गत शताब्दी में कम अनुभव नहीं प्राप्त किया है और इस अनुभव तथा विभिन्न नए सिद्धान्तों को हमें अपने अध्ययन की सामग्री बनानी चाहिए अन्यथा हम अपनी ही बुराई करने में अपना समय बरबाद करेंगे या केवल पश्चिमी की लकीर पर चलते रहेंगे।

विदेशी विद्वानों ने प्रजातन्त्र की ऐतिहासिक बातों के अध्ययन से बहुत से नए-नए सिद्धान्त निकाले हैं। एक अमरीकी विद्वान ने सबसे नया सिद्धान्त यह निकाला है कि सर्वशक्ति-सम्पन्न सरकार ही आधुनिक प्रजातन्त्रात्मक

राष्ट्र के लिए सबसे बड़ा खतरा है जिसके नियंत्रण का कोई भी उपाय जनता के पास नहीं है; लेकिन फिर भी सबसे अच्छी बात यह होगी की सम्पूर्ण जनता द्वारा नियंत्रित सर्वशक्ति-सम्पन्न सरकार सम्पूर्ण जनता की भलाई के लिए स्थापित हो। यह बहुत ही नया सिद्धान्त है। सबसे डरने की बात और सबसे अच्छी बात दोनों ही सर्वशक्ति-सम्पन्न सरकार है। इस सिद्धान्त में पहली बात यह है कि जनता सर्वशक्ति-सम्पन्न सरकार से भय खाती है क्योंकि वह उस पर नियंत्रण नहीं रख सकती है। तब सम्पूर्ण जनता की भलाई के लिए काम करने वाली सर्वशक्ति-सम्पन्न सरकार कैसे कायम की जा सकती है और कैसे वह जनता की इच्छा के प्रति उत्तरदायी बनाई जा सकती है? बहुत से देशों में, जहाँ प्रजातंत्र का विकास हो रहा है। वहाँ की सरकार कमजोर होती जा रही है जब कि जहाँ प्रजातंत्र कमजोर है वहाँ की सरकार बहुत ही दृढ़ है। जैसे कि मैंने पहले कहा है कि गत कुछ शताब्दियों में यूरोप की सबसे शक्तिशाली सरकार जर्मनी में बिसमार्क की सरकार थी। उसकी सरकार सचमुच ही सर्वशक्ति-सम्पन्न थी। जर्मनी की सरकार प्रजातंत्र का हिमायती नहीं थी क्योंकि पहले उसने प्रजातंत्र का विरोध किया था फिर भी वह सर्वशक्ति सम्पन्न हो गई। प्रजातंत्र हिमायती सरकारों में कोई भी ऐसी नहीं है जिसे सर्वशक्तिसम्पन्न कहा जा सके। एक स्विस विद्वान ने कहा है कि जब से विभिन्न राष्ट्रों ने प्रजातंत्र अपनाया है, वहाँ की सरकार की शक्ति में ह्रास हुआ है। इसका कारण यह है कि जनता इस बात से डरती है कि अगर सरकार को शक्ति मिल जाती है तो वह (जनता) उस पर (सरकार पर) नियंत्रण नहीं रख सकेगी। इस प्रकार जनता बराबर अपनी सरकार पर अंकुश रखती है कि जिसमें वह सर्वशक्ति-सम्पन्न न हो सके। इसलिए प्रजातंत्रात्मक देशों को इस कठिनाई का हल निकालना चाहिए। लेकिन सरकार के प्रति जनता के रुख में जब तक परिवर्त्तन नहीं होता है तब तक कोई हल नहीं निकलेगा। जनता द्वारा बराबर सरकार के विरोध करने का कारण यह है कि क्रान्ति के बाद जो समानता और स्वतंत्रता प्राप्त हुई थी वह आवश्यकता से अधिक विकसित हो गई और एक विशेष समुदाय ने उसका दुरुपयोग किया और उस पर किसी प्रकार का बंधन न रखकर हर दिशा में उसकी अति कर दी। उसका फल यह हुआ कि सरकार पंगु हो गई और राज में सरकार के रहते हुए भी वह बिना सरकार के राज के समान हो गया। ऊपर कथित स्विस विद्वान् ने इस बुरी प्रवृत्ति को देखा और उसके सुधार का यह उपाय बताया कि जनता को सरकार के

प्रति रुख में परिवर्त्तन करना चाहिए। उनके कहने का क्या अर्थ है ? जनता के रुख से सरकार का क्या संबंध है ?

चीन के लंबे युग के इतिहास में जनता का रुख सरकार के प्रति कैसा रहा है ? हम जब चीन के इतिहास का अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि जनता याव्, षुन्, यू, थाङ्, वन्-वाङ् और वुवाङ्[२] नामक सम्राटों की बराबर प्रशंसा और इज़्ज़त करती रही है। हरएक युग की चीनी जनता यह आशा करती थी कि उसे बराबर वैसी ही सरकार मिले जो उसकी भलाई पर ध्यान दे। चीन में पश्चिमी प्रजातंत्र के प्रवेश के पहले चीनी जनता की सबसे बड़ी इच्छा याव्, षुन्, यू, थाङ् वन्-वाङ् और वु-वाङ् जैसे सम्राटों के पाने की थी ताकि वह शाति और आनन्द का उपभोग कर सके। पहले की चीनी जनता का सरकार के प्रति ऐसा ही रुख था। लेकिन हाल में हुई क्रांति के समय से लोगों ने प्रजातंत्रात्मक विचारों को अपना लिया है और अब वे प्राचीन सम्राटों को नहीं चाहते हैं। जनता कहती है कि वे सब तो निरंकुश शासक थे इसलिए प्रशंसनीय नहीं हैं; हाँ वे महान् ज़रूर थे। यह इस बात का द्योतक है कि जनता के दिल में प्रजातंत्र के विचार पैदा होने से उसका रुख सरकार के प्रति विरोध करने वाला हो गया है। चाहे कितनी भी अच्छी सरकार क्यों न हो वह उससे संतुष्ट नहीं है। अगर हम उसके इस रुख को बना रहने दें और उसके परिवर्त्तन के लिए कोई कोशिश न करें तो सरकार के लिए किसी प्रकार की प्रगति करना अत्यन्त ही कठिन हो जायगा। हम जनता के इस रुख को कैसे बदल सकते हैं ? पश्चिम के विद्वान केवल इतना ही जानते हैं कि रुख में परिवर्त्तन होना चाहिए लेकिन अब तक वे परिवर्त्तन करने का कोई उपाय नहीं सोच सके हैं।

जब हमने यहाँ क्रान्ति शुरू की थी तो हमने प्रजातंत्र कायम करने की घोषणा की थी और मैंने प्रजातंत्र को कार्यान्वित करने की समस्या के हल करने का एक उपाय भी सोचा है। मैंने जो उपाय सोचा है वह राजनीतिक सिद्धान्तों में एक नया आविष्कार है और सम्पूर्ण समस्या का मौलिक हल है। मेरा सिद्धान्त उस स्विस विद्वान् के सिद्धान्त के समान ही है कि सरकार के प्रति जनता के रुख में परिवर्त्तन होना चाहिए। इस प्रकार के सिद्धान्तों का हाल से पश्चिम में पैदा होना यह सिद्ध करता है कि मेरा सिद्धान्त ठीक है

---

२. ये सब प्राचीन चीन के सम्राट थे। इनके लिए राष्ट्रवाद के तीसरे व्याख्यान का क्रमशः नोट नं० १८, १९, २०, २१, ८ और २२ देखिए।

अर्थात् सार्वभौमिकता और योग्यता[3] में अन्तर होना ही चाहिए। पश्चिमी विद्वानों ने अब तक इस सिद्धान्त को नहीं समझा है। मेरे कहने का तात्पर्य क्या है इसे स्पष्ट करने के लिए मानव समाज के साथ मैं अपने सिद्धान्त पर एक सरसरी निगाह डालूँगा।

मैं किस आधार पर मानव समाज को वर्गों में विभक्त करता हूँ ? मैं मानव समाज को हर व्यक्ति की स्वाभाविक बुद्धि और योग्यता पर वर्गों में विभक्त करता हूँ। मैं मनुष्य जाति को तीन वर्गों में विभक्त करता हूँ ? पहला वर्ग उनका है जो पहले ही देखते और समझते हैं। ये तीन प्रतिभा वाले होते हैं तो किसी चीज़ पर एक नजर देकर उसमें निहित अनगिनत सिद्धान्तों को जान जाते हैं; जो एक शब्द सुनकर तत्काल ही बड़े-बड़े काम कर दिखाते हैं। जिनकी भविष्य देखने की योग्यता और अनगिनत सफलताएं संसार को आगे बढ़ाती हैं और मनुष्य जाति को सभ्यता प्रदान करती हैं। ये अग्रसोची और दूरदर्शी व्यक्ति मनुष्य जाति के निर्माता हैं। दूसरा वर्ग उनका है जो बाद में देखते और समझते हैं। इनकी प्रतिभा प्रथम वर्ग वालों से निम्न कोटि की होती है। ने किसी चीज का निर्माण या आविष्कार नहीं कर सकते, केवल पहले वर्ग वालों द्वारा किए गए कामों को सीखकर उनका अनुसरण और उनकी नकल कर सकते हैं। तीसरे वर्ग में वे हैं जो न देखते हैं और न समझते हैं। इन्हें दूसरे वर्ग वालों से भी कम बुद्धि और योग्यता होती हैं। ये सिखाने पर भी नहीं समझते हैं केवल काम करना जानते हैं। राजनीतिक आन्दोलन के शब्दों में कहें तो पहला वर्ग आविष्कारकों का (Discoverers) दूसरा वर्ग उन्नायकों का (Promoters) और तीसरा वर्ग काम करने वालों (Operators) का है। हर चीज़ की प्रगति कार्य पर निर्भर करती है इसलिए संसार की प्रगति की जिम्मेवारी तीसरे वर्ग पर रहती है। उदाहरण के लिए देखिए:—विदेशी ढंग के एक बड़े मकान का निर्माण करना कोई ऐसी बात नहीं है जो साधारण लोगों द्वारा हो सकती हो। पहले तो इसके लिए इंजिनियर की ज़रूरत है जो प्रस्तावित मकान में लगने वाली चीज़ों और कामों का पूर्ण तखमीना करेगा और तब ब्यौरेवार ढंग से मकान

---

३. इनके लिए चीनी शब्द छुवान् और नन् है जिनके कितने ही अर्थ होते हैं। इनसे क्रमशः अधिकार और शक्ति का भी बोध होता है सार्वभौमिकता और योग्यता का भी।

का ढाँचा ठीकेदार के लिए तैयार करेगा। ठीकेदार पहले मकान के ढाँचे को अच्छी तरह समझेगा और तब मजदूरों से समान ढुलवाएगा और ढाँचे के अनुसार उनसे काम करवाएगा। मजदूर मकान के ढाँचे को नहीं समझ सकते। वे केवल ठीकेदार के बनाए अनुसार काम करेंगे और उसकी आज्ञानुसार एक ईंटा वहां जोड़ेंगे और एक खपड़ा वहाँ रखेंगे। यह एक साधारण काम है। इसी तरह ठीकेदार मकान बनाने के खर्चे का पूरा तखमीना करने में या मकान का ढाँचा तैयार करने में असमर्थ है वह केवल मकान इंजिनियर के ढाँचे का अनुसरण कर सकता है और मजदूरों को ईंट जोड़ने और खपड़ा छाने का हुक्म दे सकता है। मकान इंजिनियर जो ढाँचा-बनाता है वह पहले जमीन (जिस पर मकान बनेगा) देखता है और सोचता समझता है। ठीकेदार उस बने ढाँचे को देखकर समझता है और ईंट-खपड़ा जोड़ने-छाने वाले मजदूर न देखते हैं और न समझते हैं। हर शहर में विदेशी ढङ्ग का मकान बनाना इंजिनियर, ठीकेदार और मजदूर इन तीन वर्गों के सहयोग पर निर्भर करता है।

संसार की सभी बड़ी-बड़ी सफलताएँ इन्हीं तीन वर्गों पर निर्भर करती हैं। लेकिन सबसे बड़ा वर्ग काम करने वालों का है जो न तो कुछ जानता है और न कुछ समझता है। इससे कम संख्या वाला वर्ग उनका है जो बाद में जानते और समझते हैं और सबसे छोटा वर्ग उनका है तो पहले ही जानते और समझते हैं। बिना उन मनुष्यों के जो पहले देखते और समझते हैं संसार में आविष्कारकों का होना सम्भव नहीं है। बिना उन मनुष्यों के जो बाद में देखते और समझते हैं संसार में उन्नायक नहीं हो सकते और बिना उन मनुष्यों के जो न देखते हैं न समझते हैं संसार में व्यावहारिक काम करने वाले नहीं होंगे। संसार के किसी कार्य को सफलतापूर्वक चलाने के लिए निश्चित रूप से पहले आविष्कारक, बाद में उन्नायक और सबसे अन्त में एक बड़ी संख्या में काम करने वालों की ज़रूरत होती है। संसार की प्रगति इन्हीं तीन प्रकार के लोगों पर निर्भर करती है और किसी भी वर्ग के अभाव में काम नहीं चल सकता है। संसार के जो राष्ट्र अपने यहाँ प्रजातंत्र को कार्यान्वित करना चाहते हैं और शासन-व्यवस्था में सुधार करना चाहते हैं उन्हें जो पहले देखता है, जो बाद में देखता है और जो नहीं देखता है इनमें से प्रत्येक को शासन में भाग लेने का अवसर देना चाहिए। हम इस बात को ज़रूर समझ लें कि राजनीतिक प्रजातंत्र हमें प्रकृति द्वारा नहीं मिला है यह मनुष्यों के कार्य से उत्पन्न हुआ है। हम प्रजातंत्र का निर्माण

करें और तब जनता को उसका उपयोग करने दें। हम इसकी इंतजारी नहीं करें कि जनता लड़कर प्रजातंत्र लेगी।

कुछ दिन पहले कोरिया में मेरी एक जापानी राजकर्मचारी से मुलाकात हुई थी। कुछ देर बात करने के बाद मैंने उनसे कोरिया की क्रान्ति के बारे में पूछा कि क्या वे सोचते हैं कि कोरिया वालों की क्रान्ति सफल होगी ? चूँकि उनके पास इस प्रश्न का कोई प्रस्तुत उत्तर नहीं था इसलिए मैंने पुनः पूछा कि जापानी राजकर्मचारियों का कोरिया वाले के राजनीतिक अधिकार के प्रति क्या रुख है ? उन्होंने उत्तर दिया—'हमें इंतजार करके देख लेना है कि कोरिया की जनता किस ढंग का प्रजातंत्रात्मक विचार अपनाती है। अगर वह अपने अधिकार के लिए काफी लड़ना जानती है तो हमें निश्चय ही उसकी राजनीतिक सार्वभौमिकता लौटा देनी पड़ेगी। लेकिन वर्तमान समय में वह अपने अधिकार के लिए उतना लड़ना नहीं जानती है इसलिए हम जापानी लोग उसके लिए कोरिया पर शासन करेंगे ही।' इस प्रकार की बात सुनने में सदा ही अच्छी लगती है लेकिन हम क्रान्तिकारी लोगों को अपनी जनता के साथ इसी प्रकार नहीं पेश आना चाहिए जिस प्रकार कि जापानी लोग कोरिया वालों के साथ पेश रहे हैं। हमें तब तक प्रजातंत्र देने के लिए नहीं ठहरना चाहिए जब तक कि जनता उसके लिए नहीं लड़ती है। क्योंकि चीन में बहुसंख्यक वे लोग हैं जो न देख सकते हैं न समझ सकते हैं और मुझे तो इसमें भी सन्देह है कि अब से हजारों वर्षों के बाद तक भी यहाँ के लोग इस बात को समझ सकेंगे कि उन्हें अपने अधिकारों के लिए लड़ना चाहिए या नहीं। जिन्हें इस बात का गर्व है कि वे दूरदर्शी हैं या देखकर समझने वाले हैं उन्हें जापानियों की तरह केवल अपने स्वार्थों को ही ध्यान में नहीं रखना चाहिए। उन्हें पहले जनता के स्वार्थ की बात देखनी चाहिए और सम्पूर्ण राष्ट्र की राजनीतिक सार्वभौमिकता के हाथों में सौंप देनी चाहिए।

चूँकि पश्चिम ने प्रजातन्त्र की कठिनाइयों को अब तक हल नहीं किया है इसलिए केवल पश्चिम वालों की नकल करके ही हम प्रजातन्त्र का हल नहीं निकाल सकते। हमें नये रास्ते की ओर देखना चाहिए और वह नया रास्ता जैसा कि स्विस विद्वान् ने कहा है, सरकार के प्रति अपने रुख के बदलने पर निर्भर करता है। इस रुख में परिवर्त्तन लाने के लिए हमें साफ-साफ सार्व-भौमिकता और योग्यता के अन्तर को समझ लेना चाहिए। इस अन्तर को समझने के लिए हमें पिछले व्याख्यानों में कही गई कुछ बातों पर गौर करना

चाहिए। पहली बात जनता की सार्वभौमिकता की परिभाषा है। संक्षेप में इसका अर्थ जनता द्वारा शासन का नियंत्रण है। इसे और भी स्पष्ट करने के लिए कहें तो पहले जमाने में कौन शासन पर नियंत्रण रखता था? दो प्राचीन चीनी कहावतें हैं, एक है जो सरकार के अन्दर किसी पद पर नहीं है वह शासन के साथ अपना सम्बन्ध नहीं रखता है और दूसरी है 'परिषद् में सर्व साधारण लोग नहीं हैं।' ये कहावतें इस बात की परिचायक हैं कि राजनीतिक सार्वभौमिकता पूर्णरूप से सम्राट के हाथों में थी और जनता को उससे कुछ भी लेना-देना नहीं था। आज हम लोग जो प्रजातन्त्र के हिमायती हैं जनता से हाथों में राजनीतिक सार्वभौमिकता देना चाहते हैं। तब जनता क्या हो जाएगी? चूँकि चीन में क्रान्ति हो गई है और उसने प्रजातन्त्र शासन-प्रणाली को अपनाया है इसलिए हर काम में जनता को आवाज मिलनी चाहिए। वर्तमान काल के शासन को लोकप्रिय शासन कह सकते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो प्रजातन्त्र के अन्दर हम जनता को राजा बनाते हैं।

चीन के पिछले हजारों वर्ष के इतिहास को देखने से यह पता चलता है कि जनता की भलाई और सुख की जिम्मेवारी जिन सम्राटों ने महसूस की थी वे थे—याव्, षुन्, यू, थाङ्, वन-वाङ् और वु वाङ्। जनता की भलाई के लिए और किसी सम्राट ने अपने अधिकार का उपयोग नहीं किया। चीन के सभी सम्राटों में केवल याव्, षुन्, यू, थाङ्, वन-वाङ् और वु-वाङ् ने ही अच्छी तरह से अपने शासन के कर्तव्य को पूरा किया है। इसलिए वे 'ऊपर में स्वर्ग के सामने कसूरवार नहीं हुए' और 'नीचे में मनुष्यों के सामने लज्जित नहीं हुए।' अपने दो गुणों के कारण ही वे उच्च आदर्श और पुश्त दरपुश्त द्वारा प्रशंसा प्राप्त कर सके। उनमें पहला गुण था योग्यता, जिसके कारण वे अच्छा शासन स्थापित करने में और जनता की भलाई की खोज करने में समर्थ हो सके। दूसरा गुण था उनका सुन्दर चरित्र। 'मनुष्य के प्रति सदय होना और सभी प्राणियों के प्रति दयालु होना, घायल तथा पीड़ितों के प्रति उदार भावना रखना और अपने बाल-बच्चों की तरह मनुष्यों को प्यार करना' ही सुन्दर चरित्र है। चूँकि उनमें ये दो अच्छे गुण थे इसलिए वे सरकार की पूर्ण जिम्मेवारी उठाने में और लक्ष्य तक पहुँचने में समर्थ हो सके। केवल इन्हीं सम्राटों को अपनी सन्तानों से इज्जत मिली। हमें यह भी ज्ञात नहीं है कि और कितने सम्राट चीन में हुए। चीन में हुए सम्राटों में से अधिक सम्राटों नाम भी उनकी संतानों को याद नहीं है। केवल याव्, षुन्, थाङ्, वनवाङ् और वु-वाङ् के अन्दर ही प्रकृति-प्रदत्त योग्यता और सुन्दर चरित्र

था। अधिकांश दूसरे सम्राटों में योग्यता और चरित्र की कमी थी फिर भी उनके हाथों में पूर्ण सार्वभौमिक शक्ति थी।

आप सबों ने चीन के इतिहास को अच्छी तरह पढ़ा है और मुझे विश्वास है कि आपमें से हर आदमी ने खासकर 'तीन राजों की कहानी'[४] नामक पुस्तक तो अवश्य ही पढ़ी है। हम अपनी बात का एक उदाहरण इस किताब से लें। आप सबों को याद होगा कि चु-को ल्याङ् बहुत ही विद्वान् और योग्य राजनीतिज्ञ था। वह पहले ल्यु पइ नामक सरदार के यहाँ था बाद में आह तोउ के यहाँ रहने लगा। आह तोउ बड़ा मूर्ख था और उसमें कुछ भी योग्यता नहीं थी। यही कारण था कि क्यों ल्यु पइ ने मरने के पहले चु-को ल्याङ् से कहा—'अगर आह तोउ तुम्हारा समर्थन पाने के योग्य है तो उसका समर्थन करो अन्यथा तुम उसे हटा सकते हो।' ल्यु पइ की मृत्यु के बाद भी चु-को ल्याङ् ने अपने उज्वल चरित्र का परिचय दिया। यद्यपि आह तोउ निकम्मा था तो भी चु-को ल्याङ् सदा की तरह उसके भी प्रति तब तक अपनी राजभक्ति दिखाता रहा जब तक कि वह अपने पद पर काम करते-करते बूढ़ा होकर मर नहीं गया। इस प्रकार निरंकुश शासन-काल में शासक के पास चाहे कोई योग्यता न भी हो पर उसके पास बड़ी शक्ति रहती थी। आह तोउ और चु-को ल्याङ् ने 'तीन राजों के युग' में हमारे सामने इसका स्पष्ट उदाहरण रखा है। चु को ल्याङ् योग्य था पर उसे शक्ति नहीं थी, आह तोउ के पास शक्ति थी पर वह योग्य नहीं था। आह तोउ निकम्मा था पर उसने शासन-प्रबन्ध करने का भार चु-को ल्याङ् पर छोड़ दिया था। चु-को ल्याङ् बहुत ही योग्य था इसलिए वह पश्चिमी षु (आधुनिक सच्वान् प्रान्त) में बहुत ही सुन्दर शासन व्यवस्था स्थापित करने में समर्थ हो सका। साथ-साथ वह अपनी सेना छः बार छी पर्वत को पारकर उत्तरी राजों पर आक्रमण करने के लिए ले जा सका। तथा वह और वु राजों के साथ 'त्रिगुट शक्ति संघ' स्थापित करने में समर्थ हो सका। चु-को ल्याङ् और आह तोउ के बीच की तुलना हम लोगों को सार्वभौमिकता और योग्यता के अन्तर को समझने में मदद करती है।

निरंकुश शासन के युग में पिता और बड़े भाई राजा होते थे और बेटे तथा छोटे भाई उत्तराधिकारी। उनके पास (बेटों तथा छोटे भाइयों के

४. तीन राजों का काल सन् १२२-२६१ ई० तक है। यह युग अपने सैनिक शक्ति और बहादुरी के कामों के लिए प्रसिद्ध है। 'तीन राजों की कहानी' नामक उपन्यास में इस युग का वर्णन है।

पास) कुछ भी योग्यता न होने पर भी वे किसी दिन राजा हो सकते थे। इस प्रकार निकम्मे आदमियों के पास सार्वभौमिक शक्ति रहती थी। अब जब हमने प्रजातन्त्र की स्थापना की है और जनता को शासक मान लिया है तो क्या आप यह देखने की चेष्टा करेंगे कि हमारे चालीस करोड़ लोग किस समुदाय के हैं ? यह ठीक बात है कि उनमें सब के सब भविष्य-दर्शी नहीं हो सकते हैं और उनमें से बहुत भविष्यदर्शियों के अनुयायी भी नहीं है। अधिकतर वे लोग हैं जो न दूरदर्शी हैं और न अग्रसोची ही। अब हमारी प्रजातन्त्रात्मक सरकार जनता के प्रभुत्व पर निर्भर करती है इसलिए हमारे चालीस करोड़ लोग बहुत ही शक्तिशाली हैं। राष्ट्र के इन्हीं चालीस करोड़ लोगों के हाथों में सार्वभौमिक शक्ति है जिससे वे सरकार पर नियंत्रण रखेंगे। इन राजनीतिक सम्राटों की तुलना आप किससे करेंगे ? मैं समझता हूँ कि ये लोग बहुत दूर तक आह तोउ के समान है। वास्तव में इनमें से हरेक आह तोउ है जिसे शासक की प्रबल शक्ति प्राप्त है। आह तोउ की कोई योग्यता नहीं थी लेकिन चु-को ल्याङ् ने सब काम किया इसलिए ल्यु-पइ की मृत्यु के बाद भी पश्चिमी षु अच्छी तरह व्यवस्थित था। पश्चिम के लोग सर्वशक्ति-संपन्न सरकार का विरोध करते हैं। इस खराबी को दूर करने के लिए स्विस विद्वान् कहते हैं कि जनता को सरकार के प्रति अपने रुख में परिवर्त्तन करना चाहिए; उसे सर्वशक्ति-सम्पन्न सरकार का विरोध नहीं करना चाहिए। लेकिन सरकार के प्रति जनता के रुख में परिवर्त्तन हो जाने के बाद दूसरा कदम क्या होगा ? इस बात को उन्होंने स्पष्ट नहीं किया है। जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन मैं करता हूँ वह यह है कि सर्वभौमिकता को योग्यता से पृथक समझना चाहिए। बिना इस साफ अन्तर को समझे हम सरकार के प्रति जनता के रुख में परिवर्त्तन होने की आशा नहीं रख सकते हैं। आह तोउ जानता था कि वह निकम्मा है इसलिए उसने चु-को ल्याङ् के ऊपर राज के सभी राजनैतिक प्रभुत्व को सौंप दिया और उसे अपनी ओर से शासन करने का अधिकार दिया। इसलिए जब चु-को ल्याङ् उत्तरी अभियान के लिए निकला तो उसने आह तोउ को एक पत्र दिया जिसमें उसने उसे (आह तोउ) सलाह दी कि राजभवन और राजसभा के मामलों को साफ-साफ अलग कर ले। आह तोउ राजभवन के कर्त्तव्य को कर सकता था लेकिन राजसभा के कर्त्तव्य को वह अकेला पूरा नहीं कर सकता था क्योंकि वे सब शासन-प्रबन्ध के काम थे। चु-को ल्याङ् द्वारा कहा गया राजभवन और राजसभा के बीच का अन्तर ही सार्वभौमिकता और योग्यता के बीच का अन्तर है। राष्ट्र पर शासन करने में

हमें वैसा ही अन्तर करना चाहिए। यह हम कैसे कर सकते हैं? अगर हम संसार के कामों के प्रति विस्तृत और निष्पक्ष दृष्टि रखें तो हम सफलता प्राप्त कर सकते हैं। हर आदमी शासन के प्रति एक विशेष ढङ्ग का विचार रखता है जो हज़ारों वर्षों के निरंकुश शासन के कारण पैदा हुआ है। निरंकुश शासन के इस लम्बे काल में निकम्मे आदमी गद्दी पर बैठते आए हैं और चालीस करोड़ जनता उनकी गुलाम रही है। अब यद्यपि निरंकुश सत्ता समाप्त हो गई है तथा प्रजातन्त्र की स्थापना हो गई है और हम स्वतन्त्र-से हो गए हैं लेकिन फिर भी जनता के दिल से निरंकुश शासन की भावना नहीं गई है और वह अभी तक भी डरती है कि सम्राटों की नाईं आज की सरकार भी उसे सताएगी। राजतंत्र और निरंकुश शासन के डर से वह सरकार को ही मिटा देना चाहती है और इस प्रकार सरकार के प्रति शत्रुता का भाव दिनों दिन बढ़ता ही जाता है। वर्त्तमान समय का विरोध सम्राटों के प्रति प्रदर्शित की जाने वाली प्राचीन भक्ति की प्रतिक्रिया है। दूसरे शब्दों में कहें तो सम्राट के प्रति अत्यन्त सम्मान की भावना से जनता का रुख हटकर वह सभी प्रकार की सरकार के विरुद्ध हो गया है। सचमुच में सम्राट के प्रति भक्ति दिखाने की प्राचीन प्रथा गलत थी लेकिन वर्त्तमान काल में सभी प्रकार की सरकार का विरोध करना भी गलत है।

इस बात को समझने के लिए कि यह गलत धारणा आज कैसे मिट सकती है हमें हज़ारों वर्ष पीछे के राजनीतिक इतिहास को देखना पड़ेगा। निरंकुश सम्राटों के पहले चीन में याव् और षुन् अत्यन्त ही अच्छे शासक थे। उन्होंने गद्दी योग्य आदमियों के लिए छोड़ दी थी; अपने परिवार वालों के लिए नहीं रखी थी। याव् और षुन् के समय तक निरंकुश शासन विकसित नहीं हुआ था। उनके पहले नाम लेने भर को ही निरंकुश शासन था और योग्य मनुष्य जो सब की भलाई के लिए अच्छा शासन-प्रबन्ध कर सकता था वही सम्राट बनाया जाता था। मनुष्य और जङ्गली पशुओं के बीच के संघर्ष के असभ्य काल में, जिसके बारे में हम पहले चर्चा कर चुके हैं, राज का संगठन पूर्ण से नहीं हुआ था। लोग कुलों में विभक्त थे और कुछ चतुर तथा शक्तिशाली आदमियों के ऊपर अपनी रक्षा के लिए निर्भर रहते थे। उस समय लोगों को विषैले सांपों और जङ्गली जानवरों के आक्रमण का डर लगा रहता था, इसलिए रक्षा की ज़िम्मेवारी लेने के लिए वे किसी योग्य आदमी को चुनते थे। रक्षा की जिम्मेवारी सँभालने के लिए लड़ने की शक्ति (योग्यता) ज़रूरी थी। वे जो विषैले सांपों और खूंखार जानवरों पर विजय

प्राप्त कर सकते थे, योग्य समझे जाते थे। चूँकि उस काल के आदमियों के पास कोई हथियार नहीं था इसलिए सिर्फ खाली हाथ और मुट्ठी से लड़ना पड़ता था। अतः सबसे मजबूत शरीर वाले व्यक्ति ही लोगों द्वारा मुखिया बनाए जाते थे। जो कुछ हो, चीन में ऐसे आदमियों के राजा होने भी उदाहरण मिलते हैं जो लड़ने के योग्य नहीं थे। सुइ रन्-श़् ने लकड़ी घिसकर आग उत्पन्न की और लोगों को आग से रसोई पकाना सिखाया। जिससे कच्ची तरकारियां और कच्चे मांस खाने से लोगों का पिंड छूटा और बहुत से स्वादिष्ट भोजनों का आविष्कार हुआ। इसलिए लोगों ने सुइ रन्-श़् को राजा बना दिया। लकड़ी घिसकर आग उत्पन्न करना और आग के जरिए रसोई पकाना सिखाना ये काम तो रसोइए के थे इसलिए हम कह सकते हैं कि एक रसोइया राज हो गया। षन्-नुङ्[५] ने सैकड़ों जड़ी-बूटियों की परीक्षा कर रोगों को अच्छा करने और मरे हुए को जिंदा करने की बहुत सी औषधियों का आविष्कार किया। ये आश्चर्यजनक और प्रशंसनीय काम थे, इसलिए लोगों ने उसे राजा बनाया। जड़ी-बूटियों की परीक्षा करना तो वैद्य का काम है और इसलिए हम कह सकते हैं कि एक वैद्य राजा हो गया। शिएन-यूआन् ने लोगों को कपड़ा बुनना सिखाया इसलिए जो दर्जी था वही राजा हो गया। यु छाव्-श ने लोगों को मकान बनाना सिखाया इसलिए बढ़ई राजा हुआ। इस प्रकार चीन के इतिहास में हम पाते हैं कि केवल लड़ने वाला ही राजा नहीं होता था बल्कि कोई भी जिसमें अत्यन्त योग्यता थी और जिसने नया आविष्कार किया था या जिसने मानव जाति के भलाई के लिए कोई भी बड़ा काम किया था, राजा हो सकता था और शासन-प्रबन्ध कर सकता था। रसोइया, वैद्य, दर्जी, बढ़ई तथा और भी खास योग्यतावाले दूसरे लोग राजा हुए हैं। विलियम पी० मार्टिन (William P. Martin) नामक एक अमरीकी प्रोफ़ेसर एक बार मनोरंजन के लिए पेकिङ् के पश्चिमी पहाड़ की ओर गया। रास्ते में उन्हें एक किसान से मुलाकात हुई और वे उससे बातचीत करने लगे। किसान ने प्रोफ़ेसर मार्टिन से पूछा—'क्यों नहीं कोई विदेशी आकर चीन का सम्राट होता है।' मार्टिन ने पूछा—'कोई विदेशी-चीन का सम्राट हो सकता है?' किसान ने खेत में होकर गए तार-लाइन को दिखाकर कहा—'जिस आदमी ने वह चीज़ बनाई है वह चीन का सम्राट हो सकता है।' किसान के दिल में था कि वह

५. ये चीन के प्रागऐतिहासिक काल के पौराणिक सम्राट थे।

आदमी जो समाचार और संदेश-वाहक लोहे का तार आविष्कार कर सकता है निश्चय ही बड़ी योग्यता वाला होगा और वह ज़रूर चीन का सम्राट हो सकता है। इन सब बातों से हम देख सकते हैं कि चीनी जनता की आम धारणा है कि अत्यन्त योग्य आदमी को राजा होना चाहिए।

याव् और षुन् के समय के बाद से चीन के सम्राट धीरे-धीरे निरंकुश होकर साम्राज्य पर अपना एकाधिपत्य जमाने लगे तथा जनता को स्वतन्त्रता-पूर्वक योग्य आदमी को राजा चुनने का अधिकार देने से इंकार करने लगे। अगर आज के हमारे चालीस करोड़ लोगों को वोट द्वारा सम्राट चुनने को कहा जाय तथा उन्हें बिना बाहरी दबाव के पूर्ण प्रभुता और स्वतन्त्रता दी जाय और अगर उसी समय याव् और षुन् पुनः जिंदा होकर आ जाएँ तो आप क्या सोचते हैं कि जनता किसको सम्राट चुनेगी? मैं समझता हूँ कि वह निःसंदेह याव् और षुन् को चुनेगी। चीन की जनता को अपने सम्राट के प्रति उतना कटु भाव नहीं है जितना कि पश्चिम वालों को अपने सम्राट के प्रति है। क्योंकि निरंकुश शासन चीन में उतना भयंकर कभी नहीं रहा जितना कि वह पश्चिम में रहा है। दो-तीन शती पहले यूरोप में राजाओं का ज़ुल्म अपनी सीमा पार गया था। जनता अपने शासकों को भयंकर बाढ़ या खूंखार जानवरों—सांघातिक त्रास—के रूप में देखती थी। इसलिए जनता ने केवल अपने राजा को मानने से ही इंकार नहीं किया बल्कि राजा से संबंधित सभी बातों को भी जैसे सरकार आदि मानने से इंकार कर दिया। अब पश्चिम में प्रजातन्त्र कायम हो गया है और जनता के हाथों में अधिकार है इसलिए सरकार को नहीं मानना सचमुच में आसान हो गया है। पश्चिमी षु के राजा आह तोउ के लिए चु-को ल्याङ् को हटाना क्या आसान नहीं था? लेकिन अगह वह चु को हटाता तो क्या पश्चिमी षु की सरकार बहुत दिनों तक टिक सकती? क्या उत्तर के लोगों को सजा देने के लिए छः बार सेनाएँ भी पर्वत के पार भेजी जा सकतीं? आह तोउ ने सभी बातों का अनुभव किया इसलिए उसने पूर्ण प्रभुता चु-को ल्याङ् को दे दी। शासन-प्रबन्ध को व्यवस्थित करना, दक्षिण राजों को दबाना, उत्तरी राजों को सजा देने के लिए सेना का अभियान कराना सभी बातें चु-को-ल्याङ् द्वारा की गईं। अब हम प्रजातन्त्र का प्रयोग कर रहे हैं इसलिए चीन के चालीस करोड़ लोग राजा हैं। वे आह तोउ हैं और आह तोउ को स्वभावतः ही चु-को ल्याङ् को अपनी ओर से शासन-प्रबन्ध करने तथा राज की बड़ी जिम्मेवारी संभालने के लिए स्वागत करना चाहिए। जब से पश्चिम के राष्ट्रों

ने प्रजातंत्र का प्रयोग करना प्रारम्भ किया है तब से जनता ने सरकार के प्रति विरोध का रुख धारण कर लिया है और इसका मौलिक कारण उनका सार्वभौमिकता और योग्यता में अन्तर नहीं करने की असमर्थता है। जब तक हम इस सिद्धान्त का अनुसरण नहीं करते हैं जैसे कि मैंने आप सबों के सामने रखा है, तब तक हम पश्चिम की लकीर पर ही चलते रहेंगे। मैंने जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है उनके अनुसार अगर जनता सार्वभौमिकता और योग्यता के बीच के अन्तर को समझती है तो सरकार के प्रति उसके विरोध का भाव चला जायगा और सरकार को भी प्रगति करने का अवसर मिलेगा। चीन के लिए यह अन्तर कायम करना बहुत ही आसान होगा क्योंकि हम आह तोउ और चु-को ल्याङ् का उदाहरण अपने सामने रख सकते हैं। अगर सरकार अच्छी है तो हम चालीस करोड़ लोग उसे चु को ल्याङ् बनने देंगे और राज की शक्ति उसे सौंप देंगे। अगर सरकार बुरी है तो हम चालीस करोड़ लोग अपने राजकीय प्रभुत्व का व्यवहार करेंगे और उसे हटाकर सार्वभौमिकता पुनः अपने हाथों में ले लेंगे। पश्चिम के लोगों ने सार्वभौमिकता और योग्यता के बीच कोई स्पष्ट अन्तर नहीं किया है इसलिए गत दो तीन शताब्दियों के अन्दर प्रजातंत्र से पैदा हुई समस्याओं को वे हल नहीं कर सके हैं।

हम भूत वर्तमान के बीच एक और तुलना करें। प्राचीन काल में जो अच्छी तरह लड़ सकता था उसके सिर पर जनता राजमकुट रखती थी। अब अमीर लोग अपनी रक्षा के लिए मजबूत शरीर वाले सिपाहियों को अपने यहां रखते हैं। उदाहरण के लिए देखिए:—प्रान्तों की जनता को लूट और धन जमाकर सैनिक राजकर्मचारी (Military Officials) संघाई के विदेशी उपनिवेश (foreign settlement) में जाकर बस गए हैं और उन्हें डर है कि लोग उन पर हमला कर उनके धन को छीन लेंगे। इसलिए उन्होंने कितने सिख सिपाहियों को अपने फाटकों पर पहरे के लिए तैनात कर दिया है। 'जो दूसरों की रक्षा कर सकता था वही राजा होता था' इस प्राचीन सिद्धान्त का अगर अनुसरण किया जाय तो सैनिक राजकर्मचारियों की रक्षा करने वाले उन सिख सिपाहियों को उन पर राजा के ऐसा करना चाहिये। लेकिन बात ऐसी है कि वे सिपाही उन सैनिक राजकर्मचारियों के निजी मामलों में कुछ भी दखल नहीं दे सकते। प्राचीन काल में शारीरिक ताकत वाले राजा होते थे इस दृष्टि से लंबी बन्दूक वाले सिख सिपाहियों को तो आज और भी अधिक राजा होना ही चाहिए। लेकिन सैनिक राजकर्म-

चारी उन्हें राजा नहीं बल्कि गुलाम समझते हैं। यद्यपि वे बन्दूक धारी गुलाम बहुत ताक़तवर हैं तथापि उन्हें सैनिक राजकर्मचारियों द्वारा राजकीय प्रतिष्ठा नहीं मिलती है बल्कि मिलते हैं केवल कुछ चांदी के ठीकरे। अगर हम इस दृष्टि से विचार करें तो प्राचीन काल के सम्राट आधुनिक सिख पहरेदारों के समान हैं या आधुनिक सिख पहरेदार प्राचीन काल के सम्राट माने जा सकते हैं। इस तुलना को और आगे बढ़ाएं तो अगर फाटक के वे सिख पहरेदार रक्षा करने वाले सम्राटों के समान हैं तो क्यों कोई उन्हें नापसंद करेगा।

आज जब धनी आदमी कम्पनी या कारखानों की स्थापना करते हैं तो उन्हें कारबार के नियंत्रण के लिए एक योग्य आदमी को प्रधान मैनेजर बनाना पड़ता है। वह प्रधान मैनेजर उस काम का विशेषज्ञ होता है और उसमें योग्यता होती है। कम्पनी के हिस्सेदारों के पास प्रभुता या सार्वभौमिकता है। कारखानों के अन्दर केवल प्रधान मैनेजर ही हुक्म देता है। हिस्सेदार केवल मैनेजर पर अपनी निगरानी रखते हैं। प्रजातन्त्रात्मक राज की जनता कारखाने या कम्पनी के हिस्सेदारों के समान है और प्रजासत्तात्मकराज का सभापति कम्पनी के प्रधान मैनेजर के समान है। जनता सरकार को विशेषज्ञ के रूप में देखे। इस प्रकार का रुख रखने से, हिस्सेदार कारखाने या कम्पनी की तरक्की के लिए मैनेजर से अच्छी तरह काम ले सकते हैं; छोटी पूँजी से बहुत अधिक माल तैयार करा सकते हैं और कम्पनी बहुत लाभ उठा सकती है। लेकिन पश्चिम के किसी भी प्रजातंत्रात्मक राज में जनता का रुख सरकार के प्रति ऐसा नहीं है इसलिए वह शासन चलाने में योग्य व्यक्तियों से अच्छी तरह काम नहीं ले सकी है। फलस्वरूप राजनीतिक जीवन में प्रायः जो लोग हैं सभी अयोग्य हैं और प्रजातंत्रात्मक शासन बहुत ठहर-ठहर कर प्रगति कर रहा है। प्रजातंत्रात्मक राजों ने जर्मनी और जापान ऐसे निरंकुश राजों की अपेक्षा कम तेजी से प्रगति की है। जापान केवल कुछ दशाब्दियों से आधुनिकता के रंग में रँगा है और अब वह शक्तिशाली और धनी हो गया है। जर्मनी सदा से गरीब और निर्बल रहा था लेकिन जब विलियम प्रथम और बिसमार्क ने अपने हाथों में शासन की बागडोर ली तो उन्होंने राजों को एक संघटन में लाया, बड़ी ही निर्भीक राजनीतिक योजना बनाई और जर्मनी कई बीसाब्दियों में ही यूरोप पर अपनी धाक जमाने में समर्थ हो गया। लेकिन प्रजातंत्र समर्थक दूसरे राष्ट्र जर्मनी और जापान की तरह तेजी से आगे बढ़ने में समर्थ नहीं हो सके हैं और इसका कारण यह है कि वे प्रजातंत्र की कुछ आधारभूत समस्यायों को हल करने में

समर्थ नहीं हो सके हैं। उन समस्यायों को हल करने के लिए राष्ट्र के प्रधान-प्रधान कामों को उन्हें योग्य व्यक्तियों के हाथों में देना चाहिए।

पश्चिम के लोग इन दिनों बराबर विशेषज्ञों से काम ले रहे हैं। सेना को शिक्षित करने के लिए अनुभवी सैनिक विशेषज्ञ हैं। कारखानों को चलाने के लिए वे इंजीनियर बहाल करते हैं और वे जानते हैं कि शासन-व्यवस्था के लिए उन्हें विशेषज्ञों से काम लेना चाहिए। परन्तु जनता की पुरानी और बद्धमूल आदतों को नहीं बदल सकने के कारण ही वे ऐसा करने में सफल नहीं हो सके हैं। लेकिन इस नए युग में सार्वभौमिकता और योग्यता के बीच निश्चय ही अन्तर करना चाहिए। बहुत मामलों में हमें विशेषज्ञों के ऊपर विश्वास करना चाहिए और उनके ऊपर बंधन नहीं डालना चाहिए। एकदम हाल में हुए आविष्कार मोटरगाड़ी को लीजिए जिसका व्यवहार अब लोग करते हैं और जो बड़ा ही सुविधाजनक है। जब बीस या तीस वर्ष पहले मोटरगाड़ी पहले-पहले निकली थी तो उसे हाँकने के लिए न तो कोई अनुभवी ड्राइवर ही था और न उसे मरम्मत करने वाल कोई अनुभवी कारीगर ही। मेरे एक मित्र थे जिन्होंने एक मोटरगाड़ी खरीदी थी और जिन्हें स्वयं ड्राइवर तथा कारीगर दोनों का काम करना पड़ता था। इससे बड़ी दिक्कत होती थी क्योंकि एक ही आदमी से सब काम अच्छी तरह किए जाने की आशा नहीं की जा सकती है। लेकिन अब तो बहुत से ड्राइवर और कारीगर हो गए हैं और मोटर-मालिक का काम अब केवल कुछ रुपये किसी मोटर हांकने वाले या मरम्मत करने वाले को देने से ही चल जाता है। ड्राइवर और कारीगर हाँकने तथा मरम्मत करने के काम के विशेषज्ञ होते हैं और अगर हम मोटरगाड़ी रखें तो उनका रखना भी ज़रूरी है। राष्ट्र एक बड़ी मोटरगाड़ी है और सरकारी कर्मचारी आदि बड़े-बड़े ड्राइवर हैं। जब पश्चिम के लोगों ने पहले पहल राजनीतिक सार्वभौमिकता प्राप्त की तो वे बीस-तीस वर्ष पहले के धनी मोटर मालिक की तरह थे जिनके पास उनकी मदद के लिए कोई अच्छा विशेषज्ञ नहीं था और इसलिए हाँकने और मरम्मत करने के सभी कामों को उन्हें स्वयं ही करना पड़ता था। लेकिन अब तो बहुत से प्रतिभाशाली विशेषज्ञ हैं। जनता को उनसे काम लेना चाहिए। अपने से ही हाँकना और मरम्मत करना केवल 'झंझट और मुश्किल ढूँढ़ना है।' इस उदाहरण से भी हम ड्राइवर और मोटर मालिक में भेद कर सकते हैं। ड्राइवर के पास मोटर मालिक हाँकने की बुद्धि तो है, पर वह मोटर का मालिक नहीं है और मोटर मालिक के पास

मोटर तो है पर उसे मोटर हाँकने की योग्यता नहीं है। मोटर मालिक को अपनी गाड़ी हाँकने के लिए चतुर ड्राइवर पर निर्भर रहना चाहिए और यही सिद्धान्त राष्ट्र के प्रधान प्रधान कामों के करने में भी लागू करना चाहिए। जनता ही मालिक है इसलिए उसे पूर्ण अधिकार होना चाहिए। सरकार ही विशेषज्ञ है इसलिए उसमें योग्य और बुद्धिमान मनुष्य होना चाहिए। अन्तः हमें सरकार के सभी राजकर्मचारियों को—सभापति और प्रधान मंत्री से लेकर सरकार के हर विभाग के प्रधान तक को अत्यन्त शिक्षित ड्राइवर समझना चाहिए. और अगर वे योग्य और राष्ट्र के प्रति वफादार हैं तो उनके हाथों में सार्वभौमिकता देने के लिए हमें तैयार रहना चाहिए। हमें उनकी गतिविधि पर बंधन नहीं डालना चाहिए बल्कि उन्हें काम की स्वतंत्रता देनी चाहिए। तभी राष्ट्र तेजी से दिनों दिन प्रगति करता जाएगा। इसके विपरीत अगर हम अपने ही हाथों में सभी काम लेने की कोशिश करेंगे या विशेषज्ञों के हर काम में अड़चन डालेंगे और उन्हें काम करने की स्वतंत्रता नहीं देंगे तो राष्ट्र की प्रगति बहुत ही कम होगी और वह बहुत धीरे धीरे उन्नति करेगा।

मैं आपको अपने अनुभव के आधार पर इस सिद्धान्त का एक बहुत सुन्दर उदाहरण दे सकता हूँ। जब मैं संघाई में रहता था तो एक बार मैंने हॉङ्केव् स्थित एक मित्र से मुलकात करने का उनसे समय निश्चित किया। लेकिन ठीक मुलाकात के दिन मैं यह बात एकदम भूल गया और निश्चित समय के ठीक पन्द्रह मिनट पहले मुझे याद पड़ा कि मुझे मुलाकात के लिए जाना है। उस समय मैं फ्रांसीसी रियायती क्षेत्र में रहता था जो हॉङ्केव् से काफ़ी दूर है। पन्द्रह मिनट के अन्दर वहाँ पहुँच जाना असम्भव था। बहुत जल्दी में मैंने एक मोटर ड्राइवर को बुलाया और बहुत हड़बड़ में पूछा कि क्या वह पन्द्रह मिनट के अन्दर मुझे हॉङ्केव् ले जा सकता है। उसने उत्तर दिया कि वह निश्चय ही ले जा सकेगा। सो मैं मोटर में बैठ गया और निश्चित स्थान के लिए चल पड़ा। मैं संघाई की सड़कों से बहुत ही परिचित था। फ्रांसीसी रियायती क्षेत्र से हॉङ्केव् का रास्ता लगभग उसी प्रकार है जैसा षाकी से तुङ्षान् (केण्टन में) तक का और आप बंड तथा छुआन् लुङ्खौ के अगवाह रास्ते को पकड़ कर दूरी और भी कम कर सकते हैं। लेकिन मेरा ड्राइवर, मान लीजिए कि मैं केण्टन के ही रास्ते का उदाहरण दे रहा हूँ, बंड और छुआन् लुङ्खौ से नहीं गया बल्कि पहले फुङ्निङ् सड़क पर गया फिर तावृतेकसुन सड़क का चक्कर काटकर और छोटा उत्तर फाटक

होते हुए पूर्वी बड़े फाटक पर पहुँचा और तब तुङ्धान् पहुँचा। मोटर-गाड़ी बड़ी तेजी के साथ जा रही थी और इतने जोरों से आवाज करती थी कि मैं ड्राइवर से कुछ कह भी नहीं सका। मैं तो उस पर बहुत झुंझला गया और क्रोधित भी हो गया क्योंकि मैं सोचता था कि ड्राइवर मेरे साथ चलाकी खेल रहा है और समय को बढ़ाने के लिए अगवाह रास्ते को छोड़ कर जान बूझकर चक्कर मार रहा है। ठीक ऐसी ही स्थिति राष्ट्र में होती है जब किसी खास कारण से सरकार कुछ आश्चर्यजनक काम करती है जो साधारण जनता की समझ में नहीं आता है। जनता उसका गलत अर्थ लगाती है और उसमें दोष ढूँढ़ती है। लेकिन वह ड्राइवर अपने निर्धारित रास्ते से ही पन्द्रह मिनटों के अन्दर हॉङ्केव् पहुँच गया। मेरा रोब शान्त हो गया और मैंने उससे पूछा कि उसने चक्करदार रास्ते का अनुसरण क्यों किया। उसने कहा—'अगर हम सीधे रास्ते से आते तो हमें नान्किङ् सड़क से आना पड़ता जहाँ घोड़ा गाड़ी, मोटर, रिक्सा, पैदल राहगीर और इधर उधर जाती हुई अन्य प्रकार की गाड़ियों से सड़क भरी रहती है और वहाँ से जल्दी निकल जाना बड़ा कठिन कार्य है।' इस उत्तर से मेरी गलत धारणा दूर हो गई। मैंने अनुभव किया कि मैंने अपने दिमाग में नान्किङ् सड़क में बण्ड पर के गार्डन नामक पुल से होकर जाने का जो रास्ता निश्चित किया था वह केवल दूरी के खयाल से था; लेकिन ड्राइवर को तो अनुभव था। वह जानता था कि मोटरगाड़ी बड़ी तेजी के साथ एक घण्टे में तीस चालीस मील जा सकती है तथा चाल कुछ और तेज कर देने से वह कुछ चक्करदार रास्ते की अधिक दूरी को भी तय करके निश्चित समय के अन्दर ही गन्तव्य स्थान पर पहुँच सकती है। उसने समय के हिसाब से दूरी को नापा। वह न तो दार्शनिक था और न वह समय तथा दूरी के बीच के सम्बन्ध को समझता ही था; लेकिन वह अपने काम का विशेषज्ञ था। वह जानता था कि मोटरगाड़ी में रास्ते की दूरी कम करने की शक्ति है और वह अगर गाड़ी की चाल को कुछ बढ़ा देता है तो कुछ चक्करदार रास्ते उसे पन्द्रह मिनट के अन्दर हाङ्केव् पहुँचने से नहीं रोक सकते हैं। अगर मैंने ड्राइवर को पूर्ण अधिकार और अपने मन से ले जाने की स्वतंत्रता न दी होती बल्कि इस बात पर जोर देता कि यह मेरे बताए रास्ते से ही चले तो निश्चय ही मैं अपने मित्र से समय पर मुलाकात करने को नहीं पहुँच सकता। चूँकि अनुभवी जानकर मैंने उस पर विश्वास किया और उसकी चाह में बन्धन नहीं डाला इसलिए वह उस रास्ते से चला जो उसने सबसे ठीक समझा और ठीक समय पर पहुँच गया। चूँकि

मैं अनुभवहीन था इसलिए मैं गलत समझ रहा था कि वह सीधे रास्ते को छोड़कर क्यों जा रहा है। जनता राष्ट्र का मालिक है और उसे उसी तरह से सरकार के प्रति व्यवहार करना चाहिए जैसा मैंने हाङ्केव जाते समय ड्राइवर के साथ किया अर्थात् उसे अपनी इच्छानुसार रास्ता चुनने दिया और गाड़ी हांकने दी। इस प्रकार की भावना से ही केवल सरकार के प्रति जनता के रुख में परिवर्त्तन हो सकता है।

पश्चिम की जनता की अपनी सरकार के प्रति विरोध की भावना केवल सार्वभौमिकता को योग्यता से भेद नहीं करने के कारण है। जिसके फलस्वरूप वह अब तक भी प्रजातंत्र की कठिनाइयों को नहीं मिटा सकी है। हम जब प्रजातंत्र का अनुसरण करते हैं तो हमें पश्चिम की नकल नहीं करनी चाहिए। हमें सार्वभौमिकता और योग्यता में स्पष्ट अन्तर कर लेना चाहिए। यद्यपि प्रजातंत्र की भावना हममें यूरोप और अमेरिका से आई है तथापि उन देशों में प्रजातंत्र की शासन-व्यवस्था सफलतापूर्वक नहीं लागू की जा सकी है। हम अब प्रजातंत्र के कार्यान्वित करने का रास्ता जानते हैं और हम यह भी जानते हैं कि सरकार के प्रति जनता के रुख में कैसे परिवर्त्तन लाना चाहिए। लेकिन फिर भी अधिकांश लोग अग्रसोची नहीं हैं। अगर हम पश्चिम के प्रजातंत्र की उलझन से बचना चाहते हैं और पश्चिम के रास्ते का अनुसरण नहीं करना चाहते हैं तो हम निश्चय ही उन्हें सच्चा रास्ता दिखाएँ और उस पर चलने में उनकी मदद करें। पश्चिम के विद्वान् अब तक केवल इतना ही जान सके हैं कि जनता का सरकार के प्रति जो रुख है वह गलत है और उसमें ज़रूर परिवर्त्तन होना चाहिए। लेकिन उन्हें अब तक यह पता नहीं चला है कि उसमें कैसे परिवर्त्तित हो। मैंने अब रास्ता पा लिया है। हम सार्वभौमिकता और योग्यता के बीच भेद करें। किसी राष्ट्र की सरकार की नींव जनता के अधिकारों पर रखी जानी चाहिए लेकिन शासन व्यवस्था का भार विशेषज्ञों के ऊपर होना चाहिए। हम इन विशेषज्ञों को बड़े बड़े राजकीय सभापति तथा मन्त्री की तरह नहीं देखें बल्कि उन्हें साधारण रूप में अपने ड्राइवर, फाटक के पहरेदार, रसोइया, वैद्य, बढ़ई या दर्जी की तरह देखें। कोई बात नहीं कि जनता उन्हें किस प्रकार का कार्यकर्त्ता समझती है। जब तक जनता का इस तरह का साधारण रुख उनके प्रति रहेगा तो राष्ट्र अच्छी तरह शासित होगा और वह उन्नति करेगा।

मार्च १६, सन् १९२४

छठवाँ व्याख्यान

पश्चिम के राजनीतिक और कानून के विद्यार्थी सरकार को 'मशीन' और कानून को यन्त्र कहते हैं। चीनी भाषा में शासन और कानून की बहुत सी पुस्तकें जापानी भाषा से अनुवाद की गई हैं। जापान ने शासन-संगठन का नाम चि क्वान् (अवयव या ब्यूरो) रखा है। क्वान् का वही अर्थ है जो साधारणतः चीनी में 'मशीन' शब्द से समझा जाता है। किसी समय चीन में चि क्वान् शब्द 'अवसर' के अर्थ में व्यवहृत होता था। लेकिन जब से जापान ने इस शब्द का व्यवहार 'शासन-संगठन' के अर्थ में किया है तब से चीन में भी इस शब्द का अर्थ 'मशीन' से मिलता-जुलता हुआ-सा माना जाता है। हम शासन के लिए यामन् शब्द का व्यवहार करते थे लेकिन अब हम चि क्वान् का व्यवहार करते हैं जैसे शासन-प्रबन्ध चि क्वान् आर्थिक चि क्वान्, सैनिक चि क्वान्, शिक्षा चि क्वान् आदि। ये चि क्वान् या ब्यूरो जापान के सरकारी विभाग से मिलता-जुलता है। इन दोनों में कोई अन्तर नहीं है। हम जब चि क्वान् कहते हैं तो हमारे कहने का वही अर्थ होता है जो 'मशीन शब्द कहने से होता है। चि क्वान् बन्दूक को मशीनगन कहते हैं। इसलिए सरकारी विभाग शासन-व्यवस्था मशीन कहला सकता है। लेकिन राजनीतिक मशीन और उत्पादक मशीन में क्या अन्तर है ? उत्पादक मशीन सम्पूर्णतः लकड़ी, लोहा, चमड़े की पट्टी और इसी तरह की दूसरी भौतिक चीजों को एक जगह जोड़कर बनाई जाती है। राजनीतिक मशीन मानव प्राणियों से बनती है और अपने कामों के लिए मनुष्य के ऊपर ही निर्भर रहती है, भौतिक पदार्थों पर नहीं। इसलिए राजनीतिक और उत्पादक मशीन में बहुत अन्तर है। लेकिन एक सबसे बड़ा अन्तर यह है कि राजनीतिक मशीन मानवी शक्ति से चलती है जबकि उत्पादक मशीन भौतिक शक्ति से।

पिछले व्याख्यानों में हमने देखा है कि पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति बड़ी तेजी के साथ विकसित हो रही है और प्रगति कर रही है। लेकिन जब हम इस प्रगति का विश्लेषण करते हैं तो पाते हैं कि भौतिक सभ्यता जिसका प्रतिनिधित्व उत्पादक मशीन करती है—बहुत तेजी से बढ़ती रही है जब कि मानवीय मशीन ने बहुत धीमी गति से प्रगति की है जैसा कि राजनीतिक

संगठन में देखा जा सकता है। इसका क्या कारण है? जब भौतिक मशीन बनाई जाती है तो उसकी परीक्षा आसानी से की जा सकती है। उसके खराब पुर्जों को हटाया जा सकता है और अपूर्ण पुर्जों में सुधार हो सकता है। लेकिन जब मानवीय मशीन चालू हो जाती है तो बिना क्रान्ति के न इसकी जांच और न इसका सुधार ही आसानी-पूर्वक किया जा सकता है। और दूसरा एक ही रास्ता है कि उसे पुरानी मशीन में लगे लोहे के समान समझें लेकिन ऐसा करना एकदम असम्भव है। इस प्रकार पश्चिम की उत्पादक मशीन अत्यन्त ही तेजी से आगे बढ़ी है जबकि राजनीतिक मशीन ठोकरें खाती हुई धीरे-धीरे बढ़ी है। जब प्रजातन्त्रात्मक भावना का जन्म पश्चिम में हुआ तो सभी राष्ट्रों ने प्रजातन्त्र का प्रयोग करना चाहा। इसमें सबसे अगुआ संयुक्तराष्ट्र अमेरिका था। अमरीकी प्रजातन्त्र को कायम हुए एक सौ चालीस वर्ष हो रहे हैं लेकिन जनता द्वारा प्रारम्भ में जो सार्वभौमिक प्रभुत्व व्यवहार में लाया गया था वही बिना किसी विशेष अन्तर के अब तक चला आ रहा है। वहाँ आजकल जो विधान लागू है वह वही है जो संयुक्त राष्ट्र ने पहले पहल अपनाया था और उसमें एक सौ वर्षों से भी अधिक समय से कोई मौलिक परिवर्तन नहीं हुआ है। एक सौ वर्ष पहले बहुत सी उत्पादक मशीनों का आविष्कार हुआ था लेकिन कौन इस समय एक सौ वर्ष पहले की पुराने ढंग की मशीन व्यवहार करेगा? वह बहुत दिनों से पुराने लोहे की तरह हो गया है। आधुनिक कृषि, उद्योग-धन्धे और व्यवसाय में लगी कोई भी मशीन दस वर्ष से अधिक पुरानी नहीं है क्योंकि हर दशाब्दी में बहुत से आविष्कार और सुधार होते हैं और हर वर्ष कुछ न कुछ विशिष्ट प्रगति होती है। फिर भी एक सौ वर्ष पहले की राजनीतिक मशीन आज भी व्यवहार में है। मानव शक्तियों की इस मशीन में आदमी व्यक्तिगत रूप से इच्छा करते ही अपने को बदल सकता है लेकिन जमे हुए अभ्यासों और जीवन के कामों के घनिष्ट अनुक्रम के कारण सम्पूर्ण संगठन का पुनर्निर्माण नीचे से ऊपर तक आसानी-पूर्वक नहीं किया जा सकता है। बिना किसी प्रकार की क्रान्ति के साधारण समय में पूर्णरूप से पुराने संगठन को हटा देना असम्भव है। यह इस बात का द्योतक है कि पश्चिम की भौतिक मशीन तेजी के साथ आगे बढ़ रही है जबकि राजनीतिक मशीन इतनी कठिनाइयों के साथ इतनी धीमी गति से बढ़ी है।

मैंने अपने पिछले दो व्याख्यानों में कहा है कि पश्चिम के लोगों ने प्रजातन्त्रात्मक शासन चलाने का मौलिक तरीका नहीं निकाला है। क्योंकि

उन्होंने अपनी राजनीतिक मशीन की जाँच सावधानी और बुद्धिमानी से नहीं की है। भौतिक मशीन के प्रथम आविष्कार के समय की मशीन और आज हम जो मशीन देखते हैं इन दोनों के बीच हम नहीं जानते कि कितने हज़ार प्रयोग और सुधार हुए होंगे। मशीन के आविष्कार के पिछले दिनों पर नजर दौड़ाइए तो आप क्या देखते हैं? आपमें से जिसने मशीन के इतिहास को पढ़ा है वे इसके विकास की मनोरंजक कहानियों को जानते हैं। उदाहरण के लिए इंजिन को लीजिए। पहले की इंजिनें केवल एक तरफ (आगे की ओर) चल सकती थीं। वे एक ही ओर जा सकती थीं, आगे-पीछे नहीं की जा सकती थीं जैसा कि आजकल के आधुनिक इंजिनों में होता है। आज की सभी मशीनें आगे-पीछे दोनों तरफ जा आ सकती हैं जैसा कि रेलों और जहाजों में हम देखते हैं। इंजिन चलाने की शक्तियाँ पैदा की जाती हैं: चूल्हे पर पानी गर्म करने का हौज रहता है। हौज पानी से भर दिया जाता है और चूल्हे में कोयले की आँच तब तक दी जाती है जब तक पानी खौलकर भाप न बन जाता है। भाप अपने फैलने की अपरिमित शक्ति के साथ एक नल के द्वारा एक पेटी या सलेन्डर में जाती है। हम जिसे जीवित ठहराव (Live Stop) और विदेशी लोग जिसे पिस्टन (Pistan) कहते हैं वह सलेन्डर में लगा रहता है। पिस्टन ही इंजिन को चलाता है और यह संपूर्ण मशीन का सबसे प्रधान अंग है। सलेन्डर के एक छोर पर स्थित पिस्टन के भीतर भाप जाती है और भाप के शक्ति से पिस्टन सलेन्डर के दूसरे छोर पर जाता जाता है। जब वह भाप खतम हो जाती है तब नया भाप सलेन्डर के दूसरे छोर में प्रवेश करती है और भाप की शक्ति से दूसरे छोर पर पहुँचा हुआ पिस्टन पुनः पीछे अपने पहले स्थान पर चला आता है। बिना रुकावट के निरन्तर पिस्टन का आगे-पीछे जाना-आना मशीन में निरन्तर गति प्रदान करता है। गति पैदा करने के लिए पानी ही की आवश्यकता होती थी लेकिन अब तेल जिसे गैस तेल (Gas oil) कहते हैं, भी व्यवहार में लाया जाता है। वह बड़ा ही भापयुक्त होता है और जैसे ही यह तेल भाप के रूप में परिणत होता है पिस्टन में गति पैदा कर देता है। लेकिन शक्ति पैदा करने के लिए पानी या तेल जो कुछ भी व्यवहार में लाया जाय, पर शक्ति पैदा होने का सिद्धान्त एक ही है। बिना रुकावट के पिस्टन की निरन्तर गति से मशीन घूमती है और हम उससे जो काम लेना चाहते हैं वह करती है।

मशीन स्टीमर चलाती है और रेलगाड़ियाँ खींचती है तथा एक दिन में हजारों मील चलती है और हम जो सामान ले जाना चाहते हैं वे ले जाती हैं।

यह आज अत्यन्त ही आश्चर्यजनक ज्ञात होता है फिर भी पिस्टन की शुरूआत अत्यन्त ही साधारण थी। जब प्रथम-प्रथम पिस्टन का आविष्कार हुआ था तो वह केवल एक ही तरफ भाप ले सकता था और केवल आगे ही बढ़ सकता था। यह सलेन्डर के दूसरे छोर पर भाप ग्रहण नहीं कर सकता था और स्वतः पीछे नहीं आता था अर्थात् उस समय इसका कार्य एकतरफा था। इस कारण मशीन के व्यवहार में बहुत असुविधा होती थी। उदाहरण के लिए, सबसे पहली मशीन जब रुई धुनने के काम में व्यवहार में बहुत असुविधा मशीन के पास पिस्टन को पीछे खींचने के लिए एक लड़के को खड़ा रखना पड़ता था; अन्यथा पिस्टन के लिए फिर से भाप लेकर आगे बढ़ना संभव नहीं हो सकता था। इस आगे-पीछे की चाल में मदद देने के लिए लड़के रखे जाते थे। स्वतः आगे-पीछे जाने वाले आज के पिस्टन और लड़के की मदद से चलने वाले पहले के पिस्टन में कितना अन्तर पड़ गया है। इस आधुनिक स्वतः चलने वाले पिस्टन के विकास की कौन सी सीढ़ियाँ हैं? रुई धुनने वाली मशीन के बनाने वाले इंजिनियर को यह ज्ञान नहीं था कि पिस्टन स्वतः कैसे पीछे आ सके। उस समय के रुई के कारखाने बड़े नहीं थे और यद्यपि एक कारखाने में दस से बीस तक एकतरफा काम करने वाली मशीनें रहती थीं फिर भी हर मशीन में एक लड़के के मदद की जरूरत होती थी। उन लड़कों को, जो प्रतिदिन मशीन के पिस्टन को पीछे खींचने के लिए बहाल किए जाते थे, बराबर एक ही गति से काम करना पड़ता था और उन्हें अपने काम में कोई आनन्द नहीं आता था और वह (काम) उन्हें बड़ा दुःखदायी मालूम होता था। एक मेठ उन लोगों के काम की देखभाल करता था ताकि वे लड़के अपने काम में कोताही न करें। अगर एक क्षण के लिए भी मेठ बाहर चला जाता था तो लड़के पिस्टन खींचना छोड़ देते थे और खेलने लगते थे। उनमें एक लड़का बड़ा प्रतिभाशाली परन्तु बहुत ही आलसी था। वह बराबर अपने हाथ से मशीन खींचना नहीं चाहता था इसलिए उसने हाथ से खींचने की जगह कोई दूसरा तरीका निकालने की कोशिश की। उसने मशीन के ऊपर इस ढंग से एक डोरी और एक छड़ी बांध दी कि पिस्टन आगे जाकर अपनी जगह पर पुनः बिना खींचे ही आ जाता था। लड़के के बिना खींचे ही पिस्टन स्वतः पीछे लौट आता था और इस प्रकार बिना रुकावट के वह (मशीन) चलती रहती था। इस लड़के के आविष्कार को तुरत ही दूसरे लड़कों ने भी नकल कर ली और जल्दी-जल्दी सब लड़कों ने अपनी-अपनी मशीनों को डोरी और छड़ी के मदद से चलने योग्य बना दिया

और वे मशीन पर बिना ध्यान दिए चारों ओर खेलने फिरने लगे। उस दिन जब सेठ लौटकर आया और उसने सब लड़कों को मशीन के पास खड़ा होकर पिस्टन खींचते हुए नहीं देखा बल्कि उन्हें खेलते हुए पाया तो वह बड़ा आश्चर्यचकित हुआ और बोला—'यह कैसी बात है कि ये सभी लड़के खेल रहे हैं फिर भी मशीन स्वतः आगे-पीछे चलती हुई अपना काम कर रही है ! बच्चों ने कौन-सी चालाकी चली है ? यह तो जरूर ही बड़ा अजूबा है !' सेठ ने मशीन के स्वतः चलने की जाँच की और अपनी जाँच का फल इंजिनियर से कहा। इंजिनियर ने अनुभव किया कि बच्चों की प्रणाली एकदम ध्यान देने योग्य है और उसीका अनुसरण कर उसने मशीन के आविष्कार में बहुत से सुधार किए। इस प्रकार हमारी आधुनिक स्वतः चलने वाली मशीनें बनी हैं।

प्रजातंत्रात्मक शासन की मशीन एक सौ वर्षों के अन्दर बदली नहीं गई है। अगर हम इस मशीन की जाँच करें तो हमें पता चलेगा कि भिन्न-भिन्न देशों में प्रजातंत्र का प्रयोग केवल वोट देने के अधिकार तक ही हुआ है। इसका अर्थ यह हुआ कि जनता को केवल एक तरफ चलने की शक्ति है दूसरी तरफ चलने की नहीं। वह केवल अपनी सार्वभौमिकता दे सकती है पर वापस नहीं ले सकती है। यह प्रारम्भिक इंजिन के समान है। लेकिन एक बार छोटे लड़के को पता लग गया था कि रस्सी का एक टुकड़ा और छड़ी के सहारे मशीन अपनी ही शक्ति से स्वतः आगे-पीछे जा-आ सकती है। आधुनिक प्रजातंत्रात्मक शासन को अब तक कोई आलसी लड़का नहीं मिला है जो उसे जनता की सार्वभौमिकता के प्रत्यावर्तन का रास्ता बता सके। इसलिए प्रजातंत्र सरकार की मशीन एक सौ वर्षों के बाद भी केवल वोट देने के अधिकार तक ही सीमित है। बहुत दिनों के बाद भी इस अवस्था से अधिक प्रगति नहीं हुई है। जो लोग पद के लिए चुन लिए जाते हैं उन्हें नियंत्रण में रखने का कोई उपाय नहीं है चाहे वे योग्य सिद्ध हों या अयोग्य। प्रजातंत्र की मशीन में गड़बड़ी होने के कारण ही ऐसी हालत है और जिसके फलस्वरूप प्रजातंत्रात्मक सरकार ने कार्य-प्रणाली का अच्छा तरीका नहीं पाया है। और उसने बहुत ही कम प्रगति की है। अगर हम मशीन को सुधारना चाहते हैं तो हमें क्या करना चाहिए ? जैसा कि मैंने अपने पिछले व्याख्यान में कहा है हमें सार्वभौमिकता और योग्यता के बीच साफ-साफ भेद कर लेना चाहिए।

पुनः मशीन का उदाहरण लीजिए। मशीन में उसे नियंत्रण करने और उसे चलाने की शक्ति स्पष्ट रूप से अलग-अलग रहती है। मशीन का एक पुर्जा

काम करता है और दूसरा उसमें गति पैदा करता है और हर पुर्जे के कामों की अपनी सीमा होती है। एक जहाज की मशीन को लीजिए। इस समय सबसे बड़े-बड़े जहाज पचास या साठ हज़ार टन के होते हैं और जो मशीन उन्हें चलाती है उसकी शक्ति एक लाख घोड़े की शक्ति से अधिक होती है। फिर भी एक आदमी ठीक-ठीक उसका नियंत्रण कर लेता है। अगर वह आदमी चाहता है तो जहाज तुरत चलने लगता है; अगर वह उसे रोकना चाहता है तो वह तुरत रुक जाता है। मशीन की प्रगति इस आश्चर्यजनक दर्जे तक पहुँच गई है। जब पहले पहल मशीन का आविष्कार हुआ था तो आदमी कई सौ या एक हज़ार घोड़े से अधिक शक्ति की मशीन चलाने का साहस नहीं कर सकता था क्योंकि अगर मशीन बहुत अधिक घोड़े की शक्ति वाली होती थी तो उसे वह नियंत्रित नहीं कर सकता था। साधारणतः हम मशीन का आकार घोड़े की शक्ति से नापते हैं। एक घोड़े की शक्ति आठ सम्मिलित व्यक्तियों की शक्ति के बराबर है। दस हज़ार घोड़ों की शक्ति का अर्थ अस्सी हज़ार आदमियों की शक्ति है। आधुनिक बड़े-बड़े व्यापारी या जंगी जहाजों को चलाने के लिए उनमें एक लाख से दो लाख तक घोड़ों की शक्ति वाली मशीनें लगी रहती हैं। अगर नियन्त्रण पूर्ण नहीं है तो समूची मशीन एक बार आगे की ओर चालू कर देने पर पुनः पीछे नहीं की जा सकती है; वह चला दी जा सकती है पर ठहराई नहीं जा सकती। अपनी मशीन का परीक्षण करते समय नियन्त्रण की कमी के कारण बहुत से आविष्कारकों को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा है। मानव-इतिहास इस प्रकार की दुर्घटनाओं से भरा पड़ा है। उस मशीन को जो चला तो दी जा सकती है पर रोकी नहीं जा सकती है, विदेशी लोग फ्रैंकेन्सटीन (Frankenstein) कहते हैं। लेकिन मशीन बनाने का काम जैसे-जैसे तरक्की करता गया लाख या दो लाख घोड़ों की शक्ति वाली मशीनों को भी बिना किसी खतरे के शान्तिपूर्वक एक आदमी नियंत्रित कर सकता है। एक लाख घोड़ों की शक्ति का अर्थ है आठ लाख मनुष्यों की शक्ति; दो लाख घोड़ों की शक्ति का अर्थ है सोलह लाख आदमियों की शक्ति। साधारणतः सोलह लाख आदमियों को नियंत्रित करना आसान नहीं है। एक या दो लाख की सेना का नियंत्रण करना एक आदमी के लिए कठिन होता है। फिर भी एक आदमी शान्तिपूर्वक सोलह लाख मनुष्य शक्तिवाली मशीन का नियंत्रण कर ले सकता है। इससे हम देखते हैं कि आधुनिक मशीनों ने बहुत ही तरक्की की है और नियंत्रण के तरीकों में भी आश्चर्यजनक सुधार हुआ है।

राजनीतिज्ञ और कानून के विद्यार्थी अब शासन को मशीन और कानून को यंत्र कहते हैं और हमारा आधुनिक प्रजातंत्रात्मक युग जनता को सरकार की प्रेरक शक्ति समझता है। पुराने समय के निरंकुश शासन-युग में राजा ही प्रेरक शक्ति था और राज की सभी कारवाइयाँ उसीके द्वारा प्रेरित होती थीं। सरकार को जितनी ही अधिक शक्ति होती थी उतना ही अधिक राज का वैभव समझा जाता था। राजकीय आज्ञाओं को ठीक तरह से लागू करने के लिए मजबूत सरकार की अत्यन्त ज़रूरत थी। चूँकि मशीन के पीछे राजा की शक्ति थी इसलिए एक दृढ़ सरकार के बल पर राजा के लिए अपने ऊँचे पद से अपनी इच्छानुसार कोई भी काम करना संभव हो सका जैसे राजनीतिक सुधार की प्रेरणा देना, लम्बे समय तक प्रजा को सताना, लड़ाई के लिए तैयार होना या कोई और काम। इसलिए निरंकुश शासन के युग में सरकार की बढ़ती हुई शक्ति से राजा को फायदा हुआ, हानि नहीं। लेकिन प्रजातंत्र के युग में जनता ही सरकार की प्रेरक शक्ति है। तब वह क्यों मजबूत सरकार नहीं चाहती है? क्योंकि अगर सरकार बहुत अधिक शक्तिशाली होती है तो वह उस पर नियंत्रण नहीं रख सकेगी और उसी (सरकार) के द्वारा सताई जाएगी। चूँकि वह बराबर अपनी सरकार द्वारा बुरी तरह से सताई गई थी और उससे वह बहुत पीड़ित हुई थी इसलिए सरकार की शक्ति को सीमित कर वह भविष्य में सताए जाने से बचने की कोशिश करती है। मशीन के प्रारम्भिक युग में एक छोटा लड़का आगे गए पिस्टन को पीछे खींच ले सकता था। इससे यह पता चलता है कि मशीन में बहुत थोड़ी शक्ति थी यानी कुछ घोड़ों की शक्ति से अधिक नहीं। दस हजार घोड़ों की शक्ति वाली मशीन एक लड़के द्वारा नहीं खींची जा सकती है। चूँकि मशीन को नियंत्रण करने के तरीकों में बहुत त्रुटियाँ थीं इसलिए लोग कम शक्तिवाली मशीनों के अलावे दूसरी मशीनें चलाने का साहस नहीं करते थे। आज प्रजातंत्र का प्रारम्भिक काल है और सरकार को नियंत्रित रखने की प्रणाली में भी त्रुटि है। प्रजातंत्र में स्वभावतः ही जनता प्रेरक शक्ति होती है लेकिन जनता में इतनी योग्यता भी होनी चाहिए की वह किसी समय अपने द्वारा दी गई शक्ति का प्रत्यावर्त्तन भी कर सके। इसलिए जनता केवल कमजोर सरकार चाहती है क्योंकि वह कई लाख घोड़ों की शक्ति वाली सरकार पर नियंत्रण नहीं रख सकती है। इसलिए वह उसे (मजबूत सरकार को) व्यवहार में लाने का साहस नहीं करेगी। पश्चिम की जनता को शक्तिशाली सरकार का डर उसी प्रकार है जिस प्रकार पुराने कारखानों को मजबूत मशीनों का डर था। अगर

छोटी- छोटी मशीनें प्रारम्भ में नहीं सुधारी जातीं तो मशीनों में कभी भी प्रगति नहीं होती और उन्हें पीछे चलाने के लिए बराबर आदमियों की जरूरत बनी ही रहती। लेकिन तब से आज तक बराबर सुधार होते रहने के कारण मशीनों को पीछे खींचने के लिए आदमियों की जरूरत नहीं पड़ती है और वे स्वतः आगे पीछे चल सकती हैं। लेकिन अपनी राजनीतिक मशीन के सुधार करने के बारे में जनता नहीं सोचती है और तब तक उसे (सरकार को) अधिक शक्ति देने में डरती है जब तक कि उसे (जनता) इतनी सामर्थ्य नहीं हो जाती है कि वह अपनी दी हुई शक्ति को लौटा भी सके। इसके विपरीत वह बराबर सरकार के अधिकारों को सीमित करने के बारे में सोचा करती है। जिसके फलस्वरूप प्रजातंत्र को विकसित होने और प्रगति करने का अवसर भी नहीं रह गया है। संसार की वर्तमान प्रवृत्तियों को देखकर हम कह सकते हैं कि प्रजातंत्रात्मक विचारों में तो नियमित रूप से प्रगति हो रही है लेकिन प्रजातंत्रात्मक सरकार के नियंत्रण करने की दिशा में कुछ भी प्रगति नहीं होती है। यही कारण है कि पश्चिम के प्रजातंत्रात्मक राष्ट्रों ने अब तक कार्य करने का मौलिक तरीका नहीं पाया है।

जैसा कि मैंने अपने पिछले व्याख्यान में कहा है, हमें सार्वभौमिकता और योग्यता में जरूर अन्तर कर लेना चाहिए। अगर हम इस अन्तर को मशीन वाले उदाहरण पर लागू करें तो योग्यता या शक्ति का कहां स्थान होगा? मशीन स्वयं योग्यता और शक्ति का केन्द्र है। एक लाख घोड़ों की शक्ति वाली मशीन ठीक परिमाण में कोयला और पानी पाकर ठीक-ठीक योग्यता और शक्ति पैदा करेगी। सार्वभौमिकता कहां है? मशीन को नियंत्रित करने वाले इंजीनियर के पास सार्वभौमिकता है। चाहे मशीन की शक्ति कितनी भी क्यों न हो इंजीनियर केवल अपना हाथ घुमाएगा और मशीन चलने लगेगी और तुरत चलने लगेगी अथवा रुकेगी और तुरत रुक जाएगी। इन्जीनियर मशीन का नियंत्रण कर सकता है और उसे अपनी इच्छानुसार घुमा-फिरा सकता है। मशीन जब चलने लगती है तो वह (इंजीनियर) स्टीमर या रेलगाड़ी को बहुत तेजी से ले जा सकता है और मशीन को बंदकर वह स्टीमर और रेलगाड़ी का चलना रोक भी सकता है। तब मशीन ही योग्य और शक्तिशाली चीज़ है जब कि इंजीनियर एक आदमी है जिसे बहुत अंशों में सार्वभौमिकता प्राप्त है। अगर जनता अपनी सरकार के नियंत्रण करने में सार्वभौमिकता और योग्यता या शक्ति के बीच अन्तर करे तो वह उस इंजीनियर की तरह होगी जो बड़ी मशीन का नियंत्रण करता है।

अगर प्रजातंत्र का विकास पूर्णरूप से हो जाय और सरकार प. नियंत्रण करने के तरीके भी पूर्ण हो जाएं तो शासन-व्यवस्था में बड़ी शक्ति आएगी। लेकिन जनता को केवल अपनी राष्ट्रीय महासभा में ही अपनी राय जाहिर करनी होगी। अगर वह सरकार की आलोचना करती है तो वह (जनता) उसे मिटा सकती है; अगर वह सरकार की प्रशंसा करती है जो वह (जनता) उसे (सरकार को) मजबूत भी बना सकती है। लेकिन आज ऐसी अवस्था है कि अगर सरकार उच्छृङ्खल ढंग से चलती है तो जनता के पास उसे नियंत्रण करने को कुछ नहीं है। वैसी हालत में चाहे जनता सरकार की कितनी भी आलोचना या प्रशंसा क्यों न करे उसकी बातें व्यर्थ होंगी और सरकार उस पर कुछ ध्यान नहीं देगी। आज शासन-व्यवस्था में कोई प्रगति नहीं हो रही है जब कि प्रजातंत्रात्मक भावनाएं बढ़ रही हैं। संसार के सभी देशों की जनता इस बात को महसूस कर रही है कि वर्तमान राजनीतिक मशीन उसकी भावनाओं और आवश्यकताओं की पूर्त्ति नहीं कर रही है।

चीन क्रान्ति के युग में है। हम प्रजातंत्रात्मक शासन-व्यवस्था की वकालत कर रहे हैं। हममें प्रजातन्त्रात्मक विचार पश्चिम से आए हैं। हम थोड़े अरसे से सोचते आ रहे हैं कि हम कैसे इन विचारों की नकल करें और लोकप्रिय शासन के अन्दर एक राष्ट्र का निर्माण करें। हम जब पहले-पहल इस प्रकार के राज के बारे में सोच रहे थे तब क्रान्तिकारियों के एक उत्साही समुदाय ने इस बात पर विश्वास किया कि अगर हम ठीक-ठीक पश्चिम की नकल करते हैं और सीधे पश्चिम वालों की लकीर पर चलते हैं तो चीन का प्रजातंत्र पूर्णता की सीमा तक प्रगति कर जाएगा। पहले इस प्रकार के विचार एकदम गलत नहीं थे क्योंकि चीन का पुराना निरंकुश शासन इतना दूषित हो गया था कि अगर हम क्रान्ति के बाद निरंकुश शासन का खातमा कर पश्चिम से सीखकर रचनात्मक कार्य प्रारम्भ कर सकते तो हम निश्चय ही पहले के शासन काल से अच्छी दशा में रहते। लेकिन क्या पश्चिम के लोग अपने राष्ट्रीय और सामाजिक जीवन से पूर्ण संतुष्ट हैं? अगर हम पश्चिम की शासन-व्यवस्था और समाज का ध्यान-पूर्वक अध्ययन करें तो हमको पता चलेगा कि अमेरिका तथा फ्रांस जैसे तथाकथित प्रथम क्रान्तिकारी राजों की जनता अब तक भी शासन-व्यवस्था में सुधार करने की बात करती है और अभी भी क्रान्ति की बात सोचती है। जब एक शती पहले ही उनके यहाँ क्रान्ति हो चुकी थी तो अब फिर दूसरी क्रान्ति की बात वह क्यों सोचती है? यह सिद्ध करता है कि हम उस सम

गलत रास्ते पर थे जब हमने सोचा था कि पश्चिम का अनुकरण करना हमें पूर्णता की ऊँची सीढ़ी तक पहुँचा देगा। और अगर हम पूर्णरूप से संयुक्त राष्ट्र और फ्रांस की नकल करें, जो अभी भी क्रान्ति करने की बात सोच रहे हैं, तो आज से एक सौ वर्ष के बाद पुनः इसी क्रान्ति से हम अपना पिंड नहीं छुड़ा सकते हैं। क्योंकि संयुक्त राष्ट्र और फ्रांस की शासन-व्यवस्था रूपी मशीन में अभी भी बहुत दोष हैं और न वह जनता की इच्छा को पूर्ण करती है और न उसे पूर्ण सुख ही देती है। इसलिए हमें अपने प्रस्तावित पुनर्निर्माण में कभी भी नहीं सोचना चाहिए कि अगर हम वर्तमान युग के पश्चिम की नकल करते हैं तो प्रगति की अंतिम सीढ़ी तक पहुँच जाएँगे और पूर्ण संतुष्ट रहेंगे। अगर हम पश्चिम का फटकन लेते हैं तो क्या आने वाली हर पीढ़ी अपने से पहले की पीढ़ी से अधिक असंतुष्ट नहीं रहेगी और क्या अन्त में पुनः हमें दूसरी क्रान्ति नहीं करनी पड़ेगी? अगर दूसरी क्रान्ति का होना ज़रूरी है तो क्या हमारी पहली क्रान्ति व्यर्थ का प्रयास नहीं रही? हम इस क्रान्ति को रखकर क्या करेंगे जिसमें केवल व्यर्थ का अपव्यय है। सुदृढ़ सरकार और स्थायी शांति के लिए—एक बड़े कार्य के बाद चिर-स्थायी विश्राम के लिए—और भविष्य में आपदाओं को रोकने के लिए हम कौन सा रास्ता अख्तियार करेंगे?

क्या हम पश्चिमी प्रणाली अपने यहाँ पूरी की पूरी लागू कर सकते हैं? पश्चिम की भौतिक सभ्यता की सबसे नयी चीज़ को लीजिए। सबसे सुविधा-जनक यातायात का साधन रेल है। पूर्वी देशों में सबसे पहले रेल का व्यवहार जापान ने किया। हाल से चीन ने भी रेल की उपयोगिता और उसके बनाने की आवश्यकता महसूस की है। विदेशी रेल-प्रणाली को अपने यहाँ लागू करने में चीन जापान से बहुत पीछे रहा है। लेकिन वर्तमान काल की जापान और चीन की रेलों की तुलना कीजिए। अगर आप जापान और चीन दोनों देशों की रेलों से सफर कर चुके हैं तो आप जानते हैं कि जापान की रेल-लाइनें बहुत तंग हैं तथा गाड़ियों के डब्बे भी बहुत छोटे-छोटे हैं जब कि चीन की रेल-लाईनें जैसे संघाई नानकिङ् रेल-लाइन या पेकिङ् हाङ्क्वो रेल-लाइन, काफ़ी चौड़ी है और गाड़ियों के डब्बे भी काफ़ी बड़े हैं। चीन की रेल-लाइनें जो जापान की रेल-लाइनों के बाद में बनी हैं क्यों अधिक चौड़ी हैं और गाड़ियों के डिब्बे क्यों अधिक बड़े हैं? क्योंकि चीन ने पश्चिम के सबसे नए आविष्कार के ढांचे पर अपने वहाँ रेल-लाइनें बिछाई हैं जब कि जापान ने पुराने ढांचे का अनुसरण किया है। अगर चीन पश्चिम

के सबसे नवीन ढांचे की अपेक्षा जापान के पुराने ढांचे पर अपनी लाइनें बनाता तो क्या हम संतुष्ट होते ? यूरोप और अमेरिका में पहले केवल तंग रेल लाइनें ही थीं और वहाँ की गाड़ियों के डब्बे भी छोटे होते थे। जापान ने प्रारम्भ में इसी ढाँचे पर अपने यहाँ रेल लाइनें बनायीं और अनजाने ही खराब फन्दे में फँस गया। क्या रेल लाइनों के बनाने में हमें भी असुविधा-जनक पुराने ढाँचे का अनुकरण करना चाहिए ? वास्तव में, चीन जापान के पुराने ढांचे की नकल नहीं कर रहा है बल्कि उसने सबसे अच्छे और नवीन पश्चिमी ढाँचे को अपनाया है। इसके फलस्वरूप हमारी रेल लाइनें जापान से कहीं अच्छी हैं। 'अन्तिम प्रथम हो गया है।' इसी कारण से हमको राजनीतिक सुधार में पश्चिम के पुराने तरीकों को नहीं अख्तियार करना चाहिए; बल्कि हमें पश्चिम की राजनीतिक हालतों का सावधानीपूर्वक अध्ययन करना चाहिए। हमें देखना चाहिए कि वास्तव में शासन-व्यवस्था की दिशा में पश्चिमी राष्ट्र कितनी दूर तक प्रगति कर चुका है और तब उनके सबसे नये आविष्कारों को सीखना चाहिए। तभी हम दूसरे राष्ट्रों से बाजी मार सकते हैं।

जैसा कि मैंने पिछले एक व्याख्यान में कहा है कि यूरोप और अमेरिका प्रजातन्त्र की समस्यायों में अध्ययन की गहराई में नहीं उतरे हैं और इस कारण वहाँ की जनता का अपनी सरकार के साथ नित्य संघर्ष बना रहता है। प्रजातन्त्र की शक्ति नई है पर प्रजातंत्र की मशीन पुरानी है। अगर हम प्रजातन्त्र की कठिनाइयों को दूर करना चाहते हैं तो हम दूसरी मशीन बनाएँ—एकदम नई मशीन, जिसके बनाने का सिद्धान्त होगा कि सार्वभौमिकता और योग्यता दो भिन्न चीज़ें हैं। जनता को सार्वभौमिकता मिलनी चाहिए और मशीन को योग्यता तथा शक्ति। वर्तमान काल की अच्छी और शक्तिशाली मशीनें ऐसी हैं जिन्हें आदमी अपनी इच्छानुसार चालू कर सकता है और रोक सकता है। मशीन के क्षेत्र में पश्चिम ने त्रुटिहीन और एकदम दुरुस्त मशीन-आविष्कार किए हैं लेकिन शासन-व्यवस्था के क्षेत्र में उनकी खोज बहुत ही अपूर्ण रही है। अगर हम शासन-व्यवस्था में पूरा परिवर्त्तन लाना चाहते हैं तो अनुसरण करने के लिए हमारे सामने कोई आदर्श नहीं है। बल्कि हमें स्वयं ही नया रास्ता निकालना है। क्या हम ऐसा करने के योग्य हैं ? बॉक्सर-विद्रोह के बाद से चीन ने पूर्णरूप से आत्मविश्वास खो दिया है। जनता में विदेशी राष्ट्रों पर पूर्ण विश्वास करने की और अपने प्रति अविश्वास करने की मनोवृत्ति हो गई है। स्वयं ही उसे कुछ करना चाहिए

या कोई मौलिक आविष्कार करना चाहिए उसे असम्भव जान पड़ता है। वह तो केवल पश्चिम के पीछे दौड़ती है और उसीके तरीकों की नकल करती है। बॉक्सर-विद्रोह के पहले हममें आत्मविश्वास भरा था। लोगों को विश्वास था कि चीन की प्राचीन सभ्यता पश्चिमी सभ्यता से बढ़-चढ़कर है, चीन के लोग बौद्धिक योग्यता में पश्चिम से बढ़े हुए हैं और हम किसी तरह की भी खोज और आविष्कार कर सकते हैं। हम अब सोचते हैं कि वैसी बात तो हमसे बहुत दूर चली गई। हम यह नहीं देखते हैं कि पश्चिमी सभ्यता केवल अपने भौतिक रूप में ही मजबूत है, विभिन्न राजनीतिक मामलों में नहीं। भौतिक सभ्यता के वैज्ञानिक सिद्धान्तों का जहाँ तक ताल्लुक है यूरोप और अमेरिका ने हाल के वर्षों में आश्चर्यजनक उन्नति की है। लेकिन अगर वे ज्ञान के एक क्षेत्र में बढ़े-चढ़े हैं तो इसका यह अर्थ नहीं है कि वे ज्ञान के सभी क्षेत्रों में भी बढ़े-चढ़े ही होंगे। बहुत से क्षेत्रों में वे केवल अज्ञानी ही बने रह सकते हैं। उनका भौतिक विज्ञान गत शताब्दी में उच्चता की चरम सीमा तक विकसित हो गया है और उनके बहुत से आविष्कारों ने 'प्रकृति के अधिकार को छीन' लिया है जो हमारी ऊँची से ऊँची कल्पना के भी परे की बात है। लेकिन यह कहना कि जो बात उन्होंने राजनीतिक विज्ञान में नहीं सोची है उसे हम भी नहीं सोच सकते हैं या उसका आविष्कार नहीं कर सकते हैं, युक्तिसंगत नहीं है। हाल के वर्षों में पश्चिम ने मशीन बनाने में सचमुच बड़ी प्रगति की है लेकिन इससे यह नहीं सिद्ध होता कि उसकी राजनीतिक प्रणाली में भी प्रगति हुई है। दो या तीन शतियों से पश्चिम की विशेषता केवल विज्ञान के क्षेत्र में ही रही है। बड़े-बड़े वैज्ञानिक स्वभावतः ही अपनी-अपनी ज्ञान की शाखा में काफी बढ़े-चढ़े हैं लेकिन यह कोई जरूरी नहीं है कि वे ज्ञान के सभी क्षेत्रों में बढ़े-चढ़े ही हों। इसके उदाहरण के लिए एक बड़ी अच्छी कहानी है।

न्यूटन (Newton) नामक एक बड़े अंगरेज वैज्ञानिक हो गए हैं, जिनकी बराबरी में कोई भी आधुनिक वैज्ञानिक नहीं पहुँचा है। न्यूटन बड़े ही प्रतिभाशाली और विद्वान थे। उन्होंने भौतिक विद्वान के क्षेत्र में बहुत ही युगान्तरकारी आविष्कार किए हैं; जिनमें सबसे प्रधान गुरुत्वाकर्षण का सार्वभौमिक सिद्धान्त है। यह प्रथम-प्रथम न्यूटन द्वारा प्रतिपादित किया गया था और तब से यह सिद्धान्त विज्ञान का आधारभूत सिद्धान्त हो गया है। यह सिद्धान्त तब से आविष्कृत सभी अन्य सिद्धान्तों से बढ़कर है। न्यूटन को विज्ञान के क्षेत्र में कमाल हासिल था लेकिन हमें देखना चाहिए कि क्या वे दूसरी

बातों में भी उसी प्रकार योग्य थे ? जब मैं उनकी जीवनी पढ़ता हूँ तो मुझे पता चलता है कि वे सभी बातों में बुद्धिमान नहीं थे और मेरी इस बात को सिद्ध करने के लिए एक बड़ी मनोरंजक घटना है। बचपन से ही न्यूटन पढ़ने और अनुसन्धान करने की उत्कट इच्छा के साथ-साथ बिल्ली से बड़ा प्रेम था। एक समय उनके पास दो बिल्लियाँ थीं, एक छोटी और एक बड़ी जो उनके साथ बराबर रहती थीं। चूँकि उन्हें बिल्ली से बड़ा प्रेम था इसलिए वे बराबर बिल्ली की इच्छानुसार चलते थे। जब वे अपनी कोठरी के अन्दर पढ़ते या अनुसन्धान करते रहते थे और उनके साथ रहने वाली बल्लियाँ अगर बाहर जाना चाहती थीं तो वे सब काम बन्दकर बल्लियों का बाहर जाने देने के लिए दरवाज़ा खोलते थे। अगर बिल्लियाँ बाहर से कोठरी के भीतर आना चाहती थीं तो वे सब काम बन्द कर उन्हें आने देने के लिए दरवाजा खोलते थे। लेकिन बिल्लियाँ इतनी बाहर-भीतर जाती आती थीं कि वे अत्यन्त ही दुःखप्रद सिद्ध हुईं। इसलिए एक दिन न्यूटन ने सोचा कि वे एक ऐसा रास्ता निकालेंगे कि जिससे बिल्लियाँ बिना काम में बाधा दिए स्वतन्त्रतापूर्वक बाहर-भीतर जा आ सकें। उनका रास्ता क्या था ? उन्होंने दरवाजे में दो सूराख किए—एक बड़ा और एक छोटा। बड़ा सूराख बड़ी बिल्ली के लिए और छोटा सूराख छोटी के लिए ! यह उस बड़े वैज्ञानिक की प्रतिभा की उपज थी ! साधारण बात है कि अगर बड़ी बिल्ली सूराख बड़े से सकती है तो छोटी भी उसी सूराख से निकल जा सकती है और इसलिए एक ही सूराख काफी था। क्यों तब छोटे सूराख के बनाने में समय बरबाद किया गया ? लेकिन महान् विद्वान् न्यूटन ने दो सूराख ही बनाए थे। कितनी बड़ी असंगत बात है ! क्या वे सभी बातों में बुद्धिमान् थे ? यह कहानी बताती है कि नहीं थे; चूँकि वे एक क्षेत्र में काफी बड़े-चढ़े थे इसका यह अर्थ नहीं होता है कि वे सभी क्षेत्रों में उसी तरह बढ़े-चढ़े थे।

पश्चिमी विज्ञान इतनी दूर तक बढ़ गया है कि उसने भौतिक मशीन को भी स्वतः दोतरफा चलने वाला बना दिया है। लेकिन सरकार के ऊपर जनता की सार्वभौमिकता एकतरफा ही है—वह केवल आगे बढ़ाई जा सकती है पीछे लौटाई नहीं जा सकती। जब हम अपने प्रजासत्तात्मक राज के पुनर्निर्माण के लिए प्रजातन्त्र की बात करते हैं तो हमें एकदम से नया प्रजातन्त्र और नया प्रजासत्तात्मक राज कायम करना चाहिए। अगर हमें पश्चिम के प्रगतिशील राष्ट्रों का पूर्णरूप से अनुसरण नहीं करना है तो हमें स्वयं ही नया और अच्छा रास्ता ढूँढ़ निकालना चाहिए। क्या हम ऐसा करने के योग्य हैं ?

अगर हम इस प्रश्न का उत्तर देना चाहते हैं तो हम अपने को बराबर तिरस्कृत नहीं समझें और 'अपनी निंदा स्वयं अपने को छोटा और तुच्छ कहकर नहीं करें।' चीन में प्रजातन्त्र की धारा बह गई है और अपने राष्ट्र के पुनर्निर्माण के लिए हम इसका स्वागत करते हैं। लेकिन क्या हम इसके व्यवहार के लिए स्वयं नया और अच्छा रास्ता निकाल सकते हैं? हज़ारों वर्षों से चीन स्वतंत्र रहा है। अपने पहले की राजनीतिक प्रगति में हमने कभी दूसरे देशों से कुछ नहीं लिया। संसार की सबसे प्राचीन सभ्यताओं में से चीन की सभ्यता एक है और उसे कभी भी दूसरे देशों से कोई चीज़ पूर्णरूप से नकल करने की ज़रूरत नहीं पड़ी है। केवल हाल के वर्षों में पश्चिमी संस्कृति हमसे अधिक आगे बढ़ गई है और इस नई सभ्यता के जोश ने हमारी क्रान्ति को जागृत किया है। अब क्रान्ति सत्य में चरितार्थ हो गई है। हम स्वभावतः ही चीन को पश्चिम से श्रेष्ठ देखना चाहते हैं और संसार में उसे नया और सबसे अधिक प्रगतिशील राष्ट्र बनाना चाहते हैं। इस आदर्श तक पहुँचने के लिए हममें निश्चय ही आवश्यक योग्यता है। लेकिन हमें पश्चिम की प्रजातंत्र प्रणाली की केवल नकल नहीं करनी चाहिए। ये प्रणालियाँ पुराने ढंग की मशीन हो गई हैं।

अपने आदर्श तक पहुँचने के लिए हम एक नई मशीन तैयार करें। इस प्रकार की नई मशीन बनाने के लिए क्या संसार में कोई सामान है? हाँ, विभिन्न देशों में बहुत-सा सामान बिखरा हुआ है लेकिन हम पहले अपनी आधारभूत कार्य-प्रणाली को ठीक कर लें और यह कार्य-प्रणाली है सार्वभौमिकता और योग्यता के बीच का अन्तर जिसके बारे में मैं पहले चर्चा कर आया हूँ। जब हम प्रजातंत्र को कार्यान्वित करते हैं तो हमें राज के संगठन और प्रजातंत्र की व्यवस्था को अलग कर लेना चाहिए। पश्चिमी राष्ट्रों ने इन आधारभूत सिद्धान्तों के जरिए नहीं सोचा है और सार्वभौमिकता और शक्ति या योग्यता के बीच अन्तर नहीं किया है। जिनके फलस्वरूप उनकी सरकार की शक्ति नहीं बढ़ी है। अब हमने अपने आधारभूत सिद्धान्तों को तय कर लिया है। हम एक कदम और आगे बढ़े और शासन-व्यवस्था की मशीन को विभक्त करें। इस काम को करने के लिए हम शासन-व्यवस्था की बातों को अच्छी तरह समझ लें। प्रथम व्याख्यान में मैंने सरकार की परिभाषा की है कि सरकार जनता की चीज है और सम्पूर्ण जनता द्वारा सम्पूर्ण जनता के काम को नियंत्रित करती है। शासन-व्यवस्था की मशीन जो सार्वभौमिकता और योग्यता या शक्ति के बीच के भेद के सिद्धान्त को मान

कर निर्माण की जाती है उस प्रकार की भौतिक मशीन है जिसमें स्वतः शक्ति है और जो बाहरी शक्ति द्वारा नियन्त्रित नहीं होती है। नए आविष्कारों के द्वारा नया राज संगठित करने के लिए इन दो प्रकार की शक्तियों में अन्तर कर लेना चाहिए। लेकिन कैसे? हम शासन-व्यवस्था की परिभाषा के साथ इसका प्रारम्भ करें। शासन-व्यवस्था या राजनीति सम्पूर्ण जनता के सम्बन्ध की चीज़ है और इसके केन्द्रीयकरण की शक्ति राजनीतिक सार्वभौमिकता है। तब राजनीतिक सार्वभौमिकता का अर्थ लोकप्रिय सार्वभौमिकता होता है और सरकार जो जनता के जीवन को नियंत्रित करने वाली शक्तियों को केन्द्रित करती है, शासन शक्ति या शासन अधिकारिणी कहलाती है।

जब राजनीति में दो शक्तियाँ हैं—जनता की राजनीतिक शक्ति और सरकार की शासन-प्रबन्ध की शक्ति। एक नियंत्रण करने की शक्ति है और दूसरी स्वतः सरकार की शक्ति है। इसका क्या अर्थ है? एक जहाज में एक लाख घोड़ों की शक्ति वाला इंजिन लगी है। एक लाख घोड़ों की शक्ति का उत्पादन करना और जहाज को चलाना मशीन की अपनी शक्ति है और इस शक्ति की तुलना सरकार की शक्ति से की जा सकती है। लेकिन बड़े जहाज को आगे-पीछे दाएं-बाएं चलाना, उसका रोकना, उसके चाल की गति—ये सभी बातें अच्छे इंजिनियर के नियंत्रण पर निर्भर करती हैं। एकदम दुरुस्त मशीन के नियंत्रण करने और उसे चलाने के लिए इंजिनियर का होना जरूरी है। पूर्ण नियंत्रण से शक्तिशाली जहाज इच्छानुसार चलाया और रोका जा सकता है। नियंत्रण की इस शक्ति की तुलना सरकार के ऊपर नियंत्रण करने की शक्ति से की जा सकती है, जो कि राजनीतिक सार्वभौमिकता है। नये राज का बनाना नये जहाज के समान है। अगर हम कम शक्तिशाली मशीन लगाते हैं तो जहाज की गति स्वभावतः ही धीमी होगी, उस पर कम लादा जा सकेगा और उस जहाज के चलाने से कम मुनाफा होगा। लेकिन अगर हम बड़ी शक्ति वाली मशीन लगाते हैं तो जहाज तेजी से चलेगा, अधिक बोझ ढो सकेगा और उससे बहुत नफा कमाया जा सकेगा। मान लीजिए कि एक लाख घोड़ों की शक्ति वाला जहाज जो बीस नॉट (Knots) की गति से केण्टन और संघाई के बीच दो सप्ताह के भीतर आता-जाता है, एक लाख मुनाफा एक बार में करता है। तब मान लीजिए हम एक जहाज बनाते हैं जिसमें दस लाख घोड़े की शक्ति वाली मशीन है और जिस कारण वह ५० नॉट की गति से चल सकता है और जो केण्टन से

संघाई तक एक ही सप्ताह में जा-आ सकता है तो हमें दस लाख का नफा एक बार के ही आने-जाने में होगा। संसार का सबसे अधिक तेज चलने वाला जहाज अभी बीस या तीस नॉट से अधिक तेजी के साथ नहीं चल सकता है। लेकिन अगर पचास नॉट की गति वाला जहाज हम बना सकें तो उससे कोई भी दूसरा जहाज होड़ नहीं ले सकता और तब हमारे पास संसार में सबसे तेज चलने वाला सबसे बड़ा जहाज होगा। यही सिद्धान्त राज के निर्माण करने में भी लागू किया जा सकता है। अगर हम कम शक्तिवाली कमजोर सरकार कायम करते हैं तो उसके कार्य सीमित होंगे और उससे जो प्राप्ति होगी वह भी नगण्य होगी। लेकिन अगर हम बड़ी शक्तिवाली मजबूत सरकार कायम करते हैं तो उसके कार्य विस्तृत होंगे और उससे प्राप्ति भी अधिक होगी। अगर संसार के सबसे बड़े राज में शक्तिशाली सरकार की स्थापना की जाय तो क्या वह राज सबसे आगे नहीं बढ़ जाएगा? क्या वह आकाश के नीचे सबसे बड़ा राष्ट्र नहीं होगा?

क्यों पश्चिमी राष्ट्रों के पास अधिक शक्तिशाली जहाज तो है पर अधिक शक्तिशाली दृढ़ सरकारें नहीं हैं? वे केवल अधिक मशीनों का नियंत्रण कर सकते हैं लेकिन अधिक शक्तिशाली सरकारों को नियंत्रण करने का रास्ता उन्हें नहीं मिला है। कम शक्ति वाले पुराने जहाजों को हटाकर अधिक शक्ति-वाले नये जहाजों का बना लेना आसान है लेकिन राज की जड़ बहुत नीचे तक रहती है और पुरानी कमजोर सरकार की जगह नई शक्तिशाली सरकार की स्थापना करना बहुत कठिन काम है। चालीस करोड़ जनसंख्या वाला चीन संसार का सबसे अधिक आबादी वाला देश है। इसकी सीमा काफ़ी विस्तृत है और यहाँ उपज बहुत अच्छी और प्रचुर होती है—संयुक्त राष्ट्र अमेरिका से भी बढ़कर। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका अब संसार में सबसे धनी और शक्तिशाली राष्ट्र हो गया है और उसकी तुलना किसी दूसरे राष्ट्र से नहीं की जा सकती है। जब हम अपनी प्राकृतिक सम्पत्ति की तुलना संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की प्राकृतिक सम्पत्ति से करते हैं तो ऐसा जान पड़ता है कि चीन संयुक्त राज से आगे बढ़ सकता है। लेकिन दर असल बात यह है कि ऐसा इस समय केवल असम्भव ही नहीं है बल्कि एक साँस में दोनों देशों का एक साथ उल्लेख भी नहीं हो सकता है। इसका कारण यह है कि चीन में आवश्यक योग्यता तो है पर हममें काम करने की चेष्टा का अभाव है। हमारे यहाँ वास्तव में कभी अच्छी सरकार नहीं रही। लेकिन अगर हम अपनी स्वाभाविक योग्यता में मानवीय चेष्टा की क्षमता जोड़ दें तथा पूर्ण

और दृढ़ सरकार की स्थापना करें जो अधिक शक्ति का प्रदर्शन करे तो चीन तुरत संयुक्त राष्ट्र के साथ प्रगति करने लगेगा !

चीन में शक्तिशाली सरकार की स्थापना के बाद हमें पश्चिम के लोगों की तरह से भय नहीं करना चाहिए कि सरकार बहुत अधिक शक्तिशाली हो जाएगी और हमारे हाथ से निकल जाएगी। क्योंकि हमारे पुनर्निर्माण की योजना में सम्पूर्ण राज की राजनीतिक शक्ति दो भागों में विभक्त है। राजनीतिक अधिकार जनता के हाथों में रहेंगे जिसे पूर्ण सार्वभौमिकता रहेगी और जो प्रत्यक्ष रूप से राज की कारर्वाइयों पर नियंत्रण कर सकेगी। यह राजनीतिक अधिकार लोकप्रिय सार्वभौमिकता है। दूसरी शक्ति सरकार है जिसे हम पूर्णरूप से शासन-व्यवस्था का अधिकार दे देंगे और जो काफ़ी शक्तिशाली होगी और राज के सभी कामों का प्रबन्ध करेगी। यह राजनीतिक शक्ति सरकार की शक्ति है। अगर जनता के हाथों में पूर्ण राजनीतिक सार्वभौमिकता है और सरकार पर नियंत्रण करने के तरीके अच्छी तरह लागू किए जाते हैं तो हमारे लिए डरने की कोई बात नहीं है कि सरकार अधिक शक्तिशाली और अनियंत्रित हो जाएगी। पश्चिमी लोगों ने पहले पहल एक लाख घोड़ों की शक्ति वाली मशीन बनाने का साहस नहीं किया। चूँकि मशीन त्रुटिपूर्ण होती थी और उसे नियंत्रित करने का साधन भी पूर्ण नहीं था। इसलिए लोग उसकी शक्ति से डरते थे और उसे नियंत्रित करने का खतरा नहीं उठाते थे। लेकिन अब मशीन में इतना आश्चर्यजनक सुधार हो गया है और मशीन अपने में ही इतनी अच्छी बनी रहती है तथा नियंत्रण करने की यंत्र-रचना इतनी पूर्ण है कि पश्चिम के लोग अधिक से अधिक घोड़ों की शक्ति वाली मशीन बना रहे हैं। अगर हम बहुत सुधरी हुई राजनीतिक मशीन बनाना चाहते हैं तो हमें भी उसी मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। हमें पूर्ण और शक्तिशाली सरकार चाहिए और साथ-साथ सरकार को नियंत्रित करने के लिए लोकप्रिय सार्वभौमिकता के ठोस तरीके भी होने चाहिए। पश्चिम की शासन-व्यवस्था में इस तरह का पूर्ण और प्रभावोत्पादक नियंत्रण का अभाव है इसलिए वह अधिक प्रगति नहीं कर रही है। हमें पश्चिम की लकीर पर नहीं चलना चाहिए। शासन-व्यवस्था के सम्बन्ध में विचार करते समय जनता की सार्वभौमिकता और शक्ति में भेद करना चाहिए। हम राज की बड़ी राजनीतिक शक्तियों का विभाजन करें—पहली सरकार की शक्ति हो और तब जनता की शक्ति। इस प्रकार के विभाजन से सरकार मशीन की तरह और जनता इंजिनियर की तरह हो जाएगी। तब जनता का रुख अपनी

सरकार के प्रति उसी तरह का होगा जैसा इंजिनियर का अपनी मशीन के प्रति होता है।

मशीन बनाने में इतनी प्रगति की गई है कि केवल यंत्र संबंधी ज्ञान रखने वाला व्यक्ति ही नहीं बल्कि एक छोटा लड़का भी जिसे मशीन का कुछ भी ज्ञान नहीं है, उसे नियंत्रित कर सकता है। उदाहरण के लिए बिजली की रोशनी को लीजिए जो अब आम व्यवहार में आती है। जब बिजली पहले पहल आविष्कृत हुई तो वह आकाश की बिजली की तरह ही बड़ी भयानक चीज़ थी। चूँकि उससे नियन्त्रण का अच्छा तरीका नहीं था इसलिए उससे बहुत आदमियों की मृत्यु हो जाती थी। फलस्वरूप पहले पहल जो लोग बिजली संबंधी विज्ञान पढ़ने लगे उनमें से बहुत वैज्ञानिक बिजली के शिकार हुए। खतरा इतना अधिक था कि बिजली के आविष्कार के बहुत दिनों बाद तक लोग उसे रोशनी के काम में लाने का साहस न कर सके। तब नियन्त्रण की अच्छी और प्रभावोत्पादक प्रणाली आविष्कृत हुई और अब बिजली का बटन दबाने से ही रोशनी जल उठती है या गुल हो जाती है। बटन दबाने का यह काम बहुत आसान और निरापद है। बिना बिजली के ज्ञान का भी शहर का एक बच्चा या देहात का एक अपढ़ आदमी अपने हाथ से बिजली का बटन दबा सकता है। इस प्रकार सबसे खतरनाक शक्ति—बिजली अब रोशनी के काम में भी लाई जाती है।

दूसरी मशीनों के विकास की भी ऐसी ही कहानी है। अत्यन्त हाल में आविष्कृत हुई मशीनों में वायुयान की मशीन बड़ी ही खतरनाक है। जब पहले पहल यह व्यवहार में लाई गई तो अनगिनत आदमियों को अपने जान से हाथ धोना पड़ा। क्या आपको क्वाङ् तुङ् के फङ् रु की याद है ? वह वायुयान की मशीन चलाने वाला था। और जब वह एक बार उस मशीन को चला रहा था कि मशीन जमीन पर गिर पड़ी और वह मर गया। आविष्कार के प्रारम्भिक दिनों में लोग उसके व्यवहार को नहीं जानते थे इसलिए हवाई जहाज बनाने वालों को जहाज उड़ाना भी पड़ता था। पहले समय के उड़ाकू, जिनकी मशीन में त्रुटिरहित और प्रभावोत्पादक नियंत्रण यन्त्र नहीं रहता था और जिन्हें हवाई जहाज चलाने का अनुभव भी नहीं था, ठीक से मशीन को नहीं चला सकते थे। इसलिए बहुत से उड़ाकू गिरकर मर गए। जिससे साधारण लोग हवाई जहाज पर चढ़ने से डरते थे। लेकिन अब नियन्त्रण यन्त्र एकदम पूर्ण और प्रभावोत्पादक हो गया है और बहुत से आदमियों को पक्षी की तरह हवा में आगे-

पीछे, ऊपर-नीचे उड़ने का अनुभव हो गया है। वे जानते हैं कि वायुयान द्वारा यात्रा करना कितना आसान और निरापद है। इसलिए अब साधारण लोग भी हवाई जहाज पर चढ़ने से नहीं डरते हैं। फलस्वरूप अब नियमित रूप से वायुयान यातायात का साधन हो गया है। क्वाङ्तुङ् से सच्वान् तक की सड़क काफी लम्बी है और रास्ते में शत्रुओं का भी डर रहता है। स्थल या जल-मार्ग से यात्रा करना अत्यन्त ही कठिन और दुष्कर है। लेकिन हवाई जहाज द्वारा हम सीधे और जल्दी से सच्वान् जा सकते हैं।

चीन के लोगों के दिल में प्रजातन्त्र की भावना आ गई है। लेकिन संसार में अब तक ऐसी कोई मशीन नहीं आविष्कृत हुई है जिससे यह भावना प्रकट की जा सके। जनता इसका व्यवहार नहीं जानती है। हम लोग जो दूरदर्शी और विस्तृत दृष्टि रखने वाले हैं, उन्हें ही यह मशीन बनानी चाहिए। हमें अत्यन्त ही उपयोगी और निरापद बिजली का बटन बनाना चाहिए जिससे साधारण लोग भी जान सकें कि वह आसानीपूर्वक हाथ से कैसे व्यवहार में लाया जाता है। तब प्रजातन्त्र की भावना वास्तविकता के रूप में परिणत होगी। पश्चिम की अपेक्षा चीन प्रजातन्त्र की भावना अपनाने में पीछे रहा है जिस प्रकार कि वह रेलगाड़ी बनाने में जापान से पीछे रहा था। यद्यपि जापान ने चीन से पहले ही रेल लाइनें बनाना प्रारम्भ किया था फिर भी उसकी रेल लाइनें पुराने ढंग की हैं और आधुनिक व्यवहार के योग्य नहीं हैं। हमारी नई बनी रेल लाइनें सभी आधुनिक आवश्यकताओं को पूरी करती हैं। पश्चिम से जो प्रजातन्त्र हमने लिया है उसे कार्यान्वित करने के लिए हम कौन-कौन से तरीके व्यवहार करेंगे? इन तरीकों को सोच निकालने के बाद ही प्रजातन्त्र हमारे काम का हो सकेगा। पहले से ही सावधानीपूर्वक तैयारी किए बिना अगर हम प्रजातन्त्र को कार्यान्वित करने पर जोर देंगे तो हम बड़ी कठिनाई का अनुभव करेंगे और वह हमारे लिए मृत्युदायी हो सकता है। क्या प्रजातन्त्र को कार्यान्वित करने के वैसे तरीके कहीं हैं? यूरोप के स्विटजरलैंड में कुछ तरीके हैं जो अपूर्ण हैं और जिनका व्यवहार उसने किया है। वे उग्रवादी हैं और उन्होंने जनता को प्रत्यक्ष रूप से सार्वभौमिक शक्ति दी है। लेकिन वह शक्ति पूर्ण नहीं। यूरोप के बड़े-बड़े राष्ट्र उन अपूर्ण तरीकों को भी व्यवहार में नहीं लाए है। चूँकि छोटा सा राष्ट्र स्विटजरलैंड प्रत्यक्ष सार्वभौमिकता को अपूर्ण तरीकों को व्यवहार में लाया है इसलिए बहुत से लोग पूछते हैं कि क्या वे बड़े राष्ट्रों में भी कार्यान्वित किए जा सकते हैं? बड़े-बड़े राष्ट्र स्विटजरलैंड के

तरीके क्यों नहीं व्यवहार में लाते हैं ? क्योंकि वे जापान की तरह हैं जिसके पास पहले से तङ्ग रेल लाइनें हैं और जो अब बड़ी लाइनें बनाने में काफी समय और काफी धन लगाने से डरता है। यह आर्थिक दृष्टि से बड़ी ही लचर नीति है। चूँकि वे 'कठिनाई से डरकर बहाना खोजते हैं' और धन लगाने से डरते हैं इसलिए वे उन्नत लोग नई आविष्कृत चीजों से अच्छी तरह परिचित होते हुए भी उनका व्यवहार नहीं करते हैं। लेकिन हमारे चीन में कभी भी प्रजातन्त्र की मशीन नहीं रही है इसलिए हमें सबसे नया और सबसे अच्छा आविष्कार चुनने और उसे व्यवहार करने के योग्य होना चाहिए।

प्रजातन्त्र को कार्यान्वित करने के तरीकों में सबसे नए आविष्कार क्या हैं ? पहला आविष्कार वोट देने का अधिकार है और तथाकथित सभी आधुनिक प्रजातन्त्रों में यही एक तरीका चालू है। क्या शासन-व्यवस्था के लिए लोकप्रिय सार्वभौमिकता का एक अंग ही यथेष्ट है ? इस एक शक्ति की तुलना पहले ही मशीनों से की जा सकती है जो सिर्फ आगे बढ़ सकती थी पर पीछे नहीं आ सकती थीं। नव आविष्कृत दूसरा तरीका प्रत्यावर्तन का (Power of recall) है। इस अधिकार से जनता मशीन को पीछे खींच सकती है। ये दोनों अधिकार—वोट देने के और प्रत्यावर्तन करने के—जनता के अपने कर्मचारियों पर नियंत्रित करने में समर्थ बनाते हैं और इनके द्वारा जनता सरकार के सभी कर्मचारियों को उनके पद पर रखती है या उन्हें उनके पद से हटा सकती है। राजकर्मचारियों की बहाली और बर-खास्ती जनता की स्वतन्त्र इच्छानुसार होती है जैसा कि इंजिन के बेरोक चाल से आधुनिक मशीन आगे-पीछे जाती-आती है। राजकर्मचारियों के अलावे दूसरी ज़रूरी चीज़ राज के कानून हैं। 'शासन करने वाले आदमियों के पास शासन करने के तरीके भी तो चाहिए।' अगर सम्पूर्ण जनता सोचती है कि अमुक कानून उसके बड़े फायदे का होगा तो उसे उस कानून के बनाने का अधिकार होना चाहिए ताकि वह कानून बनाकर उसे कार्यान्वित करने के लिए सरकार के हाथों में सौंप दे। यह तीसरे प्रकार का लोकप्रिय अधिकार है जो कानून प्रनयन का अधिकार (Power of Initiative) कहलाता है। अगर सम्पूर्ण जनता सोचती है कि कोई पुराना कानून उसके लिए लाभप्रद नहीं है तो उसे यह अधिकार होना चाहिये कि वह उसमें सुधार करे और सुधरे हुए कानून को पुराने कानून की जगह कार्यान्वित करने के लिए सरकार को दे। यह लोकप्रिय सार्वभौमिकता का चौथा अंग है जो कानून संशोधन का अधिकार (right of referendum)

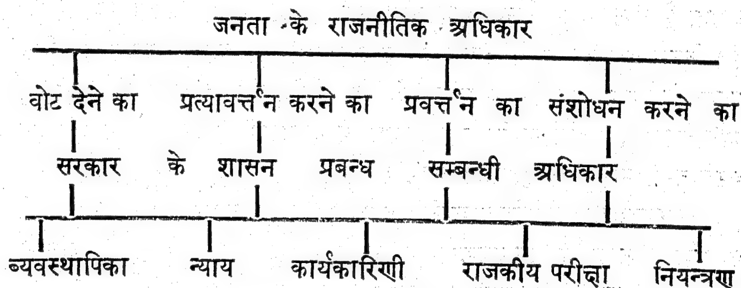
कहलाता है। जब जनता को ये चार अधिकार प्राप्त हो जाते हैं तभी हम कह सकते हैं कि प्रजातन्त्र की प्रणाली पूर्ण है और जब ये चारों अधिकार प्रभावोत्पादक ढङ्ग से प्रयोग में लाए जाते हैं तो हम कह सकते हैं कि पूर्ण और प्रत्यक्ष लोकप्रिय सार्वभौमिकता लागू है। पूर्ण प्रजातन्त्र लागू न होने के पहले जनता अपने कर्मचारियों और प्रतिनिधियों को चुनती थी और तब उन्हें अपने नियंत्रण में नहीं रख सकती थी। वह केवल अप्रत्यक्ष प्रजातन्त्र या प्रतिनिधि-मूलक शासन-प्रणाली थी। जनता प्रत्यक्ष रूप से नहीं बल्कि अपने प्रतिनिधि-द्वारा सरकार पर नियंत्रण रख सकती थी। सरकार पर प्रत्यक्ष नियंत्रण रखने के लिए यह ज़रूरी है कि जनता लोकप्रिय सार्वभौमिकता के चारों अंगों को व्यवहार में लाए। तभी हम सम्पूर्ण जनता द्वारा शासन चलाने की बात कह सकते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि हमारे चालीस करोड़ लोग राजा होंगे और वे जनता के चार अधिकारों द्वारा अपनी राजकीय प्रभुता जताएँगे और राज के बड़े-बड़े कामों का नियंत्रण करेंगे। ये चार अधिकार चार नल या चार बिजली के बटन के समान हैं। नल द्वारा हम सीधे बहते हुए पानी का नियंत्रण कर सकते हैं। बिजली के बटन में हम सीधे बिजली की रोशनी को नियंत्रित कर सकते हैं। जनता के चार अधिकार द्वारा हम राज की सरकार को सीधे नियंत्रित रख सकते हैं। ये चारों ही चार राजनीतिक अधिकार कहलाते हैं और ये सरकार को नियंत्रित करने के अधिकार हैं।

काम-काज करने का सरकार का अपना अधिकार काम करने का—जनता की तरफ से काम करने का—अधिकार कहा जा सकता है। अगर जनता अत्यन्त शक्तिशाली है तो सरकार काम कर सकती है या नहीं, और वह किस ढंग का काम करती है सम्पूर्णतया जनता की इच्छा पर निर्भर करेगा। अगर सरकार अत्यन्त शक्तिशाली है तो जैसे ही वह काम करना प्रारम्भ करेगी तो वह अपनी बड़ी शक्ति दिखला सकती है और जब जनता उसे रोकना चाहेगी उसे रुकना पड़ेगा। सारांश यह कि अगर जनता को सरकार की शक्ति पर सीधा नियंत्रण है तो वह सरकार के कार्य को किसी भी समय राष्ट्र में कर सकती है। जंगी जहाज से एक उदाहरण लिया जा सकता है। पुराने ढंग के एक विदेशी जंगी जहाज में बारह बन्दूकें होती थीं जो छः विभिन्न खटालों में रखी जाती थीं और बहुत से बन्दूक चलानेवालों को शत्रुओं पर गोली चलाने के लिए अलग-अलग निशाना लगाने का काम करना पड़ता था। ऐसी दशा में नियन्त्रण करने वाला अफ़सर गोली चलाने

के काम का नियन्त्रण सीधे तौर से नहीं कर सकता था। पर आधुनिक नये जंगी जहाजों में जहाज परिचालन करने के गुम्बज के ऊपर निशाना लगाने का एक यंत्र लगा रहता है और निशाना लगाने का लेखा-जोखा नियंत्रण अफ़सर के कमरे में होता है। वहाँ से सीधे बिजली के नियंत्रण द्वारा बन्दूक का निशाना लगाया जाता है। इसलिए अब जब जंगी जहाज को दुश्मनों का मुकाबला करना होता है तो बहुत से अलग-अलग गोलन्दाजों को निशाना ठीक करना या बन्दूक चलाना नहीं पड़ता है। नियंत्रण अफ़सर अपनी कोठरी में बैठता है और लक्ष्यशोधक की रिपोर्ट पाकर और दूरी (दुश्मनों के जहाज की दूरी) का हिसाब लगाकर वह बिजली के यंत्र को ठीक करता है जिससे एक बन्दूक एक दिशा में छूटती है या कुल बारहों बन्दूकों का निशाना बाँधा जाता है और वे एक साथ छोड़ी जाती हैं। नियंत्रण अफ़सर जैसा चाहता है सभी बन्दूकें वैसी ही छूटती हैं और गोलियाँ ठीक निशाने पर गिरती हैं। केवल इस प्रकार का प्रबन्ध ही प्रत्यक्ष नियंत्रण कहला सकता है लेकिन प्रत्यक्ष नियंत्रण का यह मतलब नहीं है कि नियंत्रण अफ़सर स्वयं ही सब काम करता है। कोई मशीन तभी काम की हो सकती है जब कि वह व्यवहार करने वाले मनुष्य के मुताबिक काम करे।

सरकार के नियन्त्रित करने के लिए जब जनता इन चार अधिकारों का प्रयोग करती है तो सरकार अपना काम पूरा करने के लिए कौन से तरीके लागू करेगी। सरकार को अच्छी तरह अपना काम पूरा करने के लिए उचित विभागों का रखना ज़रूरी है और इसके लिए 'पंच अधिकार विधान' (Quintuple Power Constitution) होना ही चाहिए। जब तक सरकार पंच अधिकार विधान पर आधारित नहीं होती है वह पूर्ण नहीं है और जनता के लिए वह अच्छी तरह काम नहीं कर सकती है। मैं पहले एक अमरीकी विद्वान् के विषय में कह चुका हूँ जिन्होंने नया सिद्धान्त प्रतिपादित किया है कि राष्ट्र सबसे अधिक सर्वशक्ति-सम्पन्न अनियन्त्रित सरकार से डरता है फिर भी वह सबसे अधिक एक सर्वशक्ति सम्पन्न सरकार के लिए इच्छुक रहता है जिसका जनता व्यवहार कर सके और जिससे जनता की भलाई हो। लोकप्रिय सरकार वास्तव में तब तक नहीं हो सकती है जब तक कि सर्वशक्ति-सम्पन्न सरकार जनता के द्वारा जनता की भलाई के लिए गठित न हो। हम अब सार्वभौमिकता और योग्यता में भेद कर रहे हैं। हम कहते हैं कि जनता इंजिनियर के समान है और सरकार मशीन के समान। एक तरफ हम चाहते हैं कि शासन-व्यवस्था की मशीन सर्वशक्तिशाली हो जिससे वह सभी प्रकार

के कामों को कर सके। दूसरी ओर हम यह चाहते हैं कि जनता रूपी इंजिनियर काफ़ी शक्तिशाली हो जिससे वह शक्तिशाली मशीन पर नियन्त्रण कर सके। जनता और सरकार के पास कौन-कौन अधिकार होने चाहिए ताकि वे आपस में सन्तुलित रह सकें। जनता के चार अधिकारों—वोट देने, प्रत्यावर्त्तन करने, प्रवर्त्तन करने और संशोधन करने—के बारे में मैं पहले ही कह चुका हूँ। सरकार को पाँच अधिकार होना चाहिए—कार्यकारिणी का, व्यवस्थापिका का, न्याय का, राजकीय परीक्षा का और नियन्त्रण का। जनता के चार राजनीतिक अधिकार सरकार के पाँच अधिकारों का नियन्त्रण करते हैं तब हमारी पूर्ण प्रजातन्त्रात्मक शासन-व्यवस्था होगी और जनता तथा सरकार की शक्ति अच्छी तरह सन्तुलित रहेगी। नीचे का चित्र इन अधिकारों के बीच के सम्बन्ध को साफ़-साफ़ समझने में मदद करेगा।



सबसे ऊपर राजनीतिक अधिकार जनता के हाथों में है और शासन प्रबन्ध का अधिकार नीचे सरकार के हाथों में है। जनता वोट देने के, प्रत्यावार्त्तन करने के, प्रवर्त्तन करने के और संशोधन करने के अधिकारों द्वारा सरकार का नियन्त्रण करती है। सरकार जनता के लिए व्यवस्थापिका, न्याय, कार्यकारिणी, राजकीय परीक्षा और नियन्त्रण विभागों द्वारा कार्य करती है। इन नौ अधिकारों के कार्यान्वित होने और इनके आपस में सन्तुलित रहने से प्रजातन्त्र की समस्या वास्तविक रूप से हल होगी और सरकार के लिए एक निश्चित पथ निर्धारित हो जाएगा। इस नई योजना के लिए सामान आज से पहले ही आविष्कृत हो चुका है। स्विटजरलैंड ने पहले से ही प्रत्यावर्त्तन को छोड़ शेष तीन अधकारों का प्रयोग किया है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के उत्तर-पश्चिमी राजों ने स्विटजरलैंड के तीन राजनीतिक अधिकारों में प्रत्यावर्त्तन का आधिकार भी जोड़कर अपने यहाँ चारों अधिकारों को लागू किया है। संसार में विस्तृत पैमाने पर वोट देने का अधिकार

जनता द्वारा बर्ता जाता है। स्विटजरलैंड पहले से ही तीन राजनीतिक अधिकारों का प्रयोग कर रहा है और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के एक चौथाई हिस्से में चार अधिकार कार्यान्वित हो रहे हैं। जहाँ चारों अधिकार सावधानीपूर्वक और पूर्णरूप से लागू किए गए हैं वहाँ फल भी आश्चर्यजनक हुआ है। ये अनुभव-सिद्ध बातें हैं केवल कल्पित आदर्श की नहीं। इन तरीकों को व्यवहार करने से हम सुरक्षित रहेंगे और किसी खतरे में नहीं पड़ेंगे।

पहले सभी सरकारी अधिकारों पर राजाओं या सम्राट का एकाधिकार होता था लेकिन क्रान्तियों के बाद वे तीन भागों में बांट दिए गए। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद एक सरकार की स्थापना की जिसमें तीन विभागों का सामंजस्य था और इसका फल भी आश्चर्यजनक हुआ। दूसरे राष्ट्रों ने भी संयुक्त राष्ट्र का अनुकरण किया। लेकिन विदेशी सरकारों ने कभी भी इन तीन शक्तियों से अधिक का व्यवहार नहीं किया है। ये तीन शक्तियाँ हैं—व्यवस्थापिका, कार्यकारिणी और न्याय। हमारे 'पञ्च अधिकार विधान' की दो नई शक्तियों का क्या स्रोत है? ये प्राचीन चीन से ली गई हैं। चीन में बहुत पहले से ही राजकीय परीक्षा और नियन्त्रण करने की प्रणालियाँ थीं और वे बड़ी प्रभावोत्पादक थीं। मांचू राजकुल के राजकीय नियन्त्रण करने वालों ने या इतिहास-लेखकों ने और थाङ् राजकुल के समय के सरकारी सलाहकारों ने बड़ी ही सुन्दर नियन्त्रण प्रणाली स्थापित की थी। नियन्त्रण के अधिकार में अभियोग लगाना (Power to impeach) तक सम्मिलित है। दूसरे देशों में यह व्यवस्थापिका विभाग के साथ मिला हुआ है, कोई अलग सरकारी विभाग के रूप में यह नहीं है। वास्तविक प्रतिभाशाली और योग्य आदमियों का परीक्षा द्वारा चुनना चीन में हज़ारों वर्षों से चला आ रहा है। आधुनिक विदेशी विद्वानों में से जिन्होंने चीन की संस्थाओं का अच्छी तरह अध्ययन किया है वे चीन की प्राचीन स्वतंत्र परीक्षा प्रणाली की प्रशंसा करते हैं और योग्य आदमियों को चुनने के लिए इस प्रणाली की नकल पश्चिम में भी हुई है। ग्रेट ब्रिटेन की राजकीय परीक्षा की प्रणाली चीन की प्राचीन प्रणाली के आदर्श पर बनी है। लेकिन वहाँ केवल छोटे अफ़सरों की परीक्षा ली जाती है। ब्रिटिश प्रणाली में चीन की स्वतंत्र राजकीय परीक्षा की भावना नहीं पाई जाती है। चीन के राजनीतिक इतिहास में सरकार के तीन अधिकार—न्याय, व्यवस्थापिका और कार्यकारिणी—सम्राट के हाथों में थे। राजकीय परीक्षा और नियंत्रण के अधिकार सम्राट के हाथों में नहीं थे। इस प्रकार

चीन की प्राचीन निरंकुश सरकार के पास भी तीन विभागों का होना कहा जा सकता है। इसलिए पश्चिम की निरंकुश सरकारों की अपेक्षा, जिनमें राजाओं पर सम्राटों के पास सभी शक्तियों का एकाधिकार था, चीन की निरंकुश सरकार भिन्न थी। चीन के निरंकुश शासन-युग में सम्राट को भी राजकीय परीक्षा और नियंत्रण की शक्तियों पर पूर्ण अधिकार नहीं था। इसलिए चीन में एक प्रकार से सरकार के तीन सम्मिलित विभाग थे जैसा कि पश्चिम के आधुनिक प्रजातंत्रात्मक राष्ट्रों में तीन विभाग हैं। केवल अन्तर इतना ही था कि चीन की सरकार निरंकुशता, नियंत्रण और राजकीय परीक्षा के अधिकारों को कई हज़ार वर्षों से व्यवहार में लाई है जब कि पश्चिम की सरकारें न्याय, व्यवस्थापिका और कार्यकारिणी को केवल एक शताब्दी के कुछ पहले से काम में ला रही हैं। जो कुछ हो, पश्चिम में सरकार के अधिकारों का अपूर्ण ढंग से प्रयोग हुआ है और प्राचीन चीन के भी तीन सम्मिलित अधिकारों से बहुत सी बुराइयाँ पैदा हुई थीं। अगर हम चीन की अच्छाइयों और पश्चिम की अच्छाइयों को मिलाना और उन्हें भविष्य में होने वाली बुराइयों से बचाना चाहते हैं तो हम पश्चिम की सरकार के कार्यकारिणी, व्यवस्थापिका और न्याय के अधिकारों को अपनाएँ और उनमें चीन के राजकीय परीक्षा और नियन्त्रण के पुराने अधिकारों को जोड़ दें और पंच अधिकार सरकार रूपी पूर्ण दीवार का निर्माण कर लें। इस प्रकार की सरकार सबसे पूर्ण और उत्तम होगी और इस ढंग की सरकार वाला राज निश्चय ही जनता का, जनता के द्वारा और जनता के लिए होगा।

इन चार लोकप्रिय अधिकारों और सरकार के पांच अधिकारों में हरेक का अपना क्षेत्र और अपना काम है। हम उन्हें अलग-अलग कर दें और एक में गड़बड़ नहीं होने दें। आज भी बहुत से ऐसे लोग हैं जो इन विभिन्न अधिकारों में भेद नहीं कर सकते हैं। केवल साधारण लोग ही नहीं बल्कि विशेषज्ञ भी गलती कर जाते हैं। हाल में ही मुझे एक साथी से मुलाकात हुई थी जो तुरन्त ही अमेरिका से स्नातक होकर आए थे। मैंने उनसे पूछा—'आप क्रान्तिकारी सिद्धान्तों के विषय में क्या सोचते हैं?' उन्होंने उत्तर दिया—'मैं पूरी तरह से उनके पक्ष में हूँ।' मैंने उनसे पुनः पूछा—'आपने विदेश में जाकर किस विषय का अध्ययन किया है।' उन्होंने उत्तर दिया—'राजनीतिक विज्ञान और कानून का।' मैंने पुनः उनसे पूछा—'मैं जनता की जिस सार्वभौमिकता का प्रचार कर रहा हूँ उसके सम्बन्ध में आपका क्या

विचार है ?' उन्होंने उत्तर दिया—'पंच अधिकार विधान तो आश्चर्यजनक चीज़ है। हर आदमी इसका स्वागत करेगा।' राजनीतिक विज्ञान और कानून के इस विशेषज्ञ ने मेरी प्रश्न की बारीकियों को एकदम नहीं समझा। यह इस बात का द्योतक है कि उन्होंने साफ-साफ चार अधिकारों और पांच अधिकारों के बीच के भेद को नहीं समझा था और जनता तथा सरकार के बीच के सम्बन्ध के बारे में उनका विचार उलझा हुआ था। वे यह नहीं जानते थे कि पाँच अधिकार सरकार के अधिकार हैं।

कार्य करने के सरकारी अधिकार यांत्रिक शक्तियों की तरह हैं। इस बड़ी मशीन को हमें पाँच दिशाओं में चालू करना चाहिए जिसमें कि वह अपरिमित घोड़ों की शक्ति पैदा कर सके और सुचारु रूप से कार्य कर सके। लोकप्रिय अधिकार नियंत्रण करने के अधिकार हैं जिन्हें जनता प्रत्यक्ष रूप से इस बहुशक्तिशाली मशीन पर प्रयोग करती है। हम जनता के चार अधिकारों को चार नियंत्रण यंत्र कह सकते हैं जिन्हें जनता मशीन को चलाने और रोकने में व्यवहार करती है। सरकार जनता के लिए काम करती है और उसके पाँच अधिकार पाँच तरह के कार्य हैं या काम करने की पाँच दिशाएँ हैं। जनता सरकार का नियन्त्रण करती है और उसके चार अधिकार नियन्त्रण के चार तरीके हैं। जब सरकार को विभिन्न दिशाओं में काम करने के ऐसे अधिकार और सुविधाएँ दी जाएँगी तभी उसकी प्रतिष्ठा और प्रभुता बढ़ सकेगी और वह शक्तिशाली सरकार बन सकेगी। जब जनता को बड़े अधिकार और सरकार पर प्रतिबंध रखने के अनेक साधन दिए जाएँगे तभी वह सरकार के सर्वशक्तिशाली और अनियन्त्रित होने से नहीं डरेगी। तब जनता किसी भी समय सरकार को चलने और रुकने की आज्ञा दे सकेगी। सरकार की प्रतिष्ठा बढ़ेगी और जनता की शक्ति बढ़ेगी। सरकार के लिए इस प्रकार के शासन-प्रबंध सम्बन्धी अधिकारों और जनता के लिए इस प्रकार के राजनीतिक अधिकारों द्वारा हम अमेरिका के विद्वान के आदर्श को सर्वशक्ति-सम्पन्न सरकार का जनता की भलाई के लिए खोज करना पा सकेंगे और नवसंसार-निर्माण की राह को प्रशस्त कर सकेंगे।

प्रजातंत्र के लागू होने पर वास्तविक अवस्था क्या होती है और हमें प्रजातंत्र का प्रबन्ध किस प्रकार करना चाहिए ये बातें हम तभी साफ-साफ और अच्छी तरह समझ सकेंगे जब हम वोट देने, प्रत्यावर्तन करने, प्रवर्तन करने और संशोधन करने की व्यवस्था करने लगेंगे। इन व्याख्यानों में मैं जनता

की सार्वभौमिकता की सभी बातों को नहीं कह सका हूँ। वे जो इस विषय का और अधिक गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करना चाहते हैं वे 'सभी जनता द्वारा शासन'* नामक पुस्तक को पढ़ें जिसे श्री ल्याव् चुङ् खाइ ने चीनी भाषा में अनुवाद किया है'

अप्रेल २६, सन् १९२४ ई०

---

* यह एक अंगरेजी पुस्तक है जिसका नाम है 'गवर्मेंट बाय ऑव दि पिपुल'।

जीविका का सिद्धान्त

पहला व्याख्यान

आज मेरे व्याख्यान का विषय मिन् षङ् चु-इ यानी जनता की जीविका का सिद्धान्त है। मिन् षङ् चीन का एक बहुत प्राचीन मुहावरा है। हम क्वो चि मिन् षङ् या राष्ट्रीय भलाई और जनता की जीविका के बारे में बातचीत किया करते हैं। लेकिन हम इस मुहावरे का केवल प्रयोग ही करते हैं; वास्तव में इसे समझने की कोशिश नहीं करते। मैं देखता हूँ कि वह हमारे लिए बहुत सार्थक नहीं रहा है। लेकिन अगर इस वैज्ञानिक युग में हम इस मुहावरे को वैज्ञानिक चर्चा का विषय बनाएँ और इसके सामाजिक तथा आर्थिक पहलुओं का अध्ययन करें तो हमें पता चलेगा कि इसके अन्दर असीम तत्व छिपा हुआ है। मैं आज मिन् षङ् की परिभाषा करता हूँ। यह जनता की जीविका, समाज के अस्तित्व, राष्ट्र की भलाई और जन-समुदाय के जीवन का द्योतक है। अब मैं मिन् षङ् मुहावरे का गत शताब्दी या इससे अधिक समय से पश्चिम में उठी एक बड़ी समस्या—साम्यवाद—के वर्णन में प्रयोग करूँगा। जीविका का सिद्धान्त साम्यवाद है, समाजवाद है और मनोराज्य है। लेकिन यह सिद्धान्त कुछ परिभाषाओं से नहीं समझा जा सकता है। अगर आप इसे अच्छी तरह समझना चाहते हैं तो इन व्याख्यानों को शुरू से अन्त तक सुनिए।

जीविका की समस्या हर देश में लहर की तरह से उठ रही है। लेकिन यह समस्या नई है और इसका इतिहास एक शताब्दी से अधिक का नहीं है। गत सौ वर्षों से अचानक इस प्रश्न के उठने का क्या कारण है? संक्षेप में इसका कारण है सम्पूर्ण संसार में भौतिक सभ्यता का तेजी से बढ़ना, उद्योग-धन्धों की बेहद उन्नति होना और मानव जाति की उत्पादन शक्ति में आश्चर्यजनक वृद्धि होना। सच कहा जाय तो यह समस्या इसलिए उठ खड़ी हुई है कि अधिकांश सभ्य देशों में मशीन का आविष्कार हुआ और धीरे-धीरे मानवी श्रम का स्थान प्राकृतिक शक्ति ने ले लिया। आदमी की शक्ति की जगह पर भाप, गर्मी, पानी और बिजली की प्राकृतिक शक्तियों से काम लिया जाने लगा और मनुष्य की हड्डियाँ तथा स्नायुओं की जगह लोहे और तांबे का प्रयोग होने लगा। मशीन की ईजाद होने के बाद से एक आदमी एक मशीन की सहायता से एक सौ या एक हजार आदमियों के काम को कर

सकता है। मशीन की उत्पादक शक्ति और मानवी उत्पादक शक्ति के बीच अन्तर पड़ गया है। सबसे अधिक मेहनती आदमी एक दिन में कठिनता से दो या तीन आदमियों के काम को अकेला कर सकता है और दस आदमियों से अधिक के काम को तो वह कभी कर ही नहीं सकता। इसका अर्थ यह है कि सबसे अधिक परिश्रमी आदमी जिसका शरीर खूब हट्टा-कट्टा है तथा जिसके पास अधिक ताकत तथा स्फूर्ति है वह भी एक दिन में सम्भवतः दस साधारण आदमियों के काम से अधिक नहीं कर सकता है। साधारण मनुष्यों की उत्पादक शक्ति में बहुत अन्तर नहीं होता है लेकिन मशीन के उत्पादन और साधारण आदमी के श्रम से होने वाले उत्पादन के बीच बहुत बड़ा अन्तर है। जब केवल मानवी श्रम से ही काम लिया जाता है तो सबसे अधिक ताकत वाला और परिश्रमी मजदूर साधारण मजदूर की अपेक्षा दसगुना से अधिक काम नहीं कर सकता है। लेकिन जब मशीन से काम लिया जाता है तो सबसे आलसी और साधारण मजदूर भी एक मशीन के द्वारा बिना मशीन के सबसे अच्छे मजदूर की अपेक्षा सौ या हजार गुना अधिक काम कर सकता है। कुछ दशाब्दी पहले जब मशीन का आविष्कार नहीं हुआ था तब के उत्पादन से आज का उत्पादन बहुत भिन्न है।

हम अपनी आँखों के सामने होने वाली कुछ बातों को देखें जिसकी सचाई की जाँच की जा सकती है। केण्टन की सड़कों पर कुलियों या मोटियों से अधिक किसी दूसरे वर्ग के आदमी नहीं मिलते हैं। इस शहर के काम करने वालों में उनका औसत सबसे अधिक है। सबसे मजबूत कुली दो सौ केटी (१ केटी=१.३३ पौंड) से अधिक का बोझ नहीं उठा सकता है और कुछ कोरी लि (३ लि=एक मील) से अधिक दिन भर में चल भी नहीं सकता है। इस प्रकार का मोटिया कठिनाई से मिलता है क्योंकि साधारण कुली एक सौ केटी से कम का बोझ लेकर ही कुछ कोरी लि जाते-जाते थक जाता है। इन कुलियों की तुलना माल ढोने वाली मशीन से कीजिए। इसी शहर के वाङ्षा स्टेशन पर की मालगाड़ियों को देखिए। एक इंजिन बीस या इससे अधिक डब्बों को खींच सकती है और हर डब्बे में कई सौ पिकुल (१ पिकुल =१०० केटी) माल रखा जा सकता है। इसका यह अर्थ हुआ कि एक बीस डब्बों वाली मालगाड़ी दस हज़ार पिकुल ढो सकती है। एक या दो आदमी इंजिन चलाने के लिए रहते हैं तथा कुछ और आदमी मालगाड़ी की देखभाल के लिए, और गाड़ी कई सौ लि एक दिन में जा सकती है। केण्टन-हाङ्क्वो रेल लाइन पर केण्टन से षिउक्वान् (षिउचौ) स्टेशन की

दूरी करीब पाँच सौ लि है। पहले जब इसी रास्ते से आदमियों द्वारा माल भेजा जाता था तो एक पिकुल बोझ एक आदमी ले जाता था। इस प्रकार दस हज़ार पिकुल भेजने के लिए दस हज़ार आदमियों की ज़रूरत होती थी। एक आदमी करीब पचास लि एक दिन में जाता था इसलिए पाँच सौ लि जाने में दस दिन लगते थे। दस हज़ार पिकुल जो पहले दस हज़ार आदमियों द्वारा दस दिनों में भेजे जाते थे अब केण्टन से षिउक्वान् तक आठ घण्टे में और अधिक से अधिक दस आदमियों द्वारा भेजे जा सकते हैं। यहाँ आप देखते हैं कि दस आदमी दस हज़ार आदमियों का काम करते हैं और काम दस दिनों की अपेक्षा आठ घण्टों में ही हो जाता है। मशीन की शक्ति और आदमी की शक्ति के बीच कितना अधिक अन्तर है! रेल द्वारा जल्दी से जल्दी और सुविधाजनक ढंग से केवल एक आदमी द्वारा दस हज़ार आदमियों का काम और एक दिन की अपेक्षा एक घण्टे में ही काम नहीं होता है बल्कि इससे खर्च भी कम पड़ता है। एक मोटिये को प्रतिदिन एक डालर के हिसाब से मजदूरी देनी पड़ती है। तब दस हज़ार मोटियों द्वारा दस हज़ार पिकुल माल १० दस दिनों में ढोकर ले जाने में एक लाख डालर खर्च होता है। लेकिन इतना ही माल रेल से भेजने में सिर्फ कई हज़ार डालर लगते हैं। हल जोतने, कपड़ा बुनने, कोई चीज़ बनाने और सभी प्रकार के कामों में मशीन-शक्ति मानवी ताकत के ऐसा ही योग्यतापूर्वक तथा कई सौ गुणा और कभी-कभी तो कई हज़ार गुना अधिक काम कर सकती है।

मशीन के ईजाद होने के बाद से संसार के उत्पादन के क्षेत्र में क्रान्ति हो गई है। मशीन ने मानवी श्रम की जगह ले ली है और जिन आदमियों के पास मशीनें हैं उसने बिना मशीन वालों के धन को ले लिया है। अफ़ीम की लड़ाई (सन् १८४०-४२ ई०) के पहले केवल केण्टन ही चीन का खुला बन्दरगाह था। विभिन्न प्रान्तों के माल पहले स्थल-मार्ग से केण्टन आते थे और तब जहाजों पर लादकर विदेश भेजे जाते थे। विदेशी माल भी पहले केण्टन के बन्दरगाह पर उतरता था और वहीं से देश के विभिन्न भागों में जाता था। इसलिए चीन से बाहर जाने वाले माल हुनान् और क्याङ्-सी प्राप्त होकर नान्स्युङ् और लोचाङ् के रास्ते से केण्टन आते थे और बाहर से आने वाले माल भी इन्हीं रास्तों से देश के विभिन्न भागों में भेजे जाते थे। फलस्वरूप नान्स्युङ् और स्युक्वान् तथा लोचाङ् और स्युक्वान् के बीच की सड़कें मोटियों से भरी रहती थीं और सड़कों के किनारों की चाय की दूकानें और होटल खूब चलते थे। लेकिन बाद में जब विदेशी व्यापार

खुला तो विभिन्न प्रान्तों के माल या तो नाव द्वारा केण्टन या संघाई और थिएन-चिन् होकर सीधे विदेश भेजे जाने लगे। तब माल नानस्युङ् और लोचाङ् से मोटियों द्वारा स्युक्वान् नहीं भेजे जाने लगे। इसलिए मोटियों की संख्या बहुत घट गई। ये दोनों रास्ते जो पहले अत्यन्त ही चालू और उन्नतिशील थे अब उजाड़ हो गए हैं। जब केण्टन-हाङ्क्वो रेल लाइन खुली और आदमी की शक्ति की जगह रेलगाड़ी व्यवहार में आने लगी तो केण्टन और स्युक्वान् के बीच जाने-आने वाले मोटिए एकदम गायब हो गए। चीन के दूसरे भागों तथा अन्य देशों की भी यही दशा है। मशीन के व्यवहार से अचानक बहुत से आदमियों के रोजगार खतम हो गए और लोग काम पाने या भोजन पाने में असमर्थ हो गए। पश्चिम के लोग इस परिवर्त्तन को व्यावसायिक क्रान्ति कहते हैं। इस क्रान्ति के कारण मजदूरों को बड़ी कठिनाई उठानी पड़ी। इसी कारण से गत कई दशाब्दियों में सामाजिक समस्या उठ खड़ी हुई है जो इस प्रकार की तकलीफ़ों को दूर करने के प्रयत्नों का फल है।

यही वह सामाजिक समस्या है जिसे आज जीविका के सिद्धान्त के व्याख्यान में मैं कहूँगा। क्यों नहीं पश्चिम का अनुकरण कर सीधे साम्यवाद की बात की जाय? इसके बदले चीन का प्राचीन दब्द मिन् षङ् क्यों व्यवहार में लाया जाय? इसका बड़ा ही गूढ़ कारण है जिस पर आज हम विचार करेंगे। मशीन अपने प्रथम विकास और खासकर व्यावसायिक क्रान्ति के बाद से एक बड़ी ही पेचीदी सामाजिक समस्या हो गई है और उसने साम्यवादी सिद्धान्तों को उत्पन्न होने में मदद दी है। लेकिन यद्यपि साम्यवाद कई दशाब्दियों से एक बढ़ती हुई शक्ति रही है, फिर भी अब तक पश्चिम के राष्ट्रों ने इसके साथ लगे हुए प्रश्नों का हल नहीं पाया है और इसके ऊपर अभी भी काफ़ी मतभेद है। पश्चिम के सामाजिक सिद्धान्त और विचार चीन में भी प्रवेश कर रहे हैं और चीन के कुछ विद्वानों द्वारा उनका अध्ययन भी किया जाने लगा है। 'साम्यवाद' का ही एक रूप 'समाजवाद' है और दूसरे सिद्धान्तों के साथ-साथ यह भी स्वतंत्रतापूर्वक चीन में फैल रहा है। जो कुछ हो, साम्यवाद और समाजवाद के चीनी विद्यार्थियों के लिए इन सिद्धान्तों द्वारा उत्पन्न हुई समस्याओं का हल निकालना बहुत कठिन है। क्योंकि पश्चिमी विद्वान, जिन्होंने पहले पहल इन सिद्धान्तों को बढ़ाया है, इनकी व्याख्या करने में सफलीभूत नहीं हो सके हैं।

अपने अध्ययन में हम सावधानीपूर्वक इन सिद्धान्तों की प्रवृत्तियों की

परीक्षा करें; इनकी उत्पत्ति का पता लगाएँ और इनकी परिभाषा पर विचार करें। पश्चिम में साम्यवाद और समाजवाद पर्याय अर्थ में व्यवहृत होते हैं। यद्यपि दोनों के तरीकों में अन्तर हो सकता है, लेकिन साम्यवाद का व्यवहार अक्सर दोनों सिद्धान्तों को प्रकट करने के लिए किया जाता है। चीन में कुछ लोग हैं जो 'साम्यवाद' और 'समाजशास्त्र' को एक ही विषय समझते हैं और बहुत से विदेशी लोग भी अक्सर इस तरह की गड़बड़ी में पड़ जाते हैं। इसका कारण यह है कि 'सोसाइटी,' 'सोशियोलॉजी' और 'सोशलिज्म' इन तीन अंगरेजी शब्दों का प्रथम आधा भाग एक ही है। सोशलिज्म (Socialism) शब्द ग्रीक भाषा के एक शब्द जिसका अर्थ 'साथी' (Comrade) होता है, से निकला है। यह 'कामरेड' शब्द हमारी बोलचाल की भाषा में व्यापार के साझीदार अर्थ-सूचक 'हुइ चि' से शब्द से मिलता है। 'समाज-शास्त्र' समाज की घटनाओं (Phenomena) और विकास तथा सामाजिक समुदायों की घटनाओं की चर्चा करता है। 'साम्यवाद' सामाजिक और आर्थिक प्रश्नों तथा मनुष्य की वृत्ति या जीविका की समस्याओं से सम्बन्ध रखता है। 'जीविका का सिद्धान्त' शब्द 'साम्यवाद' के बदले व्यवहार करने का मेरा मुख्य उद्देश्य सामाजिक समस्याओं के मूल पर ही आघात करना है और इसकी वास्तविक प्रकृति को प्रकट कर देना है। साथ साथ इसे इस योग्य बना देना है कि जनता इस शब्द को सुनते ही इसके अर्थ को समझ जाय। गत कई दशाब्दियों में 'साम्यवाद' के अनगिनत विद्यार्थी हो गए हैं और इस पर अनगिनत पुस्तकें लिखी गई हैं जिसमें सामाजिक पुनर्निर्माण के सम्बन्ध में इतने भिन्न और परस्पर-विरोधी मतों का प्रतिपादन किया गया है कि एक विदेशी कहावत ही बन गई है कि 'सत्तावन तरह के साम्यवाद' होते हैं। और कोई यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता है कि वास्तविक साम्यवाद कौन सा है? इसके फलस्वरूप साधारण लोग समझते हैं कि 'साम्यवाद' में कोई निश्चित बात नहीं है, जिसका कि अनुसरण किया जाय।

यूरोपीय महायुद्ध के बाद बड़ी तीव्रता से सामाजिक प्रगति हुई और ऐसा मालूम पड़ा कि संसार एक नए युग में आ गया है जबकि सामाजिक प्रश्नों का हल मिल जाएगा। जिन्होंने पहले साम्यवाद पर ध्यान नहीं दिया था वे भी उस दिशा में झुकने लगे थे। ऐसे सुअवसर में ऐसा जान पड़ा कि साम्यवादी दल को बहुत बड़ी सफलता मिलेगी और वह समाज की समस्याओं का कुछ वास्तविक हल निकाल सकेगा। लेकिन साम्यवादी आन्दोलन के अन्दर ही बहुत से कलह उठ खड़े हुए। अचानक ही सभी देशों के साम्यवादी

दलों में 'हवा बही और बादल फट-फटकर अलग हो गए।' आन्दोलन बहुत शाखाओं में टुकड़े-टुकड़े हो गया और उनमें से कुछ प्रसिद्ध शाखाएँ ये हैं:—समाजवादी दल, स्टेट साम्यवादी दल और सामाजिक प्रजातंत्रवादी दल। इन विभिन्न दलों का भयङ्कर मतभेद अब सचमुच ही 'सत्तावन तरह के साम्यवाद' का द्योतक होने लगा है। भूतकाल में जिन्होंने बहुत सी परस्पर विरोधी बातों के लिए साम्यवादी दल की आलोचना की थी इस समय उन्हें बड़ा ही सुन्दर सुयोग मिल गया। यूरोपीय युद्ध के पहले हर देश में केवल दो दल थे—एक साम्यवाद के समर्थकों का और दूसरे साम्यवाद के विरोधियों का। साम्यवाद के विरोधी खासकर पूँजीपति थे और पूँजीपतियों द्वारा ही मुख्य रूप से साम्यवाद का विरोध किया गया था। युद्ध के बाद साम्यवाद के शत्रु आत्म-समर्पण कर देने को तैयार जान पड़े और ऐसा जान पड़ा कि साम्यवाद इस अवसर का लाभ उठाने और समाज का पुनर्संगठन करने को तैयार था। लेकिन साम्यवाद के समर्थकों ने कार्य करने का कोई अच्छा तरीका नहीं ढूँढ़ा। जिसके फलस्वरूप नाजुक समय पर ही साम्यवादी दल में आपस में ही इतने जोरों का भयङ्कर विरोध उठा कि वैसा पहले भी साम्यवाद के समर्थकों और साम्यवाद के विरोधियों के बीच भी नहीं हुआ था। इस प्रकार सामाजिक प्रश्न अब तक नहीं हल हो सके हैं। लेकिन हम आज इसका सावधानीपूर्वक अध्ययन कर लें। पहले जब पूँजीवादी, मजदूर और विद्वान सब के सब साम्यवाद का विरोध कर रहे थे तो सब जगह के साम्यवादी चाहे वे एक देश के थे या विभिन्न देशों के, आपस में एक-दूसरे को साथी समझते थे। लेकिन अब केवल साम्यवादी दलों में अन्तर्राष्ट्रीय कलह ही नहीं है जैसे जर्मन साम्यवादी रूसी साम्यवादियों से लड़ रहे हैं और रूसी साम्यवादी ब्रिटिश और अमरीकी साम्यवादियों से लड़ते हैं; बल्कि हर देश के साम्यवादी दल में ही आपस में विरोध है और सामाजिक प्रश्न पर जितनी ही चर्चा की जाती है वह उतना ही उलझता जाता है और अब तक कोई उल्लेखनीय हल नहीं नजर आ रहा है।

जीविका का सिद्धान्त जिसका प्रतिपादन आज मैं कर रहा हूँ क्या वह वास्तव में साम्यवाद से भिन्न है? साम्यवाद प्रधानतः समाज की आर्थिक समास्याओं—जीने की आम समस्या—की चर्चा करता है। मशीन के ईजाद होने के बाद से लोगों की एक बड़ी संख्या का काम छिन गया है। और साधारण मजदूर अपनी स्थिति बनाए रखने में असमर्थ हो गए हैं। साम्यवाद जीविका की समस्या को सुलझाने के प्रयत्न से उत्पन्न हुआ है और इस दृष्टि से समाज का

प्रश्न भी आर्थिक प्रश्न है और जीविका का सिद्धान्त साम्यवाद का प्रधान विषय है। लेकिन अब हर देश के साम्यवाद का भिन्न-भिन्न मत है और उनके सामाजिक पुनर्निर्माण के अलग-अगल सुभाव हैं। क्या वास्तव में साम्यवाद मिन् षङ् सिद्धान्त का एक भाग है या जीविका का सिद्धान्त ही साम्यवाद का एक भाग है?

व्यावसायिक क्रान्ति के बाद सामाजिक प्रश्न के अध्ययन करने वालों की संख्या हजारों हो गई है। एक आदमी जिसने बहुत ही गम्भीर और फल-दायक अध्ययन किया आप सब उसके नाम से परिचित हैं। वह था मार्क्स (Marx)। मार्क्स का साम्यवाद के साथ कुछ वैसा ही सम्बन्ध है जैसा रूसो का प्रजातन्त्रात्मक आन्दोलन के साथ। एक शताब्दी पहले पश्चिम के लोग जो लोकप्रिय सार्वभौमिकता का अध्ययन करते थे, रूसो की पूजा प्रजा-तन्त्र के ऋषि के रूप में करते थे जैसा चीनी लोग कनफ़्यूसियस की पूजा करते हैं। सभी साम्यवाद के विद्यार्थी आज मार्क्स की पूजा भी उसी प्रकार साम्यवादी आन्दोलन के ऋषि के रूप में करते हैं। मार्क्स द्वारा प्रति-पादित होने के पहले साम्यवाद केवल कल्पना की चीज थी और वह वास्तविक बातों से कुछ दूर था। जो कुछ हो, मार्क्स ने वास्तविक तथ्यों और इतिहास को लेकर अपना अध्ययन प्रारम्भ किया और सामाजिक प्रश्न के आर्थिक परिवर्त्तनों की मौलिक रूप से पूरी-पूरी छानबीन की। जिसके फलस्वरूप बाद के विद्वानों ने साम्यवादियों को दो भागों में विभक्त कर दिया—एक काल्पनिक साम्यवादी जिनका आदर्श चीनी दार्श-निक लिए च के हा शु लोगों (देखिए राष्ट्रीयता के चौथे व्याख्यान के नोट नं० १२ और १३) की भूमि-सम्बन्धी स्वप्न के समान था और दूसरा वैज्ञानिक साम्यवादी जो सामाजिक समस्याओं का अध्ययन वैज्ञानिक तरीकों से करते हैं। काल्पनिक साम्यवादी केवल अपनी कल्पना से समाज में सुधार करते थे और अपनी कल्पना से उद्भूत एक शान्तिदायी और सुखमय राज्य बनाते थे। इस व्यर्थ और अवास्तविक सुरक्षा के विचार की उत्पत्ति कुछ धार्मिक और दयावान पुरुषों से प्रारम्भ हुई जो अपने समय में होने वाले दुःख तक को नहीं देख सकते थे, परन्तु जिनके पास उसके निवारण की कोई शक्ति नहीं थे। वे केवल खाली आदर्श की स्थापना कर सकते थे। एक चीनी कहावत में इस तरह की सुरक्षा के आदर्श का अच्छी तरह वर्णन है। 'आकाश से कीड़े पैदा होते हैं और पृथ्वी से पत्तियाँ तथा आकाश से पक्षी पैदा होते हैं और पृथ्वी से कीड़े।' इसका अर्थ यह है कि कीड़ों को खाने के लिए बराबर पत्तियाँ मिलेंगी और पक्षियों को

कीड़े। लेकिन मनुष्य को प्रकृति द्वारा पूर्ण शरीर नहीं दिया गया है। उसके शरीर पर रोयें और पंख नहीं हैं बल्कि उसे जाड़े से बचने के लिए कपड़े और जीवन रक्षा के लिए भोजन की आवश्यकता होती है।

आदिम काल (Primitive time) में जब मनुष्य फल खाता था, जबकि जमीन काफी थी और आदमी कम थे तब हर आदमी के लिए खाना पा लेना बहुत आसान था। बिना अधिक काम किए ही आदमी खाना पा सकता था। शिकारी युग (Hunting age) में खाना पाने और जीवन की रक्षा के लिए आदमी मछलियाँ पकड़ते थे और उन्हें शिकार करना पड़ता था। केवल वे जो काम करते थे खाना पा सकते थे। चारागाह युग (Pastoral age) में जीविका के लिए आदमी को मवेशी पालना पड़ता था। हर आदमी पानी और घास देखकर रहता था और बराबर एक जगह से दूसरी जगह घूमता-फिरता था। यह काम बड़ा ही कठिन और झंझट वाला था। जब कृषि-युग आया तो मनुष्य अपनी जीविका के लिए पाँच अनाज बोता था। जीने की समस्या उलझती ही गई और काम में भी कठिनाई होने लगी। लेकिन जब औद्योगिक और व्यावसायिक युग आया और हर काम मशीन द्वारा होने लगा तब आदमी ने देखा कि यद्यपि उसमें शक्ति है फिर भी वह उसे काम में नहीं ला सकता। वह अपना श्रम बेंचने के लिए तैयार था पर उसे खरीददार ही नहीं मिलता था। तब लोगों की एक बड़ी संख्या को कठिनाई से खाना मिल सकता था और लोग करीब-करीब भूखों मरने लगे। उनके कष्ट का उल्लेख एक वाक्य में नहीं हो सकता।

तब कुछ धार्मिक लोगों का दिल यह देख कर पिघल गया कि संसार में पक्षियों और पशुओं को बिना दुःख-तकलीफ के आहार और कपड़े मिल जाते हैं जबकि मनुष्य मेहनत करके और कठिनाई उठाकर भी बहुत मुश्किल से थोड़ा प्राप्त कर सकते हैं। मनुष्य जाति के दुःख को कम करने तथा सबों को खाना-कपड़ा मिलना संभव हो सके इसके लिए उन्होंने सब रोगों के लिए रामबाण की तरह साम्यवाद के मत का प्रतिपादन किया। साम्यवाद के प्रथम प्रचारक लोग बड़े ही धार्मिक थे और उनके अनुयायी लोग बड़े सदय और सच्चरित्र थे। साम्यवाद का विरोध करने वाले या सामाजिक प्रश्नों की ओर से उदासीन वाले केवल पूँजीवादी थे जो अपने धन को लेकर बड़े स्वार्थी हो गए थे और जो जनता की जीविका की दशा पर कुछ भी ध्यान नहीं देते थे। चूँकि सामाजिक प्रश्न बहुसंख्यक मनुष्य जाति की जीविका उपार्जन से सम्बन्ध रखता था इसलिए भविष्यदर्शी और महात्मा लोग जिन्होंने साम्यवाद

के सिद्धान्त को आगे रखा था, स्वभावतः ही लोगों की एक बड़ी संख्या की सहानुभूति और समर्थन प्राप्त कर सके। जैसे ही सिद्धान्त की उत्पत्ति हुई, साम्यवादी दल संगठित होने लगा। साम्यवादी आन्दोलन संगठि तहोकर बड़े जोरों से स्थिरता के साथ हर देश में फैलने लगा। लेकिन प्रथम साम्यवादी लोग मनोराज्यवादी थे। उन्होंने एक शान्तिपूर्ण और सुखमय आदर्श संसार के निर्माण करने की कल्पना की थी जिसमें मनुष्य को दुःख-तकलीफ नहीं होगी। लेकिन उन्होंने कोई ठोस तरीका नहीं बताया जिससे मनुष्य का दुःख दूर हो सके। तब मार्क्स का आविर्भाव हुआ। उसने इन प्रश्नों को अच्छी तरह अध्ययन करने में अपनी बुद्धि और प्रतिभा, अपनी विद्या और अनुभव सभी लगा दिए। जिन समस्याओं को मनुष्य उसके पहले तक स्पष्ट रूप से नहीं समझ सका था या उनकी गहराई तक नहीं पैठ सका था उन्हें उसने स्पष्ट कर दिया। उसने अपना मत पूर्णतः आर्थिक सिद्धान्तों पर रखा। उसने पहले के साम्यवादियों की आलोचना इसलिए की कि वे व्यक्ति के नैतिक ज्ञान और लोगों की भावनाओं पर भरोसा रखते थे, जब कि अर्थिक प्रश्न नैतिकता और भावनाओं से नहीं सुलझ सकते थे। उसने कहा कि सबसे पहली आवश्यकता यह है कि सामाजिक अवस्थाओं और सामाजिक प्रगति की सावधानीपूर्वक परीक्षा की जाय। जिन सिद्धान्तों पर वह आगे बढ़ा उनमें आदर्श की अपेक्षा वास्तविक तथ्यों को प्रधानता थी। यह कहा जा सकता है कि उसने अपनी पुस्तकों और सिद्धान्तों में सामाजिक प्रश्नों पर मनुष्य द्वारा हज़ारों वर्षों में विचार की गई उत्तम बातों को एक स्पष्ट रूप दिया।

मार्क्स ने जैसे ही अपने मत का प्रतिपादन किया कि सम्पूर्ण संसार उसका अनुकरण करने लगा और सभी देशों के विद्वानों ने उसमें अपना विश्वास प्रकट किया और वे उसके अनुयायी हो गए जैसा कि प्रजातन्त्र के विद्यार्थी प्रजातन्त्र के सिद्धान्तों के प्रतिपादक रूसो के प्रति विश्वास रखने लगे थे। मार्क्स के बाद से साम्यवाद आंदोलन दो भागों में विभक्त हो गया—एक काल्पनिक साम्यवादियों का और दूसरा वैज्ञानिक साम्यवादियों का। काल्पनिक साम्यवादियों के सम्बन्ध में मैं पहले आप से कह चुका हूँ। वैज्ञानिक साम्यवादियों ने सामाजिक समस्याओं को हल करने के लिए वैज्ञानिक तरीकों का प्रचार किया। इस युग में जब कि भौतिक सभ्यता इतनी तेजी से बढ़ रही है और विज्ञान इतना अधिक शक्तिशाली हो रहा है तब संतोषप्रद नतीजों के लिए सभी चीज़ों का अध्ययन वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर होना चाहिए। हम सामाजिक प्रश्नों का हल तब तक पाने की आशा

नहीं कर सकते जब तक कि इस दिशा में सावधानीपूर्वक वैज्ञानिक अनुसन्धान कार्य न हो जाय।

यहाँ पुनः मुझे अपने मत पर आने दीजिए कि समझना कठिन है पर करना सहल है। अगर पहले अच्छी तरह समझ लिया जाय तो संसार में कोई भी काम किया जा सकता है। उदाहरण के लिए देखिए:—इस व्याख्यान भवन में आज बहुत गर्मी है पर बिना मानवीय श्रम के केवल बिजली के पंखों के व्यवहार द्वारा हम गर्मी को भगा सकते हैं। अगर प्राचीन काल के लोग अथवा उनसे मिलता-जुलता आज के देहात का कोई नासमझ आदमी अगर ऐसी चीज़ों को देखे तो वह निश्चय ही सोचेगा कि भीतर स्थित किसी दैवी शक्ति द्वारा पंखे चलाए जा रहे हैं और साथ-साथ वह यह भी सोचेगा कि 'दैवी शक्ति का अधिकार हड़पा जा रहा है'। इसलिए वह इन पंखों के सामने झुककर प्रार्थना करने लगेगा। लेकिन आप में से सभी ब्योरेवार ढंग से बिजली पंखों की बनावट नहीं जानते हैं फिर भी बिजली के चुम्बक शक्ति वाले सिद्धान्त से परिचित हैं जिससे कि पंखे घूमते हैं। और आप यह भी नहीं विश्वास करते हैं कि ये दैवी चीज़ें हैं। क्या प्राचीन काल के लोगों की बुद्धि हमसे कम थी? नहीं, पर वे विज्ञान के बारे में कुछ नहीं जानते थे इसलिए बिजली का पंखा नहीं बना सके। उनमें बिजली का पंखा व्यवहार करने की प्राकृतिक बुद्धि और योग्यता का अभाव नहीं था। यह तो केवल आधुनिक विज्ञान की जानकारी और बिजली पंखों के वैज्ञानिक आविष्कार के कारण हम इस प्रकार का यंत्र व्यवहार कर रहे हैं और ठंढी हवा का आनन्द उठाते हैं। अगर प्राचीन काल के लोग अपनी प्राकृतिक बुद्धि और योग्यता के साथ विज्ञान को समझते तो वे आधुनिक लोगों से भी अधिक प्रवीण होते।

मार्क्स के पहले सामाजिक पुनर्निर्माण सिर्फ एक स्वप्न आशा थी और एक अप्राप्य आदर्श था। मार्क्स ने देखा कि अगर वह अपने अध्ययन में साम्यवादी आदर्शों का अनुसरण करता है तो वह भी केवल एक स्वप्न का निर्माण कर सकेगा। अगर सारा संसार उसमें विश्वास भी करने लगे तो भी वह वास्तविक नहीं हो सकता। अगर वह कोई चीज प्राप्त करना चाहता है तो उसे अपने अध्ययन को वास्तविक तथ्यों पर आधारित करना चाहिए और ठीक अनुसन्धान के लिए वैज्ञानिक तरीकों का प्रयोग करना चाहिए इसलिए उसने अपने सम्पूर्ण जीवन को साम्यवाद के वैज्ञानिक अध्ययन में लगा दिया और इसी काम में उसने अपना जीवन समाप्त किया। निर्वासित होने पर जब वह इंगलैण्ड चला गया तो उस समय का इंगलैण्ड

आधुनिक संसार का सबसे अधिक सुसंस्कृत राष्ट्र था। कोई राष्ट्र उसकी बराबरी नहीं कर सकता था जिसके फलस्वरूप उस समय इंगलैण्ड में संस्कृति के विकास के सभी साधन मौजूद थे। वहाँ एक बड़ी लाइब्रेरी थी जिसमें सम्भवतः सभी विषयों की कई लाख पुस्तकें थीं। इसी लाइब्रेरी में मार्क्स प्रतिदिन अध्ययन करता था। इस प्रकार उसने बीस या तीस वर्षों तक काम किया और अपने जीवन का सबसे अच्छा और स्फूर्तिदायक समय इसीमें लगाया। उसने प्राचीन तथा अपने समय के सभी लेखकों की साम्यवादी पुस्तकों को पढ़ा और ब्यौरेवार ढंग से उनकी तुलना की और तब उसने एक नतीजे पर पहुँचने की कोशिश की। सामाजिक समस्याओं के अध्ययन का यही वैज्ञानिक तरीका था और इसलिए मार्क्स के सामाजिक पुनर्निर्माण का मत वैज्ञानिक साम्यवाद कहलाता है।

इस प्रकार परिश्रम से किए गए अपने गम्भीर अध्ययन के बल पर मार्क्स ने यह मत प्रतिपादित किया कि संसार में मनुष्यों के सभी कार्य जो पुश्त दरपुश्त से लिखित रूप में सुरक्षित हैं, इतिहास कहला सकते हैं और इस दृष्टि के देखने पर सम्पूर्ण मानव इतिहास भौतिक शक्तिओं के चारों ओर घूमता है। यह पिछली बात एक नई चीज थी जिसे मार्क्स ने इतिहास को दिया। अगर जीवन के भौतिक आधार में परिवर्त्तन होता है तो संसार में भी परिवर्त्तन होता है। इतना ही नहीं मानवीय व्यवहार भौतिक वातावरण द्वारा ही निश्चित होता है और इसलिए मानव सभ्यता का इतिहास भौतिक वातावरण को ग्रहण कर लेने का इतिहास है। मार्क्स का यह अन्वेषण कुछ आदमियों द्वारा उसी तरह पसन्द किया गया जिस प्रकार न्यूटन द्वारा आविष्कृत गुरुत्वाकर्षण का ज्योतिष विषयक नियम पसन्द किया गया था। मार्क्स द्वारा की गई इतिहास की भौतिक व्याख्या इस प्रकार के गंभीर अध्ययन और दृढ़ तर्कों पर आधारित थी कि जिन्होंने साम्यवाद का विरोध किया था वे भी अब उसको मानने लगे। जिन्होंने मार्क्स के मत का अच्छी तरह अध्ययन किया वे तो और भी उसमें विश्वास करने लगे। यूरोपीय युद्ध के बाद मुश्किल से कोई आदमी मिलता था जो साम्यवाद का विरोधी हो। साम्यवादी दलों के लिए मैदान साफ था और वे हर देश में सामाजिक पुनर्संगठन की समस्याओं को उस समय हल कर लिए होते। अब साम्यवादी दल की सबसे मजबूत शाखा मार्क्सवादी समुदाय के वैज्ञानिक साम्यवादियों की हो गई। अब तक काल्पनिक साम्यवादिओं का ही बोलबाला था। युद्ध के बाद के सामाजिक अव्यवस्था काल में विभिन्न देशों के साम्यवादी दलों के

वैज्ञानिक और काल्पनिक साम्यवादियों के बीच संघर्ष प्रारम्भ हो गया और वैज्ञानिक साम्यवादियों में भी आपस में विरोध उठ खड़ा हुआ। जिसके फलस्वरूप साम्यवादी लोग अब तक भी सामाजिक पुनर्संगठन का रास्ता नहीं निकाल सके हैं।

साम्यवादी आन्दोलन के ऋषि मार्क्स द्वारा प्रतिपादित इतिहास का आर्थिक सिद्धान्त क्या है? सन् १८४८ ई० में मार्क्स के अनुयायियों ने ब्रूसेल्स (Brussels) में साम्यवादियों की एक अन्तर्राष्ट्रीय सभा की और बहुत सी नीतियों पर विचार किया जिसे अब तक भी हर जगह बहुत से मार्क्सवादी मानते हैं। यूरोपीय युद्ध के छिड़ने के बाद रूस ने मार्क्स के मत को व्यावहारिक रूप देना प्रारम्भ किया लेकिन बाद में उसने मार्क्स के मत की व्याख्या में बहुत से परिवर्त्तन कर दिए हैं। ये परिवर्त्तन किस कारण से किए गए हैं? हमने रूस की दशा का बहुत अच्छी तरह जांच पड़ताल नहीं की है इसलिए हम मुश्किल से कुछ कहने का साहस कर सकते हैं। लेकिन रूस के लोग स्वयं जो कहते हैं उसके अनुसार रूस की नीति क्रान्ति के समय मार्क्सवादी नीति नहीं थी बल्कि युद्ध-कालीन नीति थी। यह युद्ध नीति केवल रूस द्वारा ही नहीं अपनाई गई थी। ग्रेट ब्रिटेन, जर्मनी और संयुक्तराष्ट्र अमेरिका तक ने भी युद्धकाल में राष्ट्र के सभी उद्योग धन्धों जैसे रेल, जहाज द्वारा माल भेजना और उत्पादन संबंधी सभी मुख्य उद्योगों पर सरकारी नियन्त्रण उसी प्रकार रखा था जैसा कि रूस ने किया था। क्यों इस प्रकार का काम ग्रेट ब्रिटेन और अमेरिका में युद्ध कालीन काम और रूस में मार्क्सवादी काम कहलाया? इसका कारण रूस के क्रान्तिकारी दल का मार्क्स के सामाजिक और राजनीतिक दर्शन में विश्वास करना था और उस दर्शन को व्यावहारिक रूप देने की इच्छा थी। लेकिन अब रूसी लोगों के कथनानुसार ही रूस के वर्त्तमान उद्योग-धन्धों और आर्थिक प्रणाली इतनी विकसित नहीं हुई कि वहाँ मार्क्स के सिद्धान्तों को लागू किया जा सके। मार्क्स के सिद्धान्त को लागू करने के पहले ग्रेट ब्रिटेन या संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के ऐसा औद्योगिक और आर्थिक विकास का होना ज़रूरी है। इसलिए यूरोपीय युद्ध के बाद मार्क्स के अनुयायी सिद्धान्त की बातों को लेकर झगड़ने लगे। पहले जर्मनी, फ्रांस और रूस सब देशों के साम्यवादी दल मार्क्स के अनुयायी थे और अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की शाखाएँ थे। लेकिन जब मतान्तर हुआ तो वे एक दूसरे की आलोचना और निन्दा करने लगे तथा एक दूसरे पर मार्क्स के विरुद्ध अभक्त होने का दोष मढ़ने लगे। एक

शाखा द्वारा दूसरी शाखा की निन्दा करने और एक राष्ट्र के साम्यवादी दल का दूसरे राष्ट्र के साम्यवादी दल की आलोचना करने के फलस्वरूप मार्क्स का सिद्धान्त बड़ा ही विवाद-ग्रस्त हो गया।

क्या इतिहास में आर्थिक शक्तियाँ वास्तव में आकर्षण का केन्द्र रही हैं? न्यूटन ने पता लगाया कि सूर्य ही सौरमंडल में आकर्षण का केन्द्र है और ज्योतिषियों तथा दूसरे वैज्ञानिकों ने इस सिद्धान्त का समर्थन किया है। मार्क्स ने आविष्कार किया कि इतिहास भौतिक शक्तियों के चारों ओर घूमता है। यह सिद्धान्त ठीक था या नहीं? यूरोपीय युद्ध के बाद के कुछ वर्षों में हुए प्रयोगों के आधार पर बहुत लोग कहते हैं कि यह सिद्धान्त गलत है। तब इतिहास में केन्द्रीय शक्ति क्या है? हमारी क्वोमिन्‌नाङ् बीस वर्षों से भी अधिक समय से जीविका के सिद्धान्त का प्रचार कर रहा है। हमने साम्य-वाद नहीं बल्कि मिन् षङ् सिद्धान्त को अपनाया है। क्या इन दोनों सिद्धान्तों के क्षेत्र किसी भी प्रकार से संबंधित हैं? हाल में ही मार्क्स का एक अमरीकी अनुयायी विलियम (मौरिस विलियम—Maurice Williams जिन्होंने 'इतिहास की सामाजिक व्याख्या'—Social Interpretation of history—नामक पुस्तक लिखी है) मार्क्सवादी दर्शन का गंभीर अध्ययन कर इस नतीजे पर पहुँचा है कि साम्यवाद के अनुयायियों में मतभेद होने का कारण मार्क्स के सिद्धान्त का गलत होना है। उसने अपना मत स्थापित किया है कि इतिहास की भौतिक व्याख्या ही गलत है। उसका मत है कि भौतिक शक्तियाँ नहीं बल्कि सामाजिक समस्यायें ही वह केन्द्र है जो इतिहास की दिशा को निर्धारित करती हैं और जीविका ही सामाजिक समस्याओं का हृत-पिंड है। उसका विश्वास है कि इतिहास की सामाजिक व्याख्या ही केवल तर्कपूर्ण है। जीविका की समस्या ही जीवन-वृत्ति की समस्या है। इस अमरीकी विद्वान् का मत हमारे दल के तीसरे सिद्धान्त से एकदम ठीक ठीक मिलता है। विलियम के सिद्धान्त का अर्थ है कि जीविका ही सामाजिक प्रगति की केन्द्रीय शक्ति है और सामाजिक प्रगति ही इतिहास की केन्द्रीय शक्ति है। इसलिए भौतिक शक्तियाँ नहीं बल्कि जीवित रहने के लिए संघर्ष करना ही इतिहास की दशा को निर्धारित करता है। हमने बीस वर्षों से जीविका के सिद्धान्त को अपनाया है। जब हमने पहले पहल इस समस्या का अध्ययन और मनन किया तो हमें लगा कि मिन् षङ् शब्द 'साम्यवाद' या 'समाज वाद' शब्दों से अधिक सामाजिक समस्याओं को प्रदर्शित करता है। इसलिए हम इसे अपने व्यवहार में लाए। उस समय हमने बिल्कुल ही नहीं सोचा

था कि यूरोपीय युद्ध के बाद ज्ञान की उन्नति और सिद्धान्तों के स्पष्टीकरण से मार्क्सवादी सम्प्रदाय के विद्यार्थी भी इसी नतीजे पर पहुँचेंगे। इससे पता चलता है कि हमारा मिन् षङ् सिद्धान्त प्रगति के नियमानुकूल है और यह केवल समकालीन विद्वानों के कथन का सिर्फ तोतारटन सा नहीं है।

अमरीकी विद्वान के अनुसार मनुष्य जाति की अधिकतर शक्ति प्राचीन काल में और आधुनिक युग में जीविका की समस्या को हल करने की कोशिश में लगी है। अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए संघर्ष करना सामाजिक प्रगति के नियमों में से एक है और वही इतिहास की केन्द्रीय शक्ति है। मार्क्स का भौतिकवादी सिद्धान्त सामाजिक प्रगति का कोई नियम सामने नहीं रखता है और वह इतिहास के मार्ग निर्धारण का हेतु नहीं हो सकता है। अगर हम इन दोनों सामाजिक दार्शनिकों की स्थिति को समझना और इन दोनों में से कौन ठीक है जानना चाहते हैं तो हम उनके सिद्धान्तों का ब्यौरेवार ढंग से अध्ययन करें और देखें कि ये सिद्धान्त आधुनिक सामाजिक प्रगति से कहाँ तक मेल खाते हैं। मार्क्स ने सामाजिक समस्याओं के अपने अनुसन्धान में भौतिक दिशा पर जोर दिया है। भौतिक शक्तियों की चर्चा करने में आप सबसे पहले आवश्यक रूप से उत्पादन के प्रश्न पर आते हैं। जहाँ अतिरिक्त उत्पादन नहीं होता है वहाँ स्वभावतः ही व्यावसायिक क्रान्ति नहीं होगी और इसलिए आधुनिक अर्थ-शास्त्र में उत्पादन का सबसे महत्व है। अगर आप आधुनिक अर्थ-शास्त्र को जानना चाहते हैं तो आप के लिए उत्पादन की बातें जानना जरूरी है। आधुनिक युग में अधिक पैमाने पर चीजों का उत्पादन श्रम और मशीन के कारण सम्भव हुआ है—पूँजी और मशीन के सहयोग के साथ-साथ श्रम के प्रयोग से सम्भव हुआ है। बड़े पैमाने पर होने वाले उत्पादन का मुनाफा अधिकांशतः पूँजीपतियों को मिलता है और इसका बहुत ही थोड़ा भाग मजदूरों को मिलता है। जिसके फल-स्वरूप पूँजीपतियों और मजदूरों के स्वार्थ बराबर टकराते हैं और जब इस कठिनाई का कोई हल नहीं निकलता है तो वर्ग-संघर्ष छिड़ जाता है। मार्क्स का यह मत है कि वर्ग-संघर्ष कोई ऐसी चीज़ नहीं है जो केवल व्यावसायिक क्रान्ति के बाद प्रारम्भ हुई हो, बल्कि अतीत का सारा इतिहास वर्ग संघर्ष की कहानी है। मालिकों और गुलामों के बीच, जमींदारों और कृषकों के बीच, उच्च वर्ग के लोगों और साधारण लोगों के बीच, एक शब्द में कहें तो सभी प्रकार के शोषकों और शोषितों के बीच यह संघर्ष चल रहा है। केवल जब सामाजिक क्रान्ति पूर्णरूप से सफल हो जाएगी तभी ये लड़ने वाले वर्ग नहीं

रहेंगे। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि मार्क्स वर्ग-संघर्ष को सामाजिक प्रगति के लिए जरूरी समझता है। वास्तव में वह इसे सामाजिक प्रगति को अग्रसर करने वाली शक्ति मानता है। उसने वर्ग-संघर्ष को कारण और सामाजिक प्रगति को परिणाम माना है। हम सामाजिक प्रगति की हाल की बातों पर गौर करें और देखें कि कारण और परिणाम का यह सिद्धान्त वास्तव में सामाजिक प्रगति का नियम है? गत कुछ दशाब्दियों में समाज ने आश्चर्य-जनक प्रगति की है और इस सामाजिक प्रगति का ब्यौरा एक जटिल कहानी की तरह से है। अकेले आर्थिक दिशा की ही बातें कुछ शब्दों द्वारा नहीं बताई जा सकती हैं। लेकिन सारांश यह है कि पश्चिम की हाल की आर्थिक प्रगति ने चार सकलें अख्तियार की हैं। वे हैं—सामाजिक और औद्योगिक सुधार, माल ढुलाई और यातायात के साधनों पर सार्वजनिक प्रभुत्व, प्रत्यक्ष कर निर्धारण और वितरण का समाजीकरण। इन चारों आर्थिक प्रयोगों का विकास सुधार के रास्ते हुआ है और ज्यों ज्यों समय बीतता जाएगा हम और सुधार तथा संशोधन देखेंगे।

मैं इन चार प्रयोगों का वर्णन कुछ ब्यौरेवार ढंग से करूँगा। पहले प्रयोग का अर्थ है कि सरकारी शक्ति मजदूरों की शिक्षा में उन्नति करने, उनके स्वास्थ्य की रक्षा करने और पुतलीघरों तथा मशीन में सुधार कर में लागू की जाय ताकि काम करना निरापद हो और वह आराम से किया जा सके। इस प्रकार के सुधार से मज़दूरों को अपने काम करने में अधिक ताकत मिलती है और वे राजी- खुशी से काम करते हैं। और उन सुधारों से उत्पादन के अनुपात में काफ़ी वृद्धि होती है। जर्मनी पहला देश था जहाँ ये सामाजिक प्रगति की नीतियाँ व्यवहार में लाई गईं और इनसे उसे लाभ भी खूब हुआ। हाल के वर्षों में ग्रेट ब्रिटेन और संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका ने उसकी नकल की है और उन्हें भी ऐसा ही लाभ हुआ है।

दूसरे प्रयोग का अर्थ है कि बिजली और भापवाली रेल, जहाज़ तथा डाक और तार सम्बन्धी सभी बड़े कामों को पूर्णरूप से सरकारी प्रबन्ध में ले लेना। जब इन बड़े कामों में सरकार की बड़ी शक्ति लगेगी तो निश्चय ही तेजी से माल का आना जाना तथा यातायात की सुविधा होगी, देश के भिन्न-भिन्न भागों से कच्चे माल जल्दी से कारखानों में पहुँचाए जाएंगे और वहाँ के बने तैयार माल भी आसानी से बाजार में बिक्री के लिए लाए जाएँगे। इसमें न समय की बरबादी होगी और न माल का आना-जाना रुकेगा। इनके अभाव में अक्सर कच्चे माल तथा तैयार माल दोनों को हानि होती है।

अगर सरकार के बदले व्यक्तिगत रूप से लोगों को इन कामों को करने दिया जाय तो या तो उसके पास इतनी पूँजी नहीं होगी कि वे इन कामों को चला सकें या एकाधिकार मिल जाने से वे बहुत से अड़ंगे भी पैदा करेंगे। तब माल का आना जाना निश्चय ही धीमी रफ़्तार से होगा और यातायात की भी सहूलियत नहीं रहेगी। सारे देश भर में आर्थिक कारबार को गहरा धक्का लगेगा और भयंकर हानि होगी। जर्मनी पहला राष्ट्र था जिसने व्यक्तिगत कारबार का लाभ और हानि का अनुभव किया और बहुत पहले ही माल ढुलाई तथा यातायात के साधनों को सीधे सरकारी प्रबन्ध में ले लिया। यूरोपीय युद्ध के समय संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका के भी माल ढोने तथा यातायात की सभी व्यक्तिगत कम्पनियों को वहाँ की सरकार ने सीधे अपने नियंत्रण में ले लिया था।

आधुनिक आर्थिक सुधार का तीसरा रूप प्रत्यक्ष कर निर्धारण (Direct taxation) है जिसका विकास सामाजिक अर्थशास्त्र प्रणाली में बहुत हाल में हुआ है। इसमें क्रमिक कर-निर्धारण की नीति (graduated tax Scale) बर्ती जाती है और पूँजीपतियों के ऊपर भारी आय-कर और उत्तराधिकार कर (inheritance tax) लगाया जाता है। इस तरह सीधे पूँजीपतियों से राज के लिए आमदनी का जरिया निकाला जाता है। पूँजीपतियों की बहुत आमदनी के कारण उन पर राज द्वारा लगाए गए प्रत्यक्ष कर से 'बिना किसी को कष्ट दिए राज को काफ़ी प्राप्ति हो जाती है'। कर-निर्धारण की पुरानी प्रणाली केवल नकद आमदनी और अनाज के ऊपर तथा चुङ्गी के ऊपर ही पूर्णरूप से निर्धारित करती थी। इन तरीकों से राष्ट्रीय आय का सारा बोझ पूर्णरूप से गरीब जनता पर पड़ता था और राज की किसी प्रकार की आर्थिक ज़िम्मेवारी में बिना हाथ बटाए ही पूँजीपति सभी सुविधाओं का उपयोग करते थे। जो कि बड़ा ही अन्यायपूर्ण था। जर्मनी और ग्रेट ब्रिटेन बहुत पहले ही इस अन्याय के सम्बन्ध में सचेत हो गए और उन्होंने प्रत्यक्ष कर। निर्धारण की नीति अपनाई। जर्मनी की वार्षिक आय का साठ से अस्सी प्रतिशत आय कर और उत्तराधिकार कर से आता है। इन्हीं जरियों से यूरोपीय युद्ध के प्रारम्भ में ग्रेट ब्रिटेन की वार्षिक आमदनी का ५८% आता था। संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका में बहुत पीछे चलकर यह प्रणाली लागू की गई। केवल दस वर्ष पहले यहाँ आय का (इनकम टैक्स) कानून पास हुआ है और तब से वार्षिक राष्ट्रीय आय में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है। सन् १६१६ ई० में केवल आय का

से हुई आमदनी चार अरब डालर थी। यूरोप के जिन राष्ट्रों ने हाल में प्रत्यक्ष कर निर्धारण की नीति अपनाई है उन सबों की वार्षिक आमदनी इससे बहुत अधिक बढ़ गई है और इस प्रकार विभिन्न सामाजिक सुधारों के लिए आवश्यक आर्थिक शक्ति उन्होंने प्राप्त कर ली है।

वितरण का समाजीकरण चौथा आर्थिक सुधार है जिसे पश्चिमी समाज ने बहुत हाल में अपनाया है। मुद्रा के आविष्कार होने तथा व्यापारिक प्रणाली के विकास होने के बाद से साधारण खपत की सभी सामग्रियाँ व्यापारियों या सौदागरों द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से खरीदी जाती हैं। सौदागर माल पैदा करने वालों से कम से कम कीमत पर माल खरीदता है और तब खरीददारों के हाथों बेचता है। इस एक बार के व्यापार से उसे काफ़ी कमीशन प्राप्त हो जाता है। वितरण की इस प्रणाली को व्यापारिक प्रणाली (Trade system) या सौदागरी वितरण (Merchant distribution) कह सकते हैं। इस प्रणाली से खरीददार अनजाने ही बहुत घाटे में रहता है। हाल के अध्ययन ने इस बात की ओर संकेत किया है कि व्यापारिक प्रणाली इस तरह सुधारी जा सकती है कि सौदागरों के हाथों से माल का वितरण नहीं हो बल्कि सामाजिक संस्थाओं या सरकार द्वारा वितरण किया जाय। उदाहरण के लिए देखिए कि इंगलैण्ड में उपभोक्ता सहयोग समितियाँ (Consumers Co-operatives) कायम हो गई हैं जो माल वितरण की सामाजिक संस्था हैं।

यूरोप और अमेरिका की सबसे आधुनिक म्युनिसिपल सरकार स्वयं पानी, बिजली, गैस, रोटी, दूध, मक्खन और दूसरी खाने की चीज़ों के वितरण का प्रबन्ध करती है। इससे सौदागरों को होने वाला मुनाफा बच जाता है और उपभोक्ताओं को जो हानि होती है उसमें कमी हो जाती है। इस नई प्रणाली में जो सिद्धान्त लागू है वही वितरण का समाजीकरण है यानी वितरण की दिशा में साम्यवाद लागू किया गया है। सामाजिक और आर्थिक विकास के ये चार अंग—सामाजिक और आर्थिक सुधार, माल ढोने तथा यातायात के साधनों पर जनता का अधिकार, प्रत्यक्ष कर-निर्धारण और वितरण का समाजीकरण—पुरानी प्रणालियों को हटाकर नई प्रणालियों को पैदा कर रहे हैं। नई प्रणालियों के निरन्तर प्रादुर्भाव से ही बराबर प्रगति सम्भव होती है।

समाज के क्रमिक विकास का कारण क्या है? क्यों समाज में ये रूपान्तर होते हैं? मार्क्स के मतानुसार हमें कहना पड़ेगा कि सामाजिक परिवर्त्तन

वर्ग संघर्ष के कारण होता है और वर्ग संघर्ष पूँजीपतियों द्वारा मजदूरों के शोषण का परिणाम है। चूँकि पूजीपतियों और मजदूरों के स्वार्थ निश्चय ही एक-दूसरे से टक्कर खाते हैं और दोनों में सामंजस्य नहीं हो सकता है इसलिए संघर्ष प्रारम्भ होता है और समाज के अन्दर का यह संघर्ष ही प्रगति का कारण है। गत कई दशाब्दियों के भीतर हुए पश्चिम की सामाजिक विकास की कुछ बातों को लीजिए। इनमें सबसे अच्छा वितरण का समाजीकरण है जो व्यापारियों के एकाधिकार को समाप्त करता है। पूँजीपतियों के ऊपर भारी आय-कर और उत्तराधिकार-कर लगाने से राष्ट्र की आय काफ़ी बढ़ जाती है और राष्ट्र इस योग्य हो जाता है कि वह माल ढोने और यातायात के साधनों को अपने नियन्त्रण में ले, मजदूरों के स्वास्थ्य और शिक्षा तथा पुतलीघरों के भीतर की चीज़ों में सुधार करे और समाज की उत्पादन शक्ति में वृद्धि हो। जब अधिक परिमाण में तथा अच्छी चीज़ें बनेंगी तो पूँजीपतियों को अधिक मुनाफा होगा और मजदूरों की उजरत भी बढ़ेगी। इस दृष्टि से जब पूँजीपति मजदूरों के रहने की दशा में सुधार करते हैं और उनके उत्पादन शक्ति को बढ़ाते हैं जो मजदूर पूँजीपतियों के लिए अधिक माल पैदा कर सकते हैं। इसका यह अर्थ है कि पूँजीपतियों को अधिक माल मिलता है और मजदूरों को अधिक उज़रत। यहाँ पूँजीपतियों और मजदूरों के स्वार्थों में संघर्ष की अपेक्षा सहयोग होता है। स्वार्थों के संघर्ष की अपेक्षा बड़े-बड़े आर्थिक स्वार्थों के सामंजस्य से ही समाज की उन्नति होती है। अगर समाज के अधिकांश आर्थिक स्वार्थों के बीच सामंजस्य स्थापित किया जा सके तो एक बड़ी संख्या में जनता को लाभ होगा और समाज की उन्नति होगी। हम क्यों ऐसा सामंजस्य स्थापित करना चाहते हैं? इसका एकमात्र कारण जीविका की समस्या है। प्राचीनकाल से अब तक मनुष्य ने अपनी ताकत अपनी स्थिति कायम रखने में ही लगाई है। बराबर बने रहने के लिए मानव जाति का संघर्ष ही समाज के अविच्छिन्न विकास का कारण है, यही सामाजिक प्रगति का नियम है। वर्ग संघर्ष सामाजिक प्रगति का कारण नहीं है—वह तो एक बीमारी है जो सामाजिक प्रगति के रास्ते में उत्पन्न हो गई है। बीमारी का कारण अपने को बनाए रखने की असमर्थता है और इस बीमारी का फल संघर्ष है। सामाजिक समस्याओं के अपने अध्ययन से मार्क्स ने सामाजिक प्रगति के रास्ते की बीमारियों का ज्ञान प्राप्त किया है। इसलिए मार्क्स सामाजिक रोग निदान-कारक कहा जा सकता है। हम उन्हें चिकित्सक नहीं कह सकते।

मार्क्स के वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त के अनुसार 'अतिरिक्त मूल्य' जिसका उपयोग पूँजीपति करते हैं, वह पूर्ण रूप से मजदूरों के श्रम का फल है। मार्क्स उत्पादन का सारा श्रेय औद्योगिक मजदूरों के श्रम को देते हैं और दूसरे उपयोगी सामाजिक प्रतिनिधियों के श्रम को छोड़ देते हैं। उदाहरण के लिए देखिए :—संघाई, नान्तुङ् चौ, थि एन चिन, हान्क्वो तथा दूसरी जगहों में स्थित चीन के कपड़े की मीलों ने यूरोपीय युद्ध के समय में काफी धन उपार्जन किया। हर मील ने कम से कम कई लाख डालर वार्षिक 'अतिरिक्त मूल्य' प्राप्त किए। कहीं-कहीं तो यह अतिरिक्त मूल्य करोड़ों पहुँच गया। यह अपरिमित 'अतिरिक्त मूल्य' किसके श्रम से प्राप्त हुआ? क्या केवल मील के भीतर कर्घों पर काम करने वाले मजदूरों के श्रम से ही? जब हम सूत और कपड़े के कच्चे माल के बारे में सोचते हैं तो हमारा ध्यान रुई की ओर जाता है। जब हम रुई प्राप्त करने के साधनों की बात सोचते हैं तो हमारा दिमाग कृषि पर जाता है। अगर हम कपास की खेती पर ब्यौरेवार ढंग से चर्चा करें तो हमें वैज्ञानिक कृषि विशेषज्ञों को देखना होगा जो कपास के अच्छे बीज का चुनाव तथा कपास के बोने और पैदा करने के अच्छे तरीकों का अध्ययन करते हैं। बीज बोने के पहले खेत जोतने और बीज बोने के बाद खेत की घास-पात बटोरने के लिए बहुत से औजारों और यन्त्रों की आवश्यकता होती है और पौधों के पुष्ट होने के लिए खाद देना भी जरूरी है। जब हम मशीन और खाद की बात सोचते हैं तो इन चीजों के आविष्कारों और बनाने वालों को भी श्रेय देना पड़ेगा। कपास लोढ़ाई के बाद सूत कातने के लिए रुई मील भेजा जाना चाहिए और जब सूत और कपड़ा तैयार हो गया तो उन्हें फिर बाजार में बिक्री के लिए पहुँचाना चाहिए। यह काम स्वभावतः हमारा ध्यान जहाज और रेलगाड़ियों की ओर ले जाता है और जब हम सोचते हैं कि ये मशीनें कैसे माल ढोने के योग्य बना सकीं तो हमें भाप और बिजली की इंजिन आविष्कारकों को श्रेय देना ही होगा। अगर हम उन सामानों की ओर देखें जिनसे इंजिन बनता है तो हमें खान में काम करने वालों तथा धातुओं के बनाने वालों, जंगलों में काम करने वालों तथा लड़की के काम करने वालों को भी श्रेय देना होगा। सूत और कपड़ा पूर्ण रूप से बन जाने के बाद अगर समाज का कोई दूसरा वर्ग नहीं बल्कि केवल औद्योगिक मजदूर (Industrial workers) ही कपड़ों का व्यवहार करें तो कपड़ों के लिए विस्तृत बाजार नहीं होगा और तब कैसे पूँजीपति अधिक लाभ उठा सकेंगे और 'अतिरिक्त मूल्य'

पैदा कर सकेंगे। जब आप इन सभी बातों को सामने रखते हैं तो आप 'अतिरिक्त मूल्य' पर किसका अधिकार मानते हैं? कारखानों के मजदूर कैसे कह सकते हैं कि वह केवल उन्हीं के श्रम का फल है। सभी उद्योग-धन्धों में 'अतिरिक्त मूल्य' के पैदा होने का समान नियम है। यह केवल कारखानों के अन्दर काम करने वाले मजदूरों के श्रम का ही फल नहीं है बल्कि समाज के बहुत से उपयोगी और शक्तिशाली प्रतिनिधियों के श्रम का फल है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से काम करके तैयार माल के उत्पादन या खपत में थोड़ा या अधिक हाथ बँटाते हैं। इन उपयोगी और शक्तिशाली प्रतिनिधियों की संख्या ही समाज में अधिक है।

जहाँ तक उद्योग-धन्धों में लगे हुए मजदूरों की संख्या का प्रश्न है संयुक्त राष्ट्र अमेरिका जैसे औद्योगिक और उन्नतिशील राष्ट्र में भी मजदूरों की संख्या वहाँ की कुल जनसंख्या का सिर्फ पाँचवाँ भाग है अर्थात्, दो करोड़ से अधिक नहीं है। अगर हम इस प्रश्न पर इस दृष्टि से विचार करें तो अगर काफ़ी उन्नतिशील और औद्योगिक देशों में आर्थिक स्वार्थों के बीच सामंजस्य की कमी है जिससे संघर्ष और युद्ध होता है तो हमें पता चलेगा कि केवल एक तरह का मजदूर वर्ग एक तरह के पूँजीपति वर्ग से ही संघर्ष में नहीं लगा हुआ है बल्कि समाज के बहुत से उपयोगी और योग्य वर्ग पूँजीपतियों के विरुद्ध खड़े हैं। चूँकि ये अनगिनत सामाजिक वर्ग जीविका की तलाश में हैं और आर्थिक झगड़ा मिटाना चाहते हैं इसलिए वे माल की सार्वजनिक वितरण प्रणाली लागू करते हैं, राष्ट्र के माल ढोने तथा यातायात के साधनों की उन्नति के लिए पूँजीपतियों पर भारी आय-कर और उत्तराधिकार-कर बैठाते हैं, मजदूरों के रहने की दशा तथा पुतलीघरों में काम करने की हालतों में सुधार करते हैं तथा इसी प्रकार के अन्य प्रयोग करते हैं जिनसे राष्ट्र के अन्दर के बहुत से आर्थिक स्वार्थों में सामंजस्य स्थापित हो सके। जब से पश्चिम में आर्थिक स्वार्थों के बीच सामंजस्य स्थापित करने वाले विभिन्न तरीकों का विकास हुआ है तब से समाज में बड़ी प्रगति हुई है और अधिकांश जनता आनन्दपूर्वक रहती है। मार्क्स ने अपनी सामाजिक समस्याओं के अध्ययन में समाज की केवल एक ही बीमारी का पता लगाया, उसने सामाजिक प्रगति के नियम और इतिहास की केन्द्रीय शक्ति का पता नहीं लगाया। जैसा कि अमरीकी विद्वान् ने कहा है कि वृत्ति (रोजी) के लिए संघर्ष करना ही सामाजिक प्रगति का कारण है और यही इतिहास की केन्द्रीय शक्ति है। वृत्ति के लिए संघर्ष करना और जीविका की समस्या

दोनों एक ही चीज हैं और इसलिए जीविका की समस्या सामाजिक प्रगति को आगे बढ़ाने वाली शक्ति कही जा सकती है। जब हम पूर्णरूप से इस सिद्धान्त को समझते हैं तो सामाजिक समस्या का दूसरा हल पाना हमारे लिए आसान हो जायगा।

मार्क्स का यह मानना कि वर्ग संघर्ष ही सामाजिक प्रगति का कारण है परिणाम को कारण के पहले रखता है। मूलस्रोत में ही गड़बड़ी हो जाने के कारण मार्क्स का मत ठीक-ठीक सिद्ध नहीं हो सका है और कभी-कभी तो वह सामाजिक इतिहास की बाद में होने वाली घटनाओं द्वारा प्रत्यक्ष रूप से गलत सिद्ध हुआ। उदाहरण के लिए—मार्क्स के अनुयायियों ने सन् १८४८ में अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन किया और कई एक घोषणायें कीं। उस समय जो अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी संघ का संगठन किया गया था वह फ्रांस प्रसा (Franco-Prussian) युद्ध के समय विघटित कर दिया गया। बाद में दूसरा अन्तर्राष्ट्रीय संघ संगठित किया गया जो प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय संघ से कई एक बातों में अन्तर रखता था। प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय केवल वर्ग संघर्ष के मत पर स्थापित था। वह समाज के पुनर्निर्माण के लिए क्रान्तिकारी तरीकों का प्रचारक था और पूँजीपतियों से कोई समझौता नहीं करना चाहता था बल्कि पूर्ण असहयोग करता था। राष्ट्रीय परिषदों में सदस्यों की राजनीतिक कार्रवाइयाँ पार्टी द्वारा अवैज्ञानिक कहकर रोक दी गईं। लेकिन बाद में जर्मन समाजवादी रिचस्ताग (Reichstag) में आन्दोलन मचाने लगे और हाल में ही ग्रेट ब्रिटेन का मजदूर दल वैधानिक राजतंत्र के अन्दर मंत्रिमंडल कायम करने में भी समर्थ हो गया है। इन बातों से पता चलता है कि बहुत से राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तन प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय द्वारा निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार नहीं हुए। प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय और दूसरी अन्तर्राष्ट्रीय के बीच नीति संबंधी मतभेद पड़ जाने से मार्क्स के अनुयायियों का आपस में झगड़ा बहुत बढ़ गया जिसे मार्क्स अपने समय में नहीं देख सका था। मेरा मत एकदम से सत्य है कि कहना सहल है पर समझना कठिन है। मार्क्स ने सामाजिक समस्याओं के सुलझाने में विज्ञान की मदद लेनी चाही था। प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय की स्थापना करने के पहले मार्क्स से अपनी सबसे अधिक शक्ति और समय इतिहास और तत्कालीन घटनाओं के विवेकपूर्ण विश्लेषणात्मक अध्ययन में लगाया था। अपने अध्ययन के फलस्वरूप वह इस नतीजे पर पहुँचा कि भविष्य में पूँजीवादी प्रणाली ज़रूर ही ढहेगी। जैसे-जैसे पूंजीवाद बढ़ेगा इस प्रणाली के भीतर की प्रतियोगिता भयंकर से

भयंकरतर होती जायगी, बड़े पूँजीपति छोटे-छोटे पूँजीपतियों को हड़प लेंगे और अन्त में केवल दो वर्ग समाज में रह जायँगे—एक अत्यन्त धनवान पूँजीपति वर्ग और दूसरा अत्यन्त निर्धन मजदूर वर्ग। जब पूँजीवाद अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाएगा तो वह स्वयं ही ढहने लगेगा और तब पूँजीवाद राज कायम होंगे। समय के दौरान में साम्यवाद भी शक्तिशाली होगा और एक स्वतंत्र साम्यवादी राज की स्थापना होगी। मार्क्स के अनुसार अत्यन्त विकसित पूँजीवादी राज अपनी मृत्यु अवस्था को पहुँच चुका है इसलिए तुरन्त ही एक क्रान्ति होगी। लेकिन मार्क्स के बाद के ७० वर्षों से अधिक समय का पश्चिमी इतिहास इस मत का प्रत्यक्ष खण्डन करता है। मार्क्स के समय में इंगलैण्ड के मजदूर प्रतिदिन आठ घंटे काम करने की माँग करते थे और पूँजीपतियों से अपनी माँग पूरी कराने के लिए हड़ताल रूपी अस्त्र का प्रयोग करते थे। मार्क्स ने ब्रिटिश मजदूरों की यहकह कर आलोचना की कि उनकी माँग दिवा-स्वप्न है जिसे पूँजीपति निश्चय ही नहीं स्वीकार करेंगे। प्रतिदिन आठ घण्टे काम करने की मांग के लिए उन्हें क्रान्तिकारी अस्त्र व्यवहार करना चाहिए। पर बाद में जहाँ-जहाँ मजदूरों ने प्रतिदिन आठ घण्टे काम करने की माँग की वह केवल वास्तविक बात ही नहीं हो गई बल्कि राज के कानून द्वारा सम्पूर्ण देश में यह लागू कर दिया गया जिससे कारखानों, बैंकों और रेल कम्पनियों के मजदूरों को दिन भर में केवल आठ घण्टे काम करने पड़ते हैं। बहुत सी घटनाएँ जिन्हें मार्क्स ने पहले नहीं देखा था उसके मत से सामंजस्य नहीं रखती हैं। मार्क्स को यह भी कबूल करना पड़ा कि कुछ चीजें उसके अनुमान से विपरीत घटी हैं। पूँजीवाद को ही लीजिए : मार्क्स का यह मत है कि जैसे-जैसे पूँजीवाद बढ़ता जायगा पूँजीपति आपस में एक दूसरे को हड़प लेंगे और इस प्रकार अपना नाश अपने ही जल्दी से सामने लाएंगे। लेकिन आज हम देखते हैं कि पूँजीवादी नष्ट तो नहीं ही हुए हैं बल्कि पहले से भी अधिक तेजी से बिना ह्रास के चिह्न के बढ़ते जा रहे हैं। यह मार्क्स के मत पर अधिक प्रकाश डालता है।

हम पुनः एक बार जर्मनी की सामाजिक स्थिति पर विचार करें। बिसमार्क के काल में राज की शक्ति मजदूरों के दुःखों को दूर करने में लगी। कानून द्वारा यह निश्चित कर दिया गया कि मजदूरों से दिन भर में आठ घण्टे ही काम लिया जा सकता है और राज-द्वारा लड़के-लड़कियों के काम में प्रवेश करने की उम्र तथा दिन भर में काम करने के घंटों पर भी बहुत से प्रतिबंध लगाए गए। बुढ़ापे में मजदूरों को पेनशन देने तथा उनका

जीवन-बीमा कराने का प्रबन्ध भी राज ने किया और इनका बोझ देश के पूँजीपतियों के सिर दिया। यद्यपि बहुत से पूँजीपतियों ने इसका विरोध किया लेकिन बिसमार्क 'लहू और लोहे' का बना मंत्री था और उसने दृढ़ता के साथ अपनी योजना कार्यान्वित की। उसी समय बहुत से लोगों ने कहा कि मजदूरों की रक्षा और काम करने के घण्टों में कमी कर देने की इस नई राष्ट्रीय नीति से तो मजदूरों को सचमुच में लाभ होगा लेकिन इससे पूँजीपतियों को हानि होगी। ऊपर से देखने में तो यह लगता है कि आठ घण्टों की अपेक्षा सोलह घण्टों के श्रम से उत्पादन अधिक होगा लेकिन आठ घण्टे काम करने का क्या फल हुआ? दर असल आठ घण्टे प्रतिदिन के श्रम से अधिक उत्पादन हुआ। इसका कारण यह है कि आठ घण्टे काम करने की प्रणाली में मजदूर अपनी काम करने की शक्ति और स्फूर्ति नहीं खोते हैं बल्कि वे पूरे स्वस्थ रहते हैं। जिसके फलस्वरूप वे बराबर मुस्तैदी से मशीनों की अच्छी खबरगिरी रखते हैं। इसका अर्थ यह है कि मशीनें कदाचित ही खराब होती हैं और मशीनें ठीक करने के लिए कारखानों को बन्द नहीं करना पड़ता है। बिना रुकावट के उत्पादन होता रहता है और अधिक परिमाण में होता है। जब मजदूर प्रतिदिन सोलह घण्टे काम करते हैं तो उनकी ताकत और स्फूर्ति भयंकर रूप से क्षीण होती है। वे मशीनों के सब अंगों पर ध्यान नहीं रख सकते हैं इसलिए मशीनें बराबर टूटती हैं और मशीनें ठीक करने के लिए कारखानों को बन्द कर देना पड़ता है। इससे उत्पादन में रुकावट आ जाती है और इस प्रकार कारखानों का उत्पादन-कार्य निश्चय ही कम हो जाता है। अगर आप मेरी बात पर विश्वास नहीं करते हैं तो मैं तुलना द्वारा अपनी बात को सिद्ध कर दिखाता हूँ। आपमें से हरेक इसका प्रयोग कर देखिए। दिन भर में पन्द्रह या सोलह घण्टे तक अध्ययन करते रहिए जब तक कि आप थक न जाएँ। इसके बाद भी अगर आप अध्ययन जारी ही रखते हैं तो आपको ठीक-ठीक याद ही नहीं रहेगा कि आपने क्या पढ़ा है। लेकिन दिन भर में केवल आठ घण्टे अध्ययन कीजिए तथा शेष समय में आराम कीजिए, खेलिए और अपनी शक्ति संचय कीजिए। मैं विश्वास करता हूँ कि इस तरह आप जो किताब पढ़ेंगे उसे अच्छी तरह समझेंगे और ठीक-ठीक याद भी रखेंगे। मार्क्स ने सोचा कि आठ घण्टे काम करने से उत्पादन में कमी होगी। लेकिन जब जर्मनी ने काम के घण्टे कम कर दिए तो उत्पादन में वृद्धि हुई और वह दूसरे देशों से बढ़ गया। ब्रिटेन और संयुक्त राष्ट्र के लोग चकित हो गए। उन्होंने सोचा था कि काम के घण्टे

कम कर देने और मजदूरों की सुरक्षा के लिए बड़ी रकम खर्च करने से उत्पादन कम होगा। तब जर्मनी ने इस नीति से कैसे उत्पादन में वृद्धि की? इस आश्चर्यजनक बात से वे जर्मनी की हालतों के अध्ययन की ओर झुके और बाद में जब उन्होंने इस नये आर्थिक सिद्धान्त को समझा तो वे भी जर्मनी के नकल करने लगे। मार्क्स ने अपने समय में इन सिद्धान्तों को नहीं देखा था इसलिए वे गलत नतीजे पर पहुँचे थे।

फिर मार्क्स की खोज के अनुसार अगर पूंजीपति बहुत 'अतिरिक्त मूल्य' चाहते हैं तो उन्हें तीन शर्तें पूरी करनी चाहिए। वे तीन शर्तें हैं—मजदूरों को कम उजरत देना, काम के घण्टों में वृद्धि करना और तैयार माल के दामों में वृद्धि करना। ये तीनों शर्तें तर्कपूर्ण नहीं हैं। इस बात को हम आधुनिक समय के बहुत अधिक धन प्राप्त होने वाले उद्योग धन्धों से सिद्ध कर सकते हैं। आप सबों ने संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की फोर्ड (Ford) कम्पनी का नाम सुना होगा। इसके बहुत से कारखाने हैं और उनमें तैयार होने वाली अनगिनत मोटर गाड़ियां सारे संसार में भेजी जाती हैं। इन कारखानों से होने वाली आमदनी कई करोड़ की है। इन कारखानों के माल तैयार करने और फिर माल को बेचने की क्या नीति है? इस कम्पनी की सभी मशीनें और सभी प्रकार के दूसरे प्रबन्ध चाहे वे कारखाने में हों या कम्पनी की अफ़िसों में एकदम सुन्दर और पूर्ण है और इस ढंग के है कि मजदूरों का स्वास्थ्य अच्छा रहे। कारखानों में अधिक से अधिक प्रतिदिन आठ घण्टे काम लिया जाता है। सबसे साधारण मजदूर की दैनिक उजरत पांच अमरीकी डालर है या हमारी मुद्रा (चीनी मुद्रा में) दस डालर। अधिक उपयोगी काम करने वाले मजदूर और अधिक पाते हैं। ऊँची उजरत के सिवाय मजदूरों के मनोविनोद के लिए कारखानों की ओर से खेल-कूद का प्रबन्ध रहता है; मजदूरों के बीमार होने पर उनकी चिकित्सा के लिए कारखानों की ओर से डाक्टर रहते हैं तथा नये मजदूरों और मजदूरों के बच्चों के पढ़ने के लिए स्कूल का प्रबन्ध रहता है। आकस्मिक दुर्घटना और बुढ़ापे के लिए क्रमशः उनके बीमा और पेनशन का प्रबन्ध रहता है। मजदूरों की मृत्यु के बाद उनके परिवार वाले बीमा या पेनशन की रकम ले सकते हैं इसकी भी व्यवस्था रहती है। इस कम्पनी की मोटर गाड़ी खरीदने वाले सभी लोग इसकी मोटर गाड़ियों के दाम को जानते हैं। जहाँ दूसरी कम्पनी की गाड़ी पांच हजार डालर में मिलती है फोर्ड गाड़ी पन्द्रह सौ डालर में ही मिलती है। यद्यपि गाड़ियों की इतनी कम कीमत होती है फिर भी इनकी इंजिनें बड़ी मजबूत होती हैं

श्रौर खासकर पहाड़ी रास्तों के लिए तो बहुत ही उपयोगी होती हैं। बिना खराब हुए ही ये बहुत दिनों तक चलती हैं। चूँकि फोर्ड कम्पनी की बनी गाड़ियों का मूल्य कम होता है श्रौर फिर भी वे काफी मजबूत होती हैं इसलिए उनका प्रचार 'हवा के डैने पर चढ़कर' हुश्रा है श्रौर चूँकि गाड़ी के बिकने के लिए काफ़ी बाजार है इसलिए कारखानों को काफी लाभ भी होता है।

श्रब हम इन बड़े धन कमाने वाले मोटर कारखानों द्वारा लागू किए गए श्रौद्योगिक श्रौर श्रार्थिक सिद्धान्तों को मार्क्स के 'श्रतिरिक्त मूल्य' के सिद्धान्त के साथ तुलना करें। 'श्रतिरिक्त मूल्य' की वृद्धि के लिए मार्क्स की तीन श्रावश्यक शर्तें एकदम गलत साबित होती हैं। मार्क्स ने कहा कि पूंजीपतियों को काम के घण्टे बढ़ाने पड़ेंगे पर फोर्ड कम्पनी ने काम के घण्टे कम कर दिए हैं। मार्क्स ने कहा कि पूंजीपतियों को उजरत कम करनी पड़ेगी पर फोर्ड ने श्रपने कारखानों के मजदूरों की उजरत बढ़ा दी है। मार्क्स ने कहा कि पूंजीपतियों को श्रपने तैयार माल की कीमत बढ़ानी पड़ेगी पर फोर्ड कम्पनी ने श्रपने माल की कीमत घटा कर रखी है। मार्क्स ने इन प्रतिकूलताश्रों का श्रनुमान नहीं किया था इसलिए उसके नतीजे बहुत ही गलत निकले। सामाजिक समस्याश्रों के श्रपने लम्बे श्रध्ययन से मार्क्स ने जो कुछ ज्ञान प्राप्त किया वे भूत काल के इतिहास की बातों से। उन्होंने भविष्य में होने वाली बातों का कुछ भी श्रनुमान नहीं किया। जिसके फल-स्वरूप उनके श्रनुयायी उनके मतों में परिवर्त्तन करना चाह रहे हैं। मार्क्स के सामाजिक दर्शन का मूल उद्देश्य पूंजीपतियों को समाप्त करना था। लेकिन पूंजीपतियों को समाप्त करना चाहिए या नहीं यह एक प्रधान प्रश्न है श्रौर इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर देने के पहले हम ब्यौरेवार ढंग से इसकी जांच करें। इससे पता चलता है कि समझना बहुत ही कठिन है पर करना बहुत ही श्रासान है।

मार्क्स के 'श्रतिरिक्त मूल्य' के सिद्धान्त का सारांश यह है कि श्रम द्वारा उपार्जित 'श्रतिरिक्त मूल्य' को लूटकर पूँजीपति धन पाते हैं। पूँजीपतियों का उत्पादन कार्य मजदूरों पर निर्भर करता है श्रौर मजदूरों का उत्पादन सामग्रियों पर निर्भर करता है श्रौर सामग्रियों का खरीदना या बेंचना सौदागरों (व्यापारियों) पर निर्भर करता है। सभी प्रकार के उत्पादन से होने वाला कुल लाभ पूँजीपति श्रौर सौदागर ले लेते हैं श्रौर इस प्रकार लहू श्रौर पसीने बहा कर मजदूरों द्वारा कमाए हुए धन को वे लूटते हैं। इसलिए पूँजीपति श्रौर व्यापारी मजदूरों को श्रौर संसार को हानि पहुँचाने वाले हैं श्रौर हमें उनको

नष्ट कर देना चाहिए। लेकिन मार्क्स का कथन था कि पहले पूँजीपति समाप्त होंगे और तब व्यापारी वर्ग। संसार अब स्थिरता के साथ उन्नति कर रहा है और प्रतिदिन नए-नए सुधारों का प्रवर्त्तन कर रहा है। उदाहरण के लिए वितरण के समाजीकरण के नए प्रयोग को लीजिए जो सहयोग समितियाँ भी कहलाती हैं। ये समितियाँ मजदूर संघ द्वारा गठित होती हैं। अगर मजदूर अपनी जरूरत के कपड़े और खाने की चीजें सीधे व्यापारियों से लें तो व्यापारी नफा माँगेंगे और इस प्रकार मजदूरों को अपने सामान के लिए बहुत देना पड़ेगा और व्यापारी बहुत धन पैदा करेंगे। कम कीमत पर माल खरीदने के लिए मजदूर स्वयं अपना संगठन करते हैं और अपनी जरूरत की चीज़ों को बेचने के लिए अपना भण्डार (Store) खोलते हैं। इस प्रकार वे अपनी साधारण ज़रूरत की सभी चीज़ें अपने भण्डार से खरीदते हैं। उन्हें माल सस्ते में और आसानी से मिल जाते हैं और वर्ष के अन्त में भण्डार में जो बचत होती है वह सभी मजदूरों के बीच हिस्सों के अनुपात से बाँट दी जाती है। हिस्सों के अनुपात से नफा का बँटवारा होने के कारण इस प्रकार के भण्डार 'उपभोक्ता सहयोग समितियाँ' कहलाती हैं। ग्रेटब्रिटेन के बहुत से बैंक और उत्पादक कारखाने सहयोग-समितियों द्वारा ही अब नियंत्रित होते हैं। इन समितियों के हो जाने से बहुत से व्यापारी भण्डार उठ गए हैं। पहले जो इन (मजदूरों के भण्डार को) भण्डारों को नगण्य दुकान कहकर देखते थे अब वे ही इन्हें शक्तिशाली संगठन समझने लगे हैं। इस प्रकार के संगठन का तेजी के साथ बढ़ने के कारण बड़े-बड़े ब्रिटिश व्यापारी अब माल उत्पन्न करने वाले हो गए हैं। उदाहरण के लिए देखिए:—स्टैंडर्ड आइल कम्पनी (Standard oil Company) जो चीन में तेल बेचती है, संयुक्त राष्ट्र में तेल निकालने वाली कम्पनी है। ग्रेट ब्रिटेन में दूसरी व्यापारिक कम्पनियाँ भी उत्पादक कम्पनियों का रूप धारण करती जा रही हैं। सहयोग समितियों द्वारा सामाजिक समस्याओं का हल होना तो केवल एक आवान्तर बात है, फिर भी इससे मार्क्स के मत का खण्डन हो जाता है कि पूँजीपति व्यापारियों से पहले समाप्त होंगे। मार्क्स ने जो नतीजा निकाला था उनका आधुनिक बातों से असंगति होना दूसरा सबूत है कि मेरा सिद्धान्त हटाया नहीं जा सकता है कि 'समझना कठिन है पर करना सहल है।'

फिर मार्क्स के सिद्धान्त के अनुसार संसार के बड़े-बड़े उद्योग-धन्धे उत्पादन पर निर्भर करते हैं और उत्पादन पूँजीपतियों के ऊपर निर्भर करता है। इसका यह अर्थ है कि अच्छे उत्पादन और बड़ी पूँजी से उद्योग-धन्धे बढ़

सकते हैं और मुनाफा भी हो सकता है। चीन की औद्योगिक दशा से इस मत पर क्या प्रकाश पड़ता है ? चीन का सबसे बड़ा औद्योगिक संगठन हान् ये-पिङ् कम्पनी (हान्पाङ् आइरन एण्ड स्टील कम्पनी) है जिसके कारखानों ने इस्पात बनाने में अपनी विशेषता प्रदर्शित की है। इस कम्पनी में षङ् शुआन्-हुइ की बहुत पूँजी लगी हुई है। सालाना जो इस्पात यहाँ तैयार होता है वह साधारणतः अमेरिका के सिटले (Seattlle) या अस्ट्रेलिया भेजा जाता है और यूरोपीय युद्ध के समय जापान भी भेजा गया था। फिर भी लोहा चीन का प्रधान आयात है। जब चीन में हान् ये पिङ् नामक लोहे का कारखाना है तब फिर विदेशों से क्यों यह लोहा खरीदता है ? क्योंकि चीन के बाजार में अच्छे दर्जे के लोहे की ज़रूरत है जिससे राइफल, बन्दूक तथा अन्य औजार बन सकें। हान् ये कम्पनी केवल इस्पात की पटरियाँ (Steal rails) और ढालुआ लोहा (Pig iron) तैयार करती है जिसकी आवश्यकता चीन के बाज़ार को नहीं है। इसलिए हमारा बाज़ार हान् ये पिङ् कम्पनी के लोहे की अपेक्षा विदेशी लोहे को खरीदता है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका हर वर्ष चालीस करोड़ टन इस्पात और चालीस से पचास करोड़ टन के भीतर तक लोहा उत्पादन करता है। चीन में केवल हान् ये पिङ् कम्पनी द्वारा दो लाख टन लोहा और एक लाख टन से कुछ अधिक इस्पात हर वर्ष तैयार किया जाता है। क्यों चीन अपने इस कम परिमाण में उत्पन्न होने वाले इस्पात को भी संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के हाथ बेच देता है और क्यों संयुक्त राष्ट्र भारी परिमाण में इस्पात को उत्पन्न करते हुए भी चीन के इस्पात को खरीदता है ? चूँकि हान् ये पिङ् कम्पनी के पास अच्छी तरह गलाकर धातु निकालने वाले कारखाने नहीं हैं और यह जो लोहा तैयार करती है उसे काम में लाने के पहले फिर कई तरीकों से उसे तैयार करना पड़ता है। इस कम्पनी में जो लोहा तैयार होता है उस लोहे की चीन में ज़रूरत नहीं पड़ती है इसलिए विदेशों में बेच दिया जाता है। संयुक्त राष्ट्र में बहुत से इस्पात के कारखाने हैं जो कहीं से भी सस्ता लोहा खरीदते हैं, उसे अपने यहाँ पुनः गलाते हैं और अच्छा इस्पात बनाकर अधिक मुनाफा कमाते हैं। यद्यपि संयुक्त राष्ट्र स्वयं बहुत इस्पात पैदा करता है फिर भी वह चीन से भेजे गए सस्ते लोहे को खरीदता है। चूँकि हान् ये पिङ् कम्पनी अपना बना इस्पात दूसरे देशों में भेजती थी इसलिए यूरोपीय युद्ध के समय यह भी काम के घण्टे कम करने में, मजदूरों की उजरत बढ़ाने में समर्थ हो सकी और इतना करने के बाद भी इसने बहुत मुनाफा कमाया था। लेकिन अब कम्पनी को घाटा हो रहा है और

बहुत से मजदूर काम से हटा दिए गए हैं। मार्क्स का कहना होगा कि हान् ये-पिङ् कम्पनी इस्पात के समान अच्छी चीज़ पैदा करती है और इसके पास पूँजी भी अधिक है इसलिए इसे बहुत मुनाफा कमाना चाहिए और तेजी के साथ उन्नति करनी चाहिए। तब क्यों यह कम्पनी अवनति कर रही है? अगर हम इस एक कम्पनी (हान् ये-पिङ्) की हालतों की जाँच करें तो पता चलेगा कि उद्योग-धन्धों का हृत-पिंड-उपभोक्ता समुदाय है। उद्योग-धन्धों की उन्नति केवल उत्पादन में लगी पूँजी पर निर्भर नहीं करती हैं। यद्यपि हान् ये-पिङ् कम्पनी के पास बहुत बड़ी पूँजी है पर यह जो इस्पात उत्पादन करती है उसकी खपत चीन में नहीं होती है। इसलिए न तो कम्पनी बढ़ ही पाती है न मुनाफा ही कर सकती है। क्योंकि उद्योग-धन्धे का केन्द्र उपभोक्ता समाज है इसलिए आज के सभी बड़े-बड़े उद्योग-धन्धे उपभोक्ता की आवश्यकताओं के अनुसार उत्पादन करते हैं। अधिक बुद्धिमान मजदूर भी अब उपभोक्ताओं के साथ सहयोग कर रहे हैं। खपत क्या है वह तो केवल लोगों के जीने में मदद करने का एक प्रश्न है—यह जीविका का एक प्रश्न है। इसलिए उद्योग-धन्धों को भी जनता की जीविका पर निर्भर रहना पड़ता है।

जीविका शासन का, अर्थशास्त्र का और ऐतिहासिक हलचलों का केन्द्र है। जैसा कि लोगों को कभी सौरमंडल के केन्द्र के सम्बन्ध में गलत धारणा थी उसी तरह पुराने साम्यवादियों ने भौतिक शक्तियों को इतिहास का केन्द्र मानने की गलती की। इससे जो गड़बड़ी पैदा हुई उसकी तुलना उस गड़बड़ी से की जा सकती है जो पुराने ज्योतिषियों के इस मत के अनुसरण करने से हुई थी कि पृथ्वी ही सौरमंडल का केन्द्र है। इससे कालनिरूपण विधि सम्बन्धी गणनाओं में वर्ष में एक महीने की गलती हो जाती थी। बाद में जब गलतो का सुधार हुआ और सूर्य ही सौरमंडल का केन्द्र माना गया तो हर तीसरे वर्ष में सिर्फ एक दिन की गलती होती थी। अगर हम सामाजिक समस्याओं के भीतर से गड़बड़ी को दूर करना चाहते हैं तो हमें सामाजिक विज्ञान में की गई गलती में सुधार करना पड़ेगा। हम अब नहीं कह सकते कि भौतिक बातें ही इतिहास की केन्द्रिय शक्ति हैं। हम इतिहास की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक हलचलों को जीविका की समस्या के चारों ओर स्थित करें। हम जीविका को सामाजिक इतिहास का केन्द्र समझें। जब हमने केन्द्रीय समस्या की पूर्णरूप से छान-बीन कर ली है तो हम सामाजिक समस्या के हल का रास्ता भी पा सकते हैं।

अगस्त ३, सन् १९२४ ई०

दूसरा व्याख्यान

अगर हम सिद्धान्त की दृष्टि से जीविका की समस्या की ब्यौरेवार चर्चा करें तो हम इसे दस या बीस दिनों में भी समाप्त नहीं कर सकते। साथ-साथ अब तक इस क्षेत्र में कोई स्थिर सिद्धान्त नहीं बन सका है इसलिए इस सिद्धांत की अधिक चर्चा करना समय की बर्बादी ही होगी। जितना ही इसका सैद्धान्तिक तरीके पर विचार करेंगे उतना ही यह कम समझ में आयगा। इसलिए सिद्धान्त की बातों को अलग रखकर आज मैं केवल इसके कार्यान्वित करने के तरीकों की चर्चा करूँगा।

जीविका के सिद्धान्त को कार्यान्वित करने के लिए कुछ दिन पहले क्वोमिन्ताङ् ने दो तरीके निश्चित किए। पहला तरीका है जमीन पर जनता का समान अधिकार होना और दूसरा है पूँजी का नियन्त्रीकरण। अगर हम इन दो तरीकों का अनुकरण करें तो हम चीन में जीविका की समस्या हल कर लेंगे। अपनी-अपनी विभिन्न परिस्थितियों और पूँजीवादी विकास की भिन्न-भिन्न मात्राओं के कारण विभिन्न देशों को जीविका की समस्या के हल करने में विभिन्न तरीकों का अनुसरण करना पड़ता है। बहुत से चीनी विद्वान् जो पश्चिमी ज्ञान के सभी रूपों को अपना रहे हैं, सोचते हैं कि हम अपनी समस्या पश्चिम की नकल कर के हल कर सकते हैं। वे इस बात का अनुभव नहीं करते कि पश्चिम के साम्यवादी सामाजिक प्रश्नों को लेकर कितने दलों में विभक्त हैं और एक समान कार्य-प्रणाली से वे अभी भी कितने दूर हैं। मार्क्स के अनुयायी सामाजिक प्रश्नों का हल सर्वहारा अधिनायक तन्त्र द्वारा और सभी राजनीतिक तथा आर्थिक समस्याओं का हल क्रान्ति द्वारा करना चाहते हैं। वे उग्रवादी दल के हैं। साम्यवादियों का दूसरा समुदाय शान्त तरीकों, राजनीतिक कारवाइयों और समझौते की नीति की वकालत करता है। ये दोनों मत वाले यूरोप और अमेरिका में बराबर भयंकर संघर्ष में लगे हुए हैं और हर दल के पास काम करने के अपने तरीके हैं। रूस ने अपनी क्रान्ति में राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं के लिए क्रान्तिकारी तरीके अख्तियार किए। लेकिन क्रान्ति के बाद के छः वर्षों में हमने जो कुछ देखा है उससे पता चलता है कि जहाँ तक केवल राजनीतिक समस्याओं का सम्बन्ध है क्रान्तिकारी तरीके पूर्ण सफल हुए हैं। यह नहीं कहा जा सकता

कि उसने आर्थिक समस्याओं का ही पूर्णरूप से हल कर लिया है। सोवियत्-रूस की नयी आर्थिक नीति अभी भी प्रयोगावस्था में है और इससे हमें ज्ञात होता है कि आर्थिक कठिनाइयों को पूर्णरूप से क्रान्तिकारी तरीके नहीं मिटा सकते हैं। इसी कारण बहुत से विदेशी विद्वान् रूस की क्रान्तिकारी योजना का विरोध करते हैं और उसके बदले राजनीतिक कार्रवाइयों की वकालत करते हैं। चूँकि राजनीतिक कार्रवाइयाँ एक ही दिन में राजनीतिक और सामाजिक सुधार नहीं कर सकती हैं इसलिए यह समुदाय धीमी प्रगति, समझौते और शान्त तरीकों पर विश्वास करने वालों का है। वे इस बात को नहीं सोचते कि पश्चिम के बड़े-बड़े पूँजीवादी राजों को मार्क्सवादी प्रणाली का व्यवहार करना चाहिए और सामाजिक समस्याओं को तीव्रता के साथ हल करने की कोशिश करनी चाहिए। उनका सोचना है कि केवल शांत तरीकों से ही समस्या का पूर्णरूप से हल हो सकता है।

ये शान्त तरीके चार हैं—सामाजिक और आर्थिक सुधार, माल ढोने और यातायात के साधनों का राष्ट्रीयकरण, प्रत्यक्ष कर-निर्धारण यानी आय-कर, और वितरण का समाजीकरण या सहयोग समितियाँ—जिन्हें मैं अपने पिछले व्याख्यान में कह चुका हूँ। ये तरीके मार्क्स के बताए रास्तों से सर्वथा भिन्न हैं और अगर हम इन्हें अधिक पुनर्निर्माण के लिए अपनाएँ तो हम मार्क्स की क्रान्तिकारी योजना के विरोधी होंगे। पश्चिम के विभिन्न राष्ट्र इन चार योजनाओं में से एक के बाद दूसरे को कार्यान्वित कर रहे हैं। यद्यपि अब तक उनकी आशा के अनुकूल फल की प्राप्ति नहीं हुई है तथापि वे सोचते हैं कि सामाजिक समस्याओं का अन्तिम हल इन्हीं चार तरीकों में निहित है और बहुत से साम्यवादी इन तरीकों का समर्थन कर रहे हैं। जहाँ ये इन शांत तरीकों का समर्थन करते हैं वहाँ दूसरी ओर ये मार्क्स के क्रान्तिकारी तरीकों का विरोध भी करते हैं।

जब रूस ने पहले-पहल क्रान्ति प्रारम्भ की तो वह सामाजिक प्रश्नों को हल कर लेने की आशा कर रहा था और राजनीतिक प्रश्न तो उसके लिए गौण था। लेकिन क्रान्ति से राजनीतिक प्रश्न तो हल हो गए पर आर्थिक प्रश्नों का हल नहीं हो सका—जो सोचा गया था ठीक उसका उल्टा हुआ। इन बातों से मार्क्स-विरोधी कहने लगे कि रूस का प्रयोग मार्क्सवादी प्रणाली की दृष्टि से असफल रहा—एकदम असफल। मार्क्सवादियों ने इसका उत्तर दिया कि रूस द्वारा सामाजिक सुधार में लागू किये गए क्रान्तिकारी प्रयोग असफल नहीं हुए हैं, बल्कि यूरोप के दूसरे राष्ट्रों की तरह रूस के उद्योग-

धन्धे और व्यापार पूरी तरह से विकसित नहीं हुए हैं और रूस का आथिक संगठन अभी अपरिपक्व दशा में है। जिसके फलस्वरूप वह मार्क्स के तरीकों को सफलतापूर्वक प्रयोग नहीं कर सकता है। उनका कहना है कि बहुत समृद्ध औद्योगिक और व्यापारिक देशों में जहाँ का आर्थिक संगठन परिपक्व दशा में पहुँच चुका है वहाँ मार्क्स के तरीके निश्चय ही सफलतापूर्वक लागू किए जा सकते हैं। पश्चिम के दूसरे राष्ट्रों में मार्क्सवादी तरीकों को निश्चय ही सफलता मिलेगी और इससे मौलिक सामाजिक पुनर्निर्माण होगा। जब हम इन दोनों तरीकों की तुलना करते हैं तो हमें पता चलता है कि मार्क्स 'उलझी डोरी को तेज छूरी से काटना चाहता है' जबकि उसका विरोधी समुदाय नम्र तरीकों का व्यवहार करना चाहता है।

अपनी सामाजिक समस्याओं को सुलझाने के लिए क्या हम 'उलझी डोरी को तेज छूरी से काट डालेंगे' या शांत तरीकों को अख्तियार करेंगे जैसे कि चार तरीके जिनके बारे में पहले कहा जा चुका है? क्रान्तिकारी तरीके और शांत तरीके दोनों ही साम्यवादियों के तरीके हैं और दोनों का पूँजीपतियों द्वारा विरोध किया गया है। पश्चिम के उद्योग-धन्धे और व्यापार बड़ी तेजी से आगे बढ़ रहे हैं। पूँजीवाद अपने उच्चतम शिखर पर चढ़ रहा है। पूँजीपतियों का जुल्म अपनी सीमा तक पहुँच चुका है और जनता इस हालत को बर्दाश्त करने में असमर्थ हो रही है। पूँजीवादी प्रणाली से जनता को होने वाले दुःख को हटाने तथा समाज का पुनर्निर्माण करने में साम्यवादियों को, चाहे वे शांत तरीकों के अख्तियार करनेवाले हों या उग्र तरीकों के, सबों को पूँजीपतियों के विरोध का सामना करना पड़ा है। पश्चिमी राष्ट्र अपनी सामाजिक समस्याओं को सुलझाने में कौन से तरीके अख्तियार करेंगे, यह न तो अभी कहा जा सकता है न इसकी कल्पना ही की जा सकती है। लेकिन शांत तरीकों के अनुयायियों को पूँजीपतियों के सभी प्रकार के विरोध तथा कटु आलोचनाओं का सामना करना पड़ रहा है। वे अनुभव करते हैं कि यद्यपि शांत तरीके जनता के लिए लाभदायक हैं फिर भी उनसे पूँजीपतियों को किसी प्रकार की हानि नहीं होती है और वे (शांत तरीके) वास्तव में व्यावहारिक नहीं हैं। जिसके फलस्वरूप शांत तरीकों में विश्वास करने वाले बहुत से साम्यवादी अपना दल छोड़कर उग्रवादी तरीकों और सामाजिक पुनर्निर्माण के लिए क्रान्तिकारी योजनाओं के व्यवहार करने की वकालत करते हैं। मार्क्स के अनुयायियों का कहना है कि अगर अंगरेज मजदूर सचमुच में जागृत हों, संगठित हों और साथ-साथ मार्क्स के बताए

हुए रास्तों पर अग्रसर हों तो उन्हें निश्चय ही सफलता मिलेगी। चूँकि अमेरिका का पूँजीवाद भी उतना ही विकसित है जितना ग्रेट ब्रिटेन का इसलिए अगर अमेरिका के मजदूर मार्क्सवाद का अनुसरण करें तो वे भी अपने उद्देश्य को प्राप्त कर लेंगे। लेकिन अभी ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और दूसरे देशों के पूँजीपति एकदम से निरंकुश हैं। वे बराबर सामाजिक प्रगति के रास्ते में बाधा डालने और अपने स्वार्थ की रक्षा करने की बात सोचते हैं जैसा कि प्राचीन निरंकुश राजा अपनी गद्दी को बचाने की कोशिश करते थे। पुराने निरंकुश राजा जिन्हें अपने विरोधी दलों की कार्रवाइयों से डर होता था, उन्हें समाप्त करने के लिए वे उन पर भयंकर अत्याचार और निर्दयपूर्ण तरीकों का प्रयोग करते थे। आधुनिक पूँजीपति भी जो अपने व्यक्तिगत लाभ की रक्षा करना चाहते हैं, सभी प्रकार के अत्याचारपूर्ण तरीकों का प्रयोग करते हैं और साम्यवादी दलों का विरोध करने के लिए न्याय के सभी सिद्धान्तों को तिलांजलि दे देते हैं। यह कौन कह सकता है कि पश्चिम के सभी साम्यवादी दल परिस्थिति से बाध्य होकर आर्थिक समस्याओं को सुलझाने के लिए भविष्य में मार्क्सवादी तरीकों को नहीं अख्तियार कर लेंगे?

समाजवादी प्रणाली का प्रयोग आदिमकाल में ही किया जा चुका है। कब यह नष्ट हो गया? इतिहास के अपने अध्ययन से मैं सोचता हूँ कि जबसे समाज में मुद्रा का चलन हुआ तबसे इसका टूटना भी प्रारम्भ हुआ। जब सब आदमियों को मुद्रा मिलने लगी तो वे अपनी इच्छानुसार खरीद-बिक्री करने लगे। उन्हें माल के बदले माल लेने देने की जरूरत नहीं रही। खरीद-बिक्री ने माल के अदल-बदल की जगह ले ली और तब से ही पुराना समाजवाद धीरे-धीरे समाप्त हो गया। मुद्रा के व्यवहार से व्यापार स्वतन्त्र और सुविधाजनक हो गया और तब बड़े-बड़े सौदागर पैदा हुए जो उद्योगवाद के पहले के पूँजीपति थे। जब उद्योग-धन्धों का विकास हुआ और उत्पादन मशीन पर निर्भर करने लगा तब मशीन मालिक ही पूँजीपति हो गए। पहले जिनके पास मुद्रा थी वे ही पूँजीपति थे। पर आधुनिक पूँजीपति वे हैं जिनके पास मशीनें हैं। साधारण विनिमय का प्राचीन युग समाजवाद का युग था जब कि 'दोपहर के समय हाट में लोग अपने सामानों का अदल-बदल कर अपने घरों को लौट जाते थे' और जब मुद्रा और व्यापारिक प्रणाली नहीं थी बल्कि हर आदमी एक-दूसरे की आवश्यकताओं को पूरा करता था। बाद में जब समाज में मुद्रा का प्रवेश हुआ और मुद्रा ही विनिमय का माध्यम बन गई तब व्यापारिक प्रणाली का उदय हुआ। जिनके

पास मुद्रा थी वैसे सौदागर पूँजीपति हो गए। लेकिन आधुनिक समय में मशीन के आविष्कार और सभी तरह के उत्पादन का मशीन के ऊपर निर्भर हो जाने के समय से वह आदमी जिसके पास मशीन है उस आदमी के आगे बढ़ गया जिसके पास मुद्रा है। इसलिए मुद्रा के प्रवेश से समाजवाद समाप्त हो गया और मशीन के प्रवेश से व्यापारी वर्ग समाप्त हो गया। पूँजीपतियों के पास अब कल-कारखाने हैं। वे अपने माल के उत्पादन के लिए मजदूरों पर निर्भर रहते हैं। लेकिन वे मजदूरों को उनके लहू और पसीने की कमाई से वंचित रखते हैं। इस प्रकार वे मूलतः समाज में दो विरोधी वर्ग पैदा कर देते हैं, जो आपस में बराबर संघर्ष में लगे रहते हैं। यही वर्ग-संघर्ष है। कुछ दयावान धार्मिक लोगों ने, जो मजदूरों के दुःख को नहीं देख सकते थे और वर्ग संघर्ष रोकने का कोई रास्ता खोजते थे तथा मजदूर वर्ग के दुःख को भी दूर करना चाहते थे, यह बताया कि हमको समाजवाद की प्राचीन प्रणाली को पुनर्जीवित करना चाहिए। मानव इतिहास का सबसे सुखी युग वह था जबकि आदमी और जानवरों की लड़ाई समाप्त होने के बाद समाजवादी समाज का जन्म हुआ था। उस समय केवल मनुष्य प्रकृति के या कुछ जानवरों के विरुद्ध लड़ता था। बाद में जब उद्योग-धन्धों की प्रगति हुई और मशीन का आविष्कार हुआ तो मनुष्य-मनुष्य के बीच लड़ाई होने लगी। मनुष्यों ने जब प्रकृति और जंगली जानवरों पर विजय प्राप्त की तो उसके बाद से समाज में मुद्रा का प्रवेश हुआ।

अब आधुनिक युग में मशीन का आविष्कार हुआ और सबसे तेज बुद्धि वाले आदमियों ने संसार की सबसे अमूल्य चीजों को हथिया लिया है। अपने लाभ के लिए उन पर एकाधिकार कर रखा है तथा दूसरे वर्ग के लोगों को अपना गुलाम बनाया है। इसीलिए हम लोगों का युग भयंकर संघर्ष का युग हो गया है। यह संघर्ष कब शांत होगा? जब हम समाजवाद का नया युग प्रारम्भ करेंगे तभी यह संघर्ष शांत होगा। मनुष्य आखिर संघर्ष क्यों कर रहा है? वह रोटी के लिए संघर्ष करता है, कटोरे भर भात के लिए संघर्ष करता है। समाजवादी युग जब सब के पास रोटी और भात पर्याप्त मात्रा में खाने को होगा तो आदमी के बीच संघर्ष नहीं होगा और मानव संघर्ष समाप्त हो जायगा। इसलिए समाजवाद सामाजिक पुनर्निर्माण का बड़ा ही उच्च आदर्श है। जीविका का सिद्धान्त जिसका प्रचार क्वोमिनताङ्‌ कर रहा है, केवल उच्च आदर्श ही नहीं है बल्कि समाज को आगे ले जाने वाली शक्ति है; यह सभी ऐतिहासिक हलचलों का केन्द्र है। केवल इस सिद्धान्त

को अपनाने से ही हमारी सामाजिक समस्या सुलझेगी और जब हमारी सामाजिक समस्या हल हो जायगी तभी जाकर आदमी महान् सुख का आनन्द उठा सकेगा। मैं आज समाजवाद और मिन् षङ् सिद्धान्तों के अन्तर को यों रख सकता हूँ—समाजवाद जीविका का आदर्श है जबकि मिन् षङ् व्यावहारिक समाजवाद है। इन दो सिद्धान्तों—समाजवाद और मिन् षङ्—में कोई वास्तविक अन्तर नहीं है; अन्तर है केवल दोनों के कार्यान्वित करने के तरीकों में।

हमारा क्वोमिन्ताङ् जीविका की समस्या सुलझाने के लिए चीन की मौजूदा परिस्थिति को देखते हुए कौन-सा तरीका अख्तियार करे? हम अपने तरीके को केवल दुर्बोध मतों या कोरे ज्ञान के ऊपर नहीं बल्कि वास्तविक तथ्यों के ऊपर आधारित करें तो तथ्य विदेशी राष्ट्रों में देखे हुए न हों बल्कि चीन के अपने हों। जब ये तथ्य हमें आँकड़ों के रूप में मिलेंगे तभी केवल हम कार्य-प्रणाली को निश्चित कर सकेंगे। केवल सिद्धान्तों पर आधारित प्रणाली विश्वसनीय नहीं होगी। क्योंकि सिद्धान्त गलत भी हो सकता है और सही भी। इसलिए उनकी जाँच प्रयोग द्वारा ज़रूर कर लेनी चाहिए। कोई नए प्रस्तावित वैज्ञानिक सिद्धान्त के सच्चे होने में तभी हम विश्वास कर सकते हैं जब वह वास्तविक तथ्यों पर आधारित हो और जो व्यवहार में लाया जा सके। प्रारम्भ में फी सैकड़े निन्नाबे वैज्ञानिक सिद्धान्त गलत होते थे केवल एक फी सदी ही काम के योग्य सिद्ध होते थे। अगर हम अपना रास्ता केवल सिद्धान्त के ऊपर आधारित करें तो हम निश्चय ही असफल होंगे। इसलिए अपनी सामाजिक समस्याओं के हल निकालने में हम वास्तविक तथ्यों को अपना आधार मानें, केवल सिद्धान्तों पर विश्वास नहीं करें। लेकिन चीन की ये आधारभूत बातें क्या-क्या हैं? चीनी जनता की दुःखप्रद गरीबी में हम सब लोगों का हिस्सा है। कोई खास धनी वर्ग नहीं है सिर्फ साधारण गरीब ही हैं। 'अमीरों और गरीबों में असमानता' जिसके बारे में चीनी लोग कहते हैं, यह भेद केवल गरीब वर्ग के अन्दर ही है। भेद केवल गरीबी की मात्रा में है। वास्तविक बात यह है कि चीन का बड़ा पूँजीपति विदेशों के बड़े पूँजीपति की तुलना में वास्तव में गरीब है और बाकी जनता बेहद गरीब है। चूँकि चीन के बड़े पूँजीपति भी संसार में गरीब हैं इसलिए सारी जनता को गरीब ही मानना चाहिए। हममें से कोई भी बड़ा अमीर नहीं है केवल भेद कुछ गरीबी और बेहद गरीबी का है। इस अवस्था को कैसे समान किया जाय कि और अधिक गरीबी न हो?

सामाजिक परिवर्त्तन और पूँजीवाद का विकास साधारणतः जमींदारों से प्रारम्भ होता है और व्यापारी वर्ग से गुजरता हुआ पूँजीपति वर्ग तक पहुँचता है। सामंतशाही प्रणाली से ही जमींदारों का विकास हुआ है। यूरोप अभी तक सामंतशाही प्रणाली से पूर्णरूपेण मुक्त नहीं हो सका है। लेकिन चीन में बहुत पहले छिन् राजकुल के समय में ही यह प्रणाली मिटा दी गई थी। जब सामंतशाही प्रणाली थी तो जिन उच्चवर्ग के लोगों के पास जमीन थी वे ही अमीर थे और बिना जमीन वाले लोग गरीब थे। यद्यपि दो हज़ार वर्ष पूर्व ही चीन से सामंतशाही प्रणाली उठ गई थी तथापि उद्योग-धन्धों और व्यापार में प्रगति नहीं होने के कारण चीन की आज भी वही अवस्था है जो सामंतशाही प्रणाली के समय थी। यद्यपि चीन में आज तक बड़े-बड़े भू-स्वामी नहीं हुए हैं तथापि यहाँ बहुत से छोटे-छोटे भू-स्वामी रहे हैं। इस प्रणाली से बहुत जगह चीन में लोग शांत और संतुष्ट हैं और जनता तथा भू-स्वामी के बीच किसी प्रकार का झंझट नहीं पैदा होता है। जो कुछ हो, हाल के वर्षों में जब से पश्चिमी आथिक जीवन की धारा चीन में भी प्रवाहित होने लगी है हमारी सभी पुरानी प्रणालियों में परिवर्त्तन हो रहा है। आधुनिक पश्चिमी प्रभाव का जबरदस्त धक्का सबसे पहले भूमि सम्बन्धी समस्याओं पर ही पड़ा है। उदाहरण के लिए देखिए :—जब से केण्टन में चौड़ी सड़कें बनी हैं तब से वहाँ की जमीन की हालत देखिए। बण्ड में मिलने वाली जमीन के बीस वर्ष पहले और आज के मूल्य में कितना अन्तर पड़ गया है। संघाई बंड की जमीन का मूल्य अस्सी वर्ष पहले की अपेक्षा आज दस हज़ार गुना अधिक हो गया है। पहले दस वर्ग फीट जमीन का मूल्य एक डालर था अब उतनी ही जमीन का मूल्य दस हज़ार डालर है। आज संघाई बंड में की एक मउ जमीन का मूल्य कई लाख डालर है। केण्टन बंड के एक मउ जमीन का मूल्य भी एक लाख डालर है। चीन के भू-स्वामी पश्चिमी आर्थिक प्रभाव के कारण पश्चिम के पूँजीपतियों की तरह करोड़-पति हो गए हैं। लेकिन जमीन के मूल्य पर आर्थिक विकास का यह प्रत्यक्ष प्रभाव केवल चीन में ही नहीं पड़ा है बल्कि दूसरे देशों की भी यही हालत है। पहले उन्होंने इस बात को नहीं देखा और न इस पर अधिक ध्यान ही दिया। जब तक कि आर्थिक व्यवस्था में भयङ्कर गड़बड़ी नहीं हो गई तब तक लोगों का ध्यान इस पर गया ही नहीं और तब परिस्थिति को सुधारना आसान नहीं था—जमा किए हुए बोझ के साथ पीछे लौटना आसान नहीं था। दूरदर्शिता के खयाल से और भविष्य की कठिनाइयों के विरुद्ध सावधान

होने के लिए क्वोमिन्ताङ् को जमीन के मूल्य की अस्थिरता की समस्या का कोई हल निकालना ही चाहिए।

पश्चिम की साम्यवादी पुस्तकें जमीन के मूल्य की मनोरञ्जक कहानियों से भरी हैं। उदाहरण के लिए सुनिए:—अस्ट्रेलिया में एक जगह थी जहाँ पर उसके व्यापारिक केन्द्र बनने के पहले जमीन बड़ी सस्ती थी। वहाँ की सरकार ने एक बार उसी जगह की जमीन के एक टुकड़े को नीलाम करना चाहा। जमीन एकदम बंजर थी और बेकार चीज़ों से भरी थी और दूसरे किसी काम के योग्य नहीं थी। कोई आदमी भी उस जमीन के लिए अधिक मूल्य नहीं देना चाहता था। अचानक एक पियक्कड़ वहाँ पहुँचा जहाँ कि जमीन नीलाम की जा रही थी। डाक बोलने वाले उस समय जमीन के लिए थोड़ा-थोड़ा डाक बोल रहे थे। एक सौ, दो सौ, ढाई सौ डालर तक का डाक बोला जा चुका था। चूँकि इससे अधिक कोई भी डाक नहीं बोल रहा था इसलिए नीलाम करने वाले ने पूछा—'कौन तीन सौ डालर देगा ?'' उसी समय वह पियक्कड़ जो होश में नहीं था, एकदम बोल उठा—''मैं तीन सौ डालर दूँगा।'' डाक खतम हो गई और नीलाम करने वाले ने उसका नाम लिखकर जमीन उसके नाम कर दी। चूँकि जमीन बिक गई इसलिए भीड़ भी छट गई और पियक्कड़ भी अपने घर चला आया। दूसरे दिन नीलाम करने वाले ने जमीन के मूल्य का बिल उसके पास भेजा पर उस आदमी को कुछ भी खयाल नहीं था कि उसने नशे की हालत में एक दिन पहले क्या किया था। इसलिए वह डाक मानने से इंकार करने लगा। अन्त में बहुत खयाल करने पर जब उसे अपनी कार्रवाई याद आई तो वह बड़ा ही दुःखी हुआ। लेकिन सरकार के साथ 'नाहीं' करने से तो चल नहीं सकता था इसलिए उसे मूल्य चुकाने के लिए सभी प्रकार की कोशिशें करनी पड़ी और तीन सौ डालर पूरा करने के लिए उसे अपनी सारी सम्पत्ति बेच देनी पड़ी। जमीन लेने के बहुत दिनों के बाद तक भी वह उस जमीन पर ध्यान न दे सका। जब एक दशाब्दी से कुछ अधिक समय बीत गया और उस जमीन के चारों ओर बड़े-बड़े मकान और अट्टालिकाएँ बन गई तो उस जमीन की कीमत भी बढ़ गई। कुछ लोगों ने उस जमीन मालिक को उस परती जमीन के लिये लाखों डालर तक देना चाहा पर उसने बेचने से इन्कार कर दिया। वह अपनी जमीन केवल किराये पर लगाता था। अन्त में जब जमीन की कीमत कई करोड़ डालर हो गई तब वही पियक्कड़ अस्ट्रेलिया का सबसे धनी व्यक्ति हो गया। यह सभी धन पहले लगाए हुए तीन सौ डालर से ही

उसे मिला। जमीन मालिक जब करोड़पति हो गया तो वह सचमुच ही बड़ा खुश हुआ। लेकिन दूसरे आदमियों की क्या हालत हुई ? जमीन का मूल्य तीन सौ डालर चुकाने के बाद उस आदमी ने उस जमीन के सुधार के लिए कुछ भी काम नहीं किया। वास्तव में उसने जमीन को ज्यों की त्यों छोड़ दी। जब कि वह हाथ में हाथ दिए अपनी सफलता का उपभोग सोये हुए या बैठे करता था तो उसकी गोद में करोड़ों डालर आ गए।

पर वास्तव में इन करोड़ों डालरों पर किसका अधिकार था ? मेरी राय में इस पर हर आदमी का अधिकार था क्योंकि समाज के लोगों ने उस भू-भाग को औद्योगिक और व्यापारिक केन्द्र बनाया और उसमें सुधार किया। इसलिए जमीन के उस टुकड़े का मूल्य चढ़ने लगा और धीरे-धीरे उतना ऊँचा हो गया। इसी प्रकार हमने संघाई को मध्य चीन का औद्योगिक और व्यापारिक केन्द्र बनाया इसलिए उस शहर की जमीन का मूल्य हज़ारों गुणा अधिक हो गया। चूँकि हमने केण्टन को दक्षिणी चीन का औद्योगिक और व्यापारिक केन्द्र बनाया इसलिए इस शहर की जमीन का भी मूल्य हज़ारों गुना बढ़ा है। संघाई और केण्टन दोनों शहरों की जनसंख्या दस-दस लाख से कुछ ही अधिक है। अगर अचानक इन दो शहरों में से किसी एक में रहने वाले सभी लोग बाहर चले जायं या किसी प्राकृतिक या कृत्रिम विपत्ति से वहाँ की जनसंख्या में बहुत कमी हो जाय तो क्या आप सोचते हैं कि जमीन का इतना ही अधिक मूल्य मिलेगा ? उससे यह सिद्ध होता है कि जमीन की मूल्य-वृद्धि का श्रेय समाज के लोगों और उनके कामों को है। मूल्य के घटने-बढ़ने में जमीन मालिक को स्वयं कुछ भी नहीं करना पड़ा है। इसलिए विदेशी विद्वान जमीन के बढ़े हुए मूल्य से जमीन मालिक को होने वाले नफे को 'बिना कमाई की बढ़ती' कहते हैं। यह उस नफे से सर्वथा भिन्न है जो औद्योगिक और व्यापारिक कारीगर अपने कठिन मानसिक और शारीरिक परिश्रम द्वारा सस्ती चीज़ें खरीदकर उन्हें महंगे दर में बेचने द्वारा, और सभी प्रकार की कारवारी योजना तथा तरीकों द्वारा प्राप्त करते हैं। हमें यह ज्ञात हो चुका है कि औद्योगिक और व्यापारिक नेता चीज़ों के ऊपर एकाधिकार प्राप्त कर जो नफा कमाते हैं वह न्यायसंगत नहीं है। पर वे कम से कम कठिन परिश्रम तो करते हैं। लेकिन जमीन मालिक जो अपने पास जमीन रखे रहते हैं और दिमागी ताकत जरा भी नहीं खर्च करते हैं और फिर भी काफ़ी नफा कमाते हैं। इतना होने पर भी वह कौन सी चीज़ है जिससे उनकी जमीन का मूल्य बढ़ता है ? लोगों ने उनकी जमीन के चारों ओर जो उन्नति

की और उनकी जमीन पर अधिकार पाने के लिए आपस में जो प्रतियोगिता की इन कारणों से ही जमीन का मूल्य बढ़ा। जब जमीन का दाम बढ़ता है तो समाज में हर चीज़ का दाम भी बढ़ जाता है। इसलिए हम कह सकते हैं कि समाज में लोग जो कारबार करके पैसा पैदा करते हैं यह अप्रत्यक्ष और अगोचर रूप से जमीन मालिकों द्वारा लूट लिया जाता है।

चीन की सामाजिक समस्याओं की वर्तमान हालत क्या है ? जो लोग सामाजिक समस्याओं का अध्ययन करते हैं और सामाजिक पुनर्निर्माण की वकालत करते हैं वे पूर्णरूप से यूरोप और अमेरिका के मतों और आदर्शों से प्रभावित हैं। इसलिए जब वे सामाजिक पुनर्संगठन की बात करते हैं तो उनके सामने विभिन्न पश्चिमी राष्ट्रों में प्रचलित शान्त तरीकों या मार्क्सवादी उग्र तरीकों के अलावा कोई दूसरा नया प्रस्ताव ही नहीं होता है। वर्तमान काल में साम्यवाद पर सबसे अच्छा बोलने वाला वह समझा जाता है जो मार्क्स की प्रणाली का समर्थन करता है। इसलिए जैसे ही सामाजिक समस्याओं का उल्लेख होता है बहुत से युवक समाजवाद को लेकर उठ पड़ते हैं और चीन में मार्क्सवाद मत का व्यवहार करना चाहते हैं। मार्क्सवाद के समर्थन करने वाले इन उत्साही युवकों में कितने ऐसे हैं जिन्होंने ध्यानपूर्वक इसका अध्ययन किया है ? वे बड़े विचारशील समुदाय के हैं। वे उग्रवादी दल की बात कहते हैं। वे अनुभव करते हैं कि राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं को मूल में ही ठीक करना चाहिए और इसलिए उग्रवादी कार्रवाइयाँ ज़रूरी हैं। इस कारण वे उत्साहपूर्वक समाजवादी दल का संगठन कर रहे हैं और उसके लिए उन्होंने चीन में आन्दोलन करना प्रारम्भ किया है।

इससे क्वोमिन्ताङ् के पुराने साथियों में बड़ी गलत धारणा फैल गई है। वे अनुभव करते हैं कि समाजवाद उनके दल के सन् मिन् सिद्धान्त से असंगति रखता है। वे नहीं सोचते हैं कि बीस वर्ष पहले हमारे साथी तीन सिद्धान्तों को एक में मिला देने के पक्षपाती थे। सन् १६११ ई० की क्रान्ति के पहले बहुत से आदमियों के दिल में केवल राष्ट्रीयता की भावना थी। थुङ्-मङ् हुइ[1] में प्रवेश करने वाले हर साथी का एकमात्र उद्देश्य मांचू राज

१. अ० स्त, सन् १६०१ में डा० सन् यात सेन् ने इस संस्था का संगठन टोकियो में किया था। इसी संस्था ने मांचू राज को चीन से मिटाया। सन् १६११ की क्रान्ति इस दल के तत्वावधान में हुई थी। सन् १६११ ई० में इस संस्था का पुनर्संगठन किया गया और इसका नाम बदल कर क्वोमिन्ताङ् रखा गया।

को मिटाने का था। जब उन्होंने समिति में प्रवेश किया तो मैंने चाहा कि वे 'जनता के तीन सिद्धांतों' के प्रति अपनी आस्था की घोषणा करें। लेकिन उनमें से बहुत लोग केवल राष्ट्रीयता और मांचू राज को समाप्त करने की ही बात सोचते थे। अगर मांचू राज समाप्त कर दिया जाता तो वे किसी चीनी व्यक्ति के सम्राट होने का स्वागत करते। जब उन्होंने अपने घोषणा-पत्र में तीन सिद्धान्तों को लागू करने की बात को स्वीकार किया और उसी समय एक-एक चीनी के सम्राट होने का भी समर्थन किया तो क्या वे प्रजातन्त्र के सिद्धान्त के विरुद्ध नहीं चल रहे थे? यहाँ तक कि हमारे बहुत से अत्यन्त विचारशील साथी भी, जिन्होंने सान् मिन् सिद्धान्तों का समर्थन किया और इस बात को अच्छी तरह समझ लिया कि ये तीन सिद्धान्त तीन चीज़ें हैं और जो इन चीज़ों को क्रान्ति द्वारा कार्यान्वित करना चाहते थे, सोचते थे कि अगर मांचू राज केवल समाप्त हो जाय और राष्ट्रीयता का सिद्धान्त कार्यान्वित हो जाय तो प्रजातन्त्र और जीविका के सिद्धान्त स्वतः ही उसका अनुसरण करेंगे तथा और दूसरे झंझट नहीं उठेंगे। उन्होंने प्रजातन्त्र और जीविका के सिद्धान्तों का पूरी तरह अध्ययन नहीं किया था और इसलिए स्वभावतः ही उन्होंने नहीं समझा कि जनता की सार्वभौमिकता का क्या अर्थ है। उन्हें इस बात का कुछ भी ज्ञान नहीं था कि जनता की जीविका का सिद्धान्त किस बात का द्योतक है। जब सन् १९११ ई० की क्रान्ति सफल हो गई और प्रजासत्तात्मक राज की स्थापना हुई और प्रजातन्त्रात्मक शासन कायम करने की बात सोची गई तो किसी ने उनके मतलब को समझना तक नहीं चाहा। अभी भी इच्छापूर्वक और ईमानदारी के साथ प्रजातन्त्र के लिए काम करने वाले और प्रजासत्तात्मक राज के समर्थक कुछ ही साथी हैं।

प्रारम्भ में क्यों हर आदमी ने प्रजातन्त्रात्मक शासन-व्यवस्था का समर्थन किया और प्रजासत्तात्मक राज का विरोध नहीं किया? इसका प्रधान कारण है कि मांचू लोगों को सफलता पूर्वक हटाने के बाद विभिन्न प्रान्तों के साथी, जो क्रान्ति के कारण एक सैनिक वर्ग की तरह हो गए थे; और मांचू राजकुल के सैनिक सत्तावाले जो क्रान्तिकारी दल में आकर मिल गए थे, सबके सब एक ही दिशा की ओर चले और वह दिशा एक सैनिक प्रणाली की स्थापना की थी। हर आदमी ने अपनी जगह पर स्वयं एक छोटा राजा बनना चाहा और अपने छोटे से राज को आधार बनाकर अपनी शक्ति को विस्तृत करना चाहा। सैनिकसत्तावादी जिन्होंने क्वाङ्-तुङ् दखल कर लिया था, अपना राज बढ़ाना चाहते थे। जिन सैनिक सत्तावादियों ने यून्नान् और

हुनान् पर कब्जा किया था वे भी अपने भू-भाग की सीमा का विस्तार करना चाहते थे। षान्तुङ् और चलि के सैनिक सत्तावादी भी अपने राज के क्षेत्रफल को बढ़ाना चाहते थे। जब ये सभी सैनिक सत्ताधारी अपने राज को दूर तक विस्तृत कर लेते और अपने डैनों और पखों को अच्छी तरह मजबूत कर लेते तब वे चीन को संगठित करने में अपनी प्रभुता का उपयोग करते और खुलते तौर से निर्भीक होकर प्रजासत्तात्मक राज का खातमा कर देते। क्रान्ति के कारण जो सैनिकसत्तावादी हो गए थे या मांचू राजकुल के समय के जो सैनिक सत्तावादी थे पर प्रजासत्तात्मक राज के हिमायती हो गए थे, सबों के दिलों में इसी प्रकार की भावना भरी हुई थी। वे जानते थे कि उनकी थोड़ी सी प्रभुता चीन को सङ्गठित नहीं कर सकेगी लेकिन वे यह भी नहीं चाहते थे कि कोई दूसरा चीन को सङ्गठित करे। हर आदमी अवसरवादी हो गया था, होने वाले परिवर्त्तनों पर अपनी दृष्टि रखता था और ठहर कर देखने की नीति अख्तियार किए हुए था। यह सैनिक सत्ताधारी वर्ग प्रजातन्त्र को नहीं समझते हुए भी प्रजातन्त्रात्मक शासन के प्रति अपनी शक्ति की घोषणा करता था। पर वास्तव में वह राजकीय सत्ता के बारे में सोचता था। जब तक वह अपने अधिकार-क्षेत्र को काफ़ी विस्तृत नहीं किए हुए था वह केवल दिखाने के लिए प्रजासत्तात्मक राज के पक्ष की बातें करता था। उसके मनोनुकूल अवसर आने पर वह प्रजासत्तात्मक राज का विरोध करता और सभी राष्ट्रीय समस्याओं का हल करता। यही इस बात की व्याख्या है कि क्यों प्रारम्भ में प्रजातन्त्र की स्थापना हुई और क्यों इन तेरह वर्षों के अन्दर उसे उखाड़ फेंकने की कई बार कोशिशें हुईं। लेकिन वे अधिक शक्तिशाली नहीं थे इसलिए प्रजासत्तात्मक राज का नाम आज तक भी कमजोर होकर बचा हुआ है। इससे साफ पता चल जाता है कि थुङ् मङ् हुइ के सदस्यों का रुख प्रजातन्त्र के प्रति क्या था। उनमें से बहुत लोग एक पक्ष या दूसरे पक्ष की बात मानने को तैयार थे लेकिन कोई भी जीविका के सिद्धान्त का मतलब नहीं समझता था।

हम परिस्थिति का और भी अच्छी तरह विश्लेषण करें। सन् १९११ ई० में जब क्रान्ति सफल हो गई और प्राचीन साम्राज्य की जगह को प्रजा-सत्तात्मक राज ने ले लिया तब से क्वोमिन्ताङ् का लक्ष्य प्रजातन्त्र की ही ओर रहा है। लेकिन सान् मिन् सिद्धान्तों की ओर हमारे क्रान्तिकारी साथियों का क्या रुख रहा? हमारे प्रजातन्त्रात्मक सरकार के तेरह वर्षों के परिवर्त्तनों के बाद और तेरह वर्षों के अनुभव के बाद हमारे सभी साथियों को राष्ट्रीयता

और प्रजातन्त्र के सिद्धान्त ठीक ठीक से समझ में आए हैं। लेकिन जीविका के सिद्धान्त की ओर उनकी मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया उसी प्रकार की है जैसे कि क्रान्ति के बाद सैनिक सत्ताधारियों की प्रजातन्त्र की ओर थी। यह जीवन-मरण की समस्या है इसे वे नहीं समझते थे। हमारे क्रान्तिकारी साथियों को मिन् षङ् सिद्धान्त का साफ-साफ ज्ञात नहीं है ऐसा कहने का साहस मैं क्यों करता हूँ ? क्योंकि हाल में क्वोमिन्ताङ् के पुनर्संगठन के बाद से उनमें से बहुत जो समाजवादी दल के विरोधी हैं, बिना समझे-बूझे कहा करते हैं कि समाजवाद तीन सिद्धान्तों से भिन्न है। वे कहते हैं कि चीन में केवल तीन सिद्धान्तों की ही ज़रूरत है और यहाँ किसी भी हालत में समाजवाद का प्रवेश नहीं होना चाहिए। लेकिन वास्तव में जीविका का सिद्धान्त क्या है ? अपने पिछले व्याख्यान में मैंने थोड़ा-सा इसके अर्थ को साफ किया था। मैंने कहा था कि मिन् षङ् या जीविका समाज की सांस्कृतिक प्रगति की, आर्थिक सङ्गठन के सुधार की और नैतिक क्रमिक विकास की केन्द्रीय शक्ति रही है। जीविका सभी सामाजिक आन्दोलन के अग्रसर करने वाली शक्ति रही है। अगर जीविका ठीक तरह से नहीं चलती है तो सामाजिक संस्कृति आगे नहीं बढ़ सकती है, आर्थिक संगठन उन्नति नहीं कर सकता है और नैतिकता का ह्रास होगा और बहुत सी अन्यायपूर्ण बातें जैसे वर्ग-संघर्ष, मजदूरों के प्रति निर्दयता और दूसरे प्रकार के शोषण आदि उत्पन्न होंगी। जीविका की दयनीय दशा को सुधारने में असफलता मिलने के कारण ये सभी बातें उत्पन्न होंगी। सभी सामाजिक परिवर्त्तन के परिणाम हैं और जीविका की खोज करना ही कारण है।

इस परिणाम को दृष्टि में रखकर विचार करें कि जीविका का सिद्धान्त क्या है ? यह समाजवाद है और साम्यवाद है। इसलिए हमें यह तो कहना ही नहीं चाहिए कि समाजवाद का मिन् षङ् सिद्धान्त से विरोध है। बल्कि हमें तो यह भी दावा करना चाहिए कि समाजवाद मिन् षङ् सिद्धान्त का एक सच्चा मित्र है। मिन् षङ् सिद्धान्त के समर्थकों को समाजवाद का अच्छी तरह से अध्ययन करना चाहिए। अगर समाजवाद मिन् षङ् सिद्धान्त का मित्र है तब क्वोमिन्ताङ् के सदस्य समाजवादी दल का क्यों विरोध करते हैं ? कारण यह हो सकता है कि समाजवादी दल के सदस्य स्वयं समाजवाद को नहीं समझते हैं और सान् मिन् सिद्धान्त के विरुद्ध प्रचार करते हैं और इस तरह क्वोमिन्ताङ् के भीतर प्रतिक्रिया उत्पन्न करते हैं। परन्तु इन नासमझ असावधान समाजवादी लोगों का दोष सम्पूर्ण समाजवादी दल या दल के

सिद्धान्त पर नहीं लगाना चाहिए। हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि वे अपने व्यक्तिगत हैसियत से ऐसा काम करते हैं। हम कुछ व्यक्तियों के व्यक्तिगत बुरे व्यवहार को प्रतिनिधि मानकर सम्पूर्ण समाजवादी दल का विरोध नहीं कर सकते। चूँकि हम कुछ व्यक्तियों के कामों को सम्पूर्ण दल के सिद्धान्त के विरोध करने का कारण नहीं बना सकते तो फिर क्यों यह प्रश्न हमारे क्वोमिन्ताङ् साथियों के बीच उठ खड़ा हुआ? क्योंकि उन्होंने नहीं समझा है कि वास्तव में मिन् षङ् सिद्धान्त क्या है। वे इस बात का अनुभव नहीं करते हैं कि हमारा जीविका का सिद्धान्त समाजवाद का ही एक रूप है। यह वह रूप नहीं है जो मार्क्स के साथ पैदा हुआ है बल्कि यह वह रूप है जो उस समय लागू था जब आदिम मनुष्य की उत्पत्ति पृथ्वी पर हुई थी। प्राणी विज्ञान-सम्बन्धी क्रमिक विकास के अनुसार मनुष्य का विकास जानवरों से हुआ है। धीरे-धीरे जाति प्रणाली कायम हुई और उस समय मनुष्यों के जीने की दशा पशुओं से बहुत भिन्न थी। मनुष्यों ने जिस समाज का पहले-पहल निर्माण किया वह समाजवादी समाज था और आदिम युग समाजवादी युग था। ये आदिम मनुष्य किस प्रकार का जीवन व्यतीत करते थे। हम अफ्रिका और मलेसिया के जंगली लोगों के जीवन के अध्ययन से आदिम मनुष्यों के जीवन का कुछ पता लगा सकते हैं जिनमें सभ्य समाज की रोशनी अभी तक नहीं पहुँची है। उनके रहने की प्रणाली एकदम से समाजवादी है। जिससे पता चलता है कि हमारे आदिम युग के पुरखों का समाज भी ज़रूर समाजवादी रहा होगा।

पश्चिमी आर्थिक आक्रमण का चीन पर सबसे प्रथम प्रभाव जमीन पर पड़ा है। बहुतों ने जमीन को जुए के खेल-सा बना दिया है और वे जमीन की सट्टेबाजी करते हैं। बहुत-सी जमीन जो दस या बीस वर्ष बीतने के पहले अधिक महत्व की नहीं होगी और जिसका स्वाभाविक तौर से अधिक मूल्य नहीं है; सट्टेबाजी के होड़ के कारण उस जमीन का भी समय से बहुत पहले ही दाम बढ़ गया है। इससे जमीन के मूल्य में और भी असमता आ जाती है।

जमीन की समस्या को लेकर जो बुरी प्रथायें प्रचलित हैं उन्हें रोकने के लिए पश्चिमी राष्ट्रों ने अभी तक कोई संतोषप्रद प्रणाली नहीं निकाली है। अगर हम भूमि के प्रश्न को हल करना चाहते हैं तो हमें अभी ही हल करना होगा। अगर हम उद्योग-धन्धों और व्यापार के पूर्ण विकसित होने तक ठहरेंगे तो उस समय फिर इसके हल का कोई रास्ता हमारे सामने नहीं रह

जायगा। अब चीन पर पश्चिमी प्रभाव पड़ता जा रहा है और हमारे उद्योग-धन्धों में ऐसे प्रत्यक्ष रूपांतर होते जा रहे हैं कि केवल अमीर और गरीब के बीच ही असमानता नहीं पैदा होती जा रही है बल्कि साधारण जमीन मालिकों के बीच में भी असमानता पैदा हो रही है। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि अ नामक एक आदमी को एक मउ जमीन संघाई बंड में है जबकि ब नामक दूसरे मनुष्य को संघाई के पास के एक देहात में उतनी ही जमीन है। अगर ब अपनी जमीन स्वयं जोतता-बोता है तो उसे साल में दस या बीस डालर का लाभ होता है। अगर वह बटाई लगा देता है तो अधिक से अधिक पांच या दस डालर उसे मिलेगा। लेकिन अपनी एक मउ जमीन को दस हज़ार या उससे अधिक डालर में किराए पर दे सकता है। संघाई की जमीन में कई हज़ार गुना मुनाफ़ा होता है जबकि संघाई के देहात की जमीन से केवल दो गुना मुनाफा होता है। दो भिन्न जगहों में स्थित एक मउ जमीन से इस प्रकार का असमान मुनाफा होता है। हमारे दल के मिन् षङ् सिद्धान्त का उद्देश्य समाज के आर्थिक जरियों को समान करना है। इसलिए हम जीविका के सिद्धान्त को वैसा ही समझते हैं जैसा कि साम्यवाद या समाजवाद है। लेकिन हरेक की अपनी कार्य प्रणाली है। हमारा पहला काम जमीन की समस्या को हल करना है।

विभिन्न देशों में जमीन की समस्या के हल करने की अपनी प्रणाली है और हर देश को अपने ढंग की कठिनाइयाँ हैं। हम जिस रास्ते का अनुसरण करना चाहते हैं वह बहुत सीधा और आसान है। वह रास्ता है जमीन पर लोगों का समानाधिकार। जैसे ही जमीन के मालिक जमीन सम्बन्धी प्रश्न और जमीन पर लोगों के समानाधिकार की चर्चा करते हुए सुनते हैं वे स्वभावतः ही भयभीत हो जाते हैं जैसे कि पूँजीपति साम्यवाद की चर्चा सुनकर भयभीत होते और उसके विरुद्ध लड़ने के लिए तैयार हो जाते हैं। अगर हमारे यहाँ के जमीन मालिक यूरोप के बड़े-बड़े जमीन मालिक की तरह होते और वे अत्यन्त शक्तिशाली होते तो हमारे लिए जमीन सम्बन्धी प्रश्न का हल करना अत्यन्त ही कठिन हो जाता। लेकिन चीन में उस प्रकार के बड़े बड़े जमीन मालिक नहीं हैं और यहाँ के छोटे-छोटे जमीन मालिकों की शक्ति कम है। अगर हम जमीन की समस्या को अभी ही हल करें तो हम उसे हल कर सकते हैं। लेकिन अगर हम वर्तमान अवसर को खो देते हैं तो हम कभी भी पुनः रास्ता नहीं खोज सकेंगे। जमीन सम्बन्धी समस्या की चर्चा से स्वभावतः ही जमीन मालिकों के दिल में डर पैदा होता है

लेकिन अगर क्वोमिन्ताङ् की नीति का अनुसरण किया जाता है तो वर्तमान जमीन मालिकों के दिल में शांति रहनी चाहिए।

हमारी नीति क्या है? हमारी नीति है कि सरकार जमीन को खरीद ले और अगर जरूरत हो तो उसका मूल्य मालगुजारी और जमीन की कीमत के अनुसार दे दे। जमीन का मूल्य कैसे निश्चित किया जायगा? मैं कहूँगा कि जमीन मालिक स्वयं कीमत लगाएं। उदाहरण के लिए, केण्टन बंड की जमीन का दाम जमीन मालिक स्वयं एक लाख या दस हजार प्रति मउ करेंगे। प्रायः हर देश में मालगुजारी जमीन के मूल्य का एक प्रतिशत होती है। जिस जमीन की मालगुजारी एक डालर है उसका मूल्य एक सौ डालर है। एक हज़ार डालर जिसकी मालगुजारी है उसका मूल्य एक लाख डालर है साधारण रूप से मालगुजारी का यही दर है। हमारी वर्तमान योजना भी इसी कर-निर्धारण की नीति पर है। जमीन मालिक सरकार को अपनी जमीन का मूल्य बताएंगे और सरकार उसी हिसाब से मालगुजारी लेगी। बहुत से लोग सोचते हैं कि अगर जमीन मालिक अपने से ही जमीन का मूल्य लगाएंगे तो वे जमीन का मूल्य कम रखेंगे और सब सरकार को हानि उठानी पड़ेगी। मान लीजिये कि जमीन मालिक किसी एक टुकड़े जमीन का जितना वास्तविक मूल्य एक लाख डालर है, दस हजार बताते हैं। एक लाख मूल्य होने पर सरकार एक हजार डालर मालगुजारी पायेगी लेकिन दस हजार मूल्य होने से सरकार को केवल एक सौ डालर मिलेगा। इस प्रकार सचमुच में टैक्स आफिस को नौ सौ का घाटा होगा। पर मान लीजिए की सरकार दो कानून बनाती है। पहला यह कि वह जमीन की मालगुजारी जमीन मालिक द्वारा निर्धारित जमीन के मूल्य के अनुसार लेगी और दूसरा यह कि वह उस जमीन को जमीन मालिक द्वारा निर्धारित मूल्य पर ही खरीद लेगी। जमीन मालिक जिसने अपने एक लाख मूल्य जमीन का दाम दस हजार बताकर सरकार को मालगुजारी के मद में ६०० डालर के घाटे में रखा, वह स्वभावतः ही नफे में रहा। लेकिन अगर सरकार उसकी जमीन को दस हजार डालर में ही खरीद लेती है तो उसे नब्बे हजार का घाटा—भयंकर घाटा—उठाना पड़ेगा। मेरी योजना के अनुसार अगर जमीन मालिक जमीन का मूल्य कम बताता है तो उसे यह डर रहेगा कि कहीं सरकार उसी मूल्य में जमीन खरीद न ले, उसे अपनी सम्पत्ति से भी कहीं हाथ न धोना पड़े। अगर वह बहुत अधिक मूल्य रखता है तो उसे भय होगा कि सरकार उसके बताए हुए मूल्य के अनुसार ही मालगुजारी लेगी और

इस प्रकार उसे काफी घाटा उठाना पड़ेगा। इन दो भयंकर सम्भावनाओं की तुलना कर वह निश्चय ही अपनी जमीन का दाम न बहुत अधिक और न बहुत कम ही सरकार को बताना चाहेगा। वह बीच का रास्ता पकड़ेगा और सरकार को जमीन का असली दाम कहेगा। जिसके फलस्वरूप न सरकार और न जमीन मालिक ही घाटे में रहेंगे।

जमीन का मूल्य निर्धारण हो जाने के बाद कानून द्वारा यह निश्चित कर दिया जायगा कि जिस वर्ष में निर्धारण हुआ है उसके बाद भविष्य में जमीन के मूल्य में जो बढ़ती होगी—दूसरे देशों में जिसका अर्थ भारी कर लगाना है—वह समाज की सम्पत्ति होगी। क्योंकि समाज द्वारा उन्नति करने पर और उद्योग-धन्धों तथा व्यापार के बढ़ने पर ही जमीन के दाम में बढ़ती होती है। चीन के उद्योग-धन्धों और व्यापार ने हजारों वर्षों से कुछ भी प्रगति नहीं की है, इसलिए भूतकाल में जमीन के मूल्य में कठिनता से परिवर्त्तन हुआ है। लेकिन जैसे-जैसे प्रगति और उन्नति होगी जैसा कि चीन के आधुनिक शहरों में हुई है, प्रतिदिन जमीन के मूल्य में परिवर्त्तन होता जायगा। कभी-कभी तो वह हजार गुना तक बढ़ जायगा। इस प्रकार की उन्नति का श्रेय सम्पूर्ण जनता की शक्ति और उनकी व्यापारिक कार्रवाइयों को है, केवल कुछ व्यक्तिगत आदमियों को नहीं। उदाहरण के लिए देखिए :—अगर कोई जमीन मालिक अभी अपनी जमीन का मूल्य दस हजार डालर निर्धारित करता है और कई दशाब्दियों के बाद अगर उस जमीन का मूल्य बढ़कर दस लाख हो जाता है तो यह नौ लाख नब्बे हजार डालर की बढ़ती हमारी योजना के अनुसार सार्वजनिक सम्पत्ति होती है। यह उन सभी लोगों के लिए पारितोषिक स्वरूप है जिन्होंने समुदाय की तरक्की की और जमीन के चारों ओर के उद्योग-धन्धों और व्यापार को आगे बढ़ाया। भविष्य में होने वाली जमीन के मूल्य की बढ़ती समाज की होगी। यही प्रस्ताव जमीन पर समानाधिकार की नीति है जिसका प्रचार क्वोमिन्ताङ् करता है और यही मिन् षङ् सिद्धान्त है। मिन् षङ् सिद्धान्त का यह रूप समाजवाद है और चूँकि क्वोमिन्ताङ् के सदस्य सान् मिन् सिद्धान्त का समर्थन करते हैं इसलिए उन्हें समाजवाद का विरोध नहीं करना चाहिए। हमारे तीन सिद्धान्तों में जीविका के सिद्धान्त का मुख्य लक्ष्य समाजवाद—सम्पत्ति में सबों का हिस्सा—है। लेकिन हम जिस समाजवाद की बात कहते हैं वह भविष्य का समाजवाद है वर्तमान का नहीं। भविष्य का समाजवाद यह बड़ा ही न्यायसंगत प्रस्ताव है और जिन्हें भूतकाल में सम्पत्ति थी वे इससे एकदम नहीं हानि उठायेंगे। यह पश्चिमी राष्ट्रों के 'सम्पत्ति के राष्ट्रीय-

करण' से एकदम भिन्न चीज़ है जिसमें लोगों की व्यक्तिगत सम्पत्ति को सरकार अपने व्यवहार के लिए जब्त कर लेती है। जब जमीन मालिक हमारी योजना में निहित जमीन के समानाधिकार के सिद्धान्त को साफ-साफ समझेंगे तो वे शंकित नहीं होंगे। हमारी योजना के अनुसार जिस जमीन का मूल्य निर्धारण हो जाएगा वह लोगों की व्यक्तिगत सम्पत्ति ही रहेगी। अगर जमीन की समस्या हल हो गई तो जीविका की आधी समस्या हल हो जाएगी।

जब आधुनिक सभ्य नगरों की जमीन पर मालगुजारी लगाई जाती है तो साधारण जनता का बोझ हल्का होता है तथा और भी बहुत सी लाभप्रद बातें होती हैं। अगर अभी केण्टन शहर में जमीन के मूल्य के अनुसार माल-गुजारी वसूल की जाय तो सरकार को एक बहुत बड़ी और स्थायी आमदनी होगी और शासन-व्यवस्था के कोष के लिए एक निश्चित जरिया निकल आयगा। तब सम्पूर्ण भू-भाग अच्छी तरह व्यवस्थित रखा जा सकता है और अन्य तरह के सभी कर उठा दिए जा सकते हैं। पानी और बिजली लोगों को सरकार की ओर से मुफ़्त दी जा सकती है और व्यक्तिगत तौर से आदमियों के सिर पर इनका बोझ नहीं पड़ सकता है। सड़क मरम्मत करने तथा पुलिस रखने का खर्च भी मालगुजारी से चल सकता है और जनता के ऊपर अतिरिक्त सड़क-कर और पुलिस-कर लगाने की ज़रूरत नहीं पड़ सकती है। लेकिन वर्तमान समय में केण्टन की जमीन का बढ़ता हुआ मूल्य केवल जमीन मालिकों के कोष में जाता है—वह समाज का नहीं होता है। सरकार के पास कोई नियमित आमदनी का जरिया नहीं है। इस कारण खर्च के लिए साधारण जनता के ऊपर विभिन्न तरह के कर लगाने पड़ते हैं। जनता के ऊपर इन विभिन्न प्रकार के करों का बोझ बहुत अधिक पड़ता है। उसे बराबर कर देना है इसलिए वह अत्यन्त गरीब हो गई है। चीन में गरीब लोगों की संख्या अनगिनत है। जनता के ऊपर भारी बोझ का कारण सरकार द्वारा कर बैठाने की अन्यायसंगत प्रणाली, जमीन का असमान वितरण और भूमि सम्बन्धी समस्याओं को हल करने की असफलता है। अगर हम माल-गुजारी की प्रणाली को पूर्णरूप से लागू कर सकें तो जमीन की समस्या सुलझ जायगी और साधारण जनता को इतना दुःख नहीं भोगना पड़ेगा। यद्यपि विदेशी राष्ट्रों में जमीन का मूल्य बहुत बढ़ गया है और जमीन मालिक बराबर अधिक मुनाफा कमा रहे हैं तथापि विज्ञान की उन्नति और मशीन में तरक्की होने के कारण मशीन रखने वाले पूँजीपतियों को अपरिमित उत्पादन से होने

वाला बेहद मुनाफा आज जमीन मालिक के मुनाफे से अधिक भयंकर है। सबसे अधिक आमदनी वाले चीन के पूँजीपति अभी भी जमीन मालिक ही हैं, मशीन के मालिक नहीं। इसलिए अभी हमारे लिए ज़मीन पर समानाधिकार स्थापित करना, पूँजी का नियंत्रण करना और जमीन सम्बन्धी समस्याओं का हल निकालना आसान है।

जमीन के मूल्य के अनुसार उस पर मालगुजारी लगाने या उसके खरीदने की चर्चा करते समय हमें एक बात स्पष्ट कर लेनी चाहिए। जमीन के मूल्य की जब हम बात करते हैं तो वह केवल परती जमीन के सम्बन्ध में उस जमीन के सम्बन्ध में नहीं जो मानवीय श्रम द्वारा सुधारी गई है या जिसके ऊपर किसी प्रकार के मकान आदि बनाए गए हैं। उदाहरण के लिए लीजिए :—अगर किसी जमीन का मूल्य दस हजार डालर है और उस पर बने हुए मकान का दाम दस लाख डालर है तो मालगुजारी केवल जमीन के मूल्य के अनुसार एक सौ डालर होगी। लेकिन अगर वह जमीन सरकार द्वारा खरीदी जाती है तो उसे जमीन मालिक को जमीन के मूल्य के साथ-साथ उस जमीन पर बने दस लाख डालर के मूल्य के मकान का मुआवजा भी चुकाना होगा। दूसरी जमीन जो कृत्रिम तरीकों से सुधारी गई है जैसे अगर उस पर वृक्ष लगाए गए हैं या उसमें डाड़-बांध खोदे गए हैं तो उन सब चीजों का भी मूल्य जमीन के साथ-साथ चुकाना होगा।

अगर हम चीन के जीविका की समस्या को हल करना चाहते हैं और एक 'बड़े प्रयास द्वारा अनन्तकाल तक के लिए आराम चाहते हैं' तो पूँजी के नियन्त्रण पर ही निर्भर रहना काफ़ी नहीं होगा। विदेशों में आय कर लगाना पूँजी के नियन्त्रण करने का एक तरीका है। लेकिन क्या दूसरे देशों ने जीविका की समस्या हल कर ली है? चीन की तुलना विदेशी राष्ट्रों से नहीं हो सकती है। हमारे लिए केवल पूँजी का नियन्त्रण करना ही काफी नहीं है। दूसरे देश धनी हैं जबकि चीन गरीब है; दूसरे देशों में अतिरिक्त उत्पादन होता है जबकि चीन में पर्याप्त उत्पादन भी नहीं होता है। इसलिए चीन केवल व्यक्तिगत पूँजी का ही नियन्त्रण नहीं करे बल्कि राज की पूँजी को भी विकसित करे। लेकिन हमारा राष्ट्र तो अभी टुकड़े-टुकड़े में बंट गया है। हम राज के लिए कैसे पूँजी इकट्ठा कर सकते हैं? ऐसा जान पड़ता है कि मानो हम रास्ता ही नहीं पा सकते या रास्ता पाने की आशा भी नहीं कर सकते। लेकिन वर्तमान का हमारा असंगठित रूप अल्पकालीन है। भविष्य में हम निश्चय ही संगठित होंगे और तब जीविका की समस्या को हल करने के

लिए हमें पूँजी का विकास करना पड़ेगा और उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन देना होगा। पहले, हम बड़े पैमाने पर यातायात के साधन जैसे रेल लाइन और जल-मार्ग का निर्माण करें। दूसरी बात कि हम अपने खानों को खोदें। चीन खनिज पदार्थों से भरा पड़ा है। लेकिन दुःख है कि सब के सब धरती में ही पड़े हुए हैं। तीसरी बात कि हम उत्पादन कार्य को आगे बढ़ाएँ। यद्यपि चीन में असंख्य मजदूर हैं पर चीन के पास मशीन नहीं हैं और इसलिए वह दूसरे देशों से प्रतियोगिता नहीं कर सकता है। चीन अपने व्यवहार में आने वाले माल के लिए दूसरे देशों के उत्पादन तथा उनके आयात पर निर्भर करता है और जिसके फलस्वरूप हमारे आर्थिक अधिकार और स्वार्थ समाप्त होते जा रहे हैं। अगर हम इन अधिकारों और स्वार्थों को पुनः प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें जल्दी से राज की शक्ति उद्योग-धन्धों के बढ़ाने में लगानी चाहिए। उत्पादन के लिए मशीन का व्यवहार करना चाहिए। जब सभी मजदूर काम में लग जाएँगे और उत्पादन के लिए मशीन का व्यवहार करेंगे तब चीन को धन का बहुत बड़ा और नया जरिया हाथ लगेगा। अगर हम इन बड़े कामों के करने में राज की शक्ति का प्रयोग नहीं करते हैं तथा उन चीजों को व्यक्तिगत रूप से करने के लिए यहाँ के लोगों के हाथों में या विदेशी व्यापारियों के ऊपर छोड़ देते हैं तो इससे केवल व्यक्तिगत पूँजी का विस्तार और एक बड़े धनी वर्ग का विकास होगा जिनसे समाज में असमानता फैलेगी। इसलिए चीन में जीविका के सिद्धान्त को लागू करने में हम मार्क्सवादी प्रणाली का व्यवहार नहीं कर सकते हैं, यद्यपि हमारे दिल में मार्क्स की शिक्षा के लिए बहुत ही सम्मान की भावना है। इसका कारण स्पष्ट है। क्रान्ति के बाद से ही रूस अब तक मार्क्सवादी प्रणाली लागू करने की कोशिश कर रहा है तथापि वह उसे नई आर्थिक नीति में बदलना चाहता है। क्योंकि उसके समाज का आर्थिक जीवन ग्रेट ब्रिटेन या संयुक्त राष्ट्र अमेरिका समाज के आर्थिक जीवन के समान दर्जे तक नहीं पहुँचा है और मार्क्सवादी प्रणाली को लागू करने की अवस्था तक परिपक्व नहीं हो सका है। अगर रूस का आर्थिक माप-दंड ग्रेट ब्रिटेन या संयुक्त राष्ट्र से नीचा है तो चीन का आर्थिक माप-दंड कैसे इतना ऊँचा हो सकता है कि यहाँ मार्क्सवादी प्रणाली लागू की जाय। यहाँ तक कि मार्क्स के अनुयायी भी कहते हैं कि वे चीन की सामाजिक समस्या को हल करने में मार्क्सवादी तरीके लागू नहीं कर सकते।

तीस वर्ष पहले जब मैं केण्टन में विद्यार्थी था तो मुझे याद है कि साइकान् (पश्चिमी जिला) में धनी परिवारों के लड़के जाड़ा आते ही रोआँ-

दार पोशाक अपने शरीर पर धारण करते थे। केण्टन में बहुत जाड़ा नहीं पड़ता है और रोयेंदार वस्त्र की वास्तव में यहाँ ज़रूरत नहीं पड़ती है। लेकिन अपने धन के प्रदर्शन के लिए उन अमीर युवकों को रोआँदार पोशाक पहननी पड़ती थी। जाड़ा जैसे ही आरम्भ होता था तो वे हल्का रोआँदार कपड़ा पहनते थे। जब कुछ अधिक जाड़ा पड़ता था तो वे भारी रोआँदार कपड़ा धारण करते थे। जाड़े के मध्य में चाहे जैसा भी मौसिम क्यों न रहे वे बराबर भारी रोएँदार कपड़े लगाए रहते थे। एक दिन जब वे अपनी भारी रोएंदार पोशाक पहने किसी सभा में गए और वहाँ मौसिम अचानक गर्म हो उठा तो उन्होंने शिकायत की—'अगर हवा बदल कर उत्तर की ओर से नहीं बहती है तो लोगों का स्वास्थ्य क्षीण हो जाएगा।' लगता था मानो वे सोचते थे कि समाज का हर आदमी रोआंदार वस्त्र ही पहनता है और इसलिए जब तक हवा नहीं बदलती है हर आदमी गर्मी से ऊब जायगा और हर आदमी का स्वास्थ्य खराब होगा। वास्तव में आपने कहाँ हर आदमी को रोआंदार वस्त्र पहनते हुए देखा है? जाड़े के दिनों में केण्टन के लोग रूईदार पोशाक या दोहरा कपड़ा पहनते हैं। बहुत से लोग तो एकहरा कपड़ा ही पहनते हैं। आपने कब उन्हें इस बात के लिए चिंतित पाया है कि उत्तरी हवा नहीं बह रही है? मार्क्सवाद में विश्वास करने वाले आज के युवक विद्वानों के सामने जैसे ही साम्यवाद की चर्चा की जाती है वे चीन की आर्थिक और सामाजिक समस्याओं को हल करने के लिए मार्क्सवादी प्रणाली की वकालत करने लगते हैं। वे केण्टन के उन रोएँदार वस्त्रधारी युवकों से भिन्न नहीं हैं जो चिल्ला उठे थे कि अगर उत्तरी हवा नहीं बहती है तो लोगों का स्वास्थ्य क्षीण हो जाएगा। वे आज इस बात को जानते ही नहीं हैं कि चीन गरीबी से पीड़ित है, धन के असम वितरण से नहीं। जहाँ धन वितरण में असमता है वहाँ सचमुच में मार्क्सवादी प्रणाली लागू की जा सकती है। असमता को दूर करने के लिए वर्ग-संघर्ष प्रारम्भ किया जा सकता है। लेकिन चीन में जहाँ उद्योग-धन्धों की तरक्की नहीं हुई है वहाँ वर्ग-संघर्ष और सर्वहारा अधिनायकतंत्र की कोई आवश्यकता नहीं है। इसलिए आज हम मार्क्स की बातों को अपना पथप्रदर्शक मान सकते हैं लेकिन हम उसके तरीकों को व्यवहार में नहीं ला सकते। अपनी जीविका की समस्या का हल ढूढ़ने में हम कोई अव्यावहारिक और उग्रवादी तरीकों का प्रस्ताव कर तब तक के लिए इंतजारी करने नहीं जा रहे हैं जब तक कि उद्योग-धन्धे तरक्की नहीं कर लेते हैं। हम एक योजना चाहते हैं जो आने-

वाले खतरे का अनुभव कर हमें आकस्मिक दुर्घटना से बचावे, जो व्यक्तिगत पूँजी को बढ़ने से रोके और जो अमीर गरीब के बीच के बेहद असमानता के सामाजिक रोग को दूर करे। इस प्रकार की योजना हमारी तात्कालिक सामाजिक समस्या को ज़रूर हल करेगी और वह उस तरह की नहीं होगी कि हम पहले रोआंदार पोशाक पहनें और तब उत्तरी हवा के आने की आशा करें।

जैसा कि मैंने अभी तुरन्त कहा है कि चीन में आज केवल पूँजी का नियन्त्रण करना ही हमारी जीविका की समस्या को हल कर लेने के लिए यथेष्ट नहीं होगा। हमें राज के लिए पूँजी इकट्ठी करनी पड़ेगी। इसका क्या अर्थ है? इसका अर्थ है कि राज द्वारा बड़े-बड़े उद्योग-धन्धों की तरक्की करना। इस योजना के व्यौरेवार ढंग की विवेचना मेरी पुस्तक 'राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की योजना'[२] के द्वितीय भाग में 'भौतिक पुनर्निर्माण या औद्योगिक कार्रवाई' शीर्षक अध्याय में मिलेगी। उस पुस्तक में मैंने राजकीय पूँजी इकट्ठा करने की योजना की रूपरेखा दी है। जैसा कि मैंने पहले कहा है कि सौदागरी युग में मुद्रा ही पूँजी थी लेकिन इस औद्योगिक युग में मशीन ही पूँजी है। राज को व्यापारिक कामों का पथ-प्रदर्शन करना चाहिए और हर प्रकार की उत्पादक मशीनों को चालू करना चाहिए। जो राज की सम्पत्ति होंगी। यूरोपीय युद्ध के समय बड़े-बड़े उद्योग-धन्धों और कल-कारखानों के राष्ट्रीयकरण की नीति हर देश ने अपनाई थी। लेकिन यह नीति युद्ध के तुरत बाद ही छोड़ दी गई। चीन में कभी भी बड़े पूँजीपति नहीं हुए हैं। अगर राज पूँजी का नियन्त्रण और विकास कर सके और उसका लाभ सम्पूर्ण जनता को दे तो पूँजीपतियों के साथ होने वाले संघर्ष को रोकना आसान होगा। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने तीन तरीकों से राजकीय पूँजी पैदा की है:—रेल की लाइनें बिछा कर, उत्पादन में वृद्धि करके और खानें खोदकर। इन तीन उद्योग-धन्धों में से एक की भी उन्नति हम अपने ज्ञान, अनुभव और अपनी पूँजी से नहीं कर सकेंगे। हम लोगों के लिए हर हालत में दूसरे देशों की पूँजी के ऊपर ही निर्भर रहना पड़ेगा। अगर हम वर्त्तमान विदेशी पूँजी को भविष्य में होने वाले एक समाजवादी समाज के निर्माण में लगाएँ तो आधे काम से दो गुना फल होगा।

---

२. यह पुस्तक डा० सन् यात् सेन् ने सन् १९१८ ई० में लिखी थी। इसके तीन भाग हैं:—मनोवैज्ञानिक पुनर्निर्माण, भौतिक पुनर्निर्माण और सामाजिक पुनर्निर्माण।

अगर हम अपनी पूँजी के होने तक के लिए ठहरें और तब उद्योग-धन्धों को बढ़ाने को सोचें तो यह तरीका अत्यन्त ही धीमा होगा। चीन के पास अभी नाम के लिए भी मशीन नहीं है। हमारे यहाँ केवल छः या सात हजार मील रेल की सड़कें हैं। अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमको इससे दस गुनी और अधिक रेल की सड़कें चाहिए। कम से कम ६० या ७० हजार मील रेल लाइन होना अत्यन्त जरूरी है। इसलिए हमें यातायात और माल ढुलाई के साधनों की उन्नति के लिए विदेशी पूँजी जरूर लेनी पड़ेगी और उनके प्रबन्ध के लिए विदेशी दिमाग और अनुभव भी लेना होगा।

हमनी अपने खानों को तो अभी खोदना प्रारम्भ ही नहीं किया है। चीन की जनसंख्या और क्षेत्रफल दोनों ही संयुक्तराष्ट्र अमेरिका से बढ़कर है फिर भी संयुक्तराष्ट्र साठ करोड़ टन कोयला और नौ करोड़ टन लोहा हर वर्ष अपने खानों से निकालता है; जबकि चीन इसका हजारवाँ भाग भी नहीं पैदा करता है। अगर हम जल्दी से अपनी खान खोदना चाहते हैं तो हमें इस काम के लिए विदेशी पूँजी लेनी होगी। जहाज बनाने, व्यापारिक जहाज की उन्नति करने और बड़े पैमाने पर सभी उत्पादक उद्योग-धन्धों को चालू करने के लिए हमारे लिए विदेशी ऋण लेना एकदम जरूरी होगा। अगर ये तीन उद्योग-धन्धे यातायात के साधन का निर्माण करना, खान खोदना, माल उत्पादन करना—चीन में उन्नति करने लगें तो हमारी सालाना आमदनी इनसे बहुत होगी। अगर उद्योग-धन्धे राज द्वारा चलाए जाँय तो उससे जो सहूलियत और अधिकार प्राप्त होंगे उनका उपभोग सम्पूर्ण जनता करेगी। सारे देश की जनता को तब पूँजी से होने वाले लाभ में हिस्सा होगा और पूँजी से हानि नहीं उठानी पड़ेगी जैसा कि विदेशी राष्ट्रों में बड़ी पूँजी व्यक्तिगत पूँजीपतियों के हाथों में रहने से होती है। कुछ व्यक्तिगत आदमियों के हाथों में पूँजी के केन्द्रीयकरण हो जाने का यह फल होता है कि बहुसंख्य जनता दुःख भोगती है और इस दुःख से छुटकारा पाने की कोशिश से वर्ग संघर्ष छिड़ जाता है। सामाजिक समस्याओं को हल करने में हमारा भी वही उद्देश्य है जो विदेशी राष्ट्रों का है, यानी हर आदमी को सन्तुष्ट और सुखी बनाना और धन के असम वितरण के कारण हुए दुःख से छुटकारा पाना। इस प्रकार के दुःख को दूर करने की जब हम कोशिश करेंगे तभी हमारे यहाँ समाजवाद होगा।

तब हम नहीं कह सकते कि समाजवाद का सिद्धान्त मिन् षङ् सिद्धान्त से भिन्न है। हमारे जनता के तीन सिद्धान्तों का अर्थ है ऐसी सरकार

का शासन जो जनता का है और जो जनता द्वारा जनता के लिए चलाया जाता है अर्थात् एक ऐसा राष्ट्र जिस पर सम्पूर्ण जनता का अधिकार है, एक शासन जो सम्पूर्ण जनता द्वारा नियन्त्रित हो और अधिकार तथा लाभ का उपयोग सम्पूर्ण जनता करे। अगर यह सत्य है तो जनता के राज के उत्पादन में केवल समाजवादी हिस्सा ही नहीं मिलेगा बल्कि हर चीज़ में इसका हिस्सा होगा। जब जनता राज के हर चीज में हिस्सा पाती है तभी हम मिन् षङ् सिद्धान्त के सच्चे आदर्श को प्राप्त करते हैं जो कनफ़्यूसियस के 'महान् कोमनवेल्थ' के स्वप्न सा होगा।

अगस्त १०, सन् १९२४ ई०

तीसरा व्याख्यान

आज के मेरे व्याख्यान का विषय 'खाद्य समस्या' है। यह सुनकर आप ज़रूर सोचते होंगे कि भोजन करना तो जानी हुई एक दैनिक क्रिया है। लोग बराबर यह कहते हैं कि दुनिया में भोजन करने के समान आसान चीज़ और कुछ नहीं हैं। यह सच है कि भोजन करना एक बहुत ही सहज और साधारण बात है। तब फिर क्यों इसके साथ समस्या जुड़ी हुई है? हम इस बात का अनुभव नहीं करते हैं कि भोजन जीवका की सबसे प्रधान समस्या है, जिसका कि अगर हल नहीं हो तो इसके कारण जीवका की समस्या के सभी हल असफल होंगे। मिन्-षङ् सिद्धान्त की प्रधान समस्या 'खाद्य समस्या' है। प्राचीन कहावत है—'राष्ट्र जनता को अपना आधार मानता है और जनता भोजन को दैव समझती है।' इससे भोजन की समस्या पूर्णरूप से विदित होती है। यूरोपीय युद्ध के पहले विभिन्न देशों के राजनीतिज्ञ 'खाद्य समस्या' के ऊपर कुछ भी ध्यान नहीं देते थे। लेकिन यूरोपीय युद्ध के हम अध्येताओं ने गत दशाब्दी में हुई जर्मनी के हार के कारण का अध्ययन करना प्रारम्भ किया है। जब यूरोपीय युद्ध बड़े जोरों पर था तो उस समय जर्मनी विजयी था। जिस किसी प्रकार की भी बाधक शक्तियाँ—जैसे जमीन पर—पैदल सेना, तोप वाली सेना या घुड़सवार; समुद्र में—तारपीडो विध्वंसक, पनडुब्बी और हर तरह के जंगी जहाज और आकाश में हवाई जहाज—जर्मनी को मिलीं उन्हें उसने रौंद डाला। युद्ध के प्रारम्भ से अन्त तक जर्मनी एक बार भी नहीं हारा। फिर भी यूरोपीय युद्ध का परिणाम जर्मनी की हार हुआ। क्यों? इसका कारण केवल जर्मनी का खाद्य संकट था। जर्मनी के सभी बन्दरगाह मित्र दलों द्वारा घेर लिए गए। धीरे-धीरे जर्मनी में बाहर से खाद्य सामग्रियों का आना कम होने लगा और अन्त में देश के नागरिक तथा युद्ध मोर्चे के सैनिक दोनों ही को भोजन नहीं मिलने लगा और वे भूखों मरने के करीब-करीब हो गए। इसलिए वे युद्ध मैदान में डटे नहीं रह सके और अन्त में हार गए। इससे पता चलता है कि खाद्य समस्या का जीवन तथा राष्ट्र से बहुत ही घनिष्ट सम्बन्ध है।

संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका खाद्य सामग्री के निर्यात में संसार का नेतृत्व करता है। हर वर्ष वह यूरोप के लोगों की सहायता के लिए खाद्य सामग्री

भेजता है। संयुक्त-राष्ट्र के बाद रूस की गिनती है। वह अपने विस्तृत भू-भाग में जो अपेक्षाकृत कम आबादी वाला है, बहुत अधिक खाद्य सामग्री उत्पन्न करता है। दूसरे देशों की, जैसे अस्ट्रेलिया, कनेडा और दक्षिणी अमेरिका के अर्जेंटाइन की राष्ट्रीय सम्पत्ति ही खाद्य सामग्री है और हर वर्ष ये देश बहुत भारी परिणाम में खाद्य सामग्री दूसरे देशों की कमी पूरा करने के लिए भेजते हैं। लेकिन यूरोपीय युद्ध के समय बहुत से माल ढोने वाले जहाजों को, जो साधारणतः अनाज ढोने के लिए थे, सरकार ने ले लिया और उन्हें सैनिक समान ढोने वाले जहाज बना दिए। इसलिए व्यापारिक जहाजों की बड़ी कमी पड़ गई। अस्ट्रेलिया, कनेडा, अर्जेंटाइन और इसी प्रकार के दूसरे देश यहाँ की 'अतिरिक्त खाद्य सामग्री' को यूरोप नहीं भेज सकते थे। इस कारण यूरोपीय राष्ट्रों के लोगों को खाने की तकलीफ उठानी पड़ी। भाग्यवश चीन में उस समय न तो बाढ़ का उत्पात हुआ और न वर्षा की कमी ही रही। किसानों को अच्छी फसल हाथ लगी; इसलिए चीन में दुर्भिक्ष नहीं हुआ। अगर चीन में उस समय भी इस साल की तरह ही भयंकर बाढ़ आ जाती और किसानों की फसल नष्ट हो जाती तो चीन में निश्चय ही खाद्य सामग्री की कमी होती। चीन युद्ध काल में इस प्रकार की तकलीफ़ों से बच गया और भाग्यवश यहाँ खाद्य सामग्री की कमी नहीं रही।

संसार में बहुस से राष्ट्र अपने लिए काफी खाद्य सामग्री पैदा करते हैं, लेकिन बहुत देश नहीं करते। उदाहरण के लिए ब्रिटिश द्वीपपुंज को लीजिए। वह इतनी ही खाद्य सामग्री पैदा करता है जो उसके साल के केवल तीन महीनों के लिए पर्याप्त होती है। बकिए नौ महीनों का भोजन उसे दूसरे देशों से मंगाना पड़ता है। यूरोपीय युद्ध के सबसे भयंकर दिनों में जब जर्मन पनडुब्बियाँ ब्रिटिश बन्दरगाहों को बन्द किए हुए थीं तब तो ग्रेटब्रिटेन एकदम से भूखों मरने लगा था। पूर्व का जापान द्वीपपुंज भी अपने साल भर खाने योग्य काफ़ी खाद्य सामग्री नहीं पैदा करता है। लेकिन जापान की खाद्य सामग्री की कमी ब्रिटिश द्वीपपुंज के समान भयंकर नहीं है। जापान की जनता अपने यहां की उपज से ही साल के ग्यारह महीनों तक गुजारा कर सकती है—उसे केवल एक महीने की ही कमी रहती है। जर्मनी में पैदा होने वाली खाद्य सामग्री जर्मनी के दस महीनों के भोजन के लिए काफी होती है। उसे केवल दो महीनों की कमी पड़ती है। यूरोप के छोटे-छोटे राष्ट्रों में से बहुत ऐसे हैं जो काफ़ी खाद्य सामग्री पैदा नहीं करते हैं। साधारणतः जर्मनी में खाद्य सामग्री की कमी रहती है। युद्धकाल में जबकि बहुत से

किसान सैनिक हो गए थे और जब उपज में कमी पड़ गई थी तो वहां खाद्य सामग्री की और भी कमी पड़ गई थी इसलिए चार वर्षों का महायुद्ध जर्मनी के लिए हार साबित हुआ। आप देख सकते हैं कि किस तरह से सम्पूर्ण राष्ट्र की खाद्य समस्या कितना भयंकर फल देती है।

जब एक आदमी या एक परिवार को खाने की कमी पड़ती हो तो इस दिक्कत को मिटाना आसान है। लेकिन जब सम्पूर्ण राष्ट्र में जैसे चालीस करोड़ की जनसंख्या वाले चीन राष्ट्र में, खाद्य सामग्री की कमी पड़े तो इस समस्या का हल करना बहुत ही दुष्कर और कठिन हो जाता है। क्या वास्तव में चीन में पैदा होने वाली खाद्य सामग्री चीन के लिए पर्याप्त है या नहीं? क्या चीनी जनता को खाने के लिए काफी मिलता है? क्वाङ्‌ तुङ्‌ प्रान्त हर साल सात करोड़ डालर की खाद्य सामग्री बाहर से मँगाता है। अगर एक महीने तक चावल यहां बाहर से न आए तो क्वाङ्‌ तुङ्‌ में तुरत अकाल से खलबली मच जाएगी। जिससे यह सिद्ध होता है कि क्वाङ्‌ तुङ्‌ में काफी खाद्य सामग्री नहीं होती है। हम केवल क्वाङ्‌ तुङ्‌ की बात करते हैं पर बहुत से प्रान्तों की यही दशा है। चीन के पास संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका से अधिक भू-भाग है और यहां की जनसंख्या उससे तीन या चार गुनी अधिक है। फिर भी हमारी खाद्य सामग्री की उपज संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका की उपज से होड़ नहीं कर सकती है। यूरोपीय राष्ट्रों से हम अपनी तुलना करें। जर्मनी में खाद्य सामग्री की कमी है। जिसके कारण युद्ध छिड़ने के दो तीन वर्षों के बाद ही देश में अकाल पड़ने लगा। फ्रांस में खाद्य सामग्री काफ़ी होती है। शांति काल में बिना दूसरों पर निर्भर रहे उसे खाने भर के लिए पर्याप्त होता है। चीन की जनसंख्या चालीस करोड़ है। फ्रांस का क्षेत्रफल चीन के क्षेत्रफल का बीसवां भाग है। इस प्रकार चीन की जनसंख्या फ्रांस से दस गुनी और चीन का क्षेत्रफल फ्रांस से बीस गुना अधिक है। लेकिन फ्रांस के चार करोड़ लोग चीन के क्षेत्रफल के एक बीसवें हिस्से में भी कृषि की सुधारी हुई प्रणाली के सहारे अपने लिए काफ़ी खाद्य सामग्री पैदा कर लेते हैं। अगर फ्रांस से बीस गुना अधिक क्षेत्रफल वाला चीन फ्रांस का अनुकरण करे और अपने यहां अच्छी तरह खेती का विकास करे और पैदावार को बढ़ावे तो हम निश्चय ही फ्रांस से बीस गुनी अधिक खाद्य सामग्री पैदा कर सकते हैं। फ्रांस अपनी खाद्य सामग्री से अपने चार करोड़ लोगों का प्रतिपालन करता है। चीन अस्सी करोड़ के प्रतिपालन करने योग्य हो सकेगा। केवल देश के लोग ही अकाल के भय से नहीं मुक्त हो जायेंगे बल्कि

खाद्य सामग्री यहाँ बच रहेगी जो हम दूसरे देशों के व्यवहार के लिए भेज सकेंगे।

आज चीन की जनता गरीबी से पीड़ित है और इसकी सम्पत्ति का अप-व्यय हो रहा है। खाद्य समस्या की असली हालत क्या है? चीन में कहीं भी लोगों को खाने मात्र भर को यथेष्ट अनाज नहीं मिलता है। हर वर्ष हज़ारों आदमी भूख से मरते हैं। यह तो केवल साधारण समय का हाल है। लेकिन जब बाढ़ या अकाल आता है तो एक बड़ी संख्या में लोग भूखों मर जाते हैं। विश्वसनीय विदेशी जाँच के अनुसार चीन में इस समय इकतीस करोड़ से अधिक आदमी नहीं हैं। कई दशाब्दी पहले हमारी जनसंख्या चालीस करोड़ थी। इसका यह अर्थ है कि हमारी जनसंख्या के नौ करोड़ लोग समाप्त हो गए। यह बड़ी ही भयङ्कर बात है और यह हमारे सोचने के लिए एक बड़ी समस्या खड़ी कर देती है। कुछ दशाब्दियों में ही चीन की जनसंख्या नौ करोड़ कम क्यों हो गई इसका कारण संक्षेप में खाद्य सामग्री की कमी है। बहुत से कारण हैं कि चीन में क्यों काफ़ी खाने की सामग्री नहीं पैदा होती है। प्रधान कारण चीन का कृषि विज्ञान में उन्नति न करना है और दूसरा कारण यहाँ पर विदेशी आर्थिक प्रभुत्व का होना है।

जब मैं राष्ट्रीयता के सिद्धान्त पर व्याख्यान दे रहा था तो मैंने आपके सामने आर्थिक शक्तियों का उल्लेख किया था जिसमें विदेशी राष्ट्र चीन को सता रहे हैं। अधिकार और सुविधाओं को प्राप्त कर हर वर्ष वे एक अरब बीस करोड़ डालर के मूल्य की चीन की सम्पत्ति का अपहरण करते हैं। विदेशी आर्थिक प्रभुत्व के कारण चीन को हर वर्ष इतनी बड़ी रकम की हानि उठानी पड़ती है। यह रकम किस रूप में विदेश चली जाती है? क्या यह हानि मुद्रा के रूप में होती है? नहीं, कुछ हानि तो अन्न के रूप में होती है। जब चीन के पास केवल अपनी जनता के खाने भर मात्र सामग्री है तो क्यों फिर वह दूसरे देशों को अनाज भेजता है? हम कैसे जानते हैं कि ऐसा हो रहा है? कुछ दिन पहले प्रकाशित विदेशी व्यापार की रिपोर्ट में यह निकला था कि चीन प्रतिवर्ष संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका को एक अरब अंडे भेजता है। यह संख्या छिलका लगे अण्डों की है। इनमें वे अण्डे सम्मलित नहीं है जिनकी चीज़ें तैयार करके चीन से बाहर भेजी जाती हैं। चीन से बहुत बड़ी संख्या में अण्डे इंगलैण्ड और जापान भी भेजे जाते हैं। आपमें से जो नानकिङ् गए हैं उन्होंने श्याक्वान् पहुँचते ही एक बहुत बड़े मकान को देखा होगा। यह मकान टीन के डिब्बों में मांस भरने का विदेशी कारखाना है जहाँ चीन के सूअरों,

मुर्गियों, हंसों, बत्तकों, और दूसरे घरेलू पक्षियों और पशुओं का उपयोग बाहर भेजे जाने वाले मांस के लिए होता है। फिर उत्तरी चीन के जौ, राइ, और सोयाबीन के बारे में सोचिए। इन अनाजों का बहुत बड़ा भाग चीनी बन्दरगाहों से बाहर भेजा जाता है। तीन वर्ष पहले उत्तरी चीन में एकदम वृष्टि नहीं हुई। उस समय पेकिङ्‌ हान्क्वो और पेकिङ्‌, मुकदना रेल लाइन के दोनों ओर हज़ारों आदमी मर रहे थे फिर भी उसी समय बहुत बड़े परिमाण में गेहूँ और सोया- बीन न्युच्वाङ्‌ और डाइरन बन्दरगाह से बाहर भेजे जा रहे थे। क्यों ? इसलिए कि हम पर विदेशी आर्थिक प्रभुत्व है। चीन के पास बाहर भेजने के लिए पैसा नहीं था इसलिए भूखों मरकर भी उसे अनाज भेजना पड़ा था। अतः यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि चीन की खाद्य समस्या का हल नहीं हुआ है।

जब हम जीविका के सिद्धान्त की चर्चा करते हैं तो हमारे कहने का अर्थ यह है कि हम चाहते हैं कि हमारे चालीस करोड़ लोगों को भोजन मिले और वह सस्ते दर में मिले। जब अपरिमित रूप में खाद्य सामग्री तैयार होगी तब सस्ता भोजन मिलेगा और तभी हम कह कह सकते हैं कि जीविका की समस्या हल हो गई। हम खाद्य समस्या की खोज कैसे प्रारम्भ करेंगे ? भोजन करना बहुत आसान काम है। सभी लोग खाते और सोते हैं और इससे सम्बन्धित दिक्कतों को कोई नहीं देखता है। जो कुछ हो, चीन की साधारण जनता में एक कहावत मशहूर है—जब प्रत्येक दिन सबेरे आप अपना दरवाजा खोलते हैं तो आपको सात चीज़ों की चिन्ता करनी पड़ती है और वे चीज़ें हैं—जलावन, चावल, तेल, नामक, सोयाबीन, सिरका और चाय। इसलिए भोजन की समस्या बड़ी ही भयंकर है और अगर हम इसका हल चाहते हैं तो हमें इसका अध्ययन ध्यानपूर्वक करना पड़ेगा।

जिन्दा रहने के लिए मनुष्य को क्या खाने की ज़रूरत पड़ती है ? हमारे खाने में बहुत से प्रधान-प्रधान तत्त्व हैं जिन्हें हम बराबर भूल जाया करते हैं। सच्ची बात यह है कि अपने शरीर को पुष्ट रखने के लिए हमें प्रतिदिन चार प्रकार के मुख्य भोजन पर निर्भर रहना पड़ता है। इनमें पहला हवा है। साफ शब्दों में कहें तो हमारे लिए 'हवा खाना' ज़रूरी है। आप सोचते होंगे कि मैं मजाक कर रहा हूँ क्योंकि साधारणतः यह कहावत कि 'जाओ और हवा खाओ' उपेक्षा के लिए व्यवहार की जाती है। लेकिन आप यह अनुभव नहीं करते हैं कि भोजन करने से भी अधिक ज़रूरी 'हवा खाना' है। दूसरे प्रकार का भोजन जो हमारे लिए ज़रूरी है वह पानी है। तीसरे प्रकार का

भोजन मांस है और चौथे प्रकार का भोजन वनस्पति-भोजन है जैसे पाँच प्रकार के अनाज, फल और तरकारियाँ आदि। हवा, पानी, मांस और तरकारियाँ हमारे भोजन के चार अति आवश्यक तत्त्व हैं। इन चारों पर अलग-अगल विचार कीजिए।

पहले हवा को लीजिए—यह मत सोचिए कि मैं मजाक कर रहा हूँ। अगर आप हवा खाने की प्रधानता पर विश्वास नहीं करते हैं तो अपनी नाक और मुख बन्द करके इसका खाना छोड़ दीजिए और तब देखिए कि आप कैसा अनुभव करते हैं। क्या आप हवा की कमी को बर्दास्त कर सकते हैं? हम हर मिनट में सोलह बार साँस लेते हैं अर्थात् हर मिनट में सोलह बार हवा का भोजन करते हैं। आप एक दिन में तीन बार से अधिक भोजन नहीं करते हैं। केण्टन के लोग कभी भी दिन भर में चार बार से अधिक नहीं खाते हैं। इसमें उनके दोपहर और रात का खाना भी सम्मिलित है। साधारणतः गरीब दिन में दो बार खाते हैं और जो अत्यन्त गरीब हैं वे एक बार खाकर ही जीवन-निर्वाह करते हैं। लेकिन जहाँ तक हवा का सम्बन्ध है हम दिन भर में बीस हज़ार चालीस बार उसका भोजन करते हैं और अगर हमें एक बार भी यह भोजन नहीं मिले तो हम तकलीफ का अनुभव करते हैं। अगर हम कुछ मिनटों तक इसका खाना छोड़ दें तो हम निश्चय ही मर जाएँगे। इसलिए हवा मानव जाति के अस्तित्व का सबसे प्रधान जरिया है। दूसरा भोजन पानी है। हम पानी के बिना केवल अन्न खाकर नहीं रह सकते। एक आदमी पाँच-छः दिनों तक बिना अन्न भोजन किए रह सकता है और उसकी मृत्यु नहीं होगी। लेकिन बिना पानी के वह पाँच दिनों में मर जाएगा।

तीसरा और जीवन का सबसे प्रधान भोजन वनस्पति भोजन है। जब मनुष्यों ने जीने के साधन की खोज में बहुत प्रगति की तभी वह जान सका की वनस्पति भोजन कैसे खाया जाता है। चीन बहुत ही प्राचीन सभ्य राष्ट्र है इसलिए चीन के सभी लोग वनस्पति भोजन करते हैं। जंगली आदमी मांस खाते हैं और वह भी मनुष्य जाति के जीवन-रक्षा का प्रधान साधन है। हवा और पानी हर जगह पाये जाते हैं। अगर आदमी किसी नदी के किनारे पर रहे तो वह नदी के बहते पानी का व्यवहार कर सकता है अन्यथा वह झरने या कुँए या वर्षा के पानी का व्यवहार करता है। पानी सब जगह मिलता है। हवा भी हमारे चारों ओर है। इसलिए यद्यपि हवा और पानी आदमी के जीवन-निर्वाह के लिए अपरिहार्य तत्व हैं तथापि ये तत्व असीम हैं और समाप्त होने वाले नहीं है। ये तत्व प्रकृति प्रदत्त हैं तथा

इनके लिए आदमी को प्रयास नहीं करना पड़ता है। इसलिए हम इन्हें 'प्राकृतिक दान' कह सकते हैं। इसी कारण वे हमारे लिए समस्या-स्वरूप नहीं हैं। लेकिन वनस्पति भोजन और मांस भोजन तो विकट समस्या हैं। आदिम मनुष्य वर्तमान काल के जंगली लोगों के समान शिकार करके और मछली पकड़ कर अपना निर्वाह करता था। वह जल-थल दोनों जगहों के जन्तुओं को अपने खाने के लिए पकड़ता था। जैसे-जैसे सभ्यता आगे बढ़ी आदमी ने कृषि-युग में प्रवेश किया और उसने पाँच अनाज पैदा करना सीखा। तब वह वनस्पति पर अपने पोषण के लिए निर्भर रहने लगा। चीन की सभ्यता चार हजार वर्ष पुरानी है। इसलिए हम खाद्य सामग्रियों के सभ्य व्यवहार में पश्चिमी लोगों से आगे बढ़े हुए हैं। हम प्रधानतः अपने भोजन के लिए वनस्पति के ऊपर ही निर्भर रहते हैं। यद्यपि वनस्पति जमीन से पैदा होती है तथापि वह खाने के योग्य हो सके इसके लिए बहुत मेहनत करना और विभिन्न तरीकों का व्यवहार करना पड़ता है। अगर हम वनस्पति खाद्य की समस्या को हल करना चाहते हैं तो हम पहले उत्पादन के प्रश्न का अध्ययन करें।

प्राचीन समय से ही चीन कृषि-प्रधान देश रहा है। यहाँ खाद्य पदार्थों के उत्पादन के लिए कृषि ही सबसे बड़ा उद्योग-धन्धा रही है। हम किन तरीकों से कृषि के उत्पादन को बढ़ा सकते हैं? चीन की कृषि बराबर ही पूर्णरूप से मानवीय श्रम पर निर्भर रही है फिर भी कृषि में बहुत अधिक विकास हुआ है और विभिन्न प्रकार की उपज बहुत ही अच्छी और उत्कृष्ट होती है। विदेशी वैज्ञानिकों ने भी चीन की कृषि की प्रशंसा की है। चूँकि चीन में खाद्य समाग्री का उत्पादन किसानों पर निर्भर करता है और किसानों को बहुत कड़ी मेहनत उठानी पड़ती है इसलिए अगर हम खाद्य सामग्री के उत्पादन में वृद्धि करना चाहते हैं तो किसानों की रक्षा के लिए सरकार कानून बनाए। चीन की जनता दस में नौ किसान है और इतने परिश्रम से वे जो अनाज पैदा करते हैं उसका अधिकांश भाग जमीन मालिक ले लेते हैं। उनके पास जो बच जाता है उससे मुश्किल से वे अपने को जिंदा रख सकते हैं। यह तो बहुत ही अन्यायपूर्ण बात है। अगर हम खाद्य सामग्री का उत्पादन बढ़ाना चाहते हैं तो हमें किसानों के अधिकार और स्वार्थ सम्बन्धी कानून बनाने होंगे। हमें उनकी रक्षा करनी होगी और उन्हें उत्साहित करना पड़ेगा तथा जमीन की पैदावार का अधिक भाग इन्हें अपने लिए रखने देना होगा। किसानों के अधिकार की रक्षा करना और पैदावार

में उन्हें अधिक भाग देना ये प्रश्न जमीन के समानाधिकार के साथ संबंधित हैं। कुछ ही दिन पहले हमारे क्वोमिनूताङ् ने इसी नार्मल स्कूल[१] में किसानों को इसलिए आमंत्रित किया था कि वे किसान आन्दोलन प्रारम्भ करें और भूमि संबंधी समस्या के हल करने की ओर कदम उठाएँ। बाद में जब मिन् षङ् सिद्धान्त पूरी तरह कार्यान्वित हो जायगा और किसानों की समस्या पूर्णरूप से हल हो जायगी तो हर किसान के पास अपनी जमीन होगी—यही हमारे कार्य का अन्तिम फल होगा।

चीन के किसानों की वास्तविक अवस्था क्या है ? यद्यपि चीन में बड़े-बड़े जमीन मालिक नहीं हैं फिर भी दस किसानों में से नौ के पास अपनी जमीन नहीं है। बहुत कृषि योग्य जमीन जमींदारों के अधिकार में हैं जो अपने से खेती नहीं करते हैं। न्यायपूर्ण बात तो यह है कि किसान लोग अपनी जमीन अपने लिए जोतें और पैदावार पर अपना अधिकार रखें। पर आज किसान दूसरों के लिए जमीन जोतते हैं और खेती का आधे से भी अधिक पैदावार जमींदार ले लेते हैं। इस भयानक स्थिति को रोकने के लिए हमें तुरन्त सरकार और कानून की सहायता लेनी चाहिए। जब तक हम जमीन सम्बन्धी समस्या को हल नहीं कर लेते हैं तब तक जीविका की समस्या भी हल नहीं होगी। हाल में गांवों की जो जाँच की गई है उससे पता चलता है कि जमीन की पैदावार का साठ प्रतिशत जमींदारों के पास चला जाता है केवल चालीस प्रतिशत किसानों के पास रहता है। अगर यह अन्यायपूर्ण स्थिति चलती रहे और किसान चेत जायँ तो फिर कौन इन खेतों में काम करने और दुःख उठाने को तैयार होगा ? लेकिन अगर जमीन की कुल पैदावार किसानों के पास जाय तो किसान खेती करने को उत्सुक होंगे तथा उत्पादन भी बढ़ेगा। लेकिन जैसी बात आज है खेत की पैदावार अधिकतर जमींदारों को मिलती है। केवल ४/१० भाग किसानों के पास रहता है। उनके साल भर के निरन्तर परिश्रम का फल अन्त में जमींदारों को मिलता है। इस कारण बहुत बड़ी संख्या में किसान जमीन छोड़ते जा रहे हैं और बहुत सी जमीन बंजर तथा अनुत्पादक होती जा रही है।

कृषि सम्बन्धी पैदावार की चर्चा करने में हमें केवल किसानों को मुक्त करने के प्रश्न का ही अध्ययन नहीं करना चाहिए बल्कि उत्पादन बढ़ाने के सात तरीकों पर भी ध्यान देना चाहिए। सात तरीके ये हैं—मशीन का व्यवहार करना, खाद का व्यवहार करना, अनाज की बदली करना, अनाज में

---

१. डा० सन् यात् सेन् ने व्याख्यान कण्टन के नार्मल स्कूल हॉल में दिए थे।

लगने वाले रोगों का उन्मूलन करना, माल तैयार करना, माल के वितरण की व्यवस्था करना और प्राकृतिक आपदाओं से पैदावार की रक्षा करना। पहला तरीका मशीन का व्यवहार करना है। इन हज़ार वर्षों में चीन ने केवल मानवीय शक्ति से खेती की है और कभी मशीन का व्यवहार नहीं किया है। अगर हम खेती करने में मशीन का व्यवहार करते हैं तो हम कम से कम अपनी पैदावार दोगुनी अधिक बढ़ा सकते हैं और इस समय उत्पादन में होने वाले खर्चों का दसवाँ या सौवाँ भाग कम कर सकते हैं। अगर चीन मानवीय श्रम से चालीस करोड़ का प्रतिपालन कर सकता है तो वह मशीन की शक्ति से अस्सी करोड़ लोगों के लिए अनाज पैदा कर सकता है। अगर खाद्य सामग्री के उत्पादन में मानवीय श्रम की जगह मशीन का प्रयोग होता है तो बहुत सी बेकार जमीन जो ऊँची होने के कारण कृषि योग्य नहीं है पम्प और कल द्वारा सींची जाकर खेती योग्य हो सकती है। अच्छी जमीन जहाँ पहले से ही खेती हो रही है मशीन द्वारा सींची जा सकती है और अनावृष्टि के डर से मुक्ति मिल सकती है। इस प्रकार उत्पादन में भी वृद्धि हो सकती है। अगर पुरानी बेकार जमीन में जहाँ खेती नहीं होती थी, खेती होने लगे तो चीन स्वभावतः ही अधिक खाद्य सामग्री पैदा करेगा। खेती करने और पानी पटाने के लिए जो मशीनें अभी व्यवहार में आती हैं वे सब दूसरे देशों से मँगाई जाती हैं। लेकिन अगर सभी किसान मशीन व्यवहार करने लगें और मशीन की माँग बढ़ जाय तो हमें अपने यहाँ ही मशीन बनानी चाहिए और इस प्रकार विदेशों में जाने वाले मुनाफे को रोकना चाहिए।

पैदावार बढ़ाने का दूसरा तरीका खाद का व्यवहार करना है। भूतकाल में चीन में पैखाने, बहुत तरह की सड़ी-गली वनस्पतियों और अन्य खाद का उपयोग खेत में किया जाता था। लेकिन यहाँ कभी रासायनिक खाद का उपयोग नहीं किया गया है। हाल से ही चीली का शोरा (Saltpeter) चीन में खाद के लिए उपयोग होने लगा है। क्वाङ्-तुङ् तथा होनान् की बहुत सी जगहों में ईख की खेती के लिए इसका व्यवहार खाद के रूप में किया जा रहा है। जब ईख में चीली शोरा का खाद दिया जाता है तो उसके पौधे दुगुनी तेजी से बढ़ते हैं और डांड़ भी कई गुना अधिक लम्बे होते हैं। अगर चीली शोरा खेत में नहीं दिया जाता है तो ईख केवल धीरे-धीरे ही नहीं बढ़ती हैं बल्कि डांड़ भी बहुत छोटे होते हैं। चीली शोरा दक्षिणी अमेरिका के चीली प्रान्त से आता है। यह बहुत बड़ी पूँजी चाहता है और बड़ा खर्चीला है। इसलिए केवल ईख पैदा करने वाले ही इसे खरीद सकते

हैं और उसे व्यवहार में लाते हैं। साधारण किसान इसे नहीं खरीद सकते हैं। चीली शोरा के अलावे सभी प्रकार के अस्थि-कोष-युक्त जन्तुओं (Crustacea) से निकाला हुआ फासफोरस और खनिज पहाड़ों तथा चट्टानों से निकाला हुआ पोटामियम बड़े ही अच्छे खाद होते हैं। अगर नाइट्रोजन, फासफोरस और पोटसियम मिलाकर चूर्ण बनाया जाय तो वह उच्च कोटि का खाद होता है। इससे किसी भी प्रकार के पौधों की खेती करना आसान है और इससे उपज भी अधिक होती है। उदाहरण के लिए देखिए कि बिना खाद दी हुई एक मउ जमीन के पाँच डलिया अनाज होता है लेकिन अगर उसी एक मउ में खाद दी जाय तो अनाज दो-तीन गुना अधिक होगा। इसलिए पैदावार बढ़ाने के लिए हमें खाद का उपयोग करना चाहिए और खाद देने के नियम के लिए हमें विज्ञान का अध्ययन करना चाहिए तथा वैज्ञानिक तरीकों से खाद तैयार करना चाहिए। चीन में खाद बनाने की सामग्रियाँ हर जगह पाई जाती हैं। चीली शोरा में पाया जाने वाल तत्त्व चीन में बारूद बनाने के लिए बहुत पहले से ही व्यवहार में आता था। पहले संसार में जितने खाद का व्यवहार होता था वह चीली से ही लाया जाता था। लेकिन विज्ञान के उन्नति के साथ-साथ वैज्ञानिकों ने बिजली के द्वारा नाइट्रेट बनाने की नई प्रणाली निकाली है। इसलिए अब विभिन्न देशों को प्राकृतिक सोडियम नाईट्रेट के लिए चीली के आयात पर निर्भर नहीं रहना पड़ता है। बल्कि अब बिजली के द्वारा कृत्रिम नाइट्रेट बना लिया जाता है। कृत्रिम नाइट्रेट भी ठीक प्राकृतिक नाइट्रेट की तरह लाभकारी होता है और इसके तैयार करने में बहुत ही कम खर्च होता है। इस कारण हर देश के आदमी खुशी-खुशी व्यवहार करते हैं।

बिजली कैसे पैदा की जाती है? साधारण तौर पर खर्चीली बिजली भाप की शक्ति से पैदा की जाती है लेकिन नई और सस्ते ढङ्ग की बिजली पानी की शक्ति से पैदा की जाती है। हाल से विदेशी राष्ट्र अपने जल प्रपातों और तेज धाराओं का उपयोग विद्युत उत्पादक यन्त्र चलाने में करते हैं। इस तरह बहुत शक्तिवाली बिजली पैदा की जा सकती है और यह शक्ति कृत्रिम नाइट्रेट बनाने में आ सकती है। जल-प्रपातों और तेज धाराओं की प्राकृतिक शक्ति के लिए हमें कुछ भी खर्च नहीं करना पड़ता है और इसका यह फल होता है कि उससे पैदा होने वाली बिजली का दाम बहुत कम होता है। सस्ती बिजली से तैयार किया हुआ कृत्रिम नाइट्रेट बहुत सस्ता पड़ता है। चीन में बहुत से जलप्रपात और वेगवती धराएं हैं। बुचौ के ऊपर

सिक्वाङ्[२] नदी में बहुत सी वेगवती धाराएं हैं। नान्किङ् के पास फ़ु—पो नामक तेजधारा (Rapids) है जो इतनी वेगवती है कि वह नदी में आने-जाने वाले जहाजों के लिए भी खतरनाक है। अगर इस धारा की जल-शक्ति को काम में लाया जाय और इससे बिजली पैदा की जाय तथा नावों के चलने के लिए दूसरा जल-मार्ग बना दिया जाय तो क्या दुगुना फ़ायदा नहीं होगा? किसी ने अनुमान लगाया है कि इन तेज धाराओं की जलशक्ति से दस लाख घोड़ों की विद्युत शक्ति पैदा की जा सकती है। क्वाङ्सी प्रान्त की फ़ो तथा हुङ् नदियों में भी बहुत तेज धाराओं वाले स्थान है जहां की बिजली पैदा की जा सकती है। इंजिनियरों के अनुमान के अनुसार क्वाङ् तुङ् प्रान्त की वङ् नदी से बीस हजार से लेकर एक लाख घोड़ों तक की विद्युत शक्ति पैदा की जा सकती है। इससे केण्टन शहर में बिजली की रोशनी का प्रबन्ध हो सकता है, यहाँ के सभी कल-कारखाने बिजली से चलाऐ जा सकते हैं और आधुनिकतम विदेशी ढंग पर केण्टन हान्क्वो रेल चलाई जा सकती है।

या ऊपरी याङ्टिज नदी के क्वइ जल-प्रपात की आश्चर्यजनक जल-शक्ति का अनुमान कीजिए। वे लोग जिन्होंने इचाङ् और वान्षिएन् के बीच नदी के फैलाव को देखा है, अनुमान करते हैं कि वहाँ की जल-शक्ति से तीन करोड़ से भी अधिक घोड़ों की विद्युत-शक्ति पैदा हो सकती है। यह असीम शक्ति वर्तमान समय में दूसरे देशों में पैदा की जाने वाली शक्ति से कहीं अधिक परिमाण में है। इससे केवल देश की सभी रेल, बिजली लाइन और कल-कारखानों में ही नहीं मिलेगी बल्कि इसका व्वहार मुख्य-मुख्य खादों के तैयार करने में भी किया जा सकेगा। पीली नदी के विषय में सोचिए जो लुङ्मन जल-प्रपात के पास कई लाख घोड़ों की विद्युत-शक्ति पैदा कर सकती है। आपने देखा कि चीन का प्राकृतिक साधन कितना विशाल है। अगर याङ्टिज और पीली नदी की जल-शक्ति नई प्रणाली द्वारा विद्युत-शक्ति पैदा करने में लगाई जाय जो चीन में करीब दस करोड़ घोड़ों की विद्युत-शक्ति पैदा हो सकती है। चूँकि एक घोड़ों की शक्ति आठ आदमियों की सम्मिलित शक्ति के बराबर होती है, इसलिए दस करोड़ घोड़े की शक्ति अस्सी करोड़ आदमियों के बराबर होगी। बहुत देशों में कानून के अनुसार एक आदमी दिन भर में आठ घण्टे ही काम कर सकता है। काम का अधिक घण्टा मजदूरों के स्वास्थ्य को हानिकर है और उत्पादन को भी कम करता

२. क्वाङ्तुङ् प्रान्त में, इसे 'पश्चिमी नदी' कहते हैं।

है। इसका कारण मैं अपने पिछले व्याख्यान में बतला चुका हूँ। मानवीय शक्ति का उपयोग दिन भर में केवल आठ घण्टों तक ही हो सकता है लेकिन मशीन की शक्ति चौबीसों घण्टे व्यवहार में लाई जा सकती है। इसका मतलब यह है कि एक घोड़े की शक्ति एक दिन और रात में चौबीस आदमियों का काम पूरा कर सकती है। अगर हम याङ्‌टिज और पीली नदी की जल-शक्ति का उपयोग दस करोड़ घोड़ों की विद्युत शक्ति पैदा करने में लगा सकें तो यह हमारा दो अरब चालीस करोड़ आदमियों द्वारा काम करने के समान होगा। जब ऐसा समय आयगा तो हमारे पास रेलवे, मोटरकार और खाद बनाने के कल-कारखानों तथा अन्य तरह के माल तैयार करने के कारखानों को चलाने के लिए काफ़ी विद्युत शक्ति होगी। हान् यू (याङ् राजकुल के चीनी निबंध-लेखक) कहते हैं—'एक घर वाले औजार बनाते हैं जबकि छः घर वाले उनके व्यवहार करते हैं।' हम चालीस करोड़ आदमियों में से कितने आदमी काम करते हैं? छोटे-छोटे बच्चे और बूढ़े आदमी सचमुच में काम नहीं कर सकते हैं। बहुत से मजबूत आदमी जैसे जमीन मालिक जो जमीन की मालगुजारी पाते हैं, अपने निर्वाह के लिए दूसरों पर निर्भर रहते हैं। एक बहुत बड़ी संख्या में चीनी आदमी काम नहीं करते हैं—वे केवल हिस्सा बटाते हैं, धन उपार्जन नहीं करते। इस कारण चीन गरीब होता जा रहा है। अगर हम याङ्‌टिज और पीली नदी की जल-शक्ति द्वारा दस करोड़ घोड़ों की विद्युत शक्ति पैदा करें जिसका मतलब दो अरब चालीस करोड़ आदमियों की शक्ति पैदा करना होगा और इस बड़ी विद्युत-शक्ति का उपयोग अपने काम के लिए हम करें तो चीन में बहुत अधिक उत्पादन होगा और निश्चय ही हमारी गरीबी-अमीरी के रूप में बदल जायगी। इसलिए कृषि की पैदावार के मामलों में अगर हम मानवीय श्रम को उन्नत कर सकें और मशीन का व्यवहार करें तथा विद्युत शक्ति का उपयोग खाद बनाने में करें तो हम निश्चय ही अपने खेतों की पैदावार को बढ़ा सकेंगे।

पैदावार बढ़ाने का तीसरा तरीका फसल को बदल कर रोपना है। इसका अर्थ यह है कि एक ही टुकड़े जमीन में हर वर्ष भिन्न-भिन्न चीजें या भिन्न कोटि के बीज हम बोयें। उदाहरण के लिए, एक खेत में इस वर्ष क्वाङ्-तुङ् में पैदा होने वाला बीज बोया गया तो दूसरे वर्ष उसी खेत में हुनान् का बीज और तीसरे वर्ष सच्वान् का बीज बोना चाहिए इस प्रकार हर वर्ष बीज बदल कर बोना चाहिए। इससे क्या फायदा है? इसका मतलब है कि

विभिन्न प्रकार की जमीन को आराम देना और उसमें परिवर्तन लाना तथा फ़सल को बढ़ाना। जब बीज नई मिट्टी में बोया जाता है और नये वातावरण में वह पैदा होता है तो पौधे मजबूत होते हैं और पैदावार काफ़ी होती है। इस प्रकार फसल को अदल-बदल कर बोना पैदावार को बढ़ाता है।

चौथा तरीका फ़सल की बीमारी का उन्मूलन करना है। खेतों में पौधे और जन्तु होते हैं और दोनों ही खेतों को हानि पहुँचाते हैं। उदाहरण के लिए लीजिए कि एक खेत में धान बोया जाने वाला है। लेकिन धान रोपने के समय कितनी तरह की घासें और निकम्मे पौधे बहुत जल्दी से खेत में पैदा हो जाते हैं और वे धान को नहीं बढ़ने देते हैं तथा खेत के खाद को भी चूस लेते हैं। ये चीजें धान के लिए बड़ी नुकसानदेह हैं। किसानों को इन हानिकारक घासों तथा निकम्मे पौधों से छुटकारा पाने के लिए अध्ययन कर वैज्ञानिक तरीकों का व्यवहार करना चाहिए ताकि अनाज को हानि न पहुँचे। साथ-साथ उन्हें यह भी पता लगाना चाहिए कि क्या कोई रास्ता है जिससे उन घासों और निकम्मे पौधों का उपयोग उपज बढ़ाने के लिए किया जा सके। हानिकारक जन्तु (Pests) कौन-कौन हैं? ये बहुत भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। सबसे अधिक पाई जाने वाली टिड्डी है। अगर टिड्डी या किसी प्रकार के हानिकारक कीड़े पकते हुए फसल पर आ बैठते हैं तो ये फसल को काट देते और बरबाद कर देते हैं। इस प्रकार कुछ भी अनाज नहीं पैदा होता है। इस वर्ष काङ्‌तुङ्‌ के लीची वृक्षों पर जबकि उनमें फल लगने को था, झिंगने आ बैठे जो लीची के सब फूलों को ही चट कर गए। जिसके फलस्वरूप इस वर्ष लीची की उपज बहुत कम हुई। और भी बहुत प्रकार के हानिकारक कीड़े हैं। राज को इन बातों की ध्यानपूर्वक जाँच करने के लिए तथा इनके उन्मूलन का उपाय खोजने के लिए विशेषज्ञों को नियुक्त करना चाहिए। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने इस समस्या पर बड़ा ध्यान दिया है और इन रोगों को दूर करने का तरीका निकालने के लिए वहहर वर्ष वह बहुत अधिक खर्च करता है। इस कारण कृषि से होने आमदनी में सालाना लाखों की वृद्धि हो रही है। यद्यपि नान्किङ्‌ में एक वाली कृमि विज्ञान समिति (Entomlogicial Bureau) की स्थापना हुई है जो कीड़ों के उन्मूलन के तरीकों का अध्ययन करती है फिर भी इसका क्षेत्र बहुत संकुचित है और इसके काम भी बहुत लाभप्रद नहीं हो रहे हैं। हम राज की बड़ी शक्ति का व्यवहार करें और हानिकारक कीड़ों के उन्मूलन के लिए संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के तरीकों की नकल करें। तब सम्पूर्ण

देश से कृषि को हानि पहुँचाने वाले कीड़े कम हो जाएंगे और पैदावार बढ़ जाएगी।

माल तैयार करना पैदावार बढ़ाने का पाँचवाँ तरीका है। अगर खाद्य सामग्री को बहुत दिनों तक सुरक्षित रखना हो और उसे दूर-दूर भेजना हो तो उसके लिए सुरक्षित रखने के तरीकों का उपयोग होना चाहिए। हमारे देश में खाद्य सामग्री सुरक्षित रखने का सबसे साधारण तरीका उसे सुखाना और उसमें नीमक देकर रखना है। हमारे यहाँ सूखी तरकारी, सूखी मछली, सूखा मांस, नमकीन तरकारी, नमकीन मछली, नमकीन मांस आदि होते हैं। हाल में ही एक नया तरीका पश्चिम में निकला है। खाद्य सामग्री पहले एकदम से उबाली या पकायी जाती है और तब टीन के डिब्बों में उसे बन्द कर दिया जाता है। चाहे जितने भी दिनों तक वह खाद्य सामग्री क्यों न रखी जाय जब वह टीन से निकाली जायगी उसमें ताजा स्वाद मिलेगा। खाद्य सामग्री सुरक्षित रखने का यह सबसे अच्छा तरीका है। किसी भी प्रकार की मछली, मांस, फल, तरकारी या बिस्कुट डिब्बों में बन्द किए जा सकते हैं और विदेशों में भेजे जा सकते हैं।

पैदावार बढ़ने का छठवाँ तरीका माल ढोने के साधन हैं। जहाँ अतिरिक्त खाद्य पदार्थ हैं हम वहाँ से फेर-बदल करें। हम एक जगह के अतिरिक्त भोजन को दूसरी जगह जहाँ भोजन नहीं है, पहुँचाएं। उदाहरण के लिए देखिए कि मंचूरिया के तीन पूर्वी प्रदेशों, और उत्तरी चीन में गेहूँ और सोयाबीन तो होते हैं पर चावल नहीं होता। इसी प्रकार दक्षिणी प्रदेशों में चावल होता है पर गेहूँ और सोयाबीन नहीं होते। हमें मंचूरिया और उत्तरी चीन के अतिरिक्त गेहूँ और बीन को दक्षिणी प्रदेशों में और दक्षिणी प्रदेशों के अतिरिक्त चावल को उत्तरी चीन और मंचूरिया में पहुँचा देना चाहिए। पर माल का इस प्रकार अदली-बदली करना ढोने के साधनों पर निर्भर करता है। इस समय चीन की सबसे बड़ी समस्या यातायात की है। अच्छी प्रणाली के न रहने से बहुत बरबादी होती है। चीन के बहुत भागों में माल ढोना पूर्णरूप से मोटियों पर निर्भर करता है। सबसे मजबूत कुली एक सौ केटी से न तो अधिक ले जा सकता है और न एक दिन में एक सौ लि से अधिक चल ही सकता है। और उसे उसके श्रम के कम से कम प्रतिदिन एक डालर देना पड़ता है। इस तरीके से केवल रुपये की ही बर्बादी नहीं होती है बल्कि समय की भी वर्बादी होती है और इस प्रकार चीन का बहुत-सा धन अलक्षित रूप से माल ढोने में नष्ट हो जाता है।

भूतकाल में यातायात के अपूर्ण साधन के कारण बहुत-सी मूल्यवान् और उपयोगी खाद्य सामग्रियों का अच्छी तरह से वितरण नहीं हो सका और इसी कारण से खाद्यसमस्या बिना हल हुए रह गई।

चीन के माल ढोने के सबसे अच्छे साधन जलमार्ग और नहर रहे हैं। ग्रेन्ड कैनल (बड़ी नहर) बहुत लंबी है। यह हाङ्चौ से प्रारम्भ होती है और सूचौ, चिन्क्याङ् याङ्चौ, षान्तुङ् और थिएन चिन् होकर बहती हुई तीन हजार मील लम्बा रास्ता पारकर अन्त में पेकिङ् के पास तुङ् चौ में समाप्त होती है। वास्तव में यह संसार की सबसे बड़ी नहर है। इस प्रकार का जलमार्ग अत्यन्त ही सुविधाजनक है। अगर आधुनिक युग की भापवाली नौका और मोटर-बोट इस धारा में रख दिए जाँय तो यह और भी अधिक काम लायक हो जाएगी। इस बड़ी नहर पर बहुत कम ध्यान दिया गया है। अगर हम भविष्य में खाद्य समस्या को हल करना चाहते हैं और खाद्य सामग्री आसानीपूर्वक इधर-उधर भेजना चाहते हैं तो हमें पुरानी नहर प्रणाली का पुनरुद्धार करना होगा। वर्तमान बड़ी नहर की मरम्मत होनी चाहिए और जहाँ अभी जलमार्ग नहीं हैं वहाँ-वहाँ नहरें खोदनी चाहिए। समुद्र में माल ढोने के लिए हमें बड़े-बड़े जहाजों की जरूरत है क्योंकि संसार का सबसे कम खर्चीला यातायात का तरीका जलमार्ग ही है।

सस्ते के खयाल से रेलगाड़ी की गिनती दूसरी है। अगर रेल लाइनें चीन के अठारह प्रान्तों, सिन्क्वाङ्, मंचूरिया, चिङ्हाई (कोकोनोर) तिब्बत, भीतरी और बाहरी मंगोलिया में बिछ जाएँ और ये सभी एक प्रणाली में गूँथ दी जाएँ तो चीन की खाद्य सामग्री सभी जगहों में भेजी जा सकती है और देश के प्रत्येक भाग के लोगों को सस्ता भोजन मिल सकता है। इसलिए खाद्य समस्या को सुलझाने के लिए रेलवे अच्छे साधनों में से एक है। जो कुछ हो, रेल की लाइनें देश के केवल उन्नतिशील और धनी आबादी वाले भागों में ही बिछाई जा सकती हैं जहाँ उनसे मुनाफा कमाया जा सके। अगर लाइनें निर्धन और अप्रसिद्ध भू-भागों में बिछाई जाएँ तो वहाँ न अधिक ढोने को माल मिलेगा और न अधिक यात्री ही होंगे। रेलवे को नफा नहीं होगा उल्टे उसे घाटा उठाना पड़ेगा। इसलिए हम निर्धन और सुदूर देहातों में रेल की लाइनें नहीं बिछा सकते। इस प्रकार के भू-भागों में हम केवल मोटर दौड़ने योग्य सड़कें बना सकते हैं। इस प्रकार बड़े-बड़े नगरों में रेल की लाइनें होंगी और छोटे-छोटे शहरों तथा गांवों में मोटर चलने वाली सड़कें होंगी और ये सभी लाइनें और सड़कें एक पूर्ण व्यवस्थित याता-

अब अगर हम पाँच सुधारों को जिनके बारे में ऊपर चर्चा हो चुकी है, लागू कर सकें और अपनी कृषि की उपज को बढ़ाएँ पर अगर हमें यातायात के सस्ते और सुविधाजनक साधन न हों तो क्या परिस्थिति होगी ? कुछ वर्ष पहले मुझे यून्नान् कबीले के एक मुखिये से मुलाकात हुई थी। उसके पास बहुत जमीन थी और हर वर्ष वह मालगुजारी के रूप में बहुत अनाज पाता था। उसने मुझसे कहा कि हर वर्ष उसे कई हज़ार पिकुल अनाज जला देना पड़ता है। मैंने पूछा—'जब अनाज इतना आवश्यक भोजन है तो आप उसे जला क्यों देते हैं ?' उसने उत्तर दिया—'मुझे प्रतिवर्ष बहुत अनाज मिलता है। मैं स्वयं सभी नहीं खा सकता और मेरे पड़ोस के लोगों के पास भी खाने को काफ़ी है। अनाज का कोई खरीददार नहीं आता है और यातायात के जैसे साधन हैं उससे माल कई कोरीलि ही भेजा जा सकता है। दूर जगहों में बेचने के लिए भेजने का कोई साधन नहीं है। हर वर्ष पुराने अनाज के ऊपर नए अनाज का ढेर लग जाता है। चूँकि मेरे पास इतना गोदाम नहीं है कि मैं अपना सब अनाज रख सकूँ और चूँकि बाजार में पुराने अनाज की अपेक्षा लोग नए अनाज को पसन्द करते हैं इसलिए पुराना अनाज बेकार हो जाता है। इसलिए फसल कटनी के समय पुराने अनाज को जलाकर मालगोदाम को नए अनाज के लिए साफ करने के सिवाय मेरे पास दूसरा कोई चारा नहीं रह जाता है।' अनाज के जलाने का कारण अनाज का अधिक होना और यातायात के साधन की कमी है। चीन की सबसे बड़ी बर्बादी मोटियों द्वारा माल ढोने में होती है। यहाँ केण्टन में बहुत से मोटिये थे। लेकिन जब से बड़ी सड़कें बन गई हैं और ठेला गाड़ियाँ चलने लगी हैं तब से हमें हर चीज़ के ढोने के लिए मोटियों पर निर्भर नहीं रहना पड़ता है। एक ठेला गाड़ी कई कुलियों के बोझ के बराबर ढो सकती है और इस प्रकार कई कुलियों का भाड़ा बच जाता है। मोटर दस या इससे अधिक कुलियों के बराबर बोझ ढो सकती है और इस प्रकार दस या अधिक कुलियों का भाड़ा बच जाता है। माल ढोने के लिए ठेला गाड़ी और मोटर के व्यवहार होने से केवल खर्चे में कमी नहीं हुई है बल्कि समय की भी बचत होती है। साइक्वान् (पश्चिमी जिले में आधुनिक सड़कें नहीं हैं इसलिए वहाँ अभी भी मोटियों द्वारा माल ढोने का काम होता है। देहात में अगर हम एक सौ केटी बोझ कुछ कोरीलि तक ले जाना चाहें तो कुली पर ही निर्भर रहना पड़ेगा। जब अमीर आदमी यात्रा करते हैं तो वे पालकीनुमा कुर्सियाँ (Sedan chair) पर बैठते हैं और उन्हें कुली ही ढोते हैं।

यात की प्रणाली में गूँथ दी जाएँगी। खाद्य सामग्री ढोने के लिए बड़े-बड़े शहरों में रेलगाड़ियाँ और छोटे-छोटे शहरों तथा गाँवों में मोटर गाड़ियाँ व्यवहार में लाई जाएँगी।

उदाहरण के लिए देखिए कि केण्टन-हान्क्वो रेल लाइन के दोनों तरफ वॉङ्षा से श्युक्वान् तक बहुत सी बस्तियाँ हैं। अगर इन सभी बस्तियों से रेल लाइन तक मोटर की सड़कें बना दी जाएँ तो केवल रेलवे को ही बहुत अधिक मुनाफा नहीं होगा बल्कि हर बस्ती को यातायात का सुविधाजनक साधन मिल जायगा। अगर इन बस्तियों तक रेल की ब्राँच लाइनें बना दी जाएँ और माल ढोने के लिए मोटर गाड़ियों के बदले रेलगाड़ियाँ व्यवहार में लाई जाएँ तो निश्चय ही आर्थिक हानि होगी। विदेशी राष्ट्रों के बहुत से देहाती भू-भागों में रेल की लाइनें बिछाई गई हैं और उन पर गाड़ियाँ चलती हैं। पर चूँकि रेलवे का कारबार मन्दा है इसलिए रेलगाड़ियों के बदले मोटर गाड़ियों का व्यवहार होता है। जितनी बार रेलगाड़ी दौड़ती है बहुत अधिक परिमाण में कोयला खर्च होता है। खर्च के लिए काफ़ी पूँजी लगानी पड़ती है और मुनाफा होना कठिन हो जाता है। लेकिन मोटर गाड़ियाँ थोड़ी पूँजी में ही दौड़ सकती हैं और बहुत अधिक मुनाफा कमा सकती हैं। ये सब वास्तविक बातें हैं जिनसे यातायात के प्रबन्धकर्ताओं को पूरी तरह अवगत होना चाहिए।

फिर, केन्टन से मौकौ तक की यात्रा बराबर स्टीमर द्वारा होती है। लेकिन अब कुछ लोग केन्टन-माकौ रेलवे बनाने की बात कह रहे हैं। केन्टन से माकौ की दूरी दो सौ लि से अधिक नहीं है। अगर रेल लाइन बनती है और प्रत्येक दिन दोनों तरफ से तीन बार गाड़ियाँ आती जाती हैं तो रेलवे को नफा नहीं होगा। अगर दो ही बार आती जाती हैं तो पूँजी में भी घाटा लगेगा। अगर खर्च घटाने के लिए कम गाड़ियाँ चलती हैं तो यात्रा में वर्तमान समय से अधिक सुविधा नहीं होगी। इसलिए सबसे अच्छी योजना यह होगी कि केण्टन से माकौ तक मोटर की सड़क बनवाई जाय। मोटर की सड़क बनाने के लिए अधिक पूँजी की ज़रूरत नहीं होगी। फिर एक रेलगाड़ी को अपना खर्चा उठाने के लिए एक बार में सात या आठ डिब्बे खींचने पड़ेंगे जिसमें कोयला और श्रम भी बहुत लगेगा और अगर कम यात्री जाने वाले हुए तो मुनाफा की कोई गुंजाइश नहीं होगी। इसलिए मोटर चलाना कहीं अधिक अच्छा होगा। मोटर द्वारा कम या अधिक संख्या में लोग किसी भी समय आ-जा सकते हैं। जब बहुत अधिक यात्री होंगे तो

बड़ी मोटरगाड़ी खोली जायगी। जब एक मोटरगाड़ी से अधिक यात्री होंगे तो या तीन गाड़ियाँ खोली जाएंगी। अगर केवल कुछ थोड़े से यात्री हैं तो छोटी गाड़ी व्यवहार में लाई जायगी। सवारी मिल जाने पर मोटरगाड़ियाँ किसी भी समय खुल सकती हैं। उन्हें बँधे समय पर रेलगाड़ी की तरह नहीं चलना पड़ता है। क्योंकि रेलवे में तो दो गाड़ियों के लड़ जाने का डर रहता है। इसलिए हम देखते हैं कि केण्टन और माकौ के बीच में मोटर की सड़क का बनाना रेल लाइन बिछाने की अपेक्षा कहीं अधिक सस्ता पड़ेगा। जब मोटर की सड़कें बन जाती हैं तो देश के केवल निर्धन और भीतरी भू-भागों में जहाँ मोटर की सड़कें नहीं बन सकती हैं मोटियों के द्वारा माल ढोने का काम होगा। इससे हम देखते हैं कि खाद्य सामग्री के ढोने के प्रश्न को हल करने के चार आवश्यक उपाय हैं—पहला नहर खुदवाना, दूसरा रेल लाइन बिछवाना, तीसरा मोटर की सड़कें बनवाना और चौथा मोटियों द्वारा माल ढुलाना। अगर अच्छी तरह से माल ढोने के इन चार साधनों का हम विकास करें तो हमारे चालीस करोड़ आदमियों को सस्ता खाना मिलेगा।

पैदावार बढ़ाने का सातवाँ तरीका प्राकृतिक आपदाओं को रोकना है। इन दिनों क्वाङ्‌तुङ् में जो बाढ़ आई है उसे देखिए। धान की पहली फसल इसी महीने के मध्य तक कट जाती लेकिन जब धान पकने-पकने को था तो वह बाढ़ के पानी में डूब गया और बर्बाद हो गया। एक मौ जमीन में लगे हुए धान का मूल्य कम से कम दस डालर होता इसलिए एक मौ जमीन बाढ़ में डूब जाने का मतलब दस डालर की हानि है। सम्पूर्ण क्वाङ्‌तुङ् प्रान्त में क्या आप सोचते हैं कितनी मौ जमीन बाढ़ में डूबी होगी? निश्चय ही इस बाढ़ में लाखों मौ जमीन डुबी होगी और करोड़ों डालर की क्षति हुई है। इसलिए अगर हम खाद्य समस्या का पूर्ण हल चाहते हैं तो प्राकृतिक आपदाओं को रोकना एक बहुत ही मुख्य काम है। हम क्वाङ्‌तुङ् में आई हुई बाढ़ के समान और भी दूसरी जगहों में आई हुई बाढ़ को कैसे रोकेंगे? वर्तमान समय में बाढ़ रोकने का यह तरीका प्रचलित है कि संरक्षण समितियों की स्थापना की गई है और नदियों के किनारे-किनारे जहाँ-जहाँ नदियों के तल से जमीन नीची है वहाँ वहाँ बड़े-बड़े बाँध बनाए गए हैं। ये बाँध बहुत मजबूत हैं इसलिए ये पानी के भारी से भारी धक्कों को भी रोक सकते हैं और बाढ़ के पानी को ऊपर नहीं आने देते हैं ताकि पानी नदियों के दोनों तरफ के खेतों को न भर सके। गत वर्ष जब मैं तुङ्‌क्याङ् नदी के किनारे-किनारे सैन्य-संचालन कर रहा था तो मैंने इस प्रकार के कुछ ऊँचे बाँधों को देखा है।

वे सबके सब बड़े मजबूत हैं और बाढ़ की आपदाओं को रोक सकते हैं और पानी के धक्कों से वे नहीं टूट सकते हैं। लेकिन बाढ़ रोकने का यह तरीका अपूर्ण है और इससे सम्पूर्णतया पानी नहीं रोका जा सकता है। बाँध बनाने के अलावे हमें नदियों और बन्दरगाहों को गहरा करना चाहिए और नदियों के तल में जमी हुई मिट्टी और बालू को साफ करना चाहिए। अगर बन्दरगाहों के पास मिट्टी नहीं मजी हुई है और नदियों का तल गहरा है तो पानी समुद्र में आसानी से बह निकलेगा। तब नदियों में बाढ़ नहीं आएगी और उसकी आशंका कम हो जाएगी। अगर हम नदियों को पूर्ण नियन्त्रण में रखना चाहते हैं तो उनका तल गहरा करना और उनके किनारों पर बाँध बनाना इन दोनों प्रकार के इंजिनियरिंग को हमें साथ साथ काम में लाना होगा।

लेकिन बाढ़ रोकने के सबसे मौलिक तरीके (fundamental methods) कौन-कौन हैं? हर वर्ष बाढ़ का आना साधारण-सी बात क्यों होती जा रही है? पुराने समय में इतनी कम बाढ़ क्यों आती थी? क्योंकि प्राचीन समय में बहुत बड़े-बड़े और विस्तृत जंगल थे, लेकिन अब लोगों ने जंगल काट डाले हैं और जमीन में पुनः जंगल नहीं लगाए गए हैं। जिसके फलस्वरूप अब बहुत कम जंगल बच गए हैं और अनगिनत पहाड़ और उनकी श्रेणियाँ पूर्णरूप से नंगी हैं। जब जोरों से वर्षा होती है तो पहाड़ों के पास वर्षा को जज्ब करने या पानी की धाराओं को रोकने के लिए जंगल नहीं है। इसलिए पहाड़ों का पानी बहकर तुरत नदियों में पहुँच जाता है और नदियाँ तुरत भर जाती हैं और इसीसे भयंकर गाढ़ आ जाती है। इसलिए बाढ़ को रोकने के लिए जंगल लगाना अत्यन्त ही जरूरी है। अधिक से अधिक जंगलों का लगाना बाढ़ रोकने का मौलिक तरीका है। तब जब भारी वर्षा होगी तो वृक्षों की शाखाएँ और पत्तियाँ हवा में स्थित पानी को जज्ब कर लेंगी और जड़ें जमीन के पानी को सोख लेंगी। बहुत घना जंगल बहुत अधिक परिमाण में में पानी सोख सकता है। इस प्रकार जंगलों में जमा हुआ पानी सीधे और तुरत नहीं बल्कि धीरे-धीरे नदियों में बहकर जाता है और इस कारण बाढ़ नहीं होती है। बाढ़ रोकने का सबसे अच्छा तरीका जंगल लगाना है। इसलिए अगर खाद्य समस्या को हल करने के लिए हम बाढ़ को रोकना चाहते हैं तो हम पहले जंगल लगाएँ तभी हम सम्पूर्ण देश की बाढ़ को रोक सकेंगे। सम्पूर्ण देश में जंगल लगाना राज के लिए ही सम्भव हो सकता है। केवल राज के संरक्षण में इस प्रकार का काम सफलीभूत हो सकता है।

इस वर्ष चीन के उत्तरी और दक्षिणी दोनों ओर के प्रान्तों को भयंकर बाढ़ से बहुत हानि उठानी पड़ी है। इन बाढ़ों से निश्चय ही करोड़ों डालर की क्षति हुई होगी। यहाँ के लोग पहले से गरीब हैं और यह राष्ट्र दिवालिया है। अगर इस प्रकार की क्षति होती रही तो हमारे सामने जो खाद्य समस्या है उसका हल करना बहुत ही कठिन हो जायगा।

फिर, अनावृष्टि का भी डर रहता है। इस अनावृष्टि की समस्या हम कैसे हल करेंगे? रूस में क्रान्ति होने के बाद दो या तीन वर्षों तक वहाँ वृष्टि नहीं हुई जिससे बहुत आदमी भूख से मर गए और इससे लगभग क्रान्ति असफल होने-होने को थी। बाढ़ की नाई अनावृष्टि भी एक भयंकर आपदा है। लोग सोचा करते थे कि अनावृष्टि तो दुर्भाग्य का फल है और यह रोकी नहीं जा सकती है। लेकिन ज्यों-ज्यों विज्ञान की उन्नति होती है सभी प्रकार की प्राकृतिक आपदाओं को दूर करने के तरीके भी निकलते जा रहे हैं। अनावृष्टि को रोकने में सम्पूर्ण राष्ट्र की ताकत और विस्तृत तथा संगठित योजना की जरूरत होती है। इस योजना को भी कार्यान्वित करने का तरीका जंगलों का लगाना ही है। जहाँ-जहाँ जंगल हैं वहाँ की हवा में काफी नमी रहती है इसलिए बराबर वर्षा होती है और अनावृष्टि का बहुत ही कम डर रहता है। ऊँची जगहों पर जहाँ झरने नहीं हैं हम मशीन से पम्प करके पानी का प्रबन्ध कर सकते हैं और इस प्रकार अनावृष्टि दूर की जा सकती है। अनावृष्टि को रोकने के लिए सिंचाई का तरीका बाढ़ रोकने के बांध वाले तरीके के समान हैं। ये दोनों नियंत्रणकारी तरीकों से अचानक आई हुई बाढ़ रोकी जा सकती है और अनावृष्टि से बचा जा सकता है। लेकिन बाढ़ या अनावृष्टि से बचने का मौलिक तरीका देश में जंगलों का लगाना ही है और यह राष्ट्रीय पैमाने पर होना चाहिए। पम्प करने वाली मशीनों के व्यवहार, ऊँचे-ऊँचे बांधों के बनाने तथा नदियों के तल के गहरा करने के ऊपर नियंत्रणकारी तरीके निर्भर करते हैं। अगर हम नियंत्रणकारी तरीकों और मौलिक तरीकों दोनों को काम में ला सकें तो हम बाढ़ और अनावृष्टि से बच सकते हैं और तभी हमारी जमीन की पैदावार नष्ट नहीं होगी।

अगर चीन अपने किसानों को मुक्त कर दे और उपर्युक्त वर्णित पैदावार बढ़ाने के सातों तरीकों को कार्यान्वित करे तो क्या हमारी खाद्य समस्या पूर्ण-रूप से हल हो जायगी? अगर हम पैदावार के प्रश्न को अच्छी तरह हल करने में सफलता प्राप्त भी कर लें तो भी हम पूर्णरूप से खाद्य समस्या को

नहीं हल कर सकेंगे। आप सभी जानते हैं कि यूरोप अमेरिका के सब राष्ट्र उद्योग-धन्धों और व्यापार पर अवलंबित रहते हैं। लेकिन आप नहीं जानते होंगे कि उन राष्ट्रों की औद्योगिक और व्यापारिक सरकारें अपना बहुत समय कृषि समस्या के अध्ययन में लगाती हैं। उदाहरण के लिए देखिए कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ग्रामीण जीवन को सुधारने के लिए ग्रामीण समस्या के अध्ययन में छोटी-छोटी बातों को भी नज़र अन्दाज़ नहीं करता है। वहाँ की सरकार अपने देश की कृषि संबंधी बातों को ही ब्यौरेवार जाँच नहीं करती बल्कि बराबर अपने विशेषज्ञों को चीन के भीतरी भागों में, मंचूरिया में, मंगोलिया में तथा दूसरी जगहों में वहाँ की हालतों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए भेजती है। वे चीन की कृषि प्रणाली तथा वहाँ के बीज को उसकी जाँच करने तथा उसे व्यवहार में लाने के लिए संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ले जाते हैं। हाल में संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका कृषि पर बहुत जोर देने लगा है। खाद्य सामग्री ढोने के लिए रेलवे की सुविधा, प्राकृतिक आपदाओं को रोकने के तरीके, सभी प्रकार के वैज्ञानिक साधन में सभी उसके एकदम पूर्ण और आधुनिकतम हैं।

इतना करने पर भी क्या संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका ने वास्तव में अपनी खाद्य समस्या हल कर ली है। मैं तो नहीं सोचता हूँ कि उसने हल कर ली है। हर वर्ष संयुक्त-राष्ट्र अपरिमित खाद्य सामग्री बिक्री के लिए दूसरे देशों में भेजता हैं। वहाँ काफ़ी खाद्य सामग्री पैदा होती है। फिर भी मैं क्यों कहता हूँ कि उसकी खाद्य समस्या हल नहीं हुई है? क्योंकि संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका की खेती बारी पूँजीपतियों के नियंत्रण में है। व्यक्तिगत पूँजी प्रणाली के अन्दर जो अब तक वहाँ प्रचलित हैं उत्पादन के तरीके काफ़ी से अधिक विकसित हो गए हैं। लेकिन वितरण के न्यायसंगत तरीकों पर एकदम नहीं ध्यान दिया जाता है। इसलिए जीविका की समस्या नहीं सुलझ सकी है। समस्या का हल प्राप्त करने के लिए हमें केवल उत्पादन के प्रश्न को ही नहीं देखना चाहिए बल्कि वितरण के प्रश्न पर भी पूरा ध्यान देना चाहिए। वितरण का न्यायसंगत तरीका पूँजीवादी प्रणाली में असंभव है। क्योंकि इस प्रणाली में समूचे उत्पादन का एक ही उद्देश्य होता है और वह होता है मुनाफा कमाना। चूँकि खाद्य सामग्री के उत्पादन का उद्देश्य मुनाफा कमाना होता है इसलिए जब देश में खाद्य सामग्री का दाम कम रहता है तो यह अधिक मुनाफे के लिए विदेशों में भेज दी जाती है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति व्यक्तिगत तौर पर अधिक से अधिक धन कमाना चाहता है। यहाँ तक कि जब देश में अकाल रहता है और लोगों को खाने की कमी

रहती है और उनमें बहुत भूखों मरते रहते हैं फिर भी पूँजीपतियों को इसके लिए चिंता नहीं रहती है। इस प्रकार की वितरण-प्रणाली से जिसका एक-मात्र उद्देश्य मुनाफा कमाना होता है, जीविका की समस्या कभी नहीं सुलझ सकती है। अगर हम मिन् षङ् सिद्धान्त को लागू करना चाहते हैं तो हमें वितरण की प्रणाली पर भी ध्यान देना चाहिए—जिसका उद्देश्य मुनाफा कमाना नहीं होगा बल्कि जनता को रोटी देना होगा। चीन में इस समय खाद्य सामग्री की पैदावार कम होती है फिर भी हम हर सा अरबों अण्डे, चावल और सोयाबीन जापान, यूरोप और अमेरिका भेजते हैं भारतवर्ष की भी यही हालत है। भारतवर्ष में केवल खाद्य सामग्री की मी ही नहीं है बल्कि हर वर्ष वहाँ अकाल भी पड़ता है। फिर भी हर वर्ष यूरोप को अन्न भेजने वाले राष्ट्रों में उसका तीसरा स्थान है। इसका क्या मतलब है? इसका मतलब यह है कि भारतवर्ष पर यूरोप का आर्थिक प्रभुत्व है। भारतवर्ष अभी भी पूँजीवादी युग में है जबकि उत्पादन का उद्देश्य मुनाफा कमाना होता है। इसलिए यद्यपि भारतवर्ष में हर साल अकाल पड़ता है फिर भी उत्पादन के पीछे जो पूँजीपति हैं वे जानते हैं कि करोड़ों भूखों को खाना देने से उन्हें मुनाफा नहीं होगा। इसलिए वे मुनाफा कमाने के लिए खाद्य सामग्री यूरोप के देशों में भेज देते हैं। वे देश में हज़ारों भूखों को मरने देना पसन्द करेंगे पर यूरोपीय देशों में खाद्य सामग्री का भेजना बन्द करना नहीं चाहेंगे। हमारे मिन् षङ् सिद्धान्त का उद्देश्य पूँजीवादी प्रणाली का नाश करता है। चीन में पहले से ही खाद्य सामग्री का अभाव है फिर भी हम हर वर्ष खाद्य सामग्री दूसरे देशों को भेज देते हैं क्योंकि पूँजीपतियों का समुदाय धन कमाना चाहता है।

अगर हम मिन् षङ् सिद्धान्त को लागू करते हैं तो हमारे खाद्य सामग्री के उत्पादन का उद्देश्य मुनाफा कमाना नहीं होना चाहिए बल्कि उसका उद्देश्य जनता के भरण-पोषण का प्रबन्ध करना होना चाहिए। इस काम को करने के लिए हमें हर वर्ष खपत के बाद बची हुई खाद्य सामग्री को जमा करके रखना चाहिए। विदेशों में अन्न भेजने के पहले हमें केवल यही नहीं देखना चाहिए कि मौजूदा वर्ष में खाद्य सामग्री की पैदावार काफ़ी है, बल्कि हमें यह भी देखना चाहिए कि आने वाले दो-तीन वर्षों के लिए भी वह पर्याप्त है या नहीं। तीन वर्षों के खपत बराबर खाद्य सामग्री रख कर भी अगर वह अधिक बच जाती है तभी हम उसे दूसरे देशों में भेजेंगे। अगर हम मिन् षङ् सिद्धान्त को इस प्रकार लागू कर सकें और उत्पादन का उद्देश्य मुनाफा

के बजाय जनता का भरण-पोषण करना हो तभी हम चीन में प्रचुर खाद्य सामग्री के पैदा होने की आशा कर सकते हैं। जीविका के सिद्धान्त और पूँजीवाद इन दोनों के बीच मौलिक भेद यह है कि पूँजीवाद का एकमात्र उद्देश्य मुनाफा कमाना रहता है जबकि जीविका के सिद्धान्त का उद्देश्य जनता का प्रतिपालन करना है। इस प्रकार के सुन्दर सिद्धान्त से हम पुरानी और खराब पूँजीवादी प्रणाली को नष्ट कर सकते हैं।

चीन की खाद्य समस्या को सुलझाने के लिए मिन् षङ् सिद्धान्त को लागू करते समय हम पूँजीवादी प्रणाली में केवल धीरे-धीरे परिवर्त्तन कर सकते हैं। हमें तुरत ही इसे उखाड़ फेंकने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए। हम लोगों का पहला उद्देश्य चीन में प्रचुर खाद्य सामग्री पैदा करना है। जब यह पूरा हो जायगा तो दूसरा कदम बढ़ाना आसान होगा और हम खाद्य सामग्री के मूल्य को बहुत कम कर सकेंगे। आज चीन में चावल उतना ही मूल्यवान है जितना मोती और जलावन उतना ही कीमती है जितनी दालचीनी। इसका कारण यह है कि दूसरे देश चीन की खाद्य सामग्री का एक बड़ा भाग ले लेते हैं। हमारा आयात और निर्यात आपस में एक-दूसरे से मेल नहीं खाता है। विदेशी आर्थिक प्रभुत्व के नीचे रहने के कारण बाहर से चीन में आने वाले माल के बदले दूसरे साधनों के अभाव में हमें खाद्य सामग्री ही देनी पड़ती है जिसकी जरूरत हमारे ही यहाँ के लोगों को सबसे अधिक है। इसी कारण से चीन में लाखों आदमी बिना खाए रहते हैं। हमारी वर्त्तमान पीढ़ी नष्ट होने के खतरे में है; हमारी आने वाली सन्तान की संख्या कम होगी। सम्पूर्ण देश की जनसंख्या धीरे-धीरे घट रही है और हम चालीस करोड़ से घट कर इकतीस करोड़ हो गए हैं। ये सभी बातें इसलिए हो रही हैं कि हमने खाद्य समस्या को हल नहीं किया है और जीविका के सिद्धान्त को नहीं लागू किया है।

खाद्य सामग्री के वितरण की हमारी योजना क्या है? जब आदमी जीविका की खोज करता है तो उसमें भोजन का स्थान प्रमुख रहता है। अर्थशास्त्रियों ने बराबर जीवन की तीन आवश्यकताओं के बारे में कहा है और वे हैं—भोजन, कपड़ा और घर। मैं अपने अध्ययन के कारण एक और आवश्यकता को मानता हूँ जो अत्यन्त ही जरूरी है और वह है यात्रा करने का साधन यानी यातायात के साधन। जीविका की समस्या को हल करने के लिए इन चार आवश्यक चीजों के मूल्य को घटाना ही नहीं है बल्कि उन्हें राष्ट्र के सब लोगों के लिए सुलभ भी करना है।

अगर हमें सन् मिन् सिद्धान्तों को लाभप्रद बनाना है और एक नई दुनिया का निर्माण करना है तो इन चार आवश्यकताओं में से किसी एक का भी अभाव किसी को नहीं होना चाहिए। यह जरूरी है कि इन आवश्यकताओं को पूरी करने की जिम्मेवारी राष्ट्र ले। कोई भी आदमी राज के ऊपर दावा कर सकता है अगर वह हरेक को इन आवश्यकताओं की सुविधा नहीं प्रदान करता है। जनता की आवश्यकताओं को पूरा करने का भार राज को उठाना चाहिए। राज के प्रति जनता की क्या जिम्मेवारी है? जनता के ऊपर बहुत ही निश्चित जिम्मेवारियाँ हैं :—किसान खाद्य सामग्री पैदा करें, औद्योगिक मजदूर मशीन बनाएँ, व्यापारी वर्ग लोगों के मांग की पूर्ति करें, विद्वान अपनी प्रतिभा और योग्यता का उपयोग करें यानी हर आदमी अपना कर्त्तव्य पूरा करे। तब सभी आदमियों को जीवन की चार आवश्यकताएँ मिल जाएँगी।

हम मिन् षङ् सिद्धान्त का अध्ययन इसलिए करते हैं कि इन चार आवश्यकताओं में निहित समस्याओं को हल कर सकें। आज मैंने खाद्य समस्या की चर्चा से प्रारम्भ किया है। खाद्य समस्या के हल करने का पहला कदम उत्पादन की समस्या को हल करना है और तब वितरण की समस्या आती है। खाद्य सामग्री के न्याय संगत और उपयुक्त वितरण के लिए हमें हर वर्ष खाद्य सामग्री की रक्षा करनी चाहिए। जब हम तीन वर्षों तक खाने योग्य काफी खाद्य सामग्री एकत्रित कर लेंगे तभी हम अतिरिक्त सामग्री बाहर भेजेंगे। अनाज बचाने का यह तरीका प्राचीन काल के 'सार्वजनिक अन्नागार' के समान है। हाल के वर्षों में सार्वजनिक अन्नागार की प्रणाली टूट गई है और इसके साथ-साथ विदेशी आर्थिक प्रभुत्व के हो जाने के कारण देश में गरीबी फैल गई है। हमारा राष्ट्र दिवालिया हो गया है। इसलिए यह काल हमारी जीविका की समस्या सुलझाने का अत्यन्त नाजुक काल है। अगर हम वर्त्तमान समय से फायदा उठाने में चूक गए और भविष्य के लिए ठहरे रहे तो हम आज से भी अधिक कठिनाइयों का अनुभव करेंगे। हमारे क्योमिन्ताङ् ने जनता के तीन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है जिनके आधार पर हमारे नए राष्ट्र का निर्माण होगा। जब हम जीविका के सिद्धान्त को लागू करते हैं तो हमें केवल इसके सिद्धान्तों पर ही जोर नहीं देना चाहिए बल्कि इसके व्यावहारिक रूप पर काफी ध्यान देना चाहिए। पहली व्यावहारिक समस्या जिसका हमें समाना करना है वह खाद्य समस्या है। इस समस्या का हल तो प्रथम प्रचुर उत्पादन पर दूसरे न्याय-संगत वितरण पर निर्भर करता है।

लेकिन उत्पादन के बढ़ जाने और वितरण का नियन्त्रण हो जाने पर भी लोगों को अपनी जिम्मेवारी जरूर पूरी करनी चाहिए। अगर सब लोग अपनी जिम्मेवारी पूरी करें तो उन्हें निश्चय ही शान्तिपूर्वक सभी चीजें प्रचुर मात्रा में मिलेंगी और खाद्य समस्या हल हो जायगी। खाद्य समस्या के हल हो जाने से जीविका की दूरी समस्यायें आसानीपूर्वक हल की जा सकेंगी।

अगस्त १७, सन् १६२४ ई०

चौथा व्याख्यान

आज के मेरे व्याख्यान का विषय 'वस्त्र समस्या' है। जीविका के सिद्धान्त की पहली मुख्य समस्या खाद्य समस्या है और दूसरी वस्त्र समस्या। मैं आज दूसरी की चर्चा करूँगा। हम जब विश्व में जीवन के क्रमिक विकास को देखते हैं तो हमें पता चलता है कि सभी सजीव प्राणि, पौधे या पशु—भोजन पर निर्भर रहते आए हैं। बिना किसी प्रकार के भरण-पोषण के जीवन समाप्त हो जाता है। इसलिए वनस्पति संसार और प्राणि संसार दोनों के लिए खाना अत्यन्त आवश्यक है। लेकिन संसार में मनुष्य ही एक ऐसा जीवधारी है जिसे वस्त्र की समस्या का मुकाबला करना पड़ता है। लेकिन मनुष्य और वास्तव में केवल सभ्य मनुष्य ही वस्त्र पहनते हैं। दूसरे पशुओं और पौधों को कपड़ा नहीं पहनना पड़ता है और जंगली मनुष्य भी कपड़ा नहीं पहनते हैं। इसलिए जीविका की पहली समस्या भोजन है और दूसरी वस्त्र है। अफ्रिका और मलेसिया की असभ्य जातियाँ बिना वस्त्र पहने ही रहती हैं इसलिए हमारे आदिम पुरखे भी नंगे ही रहते होंगे। सभ्यता के विकास के साथ-साथ ही वस्त्र पहनने की प्रथा चली है। जैसे-जैसे सभ्यता आगे बढ़ती है वस्त्र समस्या उतनी ही जटिल होती जाती है। आदिम लोगों को अपनी शरीर-रक्षा के लिए प्राकृतिक वस्त्र थे जैसे कि पशु-पक्षियों को प्राकृतिक तौर पर-रोएं और पंख होते हैं। आदिम लोगों के शरीर भी बालों से ढके थे। बाद में जब मानव सभ्यता प्रगति कर चरागाह वाले युग (पशु-पालन युग) में आई तो मनुष्य ने मछली मारना और शिकार करना सीखा। वह पशुओं के चमड़े से परिधान बनाने लगा। चूँकि उसने पशुओं के चमड़े से अपने शरीर को ढकने का अभ्यास बनाए रखा इसलिए उसके शरीर पर के बाल बेकार हो गए और धीरे-धीरे वे झड़ गए। ज्यों-ज्यों सभ्यता अधिक विकसित होती गई वैसे-वैसे वस्त्र पहने की प्रथा और भी अधिक बढ़ती गई तथा शरीर पर कम बाल उगने लगे। इसलिए जो जाति सभ्यता में जितनी आगे बढ़ी हुई है उस जाति के लोगों के शरीर पर उतने कम बाल हैं। जब कि जंगली जातियों के लोगों के शरीर पर और उन जातियों के लोगों के शरीर पर जिन्होंने हाल में उन्नति करना प्रारम्भ किया है, बहुत बाल हैं। चीन और यूरोप के लोगों की तुलना कीजिए। यूरोप के सभी लोगों को चीन

वालों की अपेक्षा अधिक बाल होते हैं और इसका कारण यह है कि विकास के क्रम में वे उतना आगे नहीं बढ़े हैं जितना की चीन के लोग बढ़े हैं। इस प्रकार हम देखते हैं परिधान का विकास प्रकृति-प्रदत्त शरीर पर के बालों से हुआ है। ज्यों-ज्यों आदमी ने उन्नति की वह जंगली पशुओं को मारने लगा और उसने उनके मांस को अपना भोजन बनाया और उनके चमड़ों को अपना परिधान। पशुओं के चमड़े ही प्रारम्भिक युग के आदमियों के वस्त्र थे। एक बहुत प्राचीन कहावत है—'मांस खाना और चमड़े पर सोना।' यह कहावत यद्यपि जंगली आदमियों के बताने में व्यवहृत होती हैं परन्तु इससे पता लगता है कि प्राचीन आदमी जब पशुओं को मारते थे तो वे उनके (पशुओं के) मांस खाने में और उनके चमड़े पहनने में व्यवहार करते थे। तब जब आदमियों की संख्या कम हो गई और पशुओं की संख्या हो गई तो ज़रूरत को पूरा करने के लिए पशुओं के पर्याप्त चमड़े नहीं मिलने लगे और मनुष्यों को दूसरी चीज़ों से वस्त्र बनाने के लिए ध्यान देना पड़ा। कहाँ उन्होंने इस प्रकार की चीज़ों को पाया? अपने गत व्याख्यान में मैंने कहा था कि पशुओं का मांस, वृक्षों के फल और बीज आदमी का आम आहार है। आहार के समान परिधान की सामग्री भी पशुओं और वनस्पतियों पर निर्भर करती है। इसके लिए कोई दूसरा मुख्य जरिया नहीं है।

वस्त्र की समस्या के हल की दिशा में हम कहाँ तक बढ़े हैं? वस्त्र जीवन की एक आवश्यकता है। मानव-सभ्यता के विकास में जीवन-मान (Living standards) तीन अवस्थाओं से होकर गुजरा है। पहली अवस्था आवश्यकताओं की है। बिना इन आवश्यकताओं के सचमुच में मानव जीवन नहीं टिक सकता है और उनकी पर्याप्त मात्रा के अभाव में जीवन अपूर्ण रहता है—आधा मरा हुआ और आधा जिन्दा। प्रथम अवस्था की आवश्यकताओं के बिना मनुष्य जिन्दा नहीं रह सकता है। तब मनुष्य दूसरी अवस्था पर आता है और यह अवस्था आराम की है। जब मनुष्य का जीवन-मान दूसरी अवस्था में आता है तो वह केवल जीवन की आवश्यकताओं को ही नहीं खोजता है बल्कि आनन्द और आराम भी चाहता है। इसके बाद वह एक कदम और आगे बढ़ता है और तब वह विलास की सामग्री चाहता है। उदाहरण के लिए वस्त्र को लीजिए। प्राचीन काल में गर्मी के दिनों में घास का परिधान और जाड़े के दिनों में रोएँ का परिधान काफ़ी समझा जाता था। लेकिन जब आदमी आराम की अवस्था में आया

तो वह केवल उन कपड़ों से जो उसके शरीर की आवश्यकताओं को पूरा करते थे, संतुष्ट नहीं हुआ बल्कि वह उस प्रकार का वस्त्र चाहने लगा जो उसके शरीर के अनुकूल और आरामदेह था। बाद में आदमी एक कदम और आगे बढ़ा और वह सुन्दर और नफ़ीस वस्त्र चाहने लगा। गर्मी के दिनों में घास के कपड़ों की जगह पर वह हल्का, मुलायम और चमकदार रेशमी कपड़ों का और जाड़े में पशुओं के रोएंदार साधारण कपड़ों की जगह सुन्दर और मुलायम ऊनी कपड़ों का व्यवहार करने लगा। इसलिए कपड़ा पहनने का विकास सादा और आवश्यक कपड़े से आरामदायक कपड़े में और आरामदायक कपड़े से सुन्दर और तड़क-भड़क वाले कपड़े में हुआ है। इसी प्रकार से भोजन का भी क्रमिक विकास हुआ है। पहले-पहल मनुष्य केवल 'कच्ची तरकारी और मोटे चावल' से अपना पेट भर लेता था। उसके बाद वह पकाया हुआ मांस और मीठी तथा रसयुक्त स्वादिष्ट शराब की इच्छा करने लगा। फिर वह पहाड़ों और समुद्रों में स्वादिष्ट और मुलायम भोजन खोजने लगा। इसलिए अब हमारे यहाँ केण्टन में जो भोज होता है उसमें सभी प्रकार के शिकार, पक्षी और समुद्री मछलियाँ—प्रत्येक चीज़ विचित्र और स्वादिष्ट परोसी जाती हैं। विलास की सामग्रियाँ प्रचुर रहती हैं और हरेक प्रकार की इच्छाओं की पूर्ति के साधन प्रस्तुत रहते हैं—यही भोजन की विलासिता है।

लेकिन जीविका की समस्या को हल करने में हम आराम और विलास के साधनों की चर्चा नहीं कर रहे हैं। हम केवल आवश्यकताओं की समस्या को हल करने की कोशिश कर रहे हैं। हम चाहते हैं कि सम्पूर्ण राष्ट्र के चालीस करोड़ आदमियों को आवश्यक भोजन और कपड़ा मिले; खाने और पहनने के लिए काफी हो। जैसा कि मैंने पहले कहा है चीन की जनसंख्या चालीस करोड़ से कम होकर इकतीस करोड़ पर आ गई है। अब हम उत्पादन और माल तैयार करने की बातों की विस्तृत योजना बनाएँ ताकि इन इकतीस करोड़ आदमियों को कपड़ा मिले। हमें वस्त्र की समस्या हल करने का रास्ता ढूँढ़ना चाहिए अन्यथा दो या तीन वर्षों में सम्भवतः हमारी जनसंख्या कई लाख और घट जायगी। अगर इस वर्ष की जाँच से जनसंख्या इकतीस करोड़ होती है तो कई वर्षों के बाद यह संख्या और भी कम हो जाएगी—मान लीजिए जनसंख्या इकतीस करोड़ से घटकर तीस करोड़ हो जायगी। इतने लोगों के लिए कपड़ा देने की योजना हम विचारपूर्वक और बड़े पैमाने पर बनाएँ। वस्त्र-समस्या के हल करने की दिशा में पहला कदम यह होना चाहिए कि

हम अध्ययन करें कि कपड़ा तैयार करने की चीजें पशुओं और वनस्पतियों से मिलती हैं। दो प्रकार की चीजें पशुओं से और दो प्रकार की चीजें वनस्पतियों से मिलती हैं। ये चार चीजें रेशम, सन, रुई और ऊन हैं। रुई और सन वनस्पतियों से पैदा होते हैं और रेशम तथा ऊन पशुओं से प्राप्त होते हैं। रेशम छान् या रेशम के कीड़ों से होता है और ऊन ऊँट तथा दूसरे जानवरों की पीठ पर होता है। मनुष्यों के लिए ये चार चीजें आवश्यक हैं।

पहले हम रेशम पर विचार करें। रेशम कपड़ा तैयार करने की बहुत ही बारीक चीज है और इसका ईजाद पहले पहल चीन में हुआ था। बहुत प्राचीन काल से ही चीन लोग रेशमी वस्त्र पहनते आए हैं। यद्यपि पश्चिमी सभ्यता हमारी समस्या से बहुत आगे बढ़ गई है तथापि जब चीन में रेशम का ईजाद हुआ था उस समय पश्चिमी के आदमी जंगली ही थे और वे 'कच्चा मांस खाते तथा रक्त पान' करते थे। वे रेशमी वस्त्र तो नहीं हो पहनते थे यहाँ तक कि किसी प्रकार का भी कपड़ा नहीं धारण करते थे। उनके शरीर बालों से ढके थे। वे जंगली थे और प्रकृति-प्रदत्त परिधान पहनते थे। गत दो तीन शताब्दियों में उनकी सभ्यता हमारी सभ्यता से अधिक उन्नति करने लगी है और तब से उन्होंने सुन्दर कपड़ों के लिए रेशम का व्यवहार करना सीखा है। अब पश्चिम के लोग रेशम का व्यवहार कुछ तो आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए करते हैं पर विशेषतः अपने विलास के लिए करते हैं।

यद्यपि चीन ने कई हजार वर्ष पहले रेशम का ईजाद किया फिर भी हमारे तीस करोड़ लोगों की वस्त्र-समस्या की कुंजी रेशम नहीं है। हमारे परिधान की ज़रूरी चीजें रेशम की बनी नहीं होती हैं। जनता का एक बहुत बड़ा भाग रेशम नहीं पहन सकता है। हम हर वर्ष जो रेशम पैदा करते हैं उसका अधिकांश विदेशों में विलास की सामग्री बनने के लिए चला जाता है। जब प्रथम-प्रथम दूसरे देशों के साथ चीन का व्यापार प्रारम्भ हुआ तो चीन का प्रधान निर्यात रेशम था। चीन बहुत बड़े परिणाम में रेशम बाहर भेजता था और बहुत थोड़े परिमाण में अपने यहाँ विदेशी माल मँगाता था। चीन का निर्यात उसके आयात के बराबर नहीं था बल्कि उससे अधिक होता था। रेशम के बाद चीन का मुख्य निर्यात चाय है। जब तक विदेशियों ने इन चीजों को पैदा करना नहीं शुरू किया था तब तक चीन का प्रधान निर्यात रेशम और चाय था। चाय के व्यवहार के पहले सभी विदेशी शराब पिया करते थे। बाद में जब चीन की चाय वहाँ पहुँची तो वे उसे शराब की जगह व्यवहार करने लगे। बाद में उन्हें चाय पीने की आदत पड़ गई और अन्त में

वह एक आवश्यक वस्तु बन गई। चूँकि पहले चीन ही अकेला देश था जो रेशम और चाय पैदा करता था। दूसरे देशों में ये चीजें नहीं होती थीं। चूँकि चीन में विदेशी माल की अधिक जरूरत नहीं पड़ती थी तथा तब तक विदेशी राष्ट्र बहुत बड़े परिमाण में माल नहीं पैदा करते थे इसलिए हमारे रेशम और चाय के निर्यात से बहुत दशाब्दियों तक हमारे आयात का मूल्य चुकता रहा, अर्थात् हमारे निर्यात और आयात सन्तुलित थे। लेकिन हाल के वर्षों से विदेशी आयात प्रतिदिन बढ़ता रहा है जब कि हमारे रेशम और चाय का निर्यात बराबर घटता जा रहा है। हमारे निर्यात से अब आयात का दाम नहीं चुकता है। विदेशी राष्ट्रों ने चीन से रेशम बनाने की कला सीख ली है। यूरोप में फ्रांस और इटली काफी रेशम पैदा करते हैं। उन्होंने रेशम के कीड़ों के पालने और रेशम कातने का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है। और इस दिशा में बहुत से आविष्कार और सुधार किए हैं। जापान के रेशम के उद्योग-धन्धे में केवल चीनी प्रणाली का ही अनुसरण नहीं हुआ है बल्कि सबसे नया विदेशी आविष्कार का भी प्रयोग हुआ है। जापानी रेशम ने गुण में (in quality) भी बहुत उन्नति की है और जापान के रेशम का उत्पादन भी चीन से बढ़ गया है। जापान की रेशमी चीजें चीन की रेशमी चीजों से उच्च कोटि की होती हैं। इन कारणों से अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में चीनी रेशम और चाय के खरीददार बहुत नहीं हैं। दूसरे देशों ने हमारे रेशम और चाय के व्यापार को हम से छीन लिया है। यद्यपि हमारे रेशम और चाय का निर्यात बराबर घट रहा है फिर भी हमारे पास दूसरी कोई ऐसी चीजें नहीं हैं जिन्हें हम अपने आयात के बदले में बाहर भेज सकें। इसलिए हर वर्ष हमें अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में पचास करोड़ डालर दूसरे देशों को चुकाना पड़ता है। यही तो हमारे ऊपर विदेशी आर्थिक प्रभुत्व का अर्थ है। चूँकि यह प्रभुत्व अधिक से अधिक भयंकर होता जा रहा है इसलिए जीविका की समस्या का हल अधिक से अधिक कठिन होता जा रहा है। विदेशी रेशम के कारण चीनी रेशम अन्तर्राष्ट्रीय बाजार से एकदम उठ गया है। चीन का रेशमी माल विदेशी रेशमी माल से निम्न कोटि का होता है। लेकिन चूँकि हमें विदेशी सूती कपड़े और सूत (रुई का सूत) की आवश्यकता अपनी जरूरी चीजें तैयार करने के लिए होती है इसलिए हम अपने यहाँ का रेशम व्यवहार में नहीं लाते हैं। अतएव हमें सस्ते सूती और जालीदारी कपड़ों के बदले इसे बाहर भेजना पड़ता है।

रेशम के हमारे उद्योग-धन्धे—रेशम पैदा करने और रेशमी माल तैयार करने के हमारे आविष्कार—एक समय बड़े ही अच्छे थे। लेकिन हम अपनी पहले की सफलता से ही संतुष्ट रहे। हमने उनमें सुधार करना नहीं सीखा और बाद में जब विदेशियों ने हमारे उद्योग-धन्धे की नकल की तथा आधुनिक विज्ञान का प्रयोग कर उसमें सुधार किया तब वे चीन से अच्छा रेशम तैयार करने लगे और बाजार से चीन के रेशम के व्यापार को हटा दिया। जाँच से पता चलेगा कि उत्पादन के ख़राब तरीकों के कारण चीन के रेशम से व्यापार का ह्रास हुआ। चीन के रेशम के कीड़ों की बहुत बड़ी संख्या में बीमारी रहती है। वास्तव में हरेक बार के रेशम की पैदावार में आधे कीड़े खराब ही निकलते हैं और वे परिपक्व होने के पहले ही मर जाते हैं। अगर संयोग-वश जिंदा रह भी गए तो रोगयुक्त कोयों से न तो अच्छा रेशम निकलता है और न उसका अच्छा रंग ही होता है। हमारे रेशम कातने का तरीका भी अपूर्ण है। धागों में बहुत टूटन (break) रहती है इसलिए वे रेशमी कपड़े बुनने के विदेशी करघों के अनुपयुक्त होते हैं। जिसके फलस्वरूप चीन का रेशम विदेशी रेशम की प्रतियोगिता में खतम हो गया है। कुछ दशाब्दी पहले विदेशों में भी रेशम के उद्योग-धन्धे की प्रणाली चीनी प्रणाली के समान ही थी। जब चीन के किसान रेशम के कीड़े पालते हैं तो उन्हें कभी-कभी तो अच्छा रेशम मिल जाता है और कभी उन्हें एकदम से हानि होती है। किसानों को इसके कारण का कुछ भी पता नहीं है और वे इसे भाग्य की बात समझते हैं। यही बात विदेशी किसानों के साथ भी थी। तब वैज्ञानिक लोग प्राणि-विज्ञान के सिद्धान्तों का पता लगाने लगे और प्राणियों के विभिन्न रूपों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने लगे, केवल उन रूपों का नहीं जो नग्न आँखों से दिखाई पड़ते हैं बल्कि उनका भी जो अनुवीक्षण यंत्र से ही देखे जा सकते हैं।

इस प्रकार की जांच करने में पासटेर (Pasteur) नामक एक फ्रांसीसी वैज्ञानिक ने यह पता लगाया कि प्राणियों के सभी रोग चाहे वे मनुष्य में हों या रेशम के कीड़ों में, सूक्ष्म जीवधारी या जीवाणु से होते हैं। अगर ये जीवाणु नष्ट नहीं किए जाते हैं तो रोगी अवश्य मर जायगा। बहुत समय लगाकर और बहुत अनुसन्धान करके पासटेर ने अच्छी तरह इन जीवाणुओं के स्वभाव को समझा और उनके उन्मूलन का उपाय निकालने में भी वह समर्थ हुआ। इस प्रकार रेशम के कीड़ों को भी बीमारी से छुटकारा मिला। जब फ्रांस और इटली के रेशम के कीड़े पालने वालों को इस तरीके का पता लगा तब बीमार रेशम के कीड़ों की संख्या बहुत घट गई और कोयों से

अच्छे धागे निकलने लगे। तब रेशम का उद्योग-धन्धा बहुत ही प्रगति कर गया। बाद में जापान भी इन तरीकों का अध्ययन करने लगा और उसके रेशम का उद्योग-धन्धा भी उन्नति करने लगा। जो कुछ हो, चीन के मजदूर सदा दकियानूस और नए तरीकों को सीखने के प्रति अनिच्छुक रहे हैं। इसलिए हमारे रेशम का उद्योग-धन्धा धीरे-धीरे लुप्त हो गया। संघाई के रेशम-व्यापारियों ने अब कच्चे रेशम की जाँच करने के लिए और रेशम की विशेषताओं के अध्ययन के लिए जाँचगृह खोला है। वे उन तरीकों को अपनाने की आशा करते हैं जिनसे रेशम में सुधार होगा। केण्टन का लिङ्नाम् विश्वविद्यालय रेशम के कीड़ों के अण्डों के सुधार के लिए वैज्ञानिक प्रणाली का प्रयोग कर रहा है। सुधरे हुए अण्डों से सुन्दर रेशम और माल पैदा होते हैं। लेकिन रेशम के उद्योग-धन्धे में सुधार करने के ये वैज्ञानिक तरके केवल कुछ ही लोगों को ज्ञात हैं। अधिकांश रेशम पैदा करने वाले इन तरीकों से वाकिफ नहीं हैं।

अगर चीन को अपने रेशम के उद्योग-धन्धे में उन्नति करना और रेशम का उत्पादन बढ़ाना है तो उसे यहाँ के रेशम पैदा करने वालों को विदेशी वैज्ञानिक तरीकों को सिखाना होगा और रेशम के कीड़ों के अण्डों तथा शहतूत के पत्तों में सुधार करना होगा। उन्हें (रेशम पैदा करने वालों को) रेशम के कोयों से धागा निकालने और कच्चे रेशम के गुण, रंग तथा विभिन्न किस्मों को अलग करने का तरीका सीखना होगा तथा उन्हें उनमें सुधार करने के तरीकों को भी जानना होगा। तब चीन के रेशम का उद्योग-धन्धा धीरे-धीरे प्रगति करेगा और तब चीन का रेशम संसार के रेशम के बाजार में होड़ लेने के योग्य हो सकेगा। अगर चीन अपने शहतूत के पत्तों, रेशम के कीड़ों के अण्डों और कच्चे रेशम में सुधार नहीं करता है बल्कि प्राचीन तरीकों से ही चिपटा रहता है तो उसके रेशम का उद्योग-धन्धा केवल असफल ही नहीं होगा बल्कि सम्भवतः प्राकृतिक नियमानुसार एकदम से नष्ट हो जायगा। इस समय चीन के बहुत लोग रेशमी कपड़ा नहीं पहनते हैं। हमारा कच्चा रेशम विदेश इसलिए भेजा जाता है कि उसके बदले हमें सूती कपड़े और रूई के सूत मिलें। अगर चीन का रेशम निम्न कोटि का है तो दूसरे देश वाले इसे नहीं लेंगे और हमारे रेशम के लिए बाजार नहीं रहेगा। तब चीन केवल अपने धन के इस प्रधान जरिए को ही नहीं खो बैठेगा बल्कि उसके पास दूसरी कोई चीज़ कपड़ा बनाने के लिए नहीं रह जायगी क्योंकि वह अपना रेशम सूती कपड़े और रूई के सूत के लिए बाहर नहीं भेज सकेगा। इसलिए चीन

अपनी वस्त्र-समस्या को सुलझाने के लिए अगर वह चाहता है कि उसके पास वस्त्र तैयार करने की ज़रूरी चीज़ें रहें तो वह अपने प्राचीन उद्योग-धन्धों की रक्षा करे। वह अपने रेशम के कीड़ों के अंडों तथा शहतूत के पत्तों में सुधार करे रेशम कातने और रेशम पैदा करने के तरीकों में भी सुधार करे। चीन के जालीदार और साटन के कपड़े किसी भी देशी राष्ट्रों के कपड़ों से बढ़-चढ़ कर थे और वे बहुत सुन्दर होते थे। लेकिन अब विदेशी करघों पर बना रेशमी कपड़ा चीन के कपड़े से कहीं उच्च कोटि का होता है। अमीर चीनी परिवार द्वारा व्यवहार किए जाने वाले अत्युत्तम कपड़े विदेशों से आते हैं। जिससे पता चलता है कि हमारे उन्नतिशील देशी उद्योग-धन्धों का कैसा ह्रास हुआ है। रेशम की समस्या हल करने के लिए ताकि अच्छा रेशम पैदा हो सके हमें केवल रेशम के कीड़ों के अंडों तथा शहतूत के पत्तों में ही उन्नति और रेशम के कीड़ों के पालने के उद्योग-धन्धे तथा रेशम के सूत निकालने के तरीकों में ही सुधार नहीं करना चाहिए बल्कि मशीन द्वारा रेशम और साटन बुनने के विदेशी तरीकों को भी सीखना चाहिए। तब हम अपने लोगों के व्यवहार के लिए सुन्दर रेशमी वस्त्र तैयार कर सकेंगे। जब घर की माँग पूरी हो जायगी तब अतिरिक्त माल को हम दूसरी चीज़ के बदले में बाहर भेज सकते हैं।

दूसरी चीज़ सन है जिससे कपड़ा तैयार होता है। सन का आविष्कार पहले चीन में हुआ। प्राचीन काल में ही चीन के लोगों ने सन से कपड़ा बनाने का तरीका निकाला था और वह पुराना तरीका आज भी उसी ढङ्ग से लागू है। लेकिन चीन की कृषि कभी उन्नति नहीं करती है। इसलिए हाल ही में सन के कपड़े का व्यवसाय दूसरे देशों ने हमसे ले लिया है। अब विदेशी मशीन से सन का सूत तैयार होता है जो रेशम के समान ही चमकीला होता है। रेशम तथा सन के सूतों को मिलाकर सभी प्रकार के वस्त्र विदेशी मशीनों से तैयार होते हैं। ये कपड़े पश्चिम में बड़े पसन्द किए जाते हैं और चीन में भी लोग इन्हें पसन्द करते हैं। यहाँ यह कपड़ा अभी हाल से ही आने लगा है। लेकिन इससे हमारे सन का उद्योग-धन्धा मिट रहा है। चीन के सभी प्रान्तों में काफ़ी सन पैदा होता है लेकिन इस सन से जो कपड़ा बनता है वह केवल गर्मी में ही व्यवहार किया जाता है और वह एक ऋतु से अधिक नहीं ठहरता है। अगर हम सन के उद्योग-धन्धे की उन्नति करना चाहते हैं तो हमें इसकी कृषि सम्बन्धी बातों (जैसे सन कैसे पैदा करना चाहिए, कैसे खाद देना चाहिए) और इसके माल बनाने के तरीकों (जैसे

सन का बारीक सूत कैसे तैयार करना चाहिए) का ब्यौरेवार और मौलिक अध्ययन करना चाहिए। तब सन के उद्योग-धन्धों का विकास हो सकेगा और तैयार किया हुआ माल सस्ता पड़ेगा। भूत काल में सन का उद्योग-धन्धा पूर्णरूप से हाथ के श्रम पर निर्भर था। उस समय किसी प्रकार की मशीन व्यवहार में नहीं लाई जाती थी। हाथ से माल तैयार करने में केवल अधिक समय ही नहीं लगता है और कमजोर सूत ही नहीं निकलता है बल्कि खर्च भी अधिक बैठता है। अगर हम सन के उद्योग-धन्धे की उन्नति चाहते हैं और सन का कपड़ा तैयार करना चाहते हैं तो हमारे सामने विस्तृत योजना होनी चाहिए। सम्पूर्ण रूप से यानी खेत में पटुआ या सन की पैदावार से लेकर कारखानों तक जहाँ कि सन का कपड़ा तैयार होता है हम आधुनिकतम वैज्ञानिक तरीकों का व्यवहार करें। अगर हम ऐसा सुधार कर सकें तो हमें कपड़े के लिए अच्छा और सस्ता सन मिलेगा।

रेशम और सन कपड़ा बनाने के लिये कच्चे माल के रूप में पहले पहल चीन में आविष्कृत हुआ। लेकिन आजकल कपड़ा केवल रेशम और सन से ही नहीं बनता है बल्कि अधिकांश कपड़ा रूई से तैयार होता है और कपड़ा तैयार करने के लिये ऊन भी बहुत अधिक पैमाने पर व्यवहार में लाया जाता है। रूई और ऊन अब हर आदमी के वस्त्र के लिए आवश्यक हो गये हैं। रूई चीन की अपनी चीज़ नहीं है। सइबा (ceiba tree cotton) रूई (व्यापारिक क्षेत्र में इसे भारतीय रूई कहते हैं) भारत से चीन में आई है। भारत से कपास का बीज लेकर चीन उसे अपने भिन्न-भिन्न भागों में बोने लगा और बाद में उसने रूई का कातना और सूत बुनना सीखकर कपड़े का उद्योग-धन्धा चालू किया। आगे चलकर विदेशी सूती कपड़ा जो देशी कपड़े से अच्छा होता है और सस्ता पड़ता है, चीन में आने लगा। चीन के लोगों ने देशी कपड़े की अपेक्षा विदेशी कपड़े को पसन्द किया और इस प्रकार हमारा देश उद्योग-धन्धा एक कोने में पड़ गया। इसका यह अर्थ है कि कपड़े के आवश्यक सामान के लिए चीन को विदेशों पर निर्भर रहना पड़ता है। छोटे-छोटे देशी उद्योग-धन्धे अब भी वर्तमान हैं जो विदेशी सूत बुनते हैं। इससे आप देख सकते हैं कि दूसरे देशों के द्वारा हमारे कपड़े का उद्योग-धन्धा कितना खोखला बना दिया गया है।

भारत से कपास का बीज पाकर चीन उसे अपने यहाँ हर जगह बोने लगा और अब प्रति वर्ष यहाँ की अच्छी फसल होती है। संसार के रूई पैदा करने वाले देशों में संयुक्त राष्ट्र का स्थान पहला, भारतवर्ष का दूसरा और

चीन का तीसरा है। चीन अच्छे किस्म की रूई बहुत परिमाण में पैदा करता है। पर चूँकि इसके उद्योग-धन्धे विकसित नहीं हैं, इसलिए वह रूई कपड़े या सूत आदि तैयार करने में नहीं व्यवहार कर सकता है। वह केवल विदेशों में खासकर जापान और पश्चिमी देशों में उसे भेज देता है। जापान और पश्चिमी देश चीन की रूई खरीद लेते हैं और उसे अपने यहाँ की रूई में मिलाकर उससे अच्छा कपड़ा तैयार करते हैं। जापान के ओसाका स्थित कपड़े के कारखानों में आधे से अधिक चीन से आनेवाला कच्चा माल व्यवहार होता है। चीन से जाने वाली रूई का माल तैयार कर वे उसे (माल को) चीन में मुनाफे पर बेचने के लिए फिर से भेज देते हैं। चीन में बहुत बड़ी संख्या में मजदूर हैं और यहाँ दूसरे देशों से उजरत की दर भी बहुत कम है। देशी रूई और सस्ते श्रम के रहने पर भी क्यों चीन अपनी रूई जापान में कपड़ा तैयार करने के लिए भेजता है? क्यों चीन स्वयं नहीं कपड़ा तैयार करता है? इसका सीधा कारण यह है कि चीन का उद्योग-धन्धा पिछड़ा हुआ है। हम सस्ता कपड़ा नहीं तैयार कर सकते हैं। जापान का उद्योग-धन्धा बहुत ही उन्नत अवस्था में है और वह सस्ता कपड़ा तैयार कर सकता है। इसलिए कपड़े की समस्या हल करने के लिए पहले हम कृषि और उद्योग-धन्धों की समस्याओं को हल करें। जब तक ये दो समस्यायें हल नहीं होती हैं हम कृषि संबंधी पैदावार नहीं बढ़ा सकते हैं या सस्ता वस्त्र नहीं तैयार कर सकते हैं। जब तक चीन स्वयं सस्ता कपड़ा नहीं तैयार कर सकता है तब तक उसे विदेशी कपड़ों के आयात पर निर्भर रहना पड़ेगा। लेकिन विदेशी राष्ट्र सेवा की भावना से या खिराज के तौर पर अपना कपड़ा चीन नहीं भेज रहे हैं। वे अपना माल इसलिए भेजते हैं कि उन्हें अधिक मुनाफा हो। वे एक डालर मूल्य के कपड़े से दो डालर प्राप्त कर सकें। चीनी रुपया विदेशी मुनाफे में जाता है। यही विदेशी आर्थिक प्रभुत्व है जिससे हम सताए जा रहे हैं। अगर हम इसका पता लगाएं कि हम क्यों विदेशी प्रभुत्व के नीचे हैं तो हमें पता चलेगा कि इसका कारण हमारे उद्योग-धन्धों का बहुत पिछड़ा हुआ होना है। चीन अपनी रूई विदेश भेजता है और तब विदेशों में तैयार हुए सूती कपड़ों को खरीदता है। हम जो कपड़ा पहनते हैं वह विदेशी है और इसके लिए हमें बहुत दाम देना पड़ता है। हम जो अधिक दाम देते हैं वह अपने अमूल्य रुपये और खाद्य सामग्री के रूप में बाहर भेजते हैं। चीन की स्थिति ह्रास होते हुए परिवार में काली भेड़ के समान है जो स्वयं कुछ न तो पैदा कर सकता है या न अपने वस्त्र और भोजन पैदा करने की चेष्टा ही करता

है और इसलिए वह अपने भोजन और वस्त्र के बदले में परिवार की अमूल्य और पुश्तैनी सम्पत्ति को भी खो देता है। विदेशी आर्थिक प्रभुत्व के नीचे चीन की वर्तमान हालत यही है।

राष्ट्रीयता के सिद्धान्त पर भाषण देते समय मैंने बताया है कि किस प्रकार चीन विदेशी आर्थिक प्रभुत्व के कारण प्रतिवर्ष एक अरब बीस करोड़ से एक अरब पचास करोड़ डालर तक का घाटा उठा रहा है। इस डेढ़ अरब डालर के घाटे का अधिक भाग हमारे व्यापार को सन्तुलित करने में लगता है, क्योंकि हमारा आयात हमारे निर्यात से मेल नहीं खाता है। गत दो-तीन वर्षों की चुंगी रिपोर्ट के अनुसार हमारे आयात का मूल्य निर्यात के मूल्य से, तीस करोड़ टेल (Taels) कम है। ये टेल हाइक्वान् या चुंगी टेल हैं जिनका मूल्य संघाई के चलन में पचास करोड़ डालर और केण्टन के चलन में साठ करोड़ डालर होगा। यही तो हमारे व्यापार के सन्तुलन का मूल्य है। हम कौन-सा माल बाहर से मंगाते हैं? हमारा प्रधान आयात विदेशी सूत और विदेशी सूती कपड़ा है। इसलिए चीन को मुख्य रूप से रूई के आयात द्वारा घाटा उठाना पड़ता है। चुंगी रिपोर्ट के अनुसार रूई के आयात का मूल्य सालाना बीस करोड़ हाइक्वान् टेल है जो बतीस करोड़ संघाई डालर के मूल्य के बराबर होता है। हमारे द्वारा व्यवहार किये जाने वाले विदेशी कपड़े का यही मूल्य है। इसका यह अर्थ है कि अगर हम अपनी जाँच का आधार सबसे हाल की मदुंमशुमारी को मानें तो चीन का हर आदमी प्रति वर्ष एक डालर मूल्य का विदेशी कपड़ा पहिनता है। इस प्रकार जीवन की दूसरी बड़ी आवश्यकता की पूर्ति हमें विदेशी चीज़ से करनी पड़ती है। चीन में रूई है और कम उजरत पर काम करनेवाले मज़दूर भी हैं; पर चूंकि हम नहीं जानते हैं कि हम अपने उद्योग-धन्धों को कैसे बढ़ावें और अपने अधिकारों को पुनः कैसे प्राप्त करें इसलिए हमें विदेशी कपड़ा पहनना पड़ता है। इसके लिए हमें अपना बहुत-सा धन विदेशियों को देना पड़ता है। जब तक हम अपना बहुत सा धन बाहर भेजते रहेंगे, तब तक हम विदेशी आर्थिक प्रभुत्व की कठिनाई नहीं दूर कर सकते और न हम कपड़े की तात्कालिक समस्या को हल ही कर सकते हैं।

अगर हम अपना खोया हुआ अधिकार प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें पहले अपनी वस्त्र-समस्या का हल निकालना चाहिए और विदेशी सूती माल के आयात को कम करना चाहिए। कैसे हम इस समस्या को हल करेंगे? यूरोपीय युद्ध के समय पश्चिमी राष्ट्रों के पास चीन में भेजने के लिए सूती

कपड़ा नहीं था और उस समय चीन के व्यवहार के लिए सब सूती कपड़ा जापान से आता था। लेकिन जापान उस समय मित्र राष्ट्रों के पास युद्ध का सामान भेजकर चीन को सूती कपड़ा भेजने की अपेक्षा अधिक मुनाफा कर रहा था। इसलिए जापान के सभी बड़े-बड़े कारखाने मित्र राष्ट्रों को सामान देने के लिए काम करते थे और केवल छोटे-छोटे कारखाने सूत और सूती कपड़े चीन भेजने के लिए तैयार करते थे। चीन के बाजार में सूती कपड़े की कमी पड़ गई थी और उसका मूल्य ऊपर चढ़ गया था। तब कुछ चीनी व्यापारियों ने, जो लाभ की आशा से पूँजी लगाने को तैयार थे, कई सूत कातने और कपड़ा बुनने के कारखाने खोले जो देशी रूई से सूत तैयार करते थे और उससे कपड़ा बुनते थे। बाद में इस प्रकार के बीसों पुतलीघरों का निर्माण संघाई में हुआ और सबों ने बहुत अधिक मुनाफा उठाया। एक डालर पूँजी लगाने पर लाभ में तीन या चार डालर मिल जाते थे और कई सौ प्रतिशत मुनाफा होता था। जब पूँजीपतियों ने इस बड़े लाभ को देखा तो उन्होंने अधिक धन कमाने के लिए पहले से भी अधिक पूँजी सूत कातने और कपड़ा बुनने के उद्योग-धन्धे में लगायी। रूई के उद्योग-धन्धे का वह उत्कर्ष-काल था और बहुत से नये धनी पूँजीपति तो 'रूई के राजा' कहलाने लगे। लेकिन अब क्या परिस्थिति है? पहले के लखपतियों को बहुत घाटा उठाना पड़ा है और अब वे गरीब हो गए हैं। बहुत से पुतलीघरों को जिनका निर्माण युद्धकाल में हुआ था, बन्द कर देना पड़ा है। अगर उन्होंने (पुतलीघरों के मालिकों ने) उन्हें (पुतलीघरों को) बन्द नहीं किया होता तो वे बुरी तरह कर्ज में डूब जाते और उनका दिवाला निकल जाता।

इस प्रकार की अवस्था क्यों आई? कुछ लोग ऐसे थे जो सोचते थे कि विदेशी राष्ट्र कपड़ा और सूत चीन भेज सकते हैं क्योंकि वे मशीन द्वारा इन चीज़ों को तैयार करते हैं। चूँकि मशीन का बना कपड़ा और सूत हाथ के बने कपड़े और सूत से अच्छे होते हैं और उनमें कम पूँजी लगानी पड़ती है इसलिए विदेशी राष्ट्र चीन की रूई खरीद सकते हैं और अपने पुतलीघरों में इसे ले जाकर इससे सूत और कपड़े तैयार कर उन्हें फिर चीन भेज देते हैं। इस टेढ़े-मेढ़े आगे-पीछे की चाल के बावजूद भी वे अच्छा मुनाफा करते हैं। यह कहा जाता था कि उनके इस मुनाफे का कारण यह है कि उनके पास मशीन है। इसलिए चीन के कुछ पूँजीपतियों ने विदेशी राष्ट्रों की नकल थी। उन्होंने सूत कातने और कपड़ा बुनने की बहुत-सी मशीनें खरीदीं और आधुनिक ढंग के बहुत से पुतलीघरों का निर्माण किया। इसमें लगाई गई पूँजी दस

लाख से करोड़ों डालर तक की थी। यूरोपीय युद्ध के समय इन पुतलीघरों ने काफ़ी मुनाफा उठाया लेकिन सबके सब अब घाटा उठा रहे हैं। उनमें बहुत से तो अब बन्द कर दिए गए हैं और एक समय के 'रूई के राजा' अब 'दीन जन' हो गए हैं। हमारे सूत कातने और कपड़ा तैयार करने के आधुनिक पुतलीघरों में ठीक विदेशी राष्ट्रों की तरह की मशीनें हैं। क्यों तब विदेशी पुतलीघर मुनाफा करते हैं और हमारे पुतलीघर बन्द हो जाते हैं ? तब कैसे विदेशी राष्ट्र चीन की रूई खरीद सकते हैं और अपने पुतलीघरों तक उसे ले जाने का जहाजी भाड़ा देते हैं और पुनः तैयार कपड़े को चीन में भेजने का भी दूसरी बार जहाजी भाड़ा उठाते हैं ? फिर, चीन में उजरत की दर विदेशों से कम है और यह आशा करना युक्तिसंगत जान पड़ता है कि सस्ते देशी श्रम, देशी रूई और विदेशी मशीनों से चीन के पुतलीघर मुनाफा उठायेंगे जब कि विदेशी पुतलीघर चीन में अपना भाव भेजकर घाटा उठायेंगे। लेकिन क्यों वास्तविक फल ठीक इसका उल्टा होता है ?

इसका कारण यह है कि चीन के कपड़े का उद्योग-धन्धा विदेशी राजनीतिक प्रभुत्व के नीचे दबा हुआ है। विदेशी राष्ट्र चीन पर केवल आर्थिक प्रभुत्व का ही दबाव नहीं देते हैं। आर्थिक प्रभुत्व तो प्राकृतिक शक्ति है जिसे हम चीन में वाङ् ताव्—राजकीय मार्ग—कहते हैं। जब विदेशी राष्ट्र किसी समय अपनी आर्थिक शक्ति को कमजोर पाते हैं और अपने उद्देश्य में दूसरे प्रकार से सफलता नहीं प्राप्त कर सकते हैं तब वे राजनीतिक शक्ति का प्रयोग करते हैं। यह राजनीतिक शक्ति वह है जिसे हम चीनी भाषा में पा ताव्—शक्ति का मार्ग—कहते हैं। पहले के दिनों में चीन अपने यहाँ की हाथ की बनी चीजों से विदेशी मशीन की प्रतियोगिता करता था और अब वह (हाथ का उद्योग-धन्धा) नष्ट हो गया है लेकिन वह तो शुद्ध आर्थिक समस्या थी। चीन के सूत कातने और कपड़ा बुनने के जो उद्योग-धन्धे (जिनके पास विदेशी ढंग की मशीनें थीं) विदेशी राष्ट्रों की प्रतियोगिता करते थे वे युद्ध के बाद बन्द हो गए। इसका कारण आर्थिक नहीं बल्कि राजनीतिक था। विदेशी राष्ट्र चीन के ऊपर अपना राजनीतिक प्रभुत्व बनाए रखने के लिए कौन से तरीके अख्तियार करते हैं ? चीन की मांचू सरकार ने जब विदेशी राष्ट्रों से युद्ध किया था और उसमें वह हार गई थी तो चीन को बाध्य होकर बहुत सी असम सन्धियों पर हस्ताक्षर करना पड़ा था। विदेशी राष्ट्र अब तक उन सन्धियों को चीन को बन्धन में रखने के लिए व्यवहार में ला रहे हैं। जिसके फलस्वरूप चीन जो कुछ करना चाहता है उसमें वह असफल हो जाता है।

अगर चीन दूसरे राष्ट्रों के बराबर होकर स्वतन्त्रतापूर्वक आर्थिक मैदान में उनका मुकाबला करता तो वह बिना असफलता के अपनी स्थिति बनाए रखने में समर्थ होता। लेकिन जैसे ही विदेशी राष्ट्र राजनीतिक शक्ति का व्यवहार अपने आर्थिक स्वार्थों को बचाने के लिए करते हैं तो चीन इस घपले में पड़ जाता है कि उसका कैसे विरोध किया जाय या कैसे उन लोगों के साथ सफलतापूर्वक प्रतियोगिता की जाय।

इन सन्धियों और रुई की समस्या के बीच क्या सम्बन्ध है ? जब विदेशी राष्ट्र अपने रुई के सूत को हमारे बन्दरगाहों पर भेजते हैं तो समुद्री चुंगी वाले पाँच प्रतिशत उनसे कर वसूल करते हैं। जब सूत चीन के भीतरी प्रदेशों में वितरण होता है तो उसपर ढाई फी सदी लिकिन कर (Likin tax) भी लगाया जाता है। इस प्रकार यद्यपि विदेशी सूत और कपड़े साढ़े सात फी सदी ही कर देते हैं फिर भी सम्पूर्ण चीन का विस्तृत बाजार उनके लिए खुला रहता है। लेकिन हमारे पुतलीघरों के सूत और कपड़े की क्या दशा होती है ? मांचू राजकुल के समय चीन के लोग केवल स्वप्न देखते थे। वे केवल निकम्मों की तरह विदेशी प्रस्तावों को सुनते रहे और चीन के देशी कपड़े पर भी पाँच प्रतिशत कर लगा दिया गया जो बाहर से आने वाले माल पर लगी चुंगी कर के बराबर ही था। लेकिन जब चीन का देशी कपड़ा देश के भीतर भागों में वितरण होता है तो उसे विदेशी कपड़े की तरह एक ही बार लिकिन कर नहीं देना पड़ता है बल्कि उसे हर लिकिन कर वसूल करने आफिस में लिकिन कर देना पड़ता है। जब देशी कपड़े पर इतनी ही चुंगी लगायी जाती है और इसके अलावे उस पर लिकिन कर विदेशी कपड़े की अपेक्षा अधिक लगाया जाता है तो स्वभावतः ही देशी कपड़े का दाम अधिक हो जाता है। जब देशी कपड़ा बहुत महंगा पड़ता है तो उसकी खपत देश में नहीं हो सकती है। इसलिए हमारा देशी कपड़ा विदेशी कपड़े की प्रतियोगिता में नहीं ठहर सकता है। विदेशी राष्ट्र चीन के चुंगी कर और दूसरे करों के तय करने में सन्धियों का इस्तेमाल करते हैं। न तो चुंगी आफिस और न लिकिन आफिस ही विदेशी मालों पर अधिक कर बढ़ा सकते हैं लेकिन वे चीन के देशी माल पर अपनी इच्छानुसार बढ़ा सकते हैं। उदाहरण के लिए देखिए कि केण्टन का समुद्री चुंगी विभाग चीन वालों के नियंत्रण में नहीं है बल्कि विदेशियों के नियंत्रण में है। हम विदेशी माल पर कर बढ़ाने को स्वतंत्र नहीं हैं लेकिन विदेशी लोग चीन के माल पर अगर वह चुंगी आफिस

होकर जाता है तो उस पर स्वतंत्रतापूर्वक कर बैठा सकते हैं। चुंगी आफिस के बाद चीन के माल को बहुत जगह लिकिन कर देना पड़ता है जबकि विदेशी माल केवल एक बार लिकिन कर देता है और तब बिना रुकावट के देश के किसी भी भाग में भेजा जा सकता है। चूँकि कर की दर विदेशी और चीनी मालों पर एक नहीं है इसलिए चीन के देशी कपड़े को मुँह की खानी पड़ती है।

यूरोप और अमेरिका के जो समान और स्वतंत्र राज हैं वे एक-दूसरे के आयात पर स्वतंत्रतापूर्वक कर बैठाते हैं। कोई भी संधि द्वारा बँधा नहीं है। हर देश की सरकार अपनी इच्छानुसार कर के दर में वृद्धि कर सकती है। अपने देश और विदेशी राष्ट्रों की आर्थिक अवस्थाओं को ध्यान में रखकर कर निर्धारण के दर में परिवर्तन किया जाता है। अगर किसी देश में बहुत बड़े परिमाण में बाहर भेजने को माल है जो बाहर के दूसरे देशों के देशी माल का स्थान ले सकता है तो उन देशों की सरकारें अपने माल की रक्षा के लिए और विदेशी माल को देश के भीतर आने से रोकने के लिए उस पर भारी कर बैठाती हैं। यह संरक्षण आयात-कर प्रणाली कहाती है। उदाहरण के लिए लीजिए कि अगर चीन जापान में अपना माल भेजता है तो उस माल पर जापान कम से कम तीस प्रतिशत चुंगी बैठाता है और जापान में उसका (जापान का) देशी माल बिना चुंगी के वितरण होता है। जापान का कोई थोक माल जिसका मूल्य एक सौ येन् होता है और उस पर अगर कोई कर नहीं बैठाया जाता है तो वह एक सौ बीस येन् पर बाजार में बिकता है और इस प्रकार बीस येन् का सीधा नफा होता है। लेकिन अगर चीनी थोक माल का लागत मूल्य एक सौ येन् है और वह जापान में जाता है और उस पर तीस प्रतिशत चुंगी बैठती है और अगर वह एक सौ बीस येन् में बिकती है तो सीधे दस येन् का घाटा पूँजी में होता है। इस प्रकार जापान चीन के माल को अपने यहाँ आने से रोक सकता है और अपने माल को संरक्षण दे सकता है। इस प्रकार के देशी उद्योग-धन्धों के विकास की रक्षा करने के और विदेशी माल को देश में आने से रोकने के तीरके का व्यवहार करना सभी राष्ट्रों की आम आर्थिक नीति है।

अगर हम अपने जीविका की समस्या का हल करना और अपने देशी उद्योग-धन्धों की रक्षा करना चाहते हैं ताकि हम पर विदेशी उद्योग-धन्धों का आक्रमण न हो सके तो हमें उनकी रक्षा के लिए पहले राजनीतिक शक्ति हाथ में लेनी चाहिए। लेकिन संधियों के चंगुल में फंसा आज का चीन केवल

अपना सार्वभौमिक अधिकार और अपने उद्योग-धन्धों की रक्षा करने की प्रभुता ही नहीं खो बैठा है बल्कि वास्तव में विदेशी उद्योग-धन्धों की रक्षा कर रहा है। विदेशी उद्योग-धन्धे विदेशी राष्ट्रों के पूँजीवाद के प्रसार, मशीन की उन्नति और आर्थिक प्रधानता से बढ़ते हैं लेकिन विदेशी आर्थिक प्रभुत्व को राजनीतिक शक्ति का सहारा मिलता है। इसलिए यूरोपीय युद्ध के समय जब चीन को पश्चिमी सूत और कपड़े से प्रतियोगिता नहीं करनी पड़ती थी तो चीन के उद्योग-धन्धों को मुनाफा हुआ था। योरोपीय युद्ध के बाद विदेशी माल पुनः चीन में आने लगा और हमारे माल से उसकी प्रतियोगिता शुरू हो गई। जिस कारण हमें बहुत आर्थिक हानि उठानी पड़ी। वस्त्र समस्या की सबसे प्रधान बात रूई है। वर्तमान समय में रूई की समस्या का कोई हल नजर नहीं आ रहा है। चीन के रूई के उद्योग-धन्धों अभी तक बाल्यावस्था में ही हैं। हमारी मशीनें विदेशी मशीनों की तरह न उतनी अच्छी हैं और न उतनी काम लायक ही। साथ-साथ हमारे पुतलीघरों का संगठन और अनुशासन विदेशी पुतलीघरों के ऐसा पूर्ण नहीं है। इसलिए माल पर बिना चुङ्गी-कर और लिकिन कर दिए भी चीन के कपड़े के उद्योग-धन्धों को दूसरे देशों के साथ प्रतियोगिता करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा।

दूसरे देशों से प्रतियोगिता करने के लिए हमें पश्चिमी राष्ट्रों की कर निर्धारण नीति की नकल करनी चाहिए। इस नीति से उन्हें क्या अनुभव हुआ है? कुछ शताब्दी पहले ब्रिटिश उद्योग-धन्धों की गिनती संसार में पहले नंबर की थी। संसार में जिस किसी माल की मी मांग होती थी ग्रेट ब्रिटेन उसकी पूर्ति करता था। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका उस समय कृषि-युग में ही था। अमेरिका के छोटे-छोटे उद्योग-धन्धे ब्रिटिश उद्योग-धन्धों द्वारा नष्ट कर दिए गए और उन्हें बढ़ने का मौका नहीं मिला। तब संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने संरक्षण नीति अख्तियार की और उसने ब्रिटिश माल पर संरक्षण आयात-कर लगाना शुरू किया। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में जितना ब्रिटिश माल जाता था सब पर उसके मूल्यानुसार पचास से एक सौ फीसदी तक भारी कर बैठाया जाता था। इससे ब्रिटिश माल का थोक दाम इतना अधिक पड़ जाता था कि वह अमेरिका के माल से प्रतियोगिता नहीं कर सकता था। तब बहुत तरह के ब्रिटिश माल संयुक्त राष्ट्र अमेरिका नहीं जाने लगे और इसलिए अमेरिका के उद्योग-धन्धे बढ़ने लगे, यहाँ तक कि वे ब्रिटिश उद्योग-धन्धों से भी आज आगे बढ़ गए हैं। कुछ दशाब्दी पहले जर्मनी एक कृषि-प्रधान देश था और जर्मनों को भी अपनी आवश्यक चीज़ों के लिए ग्रेट ब्रिटेन पर निर्भर रहना

पड़ता था। वे भी बृटिश उद्योग-धन्धों के प्रभुत्व के नीचे थे। बाद में जर्मनी ने भी संरक्षण नीति अख्तियार की तो उसके उद्योग-धन्धे पनपने लगे। हाल के वर्षों में जर्मनी के उद्योग-धन्धे दूसरे राष्ट्रों से आगे बढ़ गए हैं।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि अगर हम चीन के उद्योग-धन्धों को फूलता-फलता देखना चाहते हैं हमें संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और जर्मनी की संरक्षण नीति की नकल करनी चाहिए, विदेशी माल के आक्रमण को रोकना चाहिए और अपने देशी माल की रक्षा करनी चाहिए। वर्तमान काल में पश्चिमी राष्ट्र चीन को अपना औपनिवेशिक बाजार समझता है और चीन के सार्व-भौमिक अधिकार तथा उसके आर्थिक ज़रियों को अपने हाथों में किए हुए हैं। हम जीविका की समस्या का हल अकेले आर्थिक क्षेत्र में ही नहीं पा सकते। हमें पहले रजनीतिक क्षेत्र को अपने हाथों में लेना चाहिए। हमें सभी असम संधियों को तोड़ देना चाहिए और चुंगी कर को विदेशी नियंत्रण से अपने अधिकार में कर लेना चाहिए। तब हम स्वतंत्रतापूर्वक विदेशी माल पर कर बढ़ा सकेंगे और संरक्षण की नीति लागू कर सकेंगे। इस प्रकार की नीति से चीन में विदेशी मालों की बाढ़ रुक जाएगी और तब स्वभावतः ही हमारे गृह-उद्योग पनपने लगेंगे।

चीन के लोगों को देशी माल का व्यवहार करना चाहिए और विदेशी मालों का बहिष्कार करना चाहिए। मैं नहीं कह सकता कि कितनी बार हमने इसका आन्दोलन किया है लेकिन सम्पूर्ण राष्ट्र ने इस काम को एक होकर नहीं किया। इसलिए आन्दोलन असफल हुआ। संगठित कारवाइ करने पर भी हम मुश्किल से सफलता प्राप्त कर सकते हैं क्योंकि हमारे राज की राज-नीतिक शक्ति कमजोर है। हम अपने समुद्री चुङ्गी का नियन्त्रण नहीं कर सकते जो कि विदेशियों के हाथों में है। हम अपनी इच्छानुसार कर को कम या अधिक नहीं कर सकते, इसलिए हमारे पास विदेशी मालों को मँहगा करने और देशी मालों को सस्ता बनाने का कोई उपाय नहीं है। देशी कपड़े से विदेशी कपड़ा अगर सस्ता हो जैसा कि वर्त्तमान समय में है, तो हम लोगों से यह आशा नहीं कर सकते चाहे वे कितने भी देशभक्त क्यों न हों कि वे देशी माल के खातिर विदेशी सस्ता माल नहीं खरीदेंगे। लोगों को यह कहना कि वे कभी विदेशी कपड़ा न व्यवहार करें और बराबर देशी कपड़ा पहनें हर आदमी के व्यक्तिगत सुविधाओं के अनुकूल नहीं होगा और यह नीति कभी भी में काम नहीं लाई जा सकती है। मान लीजिए कि कोई परिवार प्रति-वर्ष तीस डालर का विदेशी कपड़ा खरीदता है। अब अगर यह परिवार

विदेशी कपड़े का बहिष्कार करता है और उसके बदले देशी कपड़ा खरीदता है तो उसे उतने ही कपड़े के लिए पचास या साठ डालर देना पड़ता है। इस-प्रकार उस परिवार को कपड़े पर बीस या तीस डालर प्रति वर्ष अधिक खर्च करना पड़ेगा। देशभक्ति के जोश में एक बार कोई भी इतना त्याग कर सकता है। लेकिन इस तरह की भावुकता आर्थिक सिद्धान्तों के विरुद्ध पड़ती है और बहुत दिनों तक वह नहीं रह सकती है। अगर हम आर्थिक सिद्धान्त के अनुकूल होना और अपने ध्येय पर भी डटे रहना चाहते हैं तो हमें पहले असम संधियों को तोड़ देना होगा, समुद्री चुङ्गी पर अपना नियंत्रण स्थापित करना होगा, कर की दर को बढ़ाने-घटाने में स्वतंत्र होना होगा। इस प्रकार हम विदेशी तथा देशी मालों का मूल्य एक बराबर कर सकेंगे। तब अगर कोई परिवार तीस डालर मूल्य का विदेशी कपड़ा साल भर में पहनता है और उतने ही देशी कपड़े के लिए उसे तीस डालर ही लगता है तो यह प्रबन्ध ठीक होगा और तब हम आशा कर सकते हैं कि वह परिवार देशी कपड़ा पहने की अपनी प्रतिज्ञा को रख सकेगा। अगर हम एक कदम और आगे बढ़ें और विदेशी कपड़े को देशी कपड़े की अपेक्षा महँगा कर दें जिससे विदेशी कपड़ा पहनने वाले जिस कपड़े पर तीस डालर खर्च करते हैं, उतने ही देशी कपड़े पर बीस डालर खर्च कर सकें तब हम विदेशी कपड़े के उद्योग-धन्धे पर विजय प्राप्त कर सकते हैं और हमारा देशी उद्योग-धन्धा उन्नति करने में समर्थ हो सकता है। इस प्रकार आप देखते हैं कि अगर हमें अपने मिन् षङ् सिद्धान्त की वस्त्र-समस्या को हल करना है आगे संपूर्ण देश को देशी कपड़ा पहनना है और विदेशी कपड़े को अपने बन्दरगाह पर नहीं आने देता है तो हमें राज की राजनीतिक शक्ति का प्रयोग करना पड़ेगा।

अपनी वस्त्र-समस्या के हल करने में जिन मुख्य कच्चे मालों पर हमें विचार करना है वे हैं रेशम, सन, रूई और ऊन। चौथी चीज़ ऊन चीन में काफ़ी परिणाम में होता है। चीनी ऊन विदेशी ऊन से उच्च कोटि का होता है। लेकिन ऊन का उद्योग-धन्धा चीन में विकसित नहीं हुआ है। हम ऊनी कपड़ा नहीं तैयार करते हैं बल्कि कचा ऊन ही दूसरे देशों में भेज देते हैं। दूसरे देश वाले हमारे ऊन को खरीदते हैं और उससे ऊनी कपड़ा तैयार करते हैं और पुनः तैयार माल से मुनाफा करने के लिए उसे चीन भेज देते हैं। अगर हम अपने अधिकार को पुनः प्राप्त कर सकें और राज की शक्ति को ऊन के उद्योग-धन्धे के विकास में लगा सकें तो यह भी कपड़े के उद्योग-धन्धे के साथ-साथ उन्नति करेगा। अगर हमारे यहाँ उन्नतिशील ऊन

का उद्योग-धन्धा हो तो चीन के लोगों को ऊनी कपड़ा जिसकी आवश्यकता उन्हें जाड़े में पड़ती है, विदेशी राष्ट्रों से नहीं खरीदना पड़ेगा। अगर हमारे पास खपत से अतिरिक्त ऊन बचेगा तो हम रेशम की तरह ही उसे विदेश भेजेंगे। लेकिन अभी तो चीन में ऊन का उद्योग-धन्धा अविकसित अवस्था में है। इसलिए भेड़ों का ऊन लगा हुआ चमड़ा, या भेड़ों का काटा हुआ ऊन, जिनका व्यवहार चीन में नहीं हो सकता है, विदेशियों के हाथों बेच दिया जाता है। विदेश में उससे ऊनी कपड़े और सब तरह के कम्बल तथा नमदा आदि बनते हैं। पुनः बना हुआ माल चीन भेजा जाता है और यहाँ हम उसे खरीदते हैं। इससे पता चलता है कि हमारे सूती कपड़े और और ऊन के उद्योग-धन्धे विदेशी राजनीतिक और आर्थिक प्रभुत्व के नीचे दबे हुए हैं। वस्त्र-समस्या को हल करने के लिए हम सम्पूर्ण राष्ट्र की महान् ताकत को एक विस्तृत योजना बनाने में लगाएँ। पहले हम अपने सार्वभौमिक अधिकार को प्राप्त करें। हम रेशम, सन, रूई और ऊन सम्बन्धी पैदावार बढ़ाने और उनका माल तैयार करने के उद्योग-धन्धों के विकास के लिए राज की शक्ति का प्रयोग करें। कच्चे माल के निर्यात और तैयार माल के आयात पर कर बढ़ाने के लिए हम समुद्री चुङ्गी को अपने अधिकार और नियंत्रण में करें ताकि ये देशी उद्योग-धन्धे बच सकें। तब हमारे सूत कातने और कपड़ा तैयार करने का उद्योग-धन्धा तुरत बढ़ने लगेगा और कपड़े की समस्या हल हो जाएगी।

चूँकि अब हम कपड़ा तैयार करने की चीज़ों की समस्या के हल को जानते हैं। इसलिए हमें अब वस्त्र की समस्या पर ध्यान देना चाहिए। मैंने एक बार पहले कहा है कि जाड़े से बचने के लिए कपड़ा पहनने का रिवाज चला। कपड़ा पहनने का प्रथम उद्देश्य शरीर की रक्षा करता था। लेकिन जैसे-जैसे सभ्यता बढ़ी कपड़े का व्यवहार शरीर को सजाने के लिए होने लगा और तब कपड़ा पहनने का दूसरा उद्देश्य सुन्दरता बढ़ाना हो गया। जंगली आदमियों के पास अपना शरीर सजाने के लिए किसी प्रकार का परिधान नहीं था इसलिए उन्होंने शरीर पर गोदना गोदा लिया अर्थात् उन्होंने अपने शरीर के चमड़े पर चिह्न बनवाए और उन्हें रंगवा दिया। हमारे पूर्वज इसे वन् षन् या शरीर सजाना कहते थे। यद्यपि सभ्यता आगे बढ़ी है फिर भी कपड़ा पहनने का प्रधान उद्देश्य अभी तक शरीर को सजाना ही माना जाता है। कपड़ा पहनने के इस उद्देश्य को भुला दिया गया है कि उससे जाड़ा कटता है और शरीर की रक्षा होती है। आजकल

खर्चीले जीवन और फजूल की प्रतियोगिता में केवल पहनने की सामग्री ही नये-नये रूपों में बराबर नहीं निकलती है बल्कि रिवाज के अनुसार पोशाक बनाने के ढंग में भी परिवर्त्तन होता है। अधिक से अधिक पोशाक और गहना पहनना अमीरी समझा जाता है तथा सांस्कृतिक विकास के साथ-साथ कुलीनता और विद्वत्ता पर्यायवाची माने जाते हैं।

जब निरंकुश शासन का विकास हुआ था तो पोशाक का व्यवहार पदों की विभिन्नता के लिए होता था। तब कपड़ा पहनने का तीसरा उद्देश्य वर्ग भेद को जताना हो गया। अब प्रजातन्त्र का जमाना है और सभी वर्ग एक हो गए हैं। प्रजासत्तात्मक राज के अंदर सैनिक या नाविक को भी उसके पोशाक के कारण एक खास भद्र वर्ग का नहीं माना जाना चाहिए। कपड़े पहनने के तीन उद्देश्य—शरीर-रक्षा, शरीर को सजाना और वर्ग भेद दिखाना—ऊपर बताए गए हैं। उनमें हम एक चौथा उद्देश्य भी जोड़ सकते हैं और वह है सुविधा। ऐसे समय में जबकि सभी वर्ग बराबर हो रहे हैं और काम करना पवित्र माना जाने लगा है तो हम पोशाक को आवश्यकता की वस्तु समझते हैं। इसलिए हमें यह कहना चाहिए कि हमारी जनता की आवश्यक पोशाक निम्न कामों को पूरा करे—वह शरीर की रक्षा करे, वह सुन्दर देखने में हो और वह सुविधाजनक हो और काम में बाधा देनेवाली न हो। इस प्रकार की पोशाक सचमुच में सुन्दर होगी।

जनता की जीविका के सिद्धान्त को कार्यान्वित करने के लिए और कपड़े के उपर्युक्त तीन व्यवहारों को ध्यान में रखते हुए राज को हर जगह बड़े पैमाने पर कपड़े के कारखानों की स्थापना करनी चाहिए। ये कारखाने देश के हर भाग की जनसंख्या और ऋतु का ध्यान रखते हुए लोगों के लिए वस्त्र तैयार करें। हर आदमी के कपड़े की आवश्यकता पूरी होनी चाहिए। किसी भी आदमी को इससे वंचित नहीं रहना चाहिए। सान मिन् सिद्धान्त वाली सरकार का जनता के प्रति कपड़े की आवश्यकता के सम्बन्ध में यही कर्त्तव्य है।

और जनता को भी सचमुच में राज के प्रति अपने नागरिक उत्तरदायित्व को पूरा करना चाहिए या उसे नागरिकता के अधिकार को छोड़ देना चाहिए। जो नागरिक होने के अयोग्य हैं वे राज के मालिक नहीं हो सकते हैं। आलसी तथा घुमक्कड़ राज और जनता के ऊपर परान्नभोजी जैसे हैं। सरकार उन्हें कानून द्वारा काम करने के लिए बाध्य करे और उन्हें अच्छे मजदूर के रूप में बदलने की कोशिश करे ताकि वे राज के अधिकार और

सुविधाओं में भाग लेने के योग्य हो सकें। जब आलसी मनुष्य नहीं रहेगा और सब लोग उत्पादन में हिस्सा बटाएँगे तब खाने और शरीर ढकने के लिए काफ़ी सामग्री मिलेगी, रहने के लिए आरामदायक घर होंगे और लोग संतुष्ट रहेंगे और जीविका की समस्या हल हो जायगी।*

अगस्त २४, सन् १९२४ ई०

---

*जीविका के सिद्धान्त पर दिए जाने वाले और सभी व्याख्यानों को डा० सनयात सेन नहीं पूरा कर सके।